शोध दिशा

ISSN 0975-735X

शोध अंक 9 | जनवरी-मार्च 2010 | 100 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 09368141411
ई-मेल : giriraj3100@rediffmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन॰सी॰आर॰
अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09928570700

राजस्थान
अंकुर गोयल
402, यूनीक सांघी अपार्टमेंट
सांघी फार्म, महावीर नगर, जयपुर (राज॰)
फ़ोन : 0141-2722548, 09351553454

हरियाणा, हिमाचल एवं पंजाब
डॉ॰ हरिशरण वर्मा
710/35 जनता कालोनी
रोहतक (हरियाणा) 124001
फोन : 01262-248211, 09355676460

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

सह संपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल
अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
वार्षिक शुल्क : चार सौ रुपए
यह प्रति : एक सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डा॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डा॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ. आर.पी.सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ.प्र.)
डॉ. अशोक चक्रधर, प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ. हरिमोहन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, के.एम.मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ. हरमहेंद्रसिंह बेदी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर
डॉ. रामसजन पांडेय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ. माया टाक, प्रोफेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
डॉ. संतराम वैश्य, प्रोफेसर हिंदी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड)
डॉ. हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
डॉ. मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा.)
डॉ. जितेंद्र वत्स, रीडर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ. दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ. लालबहादुर रावल, प्राचार्य, आर.एस.एम. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धामपुर (उ.प्र.)
डॉ. हरिशरण वर्मा, 710/35 जनता कालोनी, रोहतक (हरियाणा) 124001
डॉ. महेश दिवाकर, अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुलाबसिंह कॉलेज, चाँदपुर (उ.प्र.)
डॉ. मिथिलेश दीक्षित, अध्यक्ष हिंदी विभाग, बी.डी.एम.एम. महिला महाविद्यालय, शिकोहाबाद (उ.प्र.)
डॉ. महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)
डॉ. हरेराम पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) आसाम
डॉ. शारदा शर्मा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, मु.ला.एवं ज.ना.क.महाविद्यालय, सहारनपुर (उ.प्र.)
डॉ. शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.)
डॉ. सुरेंद्र विक्रम, अध्यक्ष हिंदी विभाग, लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ (उ.प्र.)
डॉ. श्यामधर तिवारी, प्रोफेसर हिं.वि., संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ. प्रवीणकुमार वर्मा, रीडर हिंदी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज, पलवल (हरियाणा)
डॉ. संतोषकुमार गौड़ रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)
डॉ. उषारानी वर्मा, रीडर हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रुद्रपुर (उत्तराखंड)
डॉ. सभापति मिश्र, प्राचार्य, हंडिया पोस्टग्रेजुएट कॉलेज, हंडिया (इलाहाबाद)
डॉ. घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ.प्र.)

कुछ बातें आपके साथ

अंधकार में छिपे हुए सत्य को प्रकाश में लाना, अज्ञात को ज्ञात करना, अव्यवस्थित ज्ञान-संपदा को व्यवस्थित करना तथा उपलब्ध ज्ञान-राशि को नवीन दृष्टि से व्याख्यायित करना ही अनुसंधान की प्रामाणिक प्रक्रिया है।

जिज्ञासा प्रवृत्ति का मानव प्रारंभ से ही अपने परिवेश की पहचान और जाँच-पड़ताल के लिए प्रयासरत रहा है। 'उसकी इस जिज्ञासा ने शोध को व्यवस्था दी तथा मनुष्य को इस रहस्यमय सृष्टि को समझने का दिशा-बोध भी दिया। मनुष्य का विकास प्रकारांतर से शोध के विकास का ही प्रतिफल कहा जा सकता है।'

यद्यपि 'शोध' शब्द के अनेक पर्यायवाची प्रचलित हैं तथापि इस शब्द का प्रयोग प्राय: वैज्ञानिक प्रविधि से संपन्न सत्यानुसंधान के अर्थ में किया जाता है। साहित्यिक शोध के लिए 'शोध' एवं 'अनुसंधान' शब्द रूढ़ हो गए हैं। इनके अतिरिक्त 'अन्वेषण' शब्द का प्रयोग भी इसी अर्थ में किया जाता है। अन्वेषण अज्ञात तथ्यों, वस्तुओं तथा स्थानों आदि को ज्ञात करने की प्रविधि है। यह भी कह सकते हैं कि पहले से ही विद्यमान वस्तु-सत्य या ज्ञान की खोज का नाम अन्वेषण है।

डॉ॰ सुरेशचंद्र गुप्त ने 'शोध' को 'विश्वसनीय समाधानों और निष्कर्षों तक पहुँचने की प्रक्रिया' कहा है। इसमें योजनाबद्ध कार्य और तत्संबंधी प्राप्त सामग्री का विधिवत संकलन, विश्लेषण और व्याख्यान होता है।

खेद है कि अनेक शोधार्थी अपने शोध-आलेख तैयार करते समय उसकी गंभीरता को भूल जाते हैं। उचित व सही संदर्भों के अभाव में तथा अशुद्ध भाषा के प्रयोग से उनके आलेख की गरिमा कम हो जाती है। इसी कारण अनेक बार शोध-आलेख अस्वीकृत करने पड़ते हैं।

पत्रिका के शोध-अंक निरंतर प्रकाशित होते रहें, इसके लिए शोध-निदेशकों, शोध-छात्रों, शोध-प्रेमियों से आग्रह है कि वे अपने शोध-आलेख निरंतर प्रेषित करते रहें। शोध-आलेख टंकित रूप में होने चाहिए। कंप्यूटर पर टाइप कराने के बाद उसकी एक सी॰डी॰ अवश्य भेजें। यदि शोध-आलेख में उचित संदर्भ नहीं दिए गए हैं तो उसे शोध-पत्र की मान्यता नहीं मिल पाएगी, अत: आलेख में उचित संदर्भ अवश्य दें।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
संपादक

शोध संदर्भ-5

संपादक

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

डॉ॰ मीना अग्रवाल

'शोध-संदर्भ' के अब तक प्रकाशित चार खंडों में उपाधिपरक हिंदी-शोध के आरंभ से सन् 2003 तक स्वीकृत शोधप्रबंधों का वर्गीकृत विवरण दिया गया था। अब शोध-संदर्भ-5 भी प्रकाशित हो गया है, जिसमें सन् 2003 के बाद स्वीकृत शोधप्रबंधों का वर्गीकृत विवरण सम्मिलित किया गया है।

ग्रंथ में विवरण निम्नलिखित क्रम में प्रकाशित किए गए हैं–

1. शोधकर्ता का नाम
2. जन्मतिथि
3. शोध का विषय
4. विश्वविद्यालय का नाम
5. उपाधि वर्ष
6. निदेशक का नाम व पता
7. प्रकाशन का विवरण
8. पता

इस विशिष्ट ग्रंथ का मूल्य 895 रुपए है, किंतु शोध-निदेशकों, हिंदी-प्राध्यापकों तथा शोध-छात्रों को यह ग्रंथ मात्र 450 रुपए में दिया जा रहा है।

ग्रंथ की प्रतियाँ सीमित संख्या में प्रकाशित की गई हैं। अत: निराशा से बचने के लिए अपना आदेश तथा धनराशि का बैंक ड्राफ्ट हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर के नाम यथाशीघ्र निम्न पते पर भेजिए। सी॰बी॰एस॰ शाखाओं के चैक स्वीकार्य होंगे।

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.)

01342-263232, 09368141411

अनुक्रम

नरेश मेहता : वैष्णवता के कवि / **डॉ॰ चेतना सारस्वत** 7
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य में मानवीय मूल्य / **श्रीमती करुणा शर्मा** 11
'हीरा और पन्नी' में संवेदना एवं शिल्प / **श्रीमती हरदीप कौर** 19
दोहा सप्तपदियाँ और दोहाकार देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' / **ईशा मल्होत्रा** 26
वर्तमानकालीन धार्मिक उथल-पुथल और हिंदी-ग़ज़ल / **डॉ॰ सुधाकर शेंडगे** 33
हिंदी-साहित्य पर मार्क्स तथा फ्रायड की विचारधारा का प्रभाव / **डॉ॰ हणमंतराव पाटील** 38
शेख़ फ़रीद वाणी : क़ुरान और हदीस के आईने में / **डॉ॰ ए॰ अज़ीज़ 'अंकुर'** 41
प्रेमचंद के कथासंसार में भारतीयेतर चरित्र / **श्रीमती अनुपमा** 44
समकालीन हिंदी-पंजाबी की कवयित्रियों की रचनाओं में स्त्री-विषयक सरोकार / **डॉ॰ योजना रावत** 49
मंजुल भगत के कथासाहित्य में पुरुष-पात्रों के विविध रूप / **साक्षी अग्रवाल** 60
विष्णु पुराण में भक्ति / **श्रीमती मयूरी त्यागी** 67
राजनीतिक चेतना के कवि उदयभानु 'हंस' / **पुरुषोत्तम शर्मा 'पुष्प'** 77
औपन्यासिक भाषा के कुशल चितेरे : मनोहरश्याम जोशी / **सुरेशचंद्र** 86
डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का बालकाव्य के विविध रूप / **कु॰ स्वाति शर्मा** 93
समकालीन कटु यथार्थ का आईना है डॉ॰ कुँअर बेचैन का साहित्य / **नीतू** 108
भारतेंदु मंडल के समानांतर मुरादाबाद का साहित्यिक मंडल / **डॉ॰ महेश दिवाकर** 113
उपभोक्तावाद और बाज़ारीकरण के संदर्भ में 'दस बरस का भँवर' / **रीतू चौहान** 122
प्रेमचंद और राजेंद्रमोहन भटनागर के उपन्यासों में नारी पात्र / **मंजु पुरी** 126
डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम और उनका बालकाव्य सृजन / **कु॰ स्वाति शर्मा** 130
पंजाब के हिंदी-साहित्य की चिंतनधारा में डॉ॰ हरमहेंद्रसिंह बेदी का अवदान / **शैलजा सैली** 140
नरेंद्र कोहली के रामकथापरक उपन्यासों में मिथकीय चेतना : एक विवेचन/ **श्रीमती गुंजन शर्मा** 145
समकालीन रचनाकार एवं रचनाएँ समकालीन काव्य के संदर्भ में / **डॉ॰ अरुणलता वर्मा** 153

कन्या भ्रूणहत्या / **सुदेश कुमारी** 161
गढ़वाली लोककथाओं में पवाड़े / **डॉ॰ वीरेंद्र बर्त्वाल** 167
नारी के विविध सामाजिक स्वरूप / **डॉ॰ कामना कौशिक** 179
पंजाब के आधुनिक उपन्यासकार मोहन चोपड़ा के 'सुबह से पहले' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन / **नवनीत कौर** 185
सामाजिक क्रांति में हिंदी दलित उपन्यासों का योगदान / **डॉ॰ भरत धोंडीराम सगरे** 190
पद्मावत में भारतीय लोककथाएँ / **शाहिना** 197
डॉ॰ रश्मि मल्होत्रा के काव्य में नारी-पीड़ा की अभिव्यक्ति / **संतोषकुमारी** 205
प्रगतिवादी चेतना के संदर्भ में भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास साहित्य / **कु॰ स्वाति शर्मा** 211
लोक और शास्त्र : अन्योन्याश्रित परंपरा / **गोविंदप्रसाद वर्मा** 218
मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य की मनोवैज्ञानिक उपलब्धियाँ / **श्रीमती बबीता सिंह** 224
दांपत्य संबंधों में विघटन : प्रताप सहगल के नाटक 'नहीं कोई अंत' के संदर्भ में / **सुनयना** 234
आचार्य शंकर का मायावाद / **डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 238
छायावादी काव्य में सत्य की अभिव्यक्ति / **डॉ॰ साधना तोमर** 245
डॉ॰ चंद्रशेखर नायर जी के नाटकों में अभिनेयता एवं रंगमंचीयता / **रेनू तोमर** 250
भारत में मुस्लिम जनसंख्या वृद्धि : सत्य एवं मिथक : एक भौगोलिक विश्लेषण / **डॉ॰ सियानंदसिंह त्यागी** 254
भारतीय महिलाओं के राजनीतिक उत्थान में गांधी जी का योगदान / **डॉ मधुलिका तिवारी** 261
इतिहासकार की भूमिका में पं॰ जवाहरलाल नेहरू (डिस्कवरी ऑफ इंडिया के संदर्भ में) / **डॉ॰ जी॰एस॰ अरोरा** 272
आँकड़ों में जनपद जौनपुर के शिक्षा का इतिहास / **नमिता श्रीवास्तव** 276
बाल-मन की सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति है–'हम बगिया के फूल'/ **डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी** 280

नरेश मेहता : वैष्णवता के कवि

डॉ॰ चेतना सारस्वत

आधुनिक युग के प्रमुख कवि श्री नरेश मेहता का जन्म 15 फरवरी 1922 को मालवा के शाजापुर नामक कस्बे में हुआ। श्री नरेश मेहता जो एक गुजराती परिवार में जन्मे, उन्हें वैष्णवता सहज संस्कार रूप में मिली। इन्हीं संस्कारों ने उनमें सृजनात्मकता का रूप ले लिया। ये संस्कार उनमें दृढ़मूल बने रहे और कठिन से कठिन परिस्थितियाँ भी उनको अपनी आधारभूमि से हटाने में सफल नहीं हुईं इसलिए वे साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भी पूरी तरह साम्यवादी नहीं बन सके। डॉ॰ राम मनोहर लोहिया जैसे राजनीतिक विचारक के संपर्क में आने पर भी किसी राजनीतिक दल से प्रतिबद्ध नहीं हो सके। वे जब कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित थे तब भी वैदिक कविता लिखते थे और यह बात कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित साथियों को सहन नहीं थी। जब उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़ा तब उन्होंने एक कविता 'निज-पथ' लिखी, जो उनकी स्पष्ट और संकल्पवान दृष्टि को प्रकट करती है–

सब मार्ग की अपनी दिशा, अपने क्षितिज
हम क्या करें?
आग्रह करो मत, इस तुम्हारे द्वार को ही मान ले भगवान
(यह) जन यहाँ से अलग होता है!
(पर) पथ यहाँ से अलग होता है!'

नरेश मेहता में अपने समकालीन लेखकों की सी हड़बड़ी और तनाव दिखाई नहीं देता है। इसी मानसिकता के कारण ही उनकी सोच में प्रभु, वैष्णवता, रास, कीर्तन, लीलाभाव या इससे आगे बढ़ने पर वैदिकता व्यक्त होती है।

रामकमल राय ने अपने ग्रंथ 'नरेश मेहता कविता की ऊर्ध्वयात्रा' में नरेश जी को यह कहते हुए उद्धृत किया है कि 'जैसा मेरा जीवन कठोर संघर्ष का जीवन था, उस तर्क से मुझे कठोर कम्युनिस्ट ही होना चाहिए था, पर मुझमें स्थितियों से टकराहट तो है, परंतु उसकी व्यर्थता का बोध भी है इसलिए मुझमें धीरे-धीरे अनासक्त भाव आता चला गया। राजनीति का स्थान मेरे व्यक्तित्व में सर्जनात्मकता ने ले लिया। तमाम संघर्षों और विषम परिस्थितियों को झेलते हुए भी नरेश मेहता ने कभी किसी के प्रति कटुता, दुराव तथा पक्षपात का भाव नहीं रखा।'

नरेश मेहता को यह वैष्णव भावना अपने पारिवारिक परिवेश तथा साहित्यिक क्षेत्र में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जैसे वैष्णवी भावना के कवियों से मिली। मैथिलीशरण गुप्त भी ऐसे ही वैष्णव परिवेश में पले थे। उनका परिवार भी साहित्य एवं संस्कृति में रमा रसिक वैष्णव

संप्रदाय था, जिसने अपने जीवन में अनेक झंझावत झेले थे। ऐसे वैष्णवी संस्कारों में पले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जब साहित्य रचना में प्रवृत्त हुए तो उनकी रचनाओं में उनका यही वैष्णवी संस्कार प्रस्फुटित हुआ।

गुप्त जी ने अपने साहित्य सर्जन में पौराणिक आख्यानों को आधार बनाकर वैष्णवी भावना का चित्रण किया और साथ ही आधुनिक, सामाजिक परिवेश तथा राजनीतिक परिवेश में उसकी संगति बैठाई। उन्होंने प्रधानत: रामायण और महाभारत तथा ऐसे ही अन्य पौराणिक पात्रों और मध्यकालीन इतिहास के ऐतिहासिक पात्रों को अपनी रचना की केंद्रभूमि बनाया और उन्होंने वैष्णवी भावना तथा राष्ट्रीय भावना की उद्‌भावना की।

इसी प्रकार नरेश मेहता जी ने भी अपने काव्य में पौराणिक आख्यानों के माध्यम से वैष्णवी भावना को अभिव्यक्त किया और इन रचनाओं की सामाजिक परिवेश में सुसंगति स्थापित की।

नरेश मेहता का 'खंडकाव्य', 'संशय की एक रात' में जो भगवान राम का करुणामय स्वरूप चित्रित हुआ है, वह निश्चय ही कवि की इसी दृष्टि का परिचायक है–

यह चेतना
यह बोध
अमोही प्रज्ञात्मकता की
अग्नि यह
कौन से अभिषेक जल से शांत हो?
समाहित व्यक्तित्व की
यह ज्वाल
अनुखन दाहती है बंधु!
अनुखन दाहती है
कौन से वे हिमशिखर हैं
द्रोणियाँ हैं
जहाँ आदिम अग्नियाँ सोई पड़ी हैं
यह अग्नि भी सो जाए।

नरेश मेहता जी ने सदा सब जगह उस विराट सत्ता का दर्शन किया तथा उदात्तता आदि भावों को ही सदा अपने जीवन में धारण किया और यही उनके जीवन का केंद्रीय पक्ष भी है।

नरेश मेहता जी की काव्य-यात्रा क्रमश: हमें उस भूमि पर पहुँचाने की अनथक तपश्चर्या है, जहाँ किसी के प्रति कोई द्वेष भावना न हो।

'महाप्रस्थान' (खंडकाव्य) की भूमिका में नरेश मेहता जी ने वैदिक धर्म के उच्च धरातल को काव्य और साहित्य के लिए आवश्यक माना है, वहाँ उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल में अहिंसा को महत्त्व देते हुए भारतीयता को शेष-मानवता से या मानवीय विचारधारा से इस अर्थ में भिन्न बताया है कि 'हमारी विकास यात्रा हिंसा से अहिंसा की ओर है, जबकि शेष मानवता की यात्रा हिंसा से घोर हिंसा की ओर रही है'।

हिमालय जाते हुए युधिष्ठिर जो एक पूर्ण निर्वेद की मनः स्थिति में हैं, कहते हैं–

युद्धों, प्रतिहिंसाओं के दावानल में
न कृष्ण, न पार्थ
न तुम, न मैं
कोई भी सुरक्षित नहीं रह पाता।

इसी प्रकार 'शबरी' खंडकाव्य में एक दलित नारी की दयनीय दशा को चित्रित करते हुए उसे वैष्णवी भावना के अनुरूप उच्च धरातल पर स्थापित किया है। शबरी अनपढ़ और दलित होकर भी अपनी साधना और तपस्या से उस स्थिति को प्राप्त कर लेती है, जिसे बड़े से बड़े ज्ञानी ध्यानी भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं–

वह झुकी हुई थी प्रभु के
चरणों में श्रद्धानत होकर
आँसू से भीग गए पग
श्रद्धा की झुकी, विनत हो
प्रभु ने शबरी को सादर
आसन देकर बैठाला,
वह गूँथ रही थी आँखों से
प्रेम-अश्रु की माला।

नरेश मेहता ने 'उत्सवा' की भूमिका में लिखा है– 'व्यक्ति-विस्तार के बहुस्याम हो जाने की निष्पत्ति औपनिषदकता है, तो व्यक्ति समर्पण की निष्णात प्रतिश्रुति वैष्णवता है। एक में परम विराट् हो जाने की स्थिति है तो दूसरे में एकांत के सान्निध्य की तुष्टि। एक में ब्रह्मांड है, तो दूसरे में वृंदावन, परंतु कवि की वैष्णवता राग-बोध से भिन्न और कुछ नहीं है। इसी वैष्णवता में फूल खिलते हैं, वैसे ही जैसे कविता सृजित होती है। कविता स्वयं अपना अर्थ उसी प्रकार है, जिस प्रकार फूल का अपना ही अर्थ होता है। कवि भी इसी वैष्णवता को स्वीकार कर विनम्र हो उठता है–

मैं इस वर्ण गंध-करतालों को विनम्र हो उठता हूँ
पर संकोच वश
लोगों के सम्मुख इन वानस्पतिक भागवत पृष्ठों को
फूल ही कहता हूँ।

नरेश मेहता जी का काव्य वर्तमान में आकाश चक्र में उड़ान भरते हुए निरंतर ऊर्ध्वता के आवरण से सज्जित होता चला जाता है। संकीर्णता, प्रतिशोध, हिंसा इत्यादि विद्रोही तत्त्वों से हटकर, अपनी भारतीय सांस्कृतिक उदात्तता ही कवि को ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतर की ओर बढ़ाते हुए महाकरुणा और विराट संवेदना की अनुभूति से सिंचित करती हुई, मांगलिक रंगों और छवियों से सम्मोहित करती है। सम्मोहन की इस भूमि पर पग रखते हुए, ईश्वरत्व अथवा परात्पर का बोध होता जाता है, जहाँ सारी तुच्छताओं से दूर हो स्रष्टा के कल्याणकारी महाभाव को अपने में गहरे उतरते हुए अनुभूत किया जाता है।

महाभाव की इस स्थिति में धरती के सब वृक्ष, वन, उपवन, एक संपूर्ण उपनिषद्

बल्कि संपूर्ण 'रास पंचाध्यायी' सा लगता है। यह महाभाव मात्र वे अपने ही में नहीं, बल्कि सभी में अनुभूत होते हुए देखते हैं। तभी तो कवि कहता है–

अविश्वास मत करना
प्रत्येक पगडंडी से मानुष-गंध आती है
किसी भी मंत्र को सूँघो
किसी भी स्तोत्र को छुओ
मानुष की गंध और जयकार दिखाई देगी।

कभी अपने वैयक्तिकता को
इतनी विशाल स्वर-लिपि में बजने दो बंधु!
और देखो कि इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए
कैसा अनुष्ठान संपन्न हो रहा है।

इसी भावना के कारण कवि को संपूर्ण सृष्टि में सर्वात्मभाव की प्रतीति होती है। स्पष्टत: नरेश मेहता का वैष्णव संस्कारित जीवन-काव्य के माध्यम से अनायास ही मानस को चंदन गंध-सा अभिभूत कर देता है।

संदर्भ

1. नरेश मेहता (1979) : उत्सवा, लोक भारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद।
2. रामकमल राय (1982) : नरेश मेहता, कविता की उर्ध्वयात्रा, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।
3. नरेश मेहता (1989) : शबरी, लोक भारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
4. नरेश मेहता (1990) : संशय की एक रात, लोक भारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
5. नरेश मेहता (1992) : महाप्रस्थान, लोक भारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।

❒ द्वारा डॉ॰ मुकेश शर्मा
2 सी/1338, निकट महाकालेश्वर मंदिर
वी ब्लाक के पीछे, हकीकतनगर
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य में मानवीय मूल्य

श्रीमती करुणा शर्मा, शोध-छात्रा
डॉ॰ अनिलकुमारी, शोध-निदेशिका
हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ

कोई भी रचनाकार अपने समय का सजग प्रहरी होता है। उसकी दृष्टि व्यक्ति और समाज की प्रत्येक गतिविधि पर केंद्रित होती है। अपनी रचनाओं के उज्ज्वल प्रकाश से वह समाज और व्यक्ति का मार्गदर्शन करता है। उसके कुछ मूल्य होते हैं, जिनका आश्रय लेकर वह व्यक्ति-समाज का दिग्दर्शक बनता है। वस्तुतः, यही मूल्य मानवीय मूल्यों की कोटि में आते हैं और उनसे मानव-जाति और समाज के उज्ज्वल भविष्य की परिकल्पना की जा सकती है। बहुआयामी प्रतिभा के धनी साहित्यकार डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ऐसे ही सजग एवं सचेत रचनाकार हैं, जिनकी रचनाओं में प्रेम, करुणा, मैत्री, भ्रातृत्व-भावना, सहयोग, सहिष्णुता आदि ऐसे ही अनेकानेक मानवमूल्य यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। भावफलक की दृष्टि से डॉ॰ अग्रवाल का काव्य अनुपम है, किंतु मानवीय मूल्यों की अपनी अलग छटा है। वे इन मूल्यों की अपरिहार्यता बतलाते हैं तथा हो रहे मूल्य-क्षरण पर वे आक्रोश व्यक्त करते हैं। सर्वप्रथम उन्होंने आज के मनुष्य का मूल्यांकन किया तो वह उन्हें जटिल प्रतीत हुआ–

ज़िंदगी में यों तो सब मेरे लिए आसान था
गर कोई मुश्किल लगा तो आदमी मुश्किल लगा। [1]

इसका कारण उन्हें यह लगता है कि आज व्यक्ति की पहचान कहीं खो गई है–

कहाँ खो गई है, कहाँ खो गई है
तुम्हारी जो पहचान पहले की थी। [2]

आज अपनत्व जैसा गुण समाप्त हो गया है। कवि ने इसका संकेत करते हुए कहा–

सच यह है कि बाक़ी नहीं अपनत्व के रिश्ते
दुनिया भी वही, मैं भी वही, तू भी वही है। [3]

कवि को नगर में आने पर अपनत्व का भाव ही दिखलाई नहीं देता। परायेपन के इस माहौल से व्यथित होकर वे आगाह करते हैं–

आनेवाले! गाँव से, मत ढूँढ़ हमजोली को अब
शहर की इस भीड़ में, अब कौन अपना रह गया। [4]

कवि ने अपने अप्रकाशित दोहा-संग्रह में भी अपनत्व को प्रस्तुत किया है। कवि के अनुसार, आज अपनत्व की भावना अनजान हो गई है, किंतु कवि स्पष्ट रूप से आह्वान करता है–

चोट लगी किसको, हुआ दर्द किसे अनजान
अपनेपन की भावना, जान सके तो जान। [5]

डॉ॰ अग्रवाल ने अपनत्व और भाईचारा जैसी भावना को अन्य कई स्थलों पर रेखांकित किया है–

तेज़ हवा है पर कोसों तक भी मानव की गंध नहीं
इस नगरी से भाग चलो, यह भूतों का डेरा साई। [6]

संबंध रहा जिसका तेरे नाम के साथ
वह दर्द अभी जाग रहा है प्यारे। [7]

प्यार-स्नेह-अपनत्व मनुजता
प्रेम-सरलता-श्रद्धा-ममता
घटती जाती हृदय-कोष से। [8]

कवि ने मानवता को एक पूँजी की भाँति माना है। कवि की मान्यता है–

एक ही पूँजी है ऐसी जो गई तो सब गया
जो भी है खो दीजिए, इंसानियत मत खोइए।
रूप में पत्थर के ढलता जा रहा है आदमी
धन को पाने के लिए संवेदना मत खोइए। [9]

कवि ने पारस्परिक प्रेम को अत्यधिक महत्त्व दिया है। इसीलिए कवि की असंख्य रचनाएँ प्रेमरस में सराबोर हैं। आशावाद से जुड़ा एक स्थल द्रष्टव्य है–

मैं इतना घोर सूखा देखा आया
कहीं तो प्रेम का सावन मिलेगा। [10]

कवि का कहना है कि प्रेम की भावना सभी के प्रति हो। यथा–

जी रहे हैं आदमी के मन में कितने आदमी
सबका बन जा, सबसे आँखें मूँदकर अपना न बन। [11]

डॉ॰ अग्रवाल प्यार के सम्मोहन में बँधे हैं। वे तो पूरी तरह से स्पष्ट करते हैं कि उन्हें तो जीवन में केवल प्यार की डगर मिले अर्थात् ऐसी डगर न मिले, जिसमें प्यार न हो–

जिस डगर पर प्यार का कोई सफ़र होता न हो,
वो डगर मुझको मिले, ऐसा न हो, ऐसा न हो। [12]

कवि ने प्यार को जीवन का सबसे सुंदर बंधन माना है। उनकी स्वीकृति द्रष्टव्य है–

स्वार्थ के फंदे मन में डाले हमने देखे दास बहुत
प्यार का बंधन सबसे सुंदर, हमने ख़ुद असीरी ली। [13]

ग़ज़लों एवं दोहों के अलावा डॉ॰ अग्रवाल के गीतों में भी प्रेम की सुंदर एवं मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है। इस दृष्टि से दो स्थल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–

सूनी आशाओं की नगरी
सूनी प्रियतम बिन हर नगरी
प्रिया बिना जीवन का हर क्षण
कितना हुआ उदास है

सौ मधुमासों का सुख भी तो
व्यर्थ और बकवास है। [14]
सुबह विहंगम-वृंद कूजता, गीत प्यार के दुहराए
साँझ हुई तारों को संग ले, चंदा धरती पर आए
पर अपना हर छंद लुटा है
भिक्षुक हर उच्छ्वास है। [15]

प्रेम-निरूपण से संबंधित अन्य स्थल भी अवलोक्य हैं–

पता नहीं क्या है उसे प्रेम की है ज्वाला क्या
जो अपने मन को जलाकर भसम नहीं करता। [16]
प्रेम की बाँहों में है सिमटा हुआ सारा जगत्
जो नहीं पूजाघरों का, वो है मज़हब प्यार का। [17]

कवि ने यत्र-तत्र समभाव की कामना की है। कवि की कामना है कि समस्त विश्व में समभाव और मैत्रीभाव बना रहे–

उनको भी अपनाओ जो तुममें नहीं है दोस्तो
आदमी है एक तो अपना-पराया किसलिए। [18]

इसीलिए तो वे कहते हैं कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति को सभी के दु:ख-दर्द का अहसास होना चाहिए–

सोचता हूँ आदमी तब आदमी होने लगे
दर्द जब इक-दूसरे की ज़िंदगी होने लगे। [19]

डॉ॰ अग्रवाल इस बात पर भी विशेष बल देते हैं कि संसार में समभाव मिटना नहीं चाहिए, क्योंकि इसके मिटने से आदमी पतनोन्मुख हो जाता है–

सोच लेना आदमीयत का पतन होने को है
दर्द में हमदर्दियों की जब कमी होने लगे। [20]

मैत्री-भाव को बल देती निम्न पंक्तियाँ भी अवलोक्य हैं–

वे दोस्त थे जो छोड़ गए हैं सफ़र में साथ
हम दोस्तों के साथ रहे हैं, जहाँ रहे। [21]

कवि का मन 'स्व' के स्थान पर 'पर' की अनुभूति से भरा है। इसीलिए सभी के लिए प्यार की भावना पर बल देते हुए डॉ॰ अग्रवाल कहते हैं–

सागर हो कि वन हो कि नगर सबके लिए हो
हो दिल में तेरे प्यार मगर, सबके लिए हो। [22]

डॉ॰ अग्रवाल अपने हृदय में परहित और कल्याण की भावना को सँजोकर रखते हैं। इसीलिए वे मुक्तहृदय से कहते हैं–

बस अपने ही सुख-चैन की चिंता न रहे अब
हम भी हों वहीं, चैन जिधर सबके लिए हो। [23]

इससे भी आगे बढ़कर वे यह भी कहते हैं कि केवल अपने लिए जीने से बेहतर है कि हम दूसरों के लिए जिएँ–

खुद अपने आपमें जीना भी कोई जीना है
बसा के घर किसी बेघर का हाल भी समझो। [24]

अपनत्व और प्रेम से पगी निम्न पंक्तियों में डॉ॰ अग्रवाल का उदारमना व्यक्तित्व ही उभर आया है–

मुहब्बत बाँट दो दुनिया में जितनी बाँट सकते हो
छलक जाने पे भी सागर सदा सागर ही रहता है। [25]
नहीं हैं चाहतें जिसमें, नहीं अपनायतें जिसमें
वो इंसाँ लाख घर में हो, मगर बेघर ही रहता है। [26]

दूसरों के काम आने को ही डॉ॰ अग्रवाल जीने की कला मानते हैं–

ज़रूरत ज्ञान की भरने में क्या है
जिएँ कैसे? कलाकारी यही है
नहीं आए किसी के काम कोई
सही अर्थों में बेकारी यही है। [27]

इसीलिए दूसरों का कल्याण ही कवि के लिए सर्वोपरि है–

कोई फूलों से कहे जाकर कि राहत जो भी है
खुद महकने में नहीं, दुनिया को महकाने में है। [28]

मानव-कल्याण के लिए वे तेरा-मेरा का भाव मिटाना चाहते हैं। वे अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हैं–

हम वासी सूरज नगरी के, सूरज कैसे बाँटेंगे
क्या है तेरा, क्या है मेरा, छोड़ यह तेरा-मेरा साई। [29]

मैत्री एवं समभाव के अलावा परोपकार से संबंधित अनेक स्थल हैं, जहाँ कवि की मानवतावादी दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं–

ज़िंदगी का सिलसिला क्या साँस का व्यापार है
अपनी साँसों को मगर बेमोल ही बाँटा करो। [30]
ज़िंदगी को तुम नया आयाम दो
मित्रता को इक नदी का नाम दो। [31]
प्रेम हो, अपनत्व हो, सहयोग हो, सेवा भी हो,
सिर्फ़ पैसा ही नहीं, हर बार जीने के लिए। [32]
जितने भी काँटे हैं पग-पग में वे चुनते जाइए
रास्ते को साफ़ रखना आनेवाले के लिए। [33]
चाहते हों ज़िंदगी में लोग यदि अपना भला
उनसे यह कहिए कि वे सबका भला करते चलें। [34]
अपने आँगन में दिया रखने से पहले ध्यान दो
बीच की दीवार के उस पार इक घर और है। [35]
एक ही परिवार है, संसार कहते हैं जिसे
ग़ैर को अपना समझ, अनजान को अपना समझ। [36]

डॉ॰ अग्रवाल ने अपने काव्य में मानवतावाद का पक्ष भी सबल रूप में प्रस्तुत किया है। वे व्यक्ति को मानवीय गुणों से ओतप्रोत होने का संदेश देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को स्वार्थपरता से दूर रहने का आह्वान करते हुए वे कहते हैं–

स्वार्थ का सुख और है, सेवा का सागर और है
आदमी के नाम का इक क़र्ज़ हम पर और है। [37]

गर न टकराएँ आपस में दोनों के हित
गहरे मित्रों में तकरार होती नहीं। [38]

ज़िंदगी जिसकी हो सिर्फ़ अपने लिए
वह भी क्या आदमी, वह भी क्या आदमी। [39]

वे व्यक्ति को सजग और कर्मरत रहने का संदेश देते हैं–

सोने वाले जाग ज़रा
छाती में रख आग ज़रा
कैसा अद्‌भुत मौसम है
सुस्ती-आलस त्याग ज़रा। [40]

पर्यायवाची दोहे के माध्यम से उन्होंने अनुचित कार्य न करने की प्रेरणा दी है–

अनधिकृत, अनुचित, ग़लत, संविधान-विपरीत
नाज़ायज जो कार्य हैं, मत करना तुम मीत। [41]

झगड़ालू प्रवृत्ति से बचने की सलाह भी उन्होंने निम्न दोहे में दी है–

लाग बुझाई जो करे उसके मुँह में धूल
पिंड छुड़ाओ जुगत से, यही समय-अनुकूल। [42]

सफल जीवन के लिए संतोष एवं धैर्य अत्यंत आवश्यक है। इसीलिए डॉ॰ अग्रवाल ने संतोष एवं धैर्य की महत्ता को निम्न पंक्तियों में स्वीकारा है–

जितना कुछ तू चाहता, उतना ही दे देव
उतना ही भरपूर है, जितना तू दे देव [43]

कुआँ ही खोद न पाओ तो फिर गिला कैसा
ग़लत कहा है कि ज़मीनों में जल नहीं मिलता।
इक इंतज़ार की मुद्‌दत भी दरमियान में है
किसी को पेड़ लगाते ही फल नहीं मिलता। [44]

कवि ने व्यक्ति को हौसला बनाए रखने का आह्वान यत्र-तत्र किया है। उनकी मान्यता है कि संकल्प, साहस एवं हौसले से ही उन्नति संभव है। इस संदर्भ में कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं–

यात्रा को है हौसला दरकार
राह के दरमियान थकना क्या [45]

सभी बाधाएँ हट जाती हैं, जब साहस हो बढ़ने का
कि अंकुर तोड़कर सारे कवच बाहर निकलता है। [46]

साहस न हो तो, आदमी दो दिन न जी सके

झंझट बहुत जहाँ में हैं, इस जान के लिए। [47]
अगर संकल्प हो मन में, अगर चलने का साहस हो
अँधेरे में क़दम मंज़िल का रस्ता ढूँढ लेते हैं। [48]

कवि ने मानवधर्म को सर्वोपरि माना है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य मानवता को अपनाकर एक सच्चा इंसान बने और डूबतों को आश्रय दे। यथा–

कल का युग हो जाइए, अगली सदी हो जाइए
बात यह सबसे बड़ी है, आदमी हो जाइए।
आपको जीवन में क्या होना है यह मत सोचिए
दुख में डूबे आदमी की ज़िंदगी हो जाइए। [49]

जीवन में कितनी भी बाधाएँ क्यों न आएँ, लेकिन आगे बढ़ते रहना चाहिए। डॉ॰ अग्रवाल इस मूलमंत्र के साथ कहते हैं कि यह ज़िंदगी चलती जाएगी, चाहे कोई कितनी ही बाधाएँ डाले। यथा–

रेत के तूफ़ाँ उठाती आ रही है आँधियाँ
हर मरुस्थल के लिए बहती नदी हो जाइए। [50]

स्पष्ट है कि डॉ॰ अग्रवाल ने सभी मानवीय गुणों का समावेश अपने काव्य में किया है। वह चाहे प्रेम हो, चाहे परोपकार हो, चाहे कल्याण की भावना हो या सेवा-धर्म की। कवि ने समस्त मानवीय मूल्यों को अपने काव्य में परोक्ष-अपरोक्ष रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः, कवि इन मूल्यों को सर्वोपरि मानता है। कवि ने स्पष्ट किया है कि सभी के साथ प्रेम और अपनेपन का व्यवहार करना चाहिए। किंचिद् पंक्तियाँ उद्धृत करना समीचीन होगा–

मुहब्बत, प्रेम, अपनापन मिलेगा,
हरेक तन में छिपा इक मन मिलेगा। [51]
पत्थर को अपने साथ न खंजर को साथ ले,
गर ले सके तो प्रेम के सागर को साथ ले। [52]
प्रेम की ख़शबू से ख़ुद महके, हमें महकाए भी
इस चमन में फूल वो सबसे जुदा पैदा करो। [53]
फूल की चर्चा करो, गुलज़ार की चर्चा करो
नफ़रतें बढ़ने लगी हैं, प्यार की चर्चा करो। [54]

समाहार के रूप में कहा जा सकता है कि डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के संपूर्ण काव्य में मानवीय मूल्यों का अद्भुत सामंजस्य है। कवि की कामना है कि संपूर्ण राष्ट्र इन मूल्यों, इन गुणों को पहचाने और आत्मसात करे। कवि का आह्वान है कि दीपक की यह लौ (मानवीय गुणों की) संपूर्ण राष्ट्र को आलोकित करे। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की है कि हमारा संपूर्ण राष्ट्र इन्हीं गुणों से आप्लावित हो। निष्कर्ष रूप में कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा–

अब धूप में झुलसे न किसी शख़्स का चेहरा
साया हो सभी के लिए, घर सबके लिए हो।
बस अपने ही सुख-चैन की चिंता न रहे अब
हम भी हों वहीं, चैन जिधर सबके लिए हो। [55]

संदर्भ

1. रोशनी बनकर जिओ, पृ॰
2. वही, पृ॰ 28
3. वही, पृ॰ 38
4. सन्नाटे में गूँज, पृ॰ 22
5. अप्रकाशित दोहा-संग्रह
6. मौसम बदल गया कितना, पृ॰ 27
7. अप्रकाशित रुबाइयाँ
8. अप्रकाशित कविताएँ
9. अप्रकाशित मुक्तक
10. शिकायत न करो तुम, पृ॰ 33
11. रोशनी बनकर जिओ, पृ॰ 122
12. भीतर शोर बहुत है, पृ॰ 26
13. मौसम बदल गया कितना, पृ॰ 28
14. अप्रकाशित गीत
15. वही
16. रोशनी बनकर जिओ, पृ॰ 105
17. वही, पृ॰ 142
18. वही, पृ॰ 74
19. वही, पृ॰ 139
20. वही
21. वही, पृ॰ 34
22. वही, पृ॰ 88
23. वही
24. वही, पृ॰ 106
25. शिकायत न करो तुम, पृ॰ 68
26. वही, पृ॰ 68
27. वही, पृ॰ 32
28. वही, पृ॰ 28
29. मौसम बदल गया कितना, पृ॰ 27
30. भीतर शोर बहुत है, पृ॰ 51
31. सन्नाटे में गूँज, पृ॰ 38
32. रोशनी बनकर जिओ, पृ॰ 66
33. वही, पृ॰ 66
34. वही, पृ॰ 95
35. वही, पृ॰ 58
36. वही, पृ॰ 73

37. वही, पृ॰ 58
38. शिकायत न करो तुम, पृ॰ 108
39. मौसम बदल गया कितना, पृ॰ 71
40. सन्नाटे में गूँज, पृ॰ 29
41. अप्रकाशित पर्यायवाची दोहा-संग्रह
42. अप्रकाशित मुहावरे दोहा-संग्रह
43. अप्रकाशित दोहा-संग्रह
44. अप्रकाशित मुक्तक संग्रह
45. शिकायत न करो तुम, पृ॰ 62
46. रोशनी बनकर जिओ, पृ॰ 92
47. वही, पृ॰ 52
48. वही, पृ॰ 53
49. वही, पृ॰ 82
50. वही, पृ॰ 82
51. शिकायत न करो तुम, पृ॰ 33
52. वही, पृ॰ 72
53. वही, पृ॰ 80
54. वही, पृ॰ 107
55. रोशनी बनकर जिओ, पृ॰ 88

'हीरा और पन्नी' में संवेदना एवं शिल्प

श्रीमती हरदीप कौर, शोधछात्रा
डॉ॰ निर्मला शर्मा, निर्देशिका
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिंदी विभाग
एम॰एल॰एंड जे॰एन॰के॰ गर्ल्स कालेज, सहारनपुर (ऊ॰प्र॰)

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' कृत 'हीरा और पन्नी' ऐतिहासिक एवं सामंतीचेतनापरक उपन्यास है, जो राजस्थानी संस्कृति का स्वच्छ दर्पण है। प्रस्तुत उपन्यास दो अनिन्द्य सुंदरियों की देशभक्ति की गाथा है, जो निहाली राज्य के राजा भगवानदास की मृत्यु का बदला लेने के लिए अपनी सुंदरता को ढाल बनाकर सोढ़ा राजा अमरसिंह को विवाह का प्रस्ताव देकर देवराज को मृत्यु के घाट उतारती हैं और सोढ़ा राजा से विवाह करके अपना वचन पूरा करती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में चंद्र जी ने संवेदन के सभी पहलुओं को उजागर करते हुए कथा-संगठन, चरित्रांकन, कथोपकथन, परिप्रेक्ष्य, प्रस्तुतीकरण और शिल्प द्वारा अपने मंतव्य को सफलतापूर्वक अंकित किया है।

राजस्थान के चर्चित कथाकार यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका ऐतिहासिक एवं सामंतीचेतनापरक उपन्यास 'हीरा और पन्नी' सामंती व राजशाही के मूल्यहीन जीवन की झाँकी अंकित करता दो देशप्रेमी स्त्रियों की निर्भीकता, साहस तथा चतुराई की गाथा कहता है। नगर निहाली का राजा भगवानदास ब्राह्मण था, जो पहाड़ी मीणों से बहुत परेशान था, क्योंकि वे आए-दिन गुरिल्लों की तरह युद्ध करते रहते थे, जिससे मुक्ति पाने के लिए भगवानदास ने देवकोट के रावल देवराज की सहायता ली और मोती-माणिक, हीरे-जवाहरात और सोने की मोहरों से देवराज का स्वागत किया। इतने वैभवपूर्ण राज्य को देखकर देवराज में प्रलोभन, आश्चर्य और कुटिलता एक साथ जाग उठी थी। अत: देवराज ने अचानक हमला बोलकर भगवानदास का सारा राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, राजा को मार दिया और हीरा-पन्नी नामक दो सुंदरियों को पकड़कर अपने साथ ले आए। हीरा-पन्नी ने देवकोट में आकर कहा कि 'जब तक हमारे लिए अलग महल नहीं बनेगा, तब तक हम दोनों महाराज के नाम का चुड़ला नहीं पहनेंगी और उनकी सेज नहीं सजाएँगी।' अत: राजा ने 'एकटंगिए महल' उनके लिए अलग बनवाया और वहाँ साँवरा चौहान को कड़ी पहरेदारी के लिए रखा गया कि यहाँ कोई क़दम न रखे, जो रखे उसके क़दमों को काट डालिएगा। चाहे वे हमारी बड़ी राणी जी या अन्य राणियाँ ही क्यों न हों। एक दिन बड़ी रानी राजा के कड़े आदेश का उल्लंघन कर वहाँ आई और उनके पैर काट दिए गए। इससे रनिवास में विद्रोह फैल गया। क्षत्राणियों ने उन दो पामर हीरा-पन्नी के लिए अपना अपमान सहन नहीं किया, अत: हीरा-पन्नी महल के पीछे से नदी में कूद गईं और तैरकर दूसरे गाँव में पहुँच गईं। उन्होंने वहाँ

के सोढ़ा राजा अमरसिंह से कहा कि यदि वह देवराज का विनाश कर दें तो उसी से विवाह करेंगी। सोढ़ा राजा ने अपने दीवान छत्रमसिंह और तांत्रिक गुरु अलख निरंजन की सहायता से देवराज का अति कष्टपूर्ण अंत कर दिया। सोढ़ा राजा और पन्नी का विवाह हो गया।

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' जी के ऐतिहासिक एवं सामंतीचेतनापरक उपन्यास 'हीरा और पन्नी' में संवेदन और शिल्प का मणिकांचन संयोग हुआ है। एक ओर चंद्र जी ने संवेदन के विभिन्न पहलुओं को ऐतिहासिक परिवेश, सामंती संस्कृति तथा मानवीय वृत्ति के रूप में उजागर किया है तो दूसरी ओर राजस्थानी वातावरण, लोककथाओं के प्रभाव, भाषा के माधुर्य तथा शब्द-चयन के चातुर्य का भी पूर्ण परिचय दिया है। अत: भाषा की बुनावट, अभिव्यक्ति और तासीर किंचित अलग-सी लगेगी, पर उसकी मिठास भी अलग ही है। हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है, संपर्क भाषा है, पर लेखन में आए राजस्थानी शब्द उसको समृद्ध ही करेंगे। छोटे-छोटे और महत्त्वपूर्ण चंद पात्र भले ही इतिहास में न हों, पर उनके होने की पक्की पूरी संभावना है।

संवेदन मनुष्य का जन्मजात गुण है। स्त्री हो या पुरुष, कोई इससे मुक्त नहीं। संवेदन के वशीभूत होकर ही व्यक्ति कभी प्रेम, करुणा, दया, वेदना और सहानुभूति से युक्त हो उठता है तो कभी रोष, क्रोध, घृणा, प्रतिशोध और वैमनस्य का पुतला बन जाता है।

हीरा और पन्नी में उच्चकोटि का देशप्रेम देखने को मिलता है। हीरा और पन्नी दो स्त्रियों की देशभक्ति की ही गाथा है। जब देवराज निहाली गाँव पर हमला बोलकर भगवानदास की हत्या कर देता है तभी वह प्रण करती हैं कि हम अपने राजा की मृत्यु का बदला लेकर रहेंगी। यह प्रण ही उनके अपने राजा के प्रति सच्चा एवं निष्काम प्रेम की झाँकी प्रस्तुत करता है।

'हीरा और पन्नी' में निहाली नगर में कितनी ही वीभत्स अनैतिक घटनाएँ घटीं। राजा देवराज के सैनिकों ने निहाली राज्य की अतुल्य धनराशि के साथ दो सुंदर कन्याओं हीरा और पन्नी को भी पकड़ लिया। अनिन्द्य सुंदरियों को देखकर देवराज के नेत्रों में वासना दहक उठी। 'देवराज का अतृप्त वासना से घिरा हुआ मन एकटंगिए महल के पूरा होने तक हीरा और पन्नी के संग मानसिक व्यभिचार में खो जाता था। वह उन दोनों को नोच डालेगा। देवराज का मन एक पैशाचिक विचार से घिर गया'[1] देवराज घोर कामी पुरुष था। जब-जब उसे एकांत काटता था, तब-तब वह वासना में लिप्त हो जाता था। पासवानों और पर्दायतणों को किले के बाहर रूपमहल में बसाने के बाद वह 'सदा एक नई रानी के पास जाने लगा।'[2] इस प्रकार राजा की यह वासना ही उन्हें नित्य नए-नए नाच नचाती रही।

वासना की पूर्ति न होने पर व्यक्ति क्रोध और विकलता के वशीभूत हो जाता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान श्रीकृष्ण यही समझाते हैं कि 'रजोगुण के संपर्क से उत्पन्न काम ही बाद में क्रोध का रूप धारण करता है, जो इस संसार का सर्वभक्षी पापी शत्रु है।'[3]

'हीरा और पन्नी' में जब महाराजा देवराज ने यह घोषणा कर दी कि हीरा-पन्नी के निवास 'एकटंगिए महल' की हद में कोई भी 'मोट्यार लुगाई' नहीं जा सकेगी, चाहे वह महाराणी या राणी ही क्यों न हो। जो जाएगी वह महाराजा की दोषी कहलाएगी। बड़ी राणी यह सुनकर उत्तेजित होकर बोली, 'मैं राठौड़ राजपूतों की बेटी हूँ। किसी गोले की जायोड़ी नहीं। मैंने अपनी माँ का दूध पिया है, किसी गोली का नहीं।'[4] बड़ारण जी तुम्हें जल्दी ही पता चल जाएगा कि कौन क्या है? छोटी राणी वीरमदे ने आक्रोश-भरे स्वर में कहा, 'मैं आज ही जाऊँगी। किसकी माँ ने सूँठ

खाई है, जो मुझे रोक ले। बड़ारण जी, आप भी कान खोलकर सुन लीजिए कि चौहान राणी के बोल भी पानी मोल नहीं जाएँगे। जो मैंने कह दिया, उसे मैं पूरा करूँगी।'[5] क्रोधावेश में भरकर व्यक्ति अपना भला-बुरा नहीं सोच पाता। इस स्थिति में वह न लड़ने-भिड़ने से डरता है, न मृत्यु से। महाराणी और राणी दोनों को पीड़ादायक मृत्यु प्राप्त हुई।

क्रोध वास्तव में अमानवीयता एवं पैशाचिकता को जन्म देने वाला है। महाराजा की आज्ञा का उल्लंघन करने पर महारानी बृजकुँवर और रानी वीरमदे 'दोनों के पाँवों को बड़ी बेरहमी से काट डाला गया। एक वीभत्स व पाशविक कर्म से सारे क़िले में सनसनी फैल गई।'[6] बड़ी रानी बृजकँवर का रक्त इतना बह गया कि वह जीवित नहीं रह सकीं। पूरे तीन दिन तक तड़पती रहीं। वह बार-बार एक ही विनती करती थीं कि 'महाराजा को बुलवा दीजिए, मैं मरने से पहले उनसे कुछ बातचीत करना चाहती हूँ, परंतु महाराजा देवराज ने उसकी अंतिम विनती को नहीं माना। देवराज ने पासवान से कहा—'मैं उनका मुँह भी देखना नहीं चाहता। उन्हें तड़प-तड़प कर मरने दीजिए। छोटी रानी वीरमदे के पाँवों से रक्त बह रहा था। वह बैसाखियों पर झूलती हुई लग रही थी। वह महाराजा देवराज के सामने चीख़ी, 'आप मुझे ज़िंदा छोड़ना नहीं चाहते हैं और मैं ज़िंदा रहना नहीं चाहती। अपने हाथ से तलवार लेकर मुझे मार डालिए। कौन आपके इस रौरव नरक में रहना चाहेगी। यह पिशाचों की बस्ती है। यदि अपनी माँ का दूध पिया है तो मुझे मार डालिए... वरना मैं समझूँगी कि आप असल बाप के बेटे नहीं, आप किसी गोले के जायोड़े हैं।' देवराज क्रोध, घृणा, आवेश से भर गया। उसने दीवार पर टँगी तलवार को उठाकर एक झटके में वीरमदे का सिर ध ाड़ से अलग कर दिया। ख़ून का फव्वारा छूट गया।'[8] इस प्रकार अमानवीयता और पैशाचिकता द्वारा चंद्र जी ने तत्कालीन यथार्थ को वाणी दी है।

राज्यलिप्सा एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा है, जो प्राचीन काल से ही मनुष्य में जन्म लेती रही हैं। 'हीरा और पन्नी' में महाराजा देवराज निहाली राज्य के धन-वैभव को देखकर राजा भगवानदास की मित्रता की आड़ में छल-कपट से परिपूर्ण हो अचानक अपने सैनिकों को आदेश देता है—'वीरो! निहाली पर आक्रमण करके ब्राह्मण राज्य को समाप्त कर दो। उसकी अपार धन-संपदा को लूट लो।'[9] राजा भगवानदास के सामने आने पर महाराजा देवराज भयानक अट्टहास करके बोला—'पंडित! तू मेरे होते हुए इतने वैभवपूर्ण राज्य का स्वामी कहलाए? देख, आज मैं इस विपुल वैभव का स्वामी! कल से इस राज्य पर मेरा झंडा लहराएगा। इस निहाली नगरी का स्वामी मैं हो जाऊँगा।'[10] इस प्रकार राज्यलिप्सा के कारण युद्ध ठन जाता है।

राज्यलिप्सा की पूर्ति हेतु व्यक्ति प्रारंभ से ही अनेक षड्यंत्रों का आश्रय लेते रहे हैं। यह बात दूसरी है कि वे षड्यंत्र सफल हों अथवा नहीं। वैसे भी राजमहलों में षड्यंत्रों का फैलता जाल सामान्य बात है। इन षड्यंत्रों के माध्यम से व्यक्ति अपनी प्रतिशोध-भावना भी तुष्ट करते रहे हैं। प्रतिशोध और षड्यंत्र अन्योन्याश्रित हैं। हीरा और पन्नी में दोनों युवतियाँ हीरा और पन्नी अपने राजा भगवानदास की मृत्यु का बदला महाराजा देवराज को पूर्णत: नष्ट करके लेती हैं।'[11]

चंद्र जी ने ऐतिहासिक एवं सामंतीचेतनापरक उपन्यास 'हीरा और पन्नी' में इतिहास की यथार्थ घटनाओं के साथ-साथ कल्पना का समुचित सन्निवेश किया है। साथ ही तत्कालीन संस्कृति आदि को भी यथास्थान व्यंजित किया है। 'हीरा और पन्नी' में युद्ध का साकार रूप विद्यमान है। राजाओं एवं सामंतों का पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष, राज्यलिप्सा आदि को चंद्र जी

ने प्रमुख कथारूप में प्रस्तुत किया है। राजा, महाराजा और सामंतों के सहायक अन्य पात्रों द्वारा कथा का विकास किया गया है। कथा-संगठन में चंद्र जी ने एक ओर तत्कालीन तथ्यों का खुलासा किया है तो दूसरी ओर तत्कालीन विभिन्न समस्याओं को भी वाणी दी है। सत्यता यह थी कि उस समय पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी छोटी-छोटी बातों पर मर-मिटने को तैयार रहती थीं। इसलिए सर्वत्र वैमनस्य का बोलबाला था। कथा-संगठन में रोचकता, सरसता, कौतूहल और घटनाओं की तारतम्यता पर विशेष ध्यान देते हुए उपन्यासकार ने सर्वत्र कल्पना के चारु चर्वण द्वारा राजा, महाराजा और सामंतों के उस यथार्थ को मुखर किया है, जिसका परिणाम क्रूर है, वीभत्स है, जघन्य है और पीड़ादायक है।

देवकोट का रावल देवराज लोभी, कामी और विश्वासघाती है। राजा भगवानदास स्पष्ट कहते हैं—'वस्तुतः उसका नाम देवराज की जगह दैत्यराज होना चाहिए था। वह एक क्रूर आततायी है, उसमें समस्त पैशाचिक वृत्तियाँ हैं।'[12] इसके विपरीत सोढ़ा राजा अमरसिंह पराक्रमी, साहसी, दूरदर्शी, धैर्यवान और शरणागत-रक्षक है। 'दीवान छत्रमसिंह की आकृति को ध्यान से देखने पर ऐसा भ्रम होता था जैसे कोई साँप हो और जब वह क्रोध में होता था, तब वह दोमुँहा लगता था। इस तरह की आकृतियों का भ्रम न केवल आम आदमी, बल्कि कभी-कभी स्वयं सोढ़ा राजा को भी हो जाता था, पर कई अवसर ऐसे आए, जब दीवान सोढ़ा राजा से कपट कर सकता था, पर उसने अपने प्राणों को मृत्यु के मुख में डालकर सोढ़ा राजा की रक्षा भी की थी'[13] और अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया। यही दीवान छत्रमसिंह महाराजा देवराज का विनाश करवाने में सोढ़ा राजा की सहायता गुरु अलख निरंजन के माध्यम से करवाता है। गुरु अलखनिरंजन तांत्रिक है, जो 'पचास साल पुराना एक बलिष्ठ आदमी था। विकराल दहकते नेत्र। काली स्याह दाढ़ी-मूछें। उसकी जटा में कीड़े रेंग रहे थे। यहाँ तक कि दो बिच्छू भी।'[14] यही अलखनिरंजन अपने चातुर्य से देवराज के समूलराज्य का विध्वंस करवा देता है।

प्रमुख स्त्री-पात्रों में हीरा और पन्नी पहले महाराजा देवराज को अपने नाटकीय व्यवहार से अपना शरीर नहीं छूने देतीं, फिर रानियों द्वारा विद्रोह कर दिए जाने पर महल की छत से पीछे नदी में कूदकर और फिर कुशल तैराक के रूप में अपनी रक्षा करती हैं।

गौण स्त्री पात्रों में दासियों, डावड़ियों, मरजीदानियों और रखेलों का चंद्र जी ने पर्याप्त मात्रा में उल्लेख किया है। हीरा और पन्नी की बडारन चमेली 'बड़ी घाघ लुगाई थी। वस्तुतः वह दो मुँह की बांबी थी। रावल को कुछ कहती और बड़ी रानी को कुछ।'[15] वह महाराजा और महारानी दोनों को उत्तेजित करने में कुशल थी। 'वस्तुतः वह दूसरों को उत्तेजित करके सुख का आनंद लेती थी। ...ऐसे उत्तेजना-भरे क्षणों में उसे एक नशा-सा छा जाता था।'[16] इसी उपन्यास की बरजी मालन देशभक्त और अपने स्वामी की सच्ची सेविका रूप में दृष्टिगत होती है। उसकी दृष्टि में 'जन्मभूमि अतिथि से बड़ी होती है।'[17] चंद्र जी ने हीरा और पन्नी में सभी पात्रों का चरित्रांकन कथ्य, स्थिति-परिस्थिति और युग के अनुरूप किया है।

कथानक के विकास और पात्रों के चरित्रोद्घाटन में चंद्र जी ने कहीं संक्षिप्त तो कहीं विस्तृत कथोपकथन का आश्रय लिया है। ये कथोपकथन पात्रों के भावों, विचारों और कृत्यों के परिचायक तो हैं ही, साथ ही तत्कालीन यथार्थ के उद्बोधक भी। हीरा और पन्नी में एकंटगिए महल का निर्माण पूर्ण हो जाने पर महाराजा देवराज जब अपनी वासना-तृप्ति हेतु उस महल में पहुँचा

तो सालकी-मालकी ड्योढी की ओर भागीं। उन दोनों ने देवराज को निचले कक्ष में बिठाया और अरज की 'अन्नदाता! आज आप ऊपर नहीं जा सकते?'

'क्यों?'

'क्या बताएँ अन्नदाता ...।'

'हम आज कुछ भी सुनना नहीं चाहते। आज उनका कौल पूरा हुआ। आज महल बन गया है ... आज उन्हें ...।'

'अन्नदाता। हीराबाई मांदी है ... लगता है किसी भूतणी ने उन्हें ...।'

'मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता।' देवराज वासना में अंधा था। हीरा के वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। वह देवराज को देखते ही खिलखिला कर हँस पड़ी।

'मैं सबको खा जाऊँगी ... एक-एक को चबा जाऊँगी हा.. हा... 'तू यहाँ क्यों आया है पिशाच! तू जानता है कि मैं कौन हूँ? मैं राजा भगवानदास की राणी विशाखा हूँ। ... ओ नीच पापी, मैं तुझे मार डालूँगी। हा... हा... हा...।'

देवराज ने पन्नी से कहा, 'तुम अपनी बहिन को पकड़ती क्यों नहीं?'

'अन्नदाता! मैं महीने से हूँ। मैं सात दिन तक किसी को छू भी नहीं सकती।' देवराज तड़प उठा। अतृप्त पिपासाओं ने उसे असंख्य तनावों से घेर लिया।

फिर उसने पूछा, 'पर यहाँ प्रेतात्मा आई कैसे?'

'अन्नदाता'! मालकी डाबड़ी ने कहा, 'यह ज़रूर पीछे से आई है, क्योंकि पीछे से मंत्रोंवाली कीलें नहीं गाड़ी गई हैं।'[18]

प्रस्तुत कथोपकथन में एक ओर महाराजा देवराज की अतृप्त पिपासा का संकेत मिलता है तो दूसरी ओर हीरा-पन्नी की चालाकी का। नाटकीयता द्वारा दोनों महाराजा को परास्त कर देती हैं। इसके साथ ही तत्कालीन भूत-प्रेतजन्य भय, विश्वास तथा जंत्र-मंत्र आदि के प्रभाव का यथार्थ ज्ञात होता है।

परिप्रेक्ष्य रूप में चंद्र जी ने ऐतिहासिक एवं सामंती वातावरण की झाँकी अंकित करते हुए तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का आकर्षक, मनोरम एवं सत्य रूप प्रस्तुत किया है।

प्राकृतिक परिवेश के असंख्य चित्र प्रस्तुत करते हुए चंद्र जी ने प्रातः, संध्या, सूर्य-चंदा तथा वर्षा-बादल के प्रसंगानुसार कितने ही रमणीय दृश्य अंकित किए हैं। हीरा और पन्नी में 'सुहागिन लुगाई की सतरंगी चुनरी की तरह नीला-नीला आकाश लग रहा था। कृष्णपक्ष था। इसलिए अँधेरे की दीप्त चादर धोरों और नदी पर फैली हुई थी। सारा नगर सन्नाटों में डूबा हुआ सोया था।'[19]

इस प्रकार चंद्र जी ने कथा को रोचक, सरस और प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। हीरा और पन्नी में सूक्तियों का माधुर्य रूप दर्शनीय है। जैसे— 'जन्मभूमि अतिथि से बड़ी होती है।'[20]

भाषा में मुहावरों का प्रयोग तथा राजस्थानी शब्दों के प्रयोग से रोचकता उत्पन्न हुई है।

महाराणी बरसी, 'हमारी मिन्नी (बिल्ली) हमसे ही म्याऊँ। मैं तुम्हें ज़िंदा ज़मीन में गड़वा दूँगी, वरना हमारे रास्ते में हट जाओ।'[21]

हीरा-पन्नी के निवास एकटंगिए महल की हद में कोई भी 'मोट्यार लुगाई' नहीं जा सकेगी, चाहे वह महाराणी या राणी ही क्यों न हो ... बड़ी राणी उत्तेजित होकर बोली, 'मैं राठौड़ राजपूतों की बेटी हूँ। किसी गोले की जायोड़ी नहीं। मैंने अपनी माँ का दूध पिया है, किसी गोली का नहीं ... किसी की माँ ने सूँठ खाई है, जो मुझे रोक ले ... चौहान राणी के बोल भी पानी मोल नहीं जाएँगे।'[22]

'हीरा और पन्नी' की ओजमयी शैली में चित्रात्मकता तथा नाटकीयता का समावेश दर्शनीय है— 'वीरमदे ने जनानी ड्योढ़ी की तमाम लुगाइयों को इकट्ठा किया। उन्हें समझाया कि दो पातरों की वजह से सारी रानियों, पासवानों, मरजीदानियों और डावड़ियों का जीवन अभिशप्त हो गया है। ऐसी स्थिति में हमें उन दोनों चुगलखारियों व महाराजा पर वशीकरण मंत्र करने वालियों को यमपुर पहुँचा देना चाहिए। सबसे पहले वीरमदे बैसाखी के सहारे चलकर साँवरा जी के पास आई। फिर सारी लुगाइयाँ तलवारें लेकर चोरी-चोरी एकटंगिए महल की ओर गईं।' उन्होंने पहले दोनों ड्योढ़ीदारों की हत्या की, फिर सालकी-मालकी को पकड़कर यमलोक पहुँचा दिया। हीरा-पन्नी नंगी तलवारों को देखकर काँप गईं। इस प्रकार चंद्र जी ने प्रस्तुतीकरण शिल्प को हरसंभव प्रयास से सुसंबद्ध एवं प्रभावशाली बनाया है।

अतः चंद्र जी के ऐतिहासिक एवं सामंती चेतनापरक उपन्यास 'हीरा और पन्नी' में संवेदन के विविध रूप दिखाई देते हैं। कहीं प्रेम और वासना के चित्र हैं तो कहीं क्रोध और विकलता के। कहीं अमानवीयता और पैशाचिकता बलवती हो उठी है तो कहीं महत्त्वाकांक्षा और राज्यलिप्सा, जिसके दुष्परिणाम षड्यंत्र और प्रतिशोध में विद्यमान हैं। चंद्र जी ने कथा-संगठन, चरित्रांकन, कथोपकथन, परिप्रेक्ष्य एवं प्रस्तुतीकरण शिल्प में अपने कला-कौशल का परिचय दिया है। कथा-संगठन में सुसंबद्धता तथा रोचकता दर्शनीय है तो चरित्रांकन में विविधता। कथोपकथन स्वाभाविक, प्रसंगानुकूल व पात्रानुकूल है तो परिप्रेक्ष्य में देश-काल-वातावरण का सफल अंकन हुआ है। भाषा-शैली की विशिष्टता शब्द-चयन की कुशलता, शैली का प्रयोग प्रशंसनीय है। संक्षेप में संवेदन और शिल्प का समुचित सन्निवेश उपन्यासकार की सफलता का द्योतक है।

संदर्भ

1. हीरा और पन्नी, पृ॰ 26-27
2. हीरा और पन्नी, पृ॰ 50
3. काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
   महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्। 3/37
4. हीरा और पन्नी, पृ॰ 28
5. हीरा और पन्नी, पृ॰ 30
6. हीरा और पन्नी, पृ॰ 36
7. हीरा और पन्नी, पृ॰ 36
8. हीरा और पन्नी, पृ॰ 46
9. हीरा और पन्नी, पृ॰ 10
10. हीरा और पन्नी, पृ॰ 11
11. हीरा और पन्नी, पृ॰ 94

12. हीरा और पन्नी, पृ॰ 6
13. हीरा और पन्नी, पृ॰ 66
14. हीरा और पन्नी, पृ॰ 77
15. हीरा और पन्नी, पृ॰ 28
16. हीरा और पन्नी, पृ॰ 30
17. हीरा और पन्नी, पृ॰ 59
18. हीरा और पन्नी, पृ॰ 32-33
19. हीरा और पन्न, पृ॰ 19
20. हीरा और पन्नी, पृ॰ 59
21. हीरा और पन्नी, पृ॰ 35
22. हीरा और पन्नी, पृ॰ 30

दोहा सप्तपदियाँ और दोहाकार देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'

ईशा मल्होत्रा, शोधछात्रा
डॉ॰ विदुला सिंह, निर्देशिका
रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
जे॰वी॰ जैन कॉलेज, सहारनपुर

वर्तमान दोहाकारों में देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' ऐसे सशक्त दोहाकार हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को इक्कीस हज़ार दोहे समर्पित किए। दोहा-परंपरा को सुरक्षित रखने के लिए इन्होंने श्रेष्ठ सात-सात दोहाकारों को सम्मिलित कर सप्तपदियों का संपादन किया। दोहों के पुनर्जागरण में सप्तपदियों की विशिष्ट भूमिका रही है, जिनका परिचय निम्नलिखित है–

1. **सप्तपदी, भाग**-1 (1992)

इस सप्तपदी के दोहाकारों में विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' ने तीक्ष्ण व्यंग्यों का प्रयोग करते हुए परिवेशगत यथार्थ को सरल शब्दावली में प्रस्तुत किया है[1] तो पाल भसीन के दोहे शृंगार की मादकता, प्रकृति की कोमलता एवं भावों की सहजता लिए हुए है।[2] कुमार रवींद्र ने मानवीय संबंधों की कृत्रिमता तथा कटुता प्रदर्शित की है[3] तो ब्रजकिशोर वर्मा 'शैदी' के दोहों में मानवीय भावनाओं का बड़ा अनूठा रूप देखने को मिलता है।[4] दिनेश शुक्ल द्वारा मिथकीय प्रतीकों के माध्यम से गहरी संवेदनाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की गई है[5] तो हस्तीमल 'हस्ती' ने वर्तमान जगत् की ज्वलंत समस्याएँ चित्रित की हैं।[6] इन सबसे पृथक् जहीर कुरैशी के दोहे अपने अनुभव की आँच में तपे जीवन-जगत् तथा परिवार-समाज की वास्तविकता का मूल्यांकन करते नज़र आते हैं।

2. **सप्तपदी, भाग**-2 (1994)

प्रस्तुत सप्तपदी के दोहाकार राजकुमार शर्मा के अधिकांश दोहों में दार्शनिक चिंतन का स्वर प्रस्फुटित है[8] तो डॉ॰ विभाकर आदित्य शर्मा ने महानगरीय सभ्यता और जीवन की विडंबनाओं पर कठोर प्रहार किया है।[9] बाबूराम शुक्ल ने समाज के बनावटीपन को रूपायित किया है[10] तो देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' के दोहों में युग की त्रासदी, सामाजिक व पारिवारिक जीवन की विद्रूपताएँ एवं मानवीय संवेदनाओं के अभाव जैसी समस्याओं की सशक्त अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक रूप में हुई है।[11] अनुभव के आधार पर जीवन की विषमताओं का चित्रण ही योगेंद्रदत्त शर्मा के दोहों का मूल स्वर है[12] तो हरीश निगम ने आज के भयावह एवं दारुण परिवेश को वाणी दी है।[13] इस कड़ी के अंतिम दोहाकार भारतेंदु मिश्र ने आधुनिक युग की आपा-धापी में फँसे साधारण व्यक्ति की विवशता, उसके संघर्ष एवं सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास का रूपांकन किया है।[14]

3. **सप्तपदी, भाग**-3 (1995)

प्रस्तुत सप्तपदी के उल्लेखनीय दोहाकार डॉ॰ कुँवर बेचैन के दोहों में सामाजिक संदर्भों से संपृक्त भावों का आवेग और विचारों की व्याकुलता प्रतिध्वनित होती है[15] तो राधेश्याम शुक्ल ने महानगरीय संवेदनहीनता का चित्रण किया है।[16] डॉ॰ लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' के दोहों में सर्वत्र चिंतन की गहनता व्याप्त है[17] तो डॉ॰ विद्याबिंदु सिंह ने ऐसे प्रश्नों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, जिन्हें झेलता हुआ मानव व्याकुल एवं विचलित हो रहा है।[18] डॉ॰ श्याम 'निर्मम' ने प्रतीकों द्वारा देश में व्याप्त आतंकवाद जैसी विविध समस्याओं पर चिंता व्यक्त की है[19] तो डॉ॰ राजेंद्र गौतम ने आदर्श और यथार्थ का अद्‌भुत सामंजस्य दर्शाया है।[20] सुश्री शरद सिंह ने आम आदमी के तिल-तिलकर जीने की व्यथा को स्वर प्रदान किया है।[21]

4. **सप्तपदी, भाग**-4 (1996)

इस सप्तपदी के दोहाकारों में जगतप्रकाश चतुर्वेदी के अधिकांश दोहों में प्रकृति का आधिपत्य नज़र आता है[22] तो डॉ॰ रमासिंह द्वारा संसार के छल-छद्‌म, भ्रष्टाचार एवं दुर्व्यवस्थाओं के परिणामस्वरूप सामान्य जन के दु:ख-दर्द को चित्रित किया गया है।[23] बाबूराम रस्तोगी ने अपनी रचनात्मक प्रौढ़ता का परिचय देते हुए प्राकृतिक साधनों से सामाजिक यथार्थ को बड़े अनूठे ढंग से प्रदर्शित किया है[24] तो घमंडीलाल अग्रवाल के दोहे समाज का दर्पण हैं, जिनमें वर्तमान युग की सच्चाइयाँ तथा समाज में फैले आतंक की तस्वीर देखी जा सकती है।[25] डॉ॰ अजय जनमेजय ने अपने दार्शनिक विचारों को दोहे के माध्यम से व्यक्त किया है[26] तो मनोज अबोध मानवीय व्यथाओं को देख करुणा-विगलित होते हुए देखे जा सकते हैं।[27] गंगाप्रसाद शर्मा ने कोमल भावों की अभिव्यंजना न कर समाज की यथार्थ विडंबनाओं और त्रासदियों को तीखे शब्दों में अभिव्यक्त किया है।[28]

5. **सप्तपदी, भाग**-5 (1999)

प्रस्तुत सप्तपदी के प्रमुख दोहाकार कृष्णेश्वर डींगर नये बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग कर राजनीतिक विद्रूपताओं को प्रस्तुत करते हैं[29] तो श्रीकृष्ण शर्मा बिंबों के माध्यम से जहाँ एक ओर व्यक्ति के संघर्ष को व्यक्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर कोमल कल्पना के चित्र भी उकेरते हैं।[30] माहेश्वर तिवारी ने बदलते समाज की तस्वीर और पल-पल अधिक कटु होते जा रहे संबंधों को अभिव्यक्ति दी है[31] तो आचार्य भगवत दुबे ने समकालीन यथार्थ को चित्रित करने के लिए अन्योक्ति, प्राकृतिक प्रतीकों एवं नवीन उपमानों की योजना से अपने शिल्प-कौशल का परिचय दिया है।[32] कैलाश गौतम के दोहों में रीतिकालीन शृंगारिकता व मांसलता द्रष्टव्य है[33] तो वेदप्रकाश पांडेय ने सीधी-सरल भाषा में भौतिकवादी चमक-दमक के बीच नई पीढ़ी के भटकाव को प्रस्तुत किया है।[34] इस सप्तमी के अंतिम दोहाकार डॉ॰ उर्मिलेश ने परिवेशगत सत्य को दोहों में साकार किया है।[35]

6. **सप्तपदी, भाग**- 6 (2000)

प्रस्तुत सप्तपदी के दोहाकारों में डॉ॰ मधु भारतीय ने सरकारी कार्यालयों की चाल, घोटाले तथा अपसंस्कृति आदि के द्वारा देश के दुर्भाग्य को रेखांकित किया है[36] तो चंद्रपाल शर्मा 'शीलेश' ने आम-आदमी की अभावग्रस्ता एवं राजनीतिज्ञों की कालाबाज़ारी प्रवृत्ति पर

दृष्टि डाली है।[37] विज्ञानव्रत के दोहे परिवर्तित होते समाज की विषम स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं[38] तो रामसनेही लाल शर्मा 'यायावार' ने आज के मानव की निर्ममता को दर्शाया है।[39] शिवओम अंबर के दोहों में सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग सहज सुलभ है[40] तो अनिल असीम द्वारा राजनीति में व्याप्त लोलुपता का साधारण व्यक्ति पर पड़े प्रभाव का व्यंग्यात्मक चित्रण सराहनीय है।[41] विशेष रूप से जय चक्रवर्ती ने मुहावरों-कहावतों का प्रयोग कर भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था में मानवीय संवेदना को जगाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है।[42]

7. **सप्तपदी, भाग**- 7 (2007)

सप्तपदी की अंतिम कड़ी के दोहाकारों में डॉ॰ शैल रस्तोगी के दोहों में एकाकी जीवन से उत्पन्न उदासी एवं व्यथा का झीना-झीना आवरण चढ़ा हुआ है[43] तो डॉ॰ सुधेश समाज की विसंगतियों से विक्षुब्ध प्रतीत होते हैं।[44] दीनानाथ श्रीवास्तव जहाँ साधनहीन व्यक्ति की पीड़ा से दु:खी हैं, वहीं इन दु:खों में व्यक्ति को प्रेरित करने का सार्थक प्रयास किया है[45] तो दिनेश रस्तोगी ने व्यंग्यात्मक रूप से करुण एवं त्रासद स्थितियों को वर्णित किया है।[46] हरेराम 'समीप' के दोहे आस-पास की असंगत स्थितियों से उत्पन्न बेचैनी है, जो उनकी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया का परिणाम है[47] तो अनंतराम मिश्र 'अनंत' छीजते जीवन-मूल्यों, विघटित होते सांस्कृतिक परिवेश के साथ-साथ वैयक्तिक व्यथा को उजागर करते हैं।[48] यश मालवीय के दोहों में व्यंग्य-वक्रता, चित्रमयता तथा बिंबों की मौलिकता जैसे गुण स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।[49]

इस प्रकार सप्तपदियों के सभी दोहाकारों ने अपने युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इन्होंने रीतिकालीन कवियों की भाँति नारी के सौंदर्य का नख-शिख वर्णन न करके अपने साहित्य को वास्तविक जगत् से जोड़ते हुए नारी की दुर्दशा पर आक्रोश व्यक्त किया है। नीति व उपदेश-प्रधान दोहों की अपेक्षा इन्होंने समाज में व्याप्त हिंसा, आतंकवाद, तनाव, वर्ग-संघर्ष, असंवेदनशीलता, धार्मिक पाखंड तथा सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास को पूर्ण बेबाकी से जनता के सम्मुख उपस्थित किया है। इन दोहाकारों ने न केवल इन समस्याओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है अपितु मानवीय संवेदना को जाग्रत भी किया है। इन दोहों में उच्च वैचारिक मंथन, बौद्धिक विश्लेषण तथा भाव के साथ शिल्प का अनूठा संगम भी परिलक्षित होता है। सरल एवं सुबोध भाषा, नवीन उपमानों और प्रतीकों का प्रयोग, बिंबों की चित्रात्मकता, व्यंग्य-वक्रता एवं कहावतों-मुहावरों की चारूता ने संप्रेषणीयता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इन सभी दोहाकारों में देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' ने अपनी अलग पहचान बनायी है और दोहा जगत् में पर्याप्त सम्मान अर्जित किया है। इनके निम्नलिखित चार दोहा-संग्रह उपलब्ध हैं–

(i) आँखों खिले पलाश (1997)
(ii) सेंदुर-सा दिन घुल उठा (2008)
(iii) तन्हा खड़ा बबूल (2009)
(iv) अफ़वाहों के पंख (2009)

इनका काव्य दर्द, पीड़ा, व्यथा-वेदना तथा आत्माभिव्यंजना[50] से प्रारंभ होकर समाज के बदलते रूप-रंगों की सच्चाई कहता,[51] भ्रष्ट मूल्यों, पतित मान्यताओं, राजनीति में बढ़ते दुष्चक्रों,[52] धार्मिक पाखंडों[53] व विषम स्थितियों[54] का बोध कराता, प्रकृति के प्रांगण में समुचित विहार कराता,[55] साहित्यिक एवं पौराणिक संदर्भों का परिचय देता चलता है। संवेदनात्मक रूप

से ये दोहे जितने संप्रेष्य, अनुभूति-प्रवण तथा बोधगम्य हैं, भाषिक स्तर पर उतने ही सहज, स्वाभाविक एवं कृत्रिमता से कोसों दूर हैं। शब्द का संयत एवं सटीक प्रयोग, अलंकारों की स्वाभाविकता, व्यंग्य-वक्रता[56] तथा बिंब-प्रतीक[57] की सांकेतिकता दर्शनीय है। इन्होंने कथ्य को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उर्दू के शब्दों का नि:संकोच प्रयोग किया है।[58] इनका रचना-संसार विशाल फलक पर पल्लवित-पुष्पित हुआ है, जिसमें सूक्ष्म अन्वेषण-शक्ति, गहन चिंतन-मनन तथा अपरिमित संवेदनशीलता प्रतिध्वनित होती है। इन दोहों में न शब्दाडंबर है, न कृत्रिमता, बल्कि धीर-गंभीर भावों एवं विचारों का सागर है। उनके आत्मबोध में युग-यथार्थ की त्रासद स्थितियों की प्रतिच्छाया है। इन्होंने वर्तमान विसंगतियों का निरूपण करते हुए आंचलिक एवं सांस्कृतिक रागात्मकता को सहेजकर रखा है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक मिथकों को अपने काव्य-कौशल से तत्कालीन समय-संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

संक्षेप में इनके दोहे भाव एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से नवीनता और मौलिकता का परिचय देते हैं।

संदर्भ

1. मंदिर-मस्जिद के लिए, लड़ो, बहाओ ख़ून,
   है बढ़कर इंसान से, मजहब का क़ानून। पृ॰-20
2. जवा-कुसुम से वे चरन, सिरिस-सरीखी देह,
   नील-कमल वे युग नयन, करते मुझे विदेह। पृ॰-31
3. रिश्ते हैं नक़ली सभी, चेहरे चढ़े नक़ाब,
   नेह प्रश्न का कोई भी, मिलता नहीं जवाब। पृ॰-47
4. तप्त-अधर से ग्रीष्म ऋतु, क्या छू बैठी गाल,
   पानी-पानी हो चला, हिमगिरि खड़ा विशाल। पृ॰-60
5. भाषा-मजहब की यहाँ, ऐसी खुली दुकान,
   इधर मरे टैगोर तो, उधर मरे रसखान। पृ॰-74
6. मजहब की इस देश मे, इतनी बँटी अफ़ीम,
   आम्रकुंज भी हो रहे, धीरे-धीरे नीम। पृ॰-87
7. पति बनकर पा तो लिया, उस तन पर अधिकार,
   लेकिन पत्नी ने सदा, तन परसा बिन प्यार। पृ॰-102
   सप्तपदी, भाग-1 संपा॰ श्री देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'।
8. दीप जले या वर्त्तिका, या जलता है स्नेह,
   कहते दीपक जल रहा, आलोकित है गेह। पृ॰-19
9. फ़्लैटो का युग आ गया, दुर्लभ हुए मकान,
   आसमान के निकट जा, नहीं भूमि पर स्थान। पृ॰-30
10. गंध नहीं तो क्या हुआ, जो मौसम अनुकूल,
    नाइलोन के ही भले, प्यारे लगते फूल। पृ॰-43
11. अब न नौकरी चाहिए, और न कुछ दरकार,
    विष पीकर किस चैन से, सोया सब संसार। पृ॰-58

12. दिखा रहा है अब समय, अपना विकट चरित्र,
गिरी दिव्यता कीच में, घूरे हुए पवित्र। पृ॰–73
13. पंख टूट झरने लगे, ख़ून भरी है चोंच,
चिड़िया दुबकी डाल में, मौसम हुआ खरोंच। पृ॰–85
14. पीपल की नज़रें झुकीं, बरगद साधे मौन,
अस्मत चंपा की लुटी, तुम बबूल–से कौन। पृ॰–101
सप्तपदी, भाग–2, संपा॰ श्री देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'।
15. कैसे फिर रहता नहीं, हर घर में आतंक,
घूम रहे हों लोग जब, ले बिच्छू का डंक। पृ॰–26
16. आग लगी शहरी यहाँ, हुआ आदमी सर्द,
अब न किसी को व्यापता, किसी ग़ैर का दर्द। पृ॰–37
17. नदी समय की बह रही, बिना थकन अविराम,
तू भी चंचल धार में, लिख दे अपना नाम। पृ॰–47
18. होली फिर तलाशती, प्रीति–पगे संबंध,
सराबोर किसको करें, अब ठंडे संबंध। पृ॰–72
19. मौसम के इस दर्द को झेल रहा पंजाब,
और इधर कश्मीर भी, खोये अपनी आब। पृ॰–85
20. कब कबीर किससे डरा, मरा कहाँ आलोक,
ताने जो बंदूक हैं, वे ही हैं डरपोक। पृ॰–89
21. तिल–तिल करके मर रहा, आम आदमी आज,
पर किसको परवाह है बेसुध सकल समाज। पृ॰–103
सप्तपदी, भाग–3 संपा॰ श्री देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'
22. कितने बादल चुक गये, चुका न दृग का नीर,
मुझसे सागर पूछता कितनी गहरी पीर। पृ॰–19
23. क़दम–क़दम पर छल मिला, क़दम–क़दम पर झूठ,
मची हुई संसार में, तरह–तरह की लूट। पृ॰–41
24. अंगारे बोये तभी, उगा आग का पेड़,
ये बस्ती जल जाएगी, सोये दर्द न छेड़। पृ॰–47
25. उगा दहशतों के विटप, महानगर औ' गाँव,
शांति और सद्भाव की, ढूँढ रहे हैं छाँव। पृ॰–61
26. अजर–अमर तू ही यहाँ, तेरा ही सब रूप,
सबमें तेरी छाँव है, सबमें तेरी धूप। पृ॰–75
27. जब भी आँसू से भरे, दिखे किसी के नैन,
कुछ कहने को हो उठा, क्यों यह मन बेचैन। पृ॰–89
28. महँगू बिकता आज भी, दो पैसे के मोल,
धनीराम के स्वान के मँहगे हैं दो बोल। पृ॰–103
सप्तपदी, भाग–4 संपा॰ श्री देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'

29. कुर्सी पर बौना चढ़ा, होने लगा गुमान,
कुर्सी के आकार का, उसे न था कुछ ज्ञान। पृ॰–18
30. आदिवासियों की तरह, वस्त्र पहन रंगीन,
मँडई करने जा रही, ये बदलियाँ हसीन। पृ॰–37
31. वस्त्र पहनकर गेरुआ, साधू, संत, फ़क़ीर,
नये मुक़दमों की पढ़ें, रोज़ नई तहरीर। पृ॰ 45
32. जीव-जंतुओं के हुए, रक्षक यूँ शौक़ीन,
ताल मछलियों के किए, बगुलों के आधीन। पृ॰ 59
33. गोरी धूप कछार की, हम सरसों के फूल,
जब-जब होंगे सामने, तब-तब होगी भूल। पृ॰ 73
34. ऊँचे शिक्षा-सदन में, मचा हुआ हुड़दंग,
शिष्य बने वादक वहाँ, गुरुजन बने मृदंग। पृ॰ 96
35. राजनीति में आ गए, कैसे नीम-हकीम,
चाहे कोई रोग हो, देते सिर्फ़ अफ़ीम। पृ॰ 106
सप्तपदी, भाग- 5, संपा॰ श्री देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'
36. कार्यालय की फ़ाइलें चलतीं कछुआ-चाल,
मेज़, चाय, सिगरट, सुरा रोज़-रोज़ हड़ताल। पृ॰ 19
37. धान खाट पर उग रहे, कुर्सी पर ऋतुराज,
कमरे की क़ालीन पर, उगे समृद्ध समाज। पृ॰ 33.
38. तक़दीरों की बात है, या कर्मों का फेर,
बाप फ़क़ीरी में मरा, बेटा हुआ कुबेर। पृ॰ 50.
39. मानव के उर में जगा, निर्मम जंगल-तंत्र,
हँसने लगीं उदासियाँ, रोया मंगल-तंत्र। पृ॰ 61
40. रे मथुरा के बाट से, मत बरसाना तोल,
मोहन है बहुमूल्य तो, राधा है अनमोल। पृ॰- 79.
41. भला भूख के प्रश्न पर, कैसे दें वो ध्यान,
उन्हें बचाना है अभी, सारा हिन्दुस्तान। पृ॰ 91.
42. किसका आराधन करें, किसकी लें सौगंध,
गंगाजल में भी हुई, अब शामिल दुर्गंध। पृ॰ 104.
सप्तपदी, भाग-6, संपा॰ श्री देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'।
43. कैसी गर्दिश आ पड़ी, मीत न कोई साथ,
हाथ पकड़ जो चल रहा, वह अपना ही हाथ। पृ॰ 21
44. गधे पंजीरी खा रहे, घोड़े चरते भूख,
काग डूबते खीर में, गयी कोकिला सूख। पृ॰ 33.
45. आँखों में पावस भरे, देह लपेटे शीत,
बख़्तर पहने ग्रीष्म का, गा मरघट में गीत। पृ॰ 49.
46. प्यालों का चाटा हुआ, राजकोष कंगाल,

रे ग़रीब, तुझको पड़ी, अब भी रोटी-दाल। पृ॰ 61.

47. अस्पताल में मिल रही, उसी दवा की भीख,
जिसके इस्तेमाल की, निकल गयी तारीख़। पृ॰ 77.

48. तू भी अपने हाथ में, रख नंगी तलवार,
ऐसे मानेगा नहीं, यह जालिम संसार। पृ॰ 89.

49. मान और सम्मान को, निगल रही दहलीज़,
देखो नये फ़क़ीर हैं, बाँट रहे तावीज़। पृ॰ 105
सप्तपदी, भाग-7, सं॰ श्री देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'

50. लगता मेरे हाथ से छूट चला यह हाथ,
ओ सुख-दुख की संगिनी, ख़ूब निभाया साथ। 169
आँखों खिले पलाश, अनुभव प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद (उ॰प्र॰)

51. हम ही बदले या बदल, गया जगत् का ढंग,
श्वान अरगजा लेपते, गधे नहाते गंग। 824 वही।

52. राजनीति ने व्यक्ति को दिया व्यक्ति से काट,
व्यक्ति खोजने पर मिले बाभन, ठाकुर, जाट।
तन्हा खड़ा बबूल, अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली, 594

53. मंदिर, मस्ज़िद चुप खड़े रहे चीखते भक्त,
अब अजान औ' आरती, लगे माँगने रक्त।
आँखों खिले पलाश, 18

54. एक ज़िंदगी कुलवधू, मिलीं अनगिनत सौत,
भूख, प्यास, बीमारियाँ, महँगाई औ' मौत।
सेंदुर-सा दिन घुल उठा, अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली, 459

55. सूने गो-पथ से गुज़र, कहाँ गयी, किस धाम,
अंजली में कुहरा भरे, ऋषि कन्या-सी शाम।
आँखों खिले पलाश, 531

56. अपने घर की गंदगी, मेरे घर में फेंक,
लोग रोटियाँ स्वार्थ की, रहे चैन से सेंक।
सेंदुर-सा दिन घुल उठा, 58

57. हिंसा अलकापुरी में, करती तांडव-नृत्य,
यक्ष-यक्षिणी डर रहे, घर में रखते भृत्य।
अफ़वाहों के पंख, उत्तरायण प्रकाशन, लखनऊ, 771

58. ऐ बज़्मे अहले ख़िरद कर ले नज़रंदाज़,
टकराए ख़्वाब में जज़्बाती आवाज़।
सेंदुर-सा दिन घुल उठा, 32

❐ म॰नं॰ 524, **सुंदर विहार**
जैन कॉलेज, रोड
सहारनपुर 247001

वर्तमानकालीन धार्मिक उथल-पुथल और हिंदी-ग़ज़ल

डॉ॰ सुधाकर शेंडगे
हिंदी विभाग,
डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

धर्म एक आदिम मार्ग है, जिसे सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक माना गया है। एक समय था जब भारतवर्ष के आचार्य अपना धर्म और अपने देश के प्रति प्रतिबद्ध थे। भारत में ही नहीं, विदेशों में भी धर्म का संदेश पहुँचाया करते थे। इतिहास में झाँककर देखें तो यह स्पष्ट होता है कि धर्म भारतीय संस्कृति का आधारभूत तत्त्व है, जिसका परिचय सारे विश्व को स्वामी विवेकानंद ने दिया था और अपने विचार और वाणी से सारे विश्व को जीत लिया था।

धर्म ही व्यक्ति को संस्कारित करता है, धर्म ही व्यक्ति को नियंत्रित करता है। इस दृष्टि से धर्म का व्यक्ति के जीवन में असाधारण महत्त्व होता है। धर्म का मूल उत्स है, सभी मनुष्यों के शरीर, बुद्धि, मन और उसकी संकल्पशक्ति का विकास हो। ईश्वर का सुमिरन करने से, मन में अच्छा भाव पैदा करने से और आत्मसंयम रखने से मनुष्य के स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच एकता की भावना पैदा होती है। वे चाहे किसी भी धर्म के मानने वाले हों, उनमें एक सच्ची एकता पैदा होती है। बुनियादी तौर पर दुनिया के सभी धर्म एक जैसे हैं। इकबाल ने लिखा है–'मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।' इसमें कोई संदेह नहीं कि धर्म मूलत: सहिष्णु, उदार एवं उदात्त भावों से परिपूर्ण होता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मात्र ये सारी बातें असंगत लगने लगती हैं, क्योंकि समय के साथ-साथ धर्म का स्वरूप ही बदल गया है। सड़ी-गली रूढ़ियों, जीर्ण-शीर्ण परंपराओं, आडंबरों, पंडों और धर्म के ठेकेदारों ने धर्म को विकृत बना दिया है। आजकल तो धर्म सियासत के शतरंज की एक चाल बन गया है। धर्म के नाम पर राजनीति चल रही है। धर्म के नाम पर व्याप्त ढकोसलेबाज़ी, धर्माचारों की स्वार्थी मनोवृत्ति, धार्मिक स्थानों पर होनेवाले अनाचार एवं अत्याचार आदि बातों ने कई तरह की विसंगतियों को जन्म दिया है। धर्म की आड़ में पनपने वाली सांप्रदायिकता ने देश में न जाने कितने मासूमों को मौत के घाट उतार दिया, कितनी ख़ून की नदियाँ बहाई हैं, कितनों के घरों को जलाकर राख कर दिया है। सुना था धर्म तो इंसान बनाता है, किंतु यहाँ तो इंसान शैतान बन गया है। स्पष्ट है ऐसी विसंगतियों को देखकर कवि आँखें मूँदकर कैसे बैठ सकता है। हिंदी-ग़ज़लकारों ने भी इस धार्मिक अध:पतन को अपना विषय बनाकर अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

धर्म के नाम पर दंगे-फ़साद आम बात हो गई है। लोग मजहबी ख़ेमों में बँट जाते

हैं और भूल जाते हैं कि दंगों में न कोई हिंदु मरता है न मुसलमाँ, बल्कि मरता तो इंसान है। ग़ज़लकार लिखता है–

मुझे बाद में बनाना, हिंदू या मुसलमाँ
मुझे पहले एक इंसाँ, बड़े प्यार से बना दो। [1]

हमारे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में कई ऐसे असामाजिक तत्त्व काम करते हैं, जो धर्म के नाम पर लोगों को लड़वाते हैं, आपस में फूट डालते हैं तथा देश की एकता और अखंडता को हानि पहुँचाते हैं। हम अपनी सांस्कृतिक पहचान भूल जाते हैं और एक-दूसरे पर हावी हो जाते हैं। इस धार्मिक उन्माद से, विषैले वातावरण से सारा देश जलने लगता है। बेकल उत्साही लिखते हैं–

हम कहीं हिंदू, कहीं मुस्लिम बने बैठे
धर्म के चौपाल पर सारा वतन जलता रहा। [2]

सांप्रदायिकता के कारण आदमी अलग-अलग गुटों में बँट गया है। धर्म के नाम पर अधर्म का बोलबाला है और तथाकथित धर्म के ठेकेदार हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं। कुछ मुल्ला और शास्त्रियों ने तो राजनीति में हस्तक्षेप शुरू कर दिया है। महाराज तक अब राजनीति के मैदान में उतरने लगे हैं। मठ और आश्रम राजनीति के केंद्र बन गए हैं। स्वार्थी राजनीति के लिए धर्म का ग़लत इस्तेमाल किया जा रहा है और आम आदमी इन बातों का शिकार हो रहा है। ग़ज़लकार रामकुमार कृषक के शब्दों में–

दीन हाथों में सियासत के गया, हीन हुआ,
साफ़ मतलब है, सियासत का फिर कहर है यहाँ। [3]

धर्म और उसके अनुयायी दोनों अपना रास्ता भटक चुके हैं। धर्म कोई नैतिकता नहीं सिखाता, अत: सारा समाज अनैतिकता के रास्ते पर निकल चुका है। जीवन की मान्यताएँ एवं मूल्य बदलने लगे हैं। समाज में झूठ और फ़रेब का सम्मान हो रहा है। किसी पर कोई अंकुश नहीं है। मनुष्य इतना स्वार्थी हो चुका है कि अपने स्वार्थ के लिए वह धर्म और ईमान बेचने के लिए भी तैयार है। धर्मग्रंथ भी बेचने को तैयार है। इस कटु सत्य का यह चित्रण देखिए–

गर्म है बाज़ार कुछ सामान बेचता हूँ,
निज धर्म बेचता हूँ, ईमान बेचता हूँ।
खा सकता हूँ क़सम मैं गीता पे हाथ रखकर,
गंगा भी बेचता हूँ, कुरआन बेचता हूँ।
मिलती है मेरी सूरत इंसान की शकल से।
शैतान हूँ मैं 'घायल' इंसान बेचता हूँ। [4]

आजकल देश में धार्मिक उन्माद का ज़हर इस तरह फैल गया है कि कोई भी इससे बच नहीं पाया है। समाज में धार्मिक उन्माद के बढ़ते हुए ज़हर को देखकर मानवता रो रही है। धार्मिक उन्माद जब चरमसीमा पर पहुँच जाता है तो अन्याय और अत्याचार बढ़ता है। देश का भविष्य जिन मासूम बच्चों के कंधों पर आनेवाला है, वे बच्चे इस आग से झुलस जाते हैं, वह मासूम बच्चा यह कहने पर विवश है कि–

उसके बस्ते में रखी है मैंने मज़हब की किताब,
वो ये बोला, अब्बा मेरी कापियाँ जल जाएँगी। [5]

वर्तमान युग में धर्म के ठेकेदार समाज पर हावी हो चुके हैं। मज़हब के इन दलालों ने धर्म को विकृत बना दिया है। इस कारण न केवल धर्मभ्रष्ट हो गया है, बल्कि धार्मिक स्थानों की पवित्रता एवं गरिमा दिन-ब-दिन नष्ट होती जा रही है। धार्मिक स्थान अब आतंकवादियों के केंद्र बनते जा रहे हैं। मंदिर और मस्जिद जैसे पवित्र स्थानों में शस्त्र छुपाए जा रहे हैं, रोज़ धमाके किए जा रहे हैं। इन प्रार्थना-स्थलों पर आनेवाला ज़हरीला इंसान कब शैतना बन जाएगा, कहा नहीं जा सकता। इस भयावह स्थिति को पकड़ते हुए अश्विनीकुमार पांडेय लिखते हैं–

सभी गुलशन गुलाबों के निरा खंजर नज़र आते,
दुआओं के उठे हाथों में भी अब खंजर नज़र आते।
कहीं चीख़ों का मजमा है, कहीं मरघट का सन्नाटा।
कहीं पर ख़ौफ में डूबे हुए, मंजर नज़र आते। [6]

इस प्रकार धर्म और उसके अनुयायी अस्त-व्यस्त रूप में नज़र आते हैं। जो धर्म मनुष्य के लिए बनाया गया था, उसी धर्म को मनुष्य ने अपना हथियार बना लिया है। धर्म के तथाकथित ठेकेदार तो अपने धर्म से बहुत दूर चले गए हैं, अपना सही धर्म भूल रहे हैं, परंतु कवि अपना धर्म कैसे भूले? धर्म तो मनुष्य-मनुष्य के बीच दरार उत्पन्न कर रहा है, जबकि उसका काम है समाज में सामाजिक सद्भाव का निर्माण करना, हैवान को इंसान बनाना, मानवीयता का निर्माण करना। धर्म अपना रास्ता भटक चुका है, लेकिन शायर नहीं भटक सकता। वह जानता है कि उसका कर्त्तव्य ही उसका सही धर्म है। वह है ही इसलिए कि अपने शब्दों में इतना अर्थ भर दे ताकि सांप्रदायिकता की आग में चलनेवाला यह हरा-भरा चमन तबाह होने से बच जाए। इसलिए ग़ज़लकार लिखता है–

मज़हबी आग हम रोक पाए न, तो
ये बने घर हमारे उजड़ जाएँगे। [7]

कवि समाज का सबसे अधिक संवेदनशील घटक होता है। समाज में जब मनुष्य ही मनुष्य पर हावी होता है, रक्त के पाट बहने लगते हैं तो अत्यधिक पीड़ा उसे होती है। उसके पास होती है ऐसी शब्दशक्ति, जिसके बलबूते पर वह फटकारता भी है और प्रेम की भाषा भी सिखाता है। क्योंकि वह जानता है कि भारतवर्ष को अगर इस मज़हबी चंगुल से छुड़ाना है, समाज में भाईचारा निर्माण करना है तो देश को ऐसे मज़हब की आवश्यकता है, जो इंसान को इंसान बनाने की बात करता हो। इसलिए हम ऐसे बीज बोएँ, जिसके फल मीठे हों। ऐसी ज्योत जलाएँ, जिससे प्रेम की गंगा बह निकले और सारा मानव-समाज उसमें आनंद से गोते लगाए, स्वस्थ समाज की कामना करते हुए गोपालदास सक्सेना 'नीरज' कहते हैं–

अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए।
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।
जिसकी ख़ुशबू से महक जाए पड़ोसी का भी घर
फूल इस क़िस्म का हर सिम्त खिलाया जाए। [8]

साहित्य न केवल समाज का दर्पण होता है, बल्कि समाज को सही दिशा देने का काम भी साहित्य ही करता है। समाज जब रास्ता भटक गया हो निराशा के बादल में घिर गया हो तो उसे आशा की किरण दिखाने का काम साहित्यकार करता आया है। साहित्यकार अपनी

सामाजिक प्रतिबद्धता जानता है, इसलिए अपनी इतिकर्त्तव्यता ही अपना धर्म मानता है। हिंदी-ग़ज़लकार भी धार्मिक-सामाजिक विकृतियों पर कोड़े बरसाता है, वही वह लोगों में जो मतभेद और नफ़रत है, उसको मिटाना चाहता है। धर्मनिरपेक्षता ही हमारी पहचान है। आपसी सद्भाव और भाईचारा ही हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। देश की एकता और अखंडता, आपसी सामंजस्य करे अगर मजबूत करना है, मानवता के बीज बोने हैं तो आपसी स्नेहभाव ज़रूरी है। ग़ज़लकार अपना धर्म तो समझता है, लेकिन हमें अपने असल धर्म की याद दिलाता है–

अब तो एक ऐसा वरक मेरा-तेरा ईमान हो
इक तरफ़ गीता हो जिसमें इक तरफ़ क़ुरआन हो।
काश ऐसी भी मोहब्बत हो कभी इस देश में
मेरे घर उपवास हो जब तेरे घर रमजान हो।
मज़हबी झगड़े ये अपने आप मिट जाएँगे।
और कुछ होकर नगर इंसान बस इंसान हो।
कृष्ण की बंशी का आशिक़ तू भी हो जाएगा दोस्त।
बज़्म में तेरी अगर शामिल कोई रसखान हो। [9]

धार्मिक संकीर्णताओं के परिणामस्वरूप पनपे भेद-भाव के कारण ही इंसान अब इंसान न रहकर हिंदू, मुसलमान या ईसाई बन गया है। जब धर्म के नाम पर सारे देश में सांप्रदायिकता की आग जलती है, तो उसे धर्मांधता ही कहा जाएगा। मज़हब के ऐसे विकृत रूप को अस्वीकार करते हुए डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने निम्न शेर के माध्यम से व्यंग्य किया है–

छोटी-छोटी बातों पर जब होती है तकरार नई
तुम्हीं बताओ यारो मज़हब कितना अच्छा लगता है![10]

धर्म के ठेकेदार ही धर्म के नाम पर भेदभाव एवं छूआछूत की शिक्षा देते हैं। कोई यह नहीं सिखाता कि इन बढ़ती धार्मिक संकीर्णताओं को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है। विद्वान धर्माचार्य और मौलवी भी अपने भाषणों से सांप्रदायिक वैमनष्य फैलाने का ही काम करते हैं। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ने अपने निम्न शेर में इसी भाव को व्यक्त किया है–

मज़हब की धरती में विष का बीज लगाता है,
द्वंद्वों की खेती करता है, पंडित मन अपना। [11]

धर्म को संकीर्ण दायरों में क़ैद करनेवाले ढोंगी लोग धर्म का मतलब समझ ही नहीं पाए हैं। वास्तव में सच्चा धर्म तो मानव-धर्म है। संपूर्ण विश्व को एक मंदिर समझते हुए उसमें रहनेवाले प्राणि-मात्र के प्रति प्रेम, अहिंसा और सद्भावना से परिपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित किया जाए। डॉ॰ अग्रवाल धर्म की संकीर्ण दुनिया से कोई वास्ता नहीं रखना चाहते। उनकी दुनिया का धर्म 'इंसानियत' है और वे इंसानियत की ही इबादत करना अपना धर्म समझते हैं–

मेरी मंज़िल अलग, मेरा रस्ता अलग,
सारी दुनिया से है, मेरी दुनिया अलग।
धर्म मेरा अगर है तो इंसानियत,
मेरा मंदिर जुदा, मेरी पूजा अलग।[12]

एक अन्य शेर में भी डॉ॰ अग्रवाल पूजाघरों में सिमटे संकीर्ण धर्म के स्थान पर मनुष्य

को उस अवस्था तक ले जाना चाहते हैं, जहाँ वह परमात्मा और परमात्मा द्वारा सृजित संपूर्ण सृष्टि के प्रति प्रेम से परिपूर्ण हो उठे–

प्रेम की बाँहों में है सिमटा हुआ सारा जगत,
जो नहीं पूजाघरों का, वह है मज़हब प्यार का। [13]

आज कुछ लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए जिस प्रकार धर्म का दुरुपयोग कर रहे हैं और जिस प्रकार धार्मिक एकता नष्ट-भ्रष्ट की जा रही है, उस स्थिति में भी हमें निराश होने के स्थान पर, आशावादी दृष्टिकोण रखना चाहिए। अँधेरा उजाले को परास्त नहीं कर सकता तथा सामाजिक विसंगतियों की ज़िम्मेदार सारी राक्षसी प्रवृत्तियों का विनाश करने के लिए दैवी शक्तियाँ सदैव तत्पर रहती हैं–

क़दमों पे अँधेरे के उजाला न झुकेगा,
शैतान यहाँ है तो ख़ुदा भी तो यहीं है। [14]

संदर्भ

1. ग़ज़लें ही ग़ज़लें, सं॰ डॉ॰ शेरजंग गर्ग, पृ॰ 173
2. हिंदी ग़ज़ल उद्‌भव और विकास, डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना, पृ॰ 227
3. नीम की पत्तियाँ, रामकुमार कृषक, पृ॰ 36
4. नवीनतम हिंदी ग़ज़लें, सं॰ रोहिताश्व अस्थाना, पृ॰ 54
5. अंदाजे-बयाँ, सुरेंद्र चतुर्वेदी, पृ॰ 13
6. बहुरंगी हिंदी-ग़ज़लें, सं॰ डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना, पृ॰ 23
7. वही, पृ॰ 28
8. नीरज की पाती, गोपालदास सक्सेना 'नीरज', पृ॰ 130
9. वही, पृ॰ 125
10. मौसम बदल गया कितना, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ॰ 82
11. सन्नाटे में गूँज, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ॰ 41
12. मौसम बदल गया कितना, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ॰ 61
13. रोशनी बनकर जिओ, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ॰ 142
14 वही, पृ॰ 132

हिंदी-साहित्य पर मार्क्स तथा फ्रायड की विचारधारा का प्रभाव

डॉ॰ हणमंतराव पाटील
एसो॰ प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग
डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद (महा॰)

आधुनिक हिंदी-साहित्य पर अनेक विचारधाराओं का प्रभाव दिखाई देता है। कार्ल मार्क्स तथा सिगमंड फ्रायड के विचारों का स्पष्ट प्रभाव हिंदी साहित्य पर दिखाई देता है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार जीवन और समाज के सभी व्यवहार 'अर्थ' पर निर्भर होते हैं। कार्ल मार्क्स का यह स्पष्ट कहना है कि किसी भी समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास होता है। यह वर्ग-संघर्ष चिरंतन और सतत है। समाज में दो वर्ग दिखाई देते हैं–1. बुर्जुवा (पूँजीपति) और 2. प्रोलीटेरियट। पूँजीपति हमेशा सर्वहारा वर्ग को दबाते हैं तथा उनको विकास का मौक़ा नहीं देते। इस कारण ही समाज में वर्ग-संघर्ष होता है। मार्क्स का यहाँ तक कहना है कि कला, साहित्य, संगीत और धर्म सभी कुछ अर्थ के अधीन हैं। मार्क्स ने सभी कलाओं को इसी दृष्टि से जाँचा और परखा है। [1]

सिगमंड फ्रायड की विचारधारा मनोवैज्ञानिक है, जो 'काम' को प्रधान मानती है और जीवन के प्रत्येक कार्यकलाप में 'काम' को ही आधार मानती है। वास्तविक रूप में यह विचारधारा अधिक वैज्ञानिक लगती है। इसका कारण यह है कि स्त्री-पुरुष के आकर्षण के कारण ही कुटुंब की रचना होती है। इसलिए फ्रायड के अनुसार सामाजिक रीति-रिवाज के आचरण के मूल में 'अर्थ' न होकर 'काम' ही महत्त्वपूर्ण है। फ्रायड काम का संबंध मनुष्य के अंतर्जगत से मानते हैं। उनकी इस विचारधारा के आधार पर मनोवैज्ञानिकों का एक वर्ग तैयार हो गया है। इसी कारण ही समीक्षा के क्षेत्र में एक मनोवैज्ञानिक प्रणाली तैयार हो गई है। यह समीक्षा-प्रणाली निजी चेतना को व्यक्ति के व्यक्तित्व का चरम सत्य मानती है और साहित्य में अंतश्चेतना की अभिव्यक्ति को मुख्य तत्त्व मानती है। व्यक्ति की चेतना या अंतश्चेतना के निर्माण में सामूहिक एवं सामाजिक स्थितियाँ योग देती हैं, परंतु व्यक्ति की अंतचेतना ही वह स्वतंत्र और मौलिक सत्ता है, जो साहित्य-सृजन के लिए उत्तरदायी है। फ्रायड साहित्य को दमित वासना के रूप में देखते हैं। [2] इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में ये दो विचारधाराएँ बहुत अधिक प्रभाव का निर्माण कर रही हैं। वास्तविक रूप में कार्ल मार्क्स जीवन-संघर्ष को जीवन के प्रत्येक व्यापार के लिए जिम्मेदार मानते हैं, तो फ्रायड सामाजिक स्थितियों का साहित्य-सृजन की दृष्टि से महत्त्व नहीं स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य तो व्यक्ति की अंतश्चेतना

का परिणाम है। [3]

इस संदर्भ में जब हम भारतीय विचारधारा को देखते हैं, तो पता चलता है कि भारत के मनीषियों ने बहुत पहले से ही 'धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष' इन विचारों को स्वीकार किया है। इस कारण भारतीय विचारधारा ने 'काम' के महत्त्व को पहले से ही स्वीकार किया है।

वास्तविक रूप में हम यह देखते हैं कि 'अर्थ' तथा 'काम' दो परस्पर विपरीत विचारधाराएँ हैं। एक का क्षेत्र बहिर्जगत है तो दूसरे का अंतर्जगत है, लेकिन इन दोनों विचारधाराओं ने साहित्य तथा समाज में बहुत अधिक परिवर्तन किया है।

हिंदी-साहित्य में इन दो विचारधाराओं का प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय स्वाधीनता के आंदोलन में मार्क्सवादी विचारधारा को आधार बनाकर शोषण की नीति को अनेक साहित्यकारों ने प्रकट किया है। भारतेंदु से लेकर नए-नए साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं में वर्ग-संघर्ष को आधार बनाकर साहित्य का सृजन किया है। गजानन माधव मुक्तिबोध के काव्य में यह मार्क्सवादी चेतना प्रभावी रूप में दिखाई देती है। धूमिल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चंद्रकांत देवताले, नागार्जुन आदि कवियों के काव्य पर भी मार्क्सवादी चिंतन का प्रभाव दिखाई देता है। हिंदी कथासाहित्य में भी मार्क्सवादी विचारधारा प्रभावी रूप में दिखाई देती हैं। प्रेमचंद के कथासाहित्य पर भी मार्क्सवादी विचारधारा का बहुत अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हिंदी-साहित्य में शोषक लोगों के प्रति घृणा और शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाई देती है। सामाजिक परिवर्तन को यह विचारधारा मानने के कारण ही क्रांति की चेतना भी इस मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित साहित्य में दिखाई देती है। राहुल सांकृत्यायन एवं दिनकर के साहित्य पर मार्क्सवादी चिंतन का विशेष प्रभाव दिखाई देता है।

मार्क्सवादी विचारधारा में वर्ग-संघर्ष को प्राण-तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इस कारण इस विचारधारा का साहित्य जीवन के बाह्य पक्षों पर ही अधिक दिखाई देती है।

फ्रायड के विचारों से प्रभावित साहित्य सामाजिक बदलाव को महत्त्व नहीं देता है। इस विचारधारा के अनुसार साहित्य का सृजन व्यक्ति के मन की अंतश्चेतना से होता है। इन लोगों का कहना यह भी है कि जिस प्रकार स्वप्न का सृजन व्यक्ति की सुप्तावस्था में होता है, उसी प्रकार साहित्य या कला की उद्‌भावना कलाकार की अंतश्चेतना से ही होती है। जो वस्तु हम जाग्रतावस्था में नहीं पाते, उसे स्वप्न में ही प्राप्त कर लेते हैं। स्वप्न हमारे अतृप्त मन के सजीव चित्र हैं, कल्पना भी कवि की अंतरवर्ती चेतना द्वारा होती है। मनोविश्लेषणवादी अंतश्चेतना द्वारा अद्‌भुत प्रतीकों और कल्पना रूपों को ही वास्तविक काव्य का आधार मानते हैं।

फ्रायड की इस विचारधारा का प्रभाव हिंदी-साहित्य पर भी बहुत अधिक हुआ है। कवि प्रसाद जी ने अपने महाकाव्य 'कामायनी' में 'स्वप्न' और 'काम' अवस्थाओं पर दो अलग सर्ग लिखे हैं। प्रसाद जी के अनुसार 'काम' जीवन की प्रगति करनेवाला तत्त्व है। काम की पुत्री ही श्रद्धा है।

प्रसाद के पूर्व विद्यापति, बिहारी, रसखान आदि कवियों पर भी इस चिरंतन संवेदना

का प्रभाव दिखाई देता है, भले ही उस काल में फ्रायड के सिद्धांत भी नहीं थे। छायावादी कवियों के साथ ही साथ अज्ञेय आदि सप्तकीय कवियों पर भी फ्रायड की विचारधरा का प्रभाव दिखाई देता है। हिंदी कथा-साहित्य पर भी फ्रायड की विचारधारा का उल्लेखनीय प्रभाव दिखाई देता है। भगवतीचरण वर्मा, जैनेंद्रकुमार, अज्ञेय आदि की कृतियाँ फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित हैं। हिंदी की महिला लेखिकाएँ भी फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित होकर उत्कृष्ट साहित्य-सृजन कर रही हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि हिंदी-साहित्य पर इन दो विचारधाराओं का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इन दो विचारधाराओं के कारण अनेक उत्कृष्ट रचनाओं का निर्माण हुआ है। लेकिन कभी-कभी हम यह भी देखते हैं कि वर्ग-संघर्ष का आधार बनाकर लिखे हुए साहित्य ने सामाजिक उद्दंडता बढ़ाई है। इसी तरह अंतश्चेतना के नाम पर निर्मित साहित्य ने स्वच्छंद यौन को बढ़ावा दिया है। स्वस्थ सामाजिक विकास की दृष्टि से ये दोनों बातें ठीक नहीं हैं। लेकिन इन दोषों के बावजूद ये दोनों विचारधाराएँ हिंदी-साहित्य की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे प्रभावित होकर हिंदी-साहित्य में अनेक प्रभावी रचनाओं का सृजन हुआ है।

संदर्भ

1. भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन, डॉ॰ सभापति मिश्र, पृ॰361
2. साहित्यशास्त्र, डॉ॰ चंद्रभानु सोनवणे, पृ॰ 233

शेख़ फ़रीद वाणी : क़ुरान और हदीस के आइने में

डॉ॰ ए॰ अज़ीज़ 'अंकुर'
रीडर, हिंदी विभाग
जी॰एफ॰ (पी॰जी॰) कालेज, शाहजहाँपुर (उ॰प्र॰)

मेदिनी की महिमा का वर्णन कर पाना अत्यंत कठिन है। वह क्या है, जो इस रत्नगर्भा में नहीं है। रस है, गंध है, हीरे, मोती, माणिक सभी कुछ तो यह अपने गर्भ में समेटे हुए है। अल्लाह ने समय-समय पर इस धरित्री पर सतियों में सती, गुणियों में गुणी, वीरों में वीर, साधकों में साधक और न जाने कितनी विभूतियों को जन्म दिया है। मध्ययुग में हमारी इस धरती पर एक ऐसे ही रत्न का जन्म हुआ, जिसका नाम शेख़ फ़रीद गंज-ए-शकर है। तसव्वुफ़ की दुनिया में आप एक ऐसे सूफ़ी थे, जिनका जन्म शायद लोकोपकार के लिए ही हुआ था।

बात तसव्वुफ़ की आई तो उसे भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है। इस्लामी तालीमात पर अपनी जिस्मानी इच्छाओं एवं वासनाओं से पाक व साफ़ होना तथा वह इल्म जिसके माध्यम से दिल की सफ़ाई व सुकून हो, उसे तसव्वुफ़ कहते हैं। इसकी तबलीग़ व इशाअत उन पशमीनापोश नेक इंसानों एवं परहेशगारों ने की जो क़ुरान-ए-करीम की पहली सुरह की पहली आयत के मुताबिक तमाम सृष्टि रब की हम्द या प्रार्थना करती है और उस हदीस-ए-रसूल पर ईमान रखती है कि तमाम मख़लूक का ख़ालिक अल्लाह ही है। यही वह तसव्वुफ़ है, जिससे दीन-ए-इस्लाम की इशाअत व तबलीग़ हुई।

सच बात तो यह है कि अरबी-फ़ारसी व संस्कृत समझना हर एक के बस की बात नहीं है, उसको अवाम या जनता-जनार्दन तक पहुँचाना आवश्यक था। ऐसी स्थिति में 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' को शिरोधार्य करते हुए बाबा फ़रीद ने क़ुरआन और हदीस की रोशनी में क्षेत्रीय पंजाबी जनभाषा में अपनी बात को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया। बाबा साहब यह अच्छी तरह जानते थे कि आसमानी सहीफ़ों को समझने और समझाने के लिए मुक़ामी शबानों का सहारा लेना आवश्यक है। इस ज़रूरत और अहमियत को शिद्दत से महसूस करते हुए कुरून-ए-वस्ता की सुन्नतों और सूफ़ियों के पैग़ाम-ए-रब्बानी को आम लोगों तक पहुँचाने का काम बख़ूबी अंजाम दिया।

बाबा फ़रीद हिंदुस्तान की उन चंद हस्तियों में से हैं, जिनकी रचनाओं में क़ुरान और हदीस के मफ़हूम आसानी से तलाश किए जा सकते हैं। कलामे-पाक के सत्तईसवें पारा के सूरे शालियात में अल्लाह फरमाता है कि हमने जिन्नों और इंसानों को सिर्फ़ अपनी इबादत के लिए पैदा किया है। [1] इसी तरह पारा-18, सूरे-मौमेनून में अल्लाह ने फरमाया है– 'हाँ, तो

क्या तुमने गुमान कर रखा था कि तुम यूँ ही बेकार पैदा किए गए हो यह कि तुम दोबारा हमारे पास नहीं लौटाए जाओगे।' [2] इस तारतम्य में बाबा फ़रीद कहते हैं कि हे मनुष्य! तुमको किस लिए पैदा किया गया? तुमने चार पहर (दिन) तो घूम-फिर कर आनंद में बिता दिया। शेष चार पहर (रात्रि) सोकर खो दिया। मरने के बाद तुम अल्लाह की तरफ़ जब लौटकर जाओगे, तब वह हिसाब माँगेगा कि तुम्हें क्या काम सौंपा गया था और तुम क्या कार्य करते रहे–

फ़रीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि।
रबु मंगेसीआ तू आँहो केरे कंमि। [3]

बाबा फ़रीद एक जगह पर कहते हैं कि मकान, मंडप और बड़े-बड़े भवन बना लेने वाले भी संसार से उठ गए। वास्तव में वे संसार में मिथ्या व्यापार करते रहे। अंततः वे क़ब्रों में दफ़ना दिए गए। क़ुरान शरीफ़ के उनतीसवें पारा के सूरे अलहाक्क़ा में अल्लाह फ़रमाता है कि उसकी जाहो-हशमत, उसका माल व दौलत उसके कुछ काम नहीं आया। [4] बाबा फ़रीद का वह उदाहरण देखें–

फ़रीदा कोठे मंडप माहिआ उसारेदे भी गए
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए। [5]

इसी तरह क़ुराने-करीम के पारा छब्बीस, सूरे-क़ाफ़ में अल्लाह ने फ़रमाया है कि हम तुम्हारे पास 'शहेरग' से ज़्यादा क़रीब हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं कि ऐ मनुष्य! तुम जंगल-जंगल में वनस्पतियों के बीच और नदी-तटों पर घूमते हुए क्या खोज रहे हो? परमात्मा तो तुम्हारे भीतर हृदय में बसा हुआ है। तुम जंगलों में भला क्यों फिरते हो? तात्पर्य यह है कि उसे अगर प्राप्त करना है तो अपने अंतर्मन में देखो। उदाहरण द्रष्टव्य है–

फ़रीदा जंगलु-जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि।
वसी रबु हि आलीऐ जंगलु किआ ढूँढेहि। [6]

क़ुरान-ए-करीम में ज़िंदगी की हर समस्या का हल है। इंसान उस पर अमल करके तो देखे। उसकी बहुत-सी बातों को बाबा फ़रीद ने अपनी वाणी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया है। इस्लाम की बुनियाद हशरत आदम अलैहिस्सलाम से स्वीकृत है, जो दुनिया में पहले इंसान पैदा किए गए थे। जब इंसान ईश्वरीय असूलों से भटकने लगा तो अल्लाह ने उसे समझाकर सही रास्ते पर लाने के लिए समय-समय पर पैग़ंबर, रसूल और ईश्वरीय संदेष्टा भेजा। उसी में हमारे आख़िरी नबी हशरत मुहम्मद साहब भी हैं। उन्होंने सहाबियों (अपने साथियों) से जो कुछ फ़रमाया उसे हदीस कहते हैं। हशरत ईसा अलैहिस्सलाम ने एक बार फ़रमाया था कि भूख ही मेरा सालन है अर्थात् जिस तरह सालन से रोटी इंसान खाता है, सूखी रोटी भूख में ऐसी ही लगती है कि जैसे इंसान सालन या सब्ज़ी से रोटी खा रहा है। इस वाकया को रसूले अकरम ने सहाबियों को सुनाया [7] अब आप देखें कि इस हदीस की रोशनी में बाबा फ़रीद क्या कहते हैं–

फ़रीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भूख।
जिना खाधी चोपड़ी घड़े सुहागिने दुख। [8]
रूखी-सूखी खाइ कै ठंडा पानी पीउ।
फ़रीदा देखि पराई चोपड़ी न तरसाए जीउ। [9]

अर्थात् मेरी रोटी काठ की तरह कठोर (सूखी) है और मेरी भूख उसके संग ग्रहण करनेवाली सब्ज़ी है। जो लोग घी आदि से चुपड़ी रोटी खाते हैं, वे ही दुख सहन करेंगे।

इसी तारतम्य में वे आगे कहते हैं कि ऐ फ़रीद! अपनी रूखी-सूखी रोटी खाकर शीतल जल ग्रहण करो। अर्थात् सादेपन का जीवन जिओ। पराए लोगों की चुपड़ी रोटी देखकर मन को क्यों तरसाते हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फ़रीद वाणी क़ुरान और हदीस की तमाम अच्छी और नेक बातों से भरी पड़ी है। आज समाज में जो विसंगतियाँ हैं, हर तरह का शोषण है, भ्रष्टाचार है, आज जब जातिवाद, संप्रदायवाद एवं आर्थिक विषमताओं के कारण विघटनकारी शक्तियाँ देश को विघटित करने के लिए कमर कसी हुई हैं, ऐसी स्थिति में शेख़ फ़रीद की वाणी और भी प्रासंगिक हो जाती है। उनकी वाणी का प्रचार-प्रसार होना अनिवार्य है। तभी एक ऐसे समाज का निर्माण हो सकेगा, जिसमें मानव-मानव के बीच कोई भेद-भाव नहीं रह जाएगा, सांप्रदायिक विद्वेष के लिए जहाँ कोई स्थान नहीं होगा। तभी एक मुकम्मल एवं अखंड भारत का चहुँमुखी विकास हो सकेगा और एक साफ़-सुथरा हिंदुस्तान हमारे सामने होगा।

संदर्भ

1. कलाम-ए-पाक : पारा 27, सूरे शालियात
2. वही, पारा-18, सूरे मौमेनून
3. फ़रीद वाणी : श्लोक-38
4. क़ुरान-शरीफ़ : पारा 29, सूरे अलहाक़्क़ा
5. फ़रीदवाणी-श्लोक 46
6. वही, श्लोक 19
7. हदीस शरीफ़ से
8. फ़रीदवाणी : श्लोक 28
9. वही, श्लोक 29

प्रेमचंद के कथा-संसार में भारतीयेतर चरित्र

श्रीमती अनुपमा, शोधछात्रा
डॉ॰ मुनीशप्रकाश अग्रवाल, शोधनिदेशक
रीडर हिंदी विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर

प्रेमचंद जी का साहित्यिक वृत्त बहुत व्यापक है। उन्होंने उपन्यासों के अतिरिक्त लगभग 300 कहानियों की भी रचना की। उनकी कहानियों में हमें जिस अनुभव, यथार्थ, सामाजिकता का साक्षात्कार होता है, वह प्राय: उनके स्वयं के जीवन में भोगे हुए और गुने हुए अनुभवों का प्रतिफलन हैं। इनमें लगभग 280 कहानियाँ उन्हें स्वदेश के लेखक के रूप में चित्रित करती हैं, किंतु लगभग 20 कहानियाँ ऐसी भी हैं, जो विदेशी चरित्र-चित्रण पर आधारित हैं।[1] भारतीयेतर चरित्र भी उन्हें देश से जोड़े रखने का कार्य करते हैं व पाठकों के दृष्टि-पथ एवं ज्ञान-चेतना का विस्तार करते हैं, क्योंकि उनकी कथाओं के भारतीयेतर पात्र चाहे विदेशी लुटेरे हों, भारतेतर देशों में रहनेवाले भारतीय हों या दूसरे देशों से आकर भारत में बस जाने वाले हों, हर रूप में देशप्रेम की भावना के ही द्योतक रहे हैं। प्रेमचंद जी ने ईरान, अफ़गानिस्तान, इटली, जर्मनी, अरब, स्पेन, तेहरान, अफ़गानिस्तान, यूनान, रूस आदि विभिन्न देशों के पात्रों की कथाएँ लिखीं।

रचनाकाल के आरंभिक चरण में वे गांधीवाद से प्रभावित होने के कारण क्रांति के विरोध में रहे। कुछ सीमा तक आदर्शवाद की शृंखलाओं में भी जकड़े रहे, किंतु यथार्थ के ठोस धरातल पर देशी-विदेशी साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप उनकी विचारधारा में पर्याप्त परिवर्तन आया व उन्हें अहसास हुआ कि मृतप्राय जनसाधारण में नवस्फूर्ति लाने के लिए प्राचीन संस्कारों व रूढ़ियों का विलय तथा क्रांति का आह्वान अनिवार्य है। फलत: उन्होंने विदेशी पात्रों के मुख से अपने हृदय की आवाज़ बुलंद की। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया– 'आजकल काउंट टालस्टाय के क़िस्से पढ़ चुका हूँ। अबसे कुछ उसी रंग की तरफ़ तबियत माइल है। यह अपनी कमज़ोरी ही है।'[2] जब 1908 में प्रेमचंद ने उर्दू कहानी-संग्रह 'सोज़ेवतन' से कहानी के क्षेत्र में क़दम रखा तो वह देश-प्रेम की कहानियों का संग्रह था। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है– 'सोज़ेवतन' अर्थात् देश-प्रेम, किंतु यह देश-प्रेम विदेशी पात्रों तथा विदेशी कथा-प्रसंगों के माध्यम से जाग्रत किया गया। उस समय देश पर अँग्रेज़ी शासकों के आतंक के कारण ही संभवत: प्रेमचंद ने विदेशी चरित्रों के माध्यम से अपनी वाणी जन-साधारण तक पहुँचाई, अन्यथा अपनी एकदम आरंभिक कथाओं में विदेशोन्मुख होने का कोई स्पष्ट कारण न था। हालाँकि प्रेमचंद का यह सर्जनात्मक कौशल अँग्रेज़ी सत्ता से छिपा न रह सका कि वे विदेशी पात्रों द्वारा स्वदेशी जन-जागरण लाने का प्रयास कर रहे थे। फलत: अँग्रेज़ सरकार ने इस संग्रह की बची हुई प्रतियों को अग्नि को अर्पित कर दिया। इसी से स्पष्ट है कि भारतीयेतर पात्रों की कहानियाँ भी विदेशी सत्ता को किस प्रकार अपने अस्तित्व के लिए ख़तरे की घंटी प्रतीत हुईं।

परिणामवरूप राजकोप से बचने के लिए प्रेमचंद ने 1910 से नवाबराय के स्थान पर 'प्रेमचंद' उपनाम से कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया, किंतु मूल-भावना से नहीं भटके। उन्होंने कहा 'मेरी कसौटी मानवता है, जिसमें मानवता का प्राधान्य है, मैं उसी धर्म का दास हूँ।' [3]

प्रेमचंद की भारतीयेतर चरित्रों की ये कहानियाँ प्राय: ऐतिहासिक हैं व वर्ष 1908 से 1933 के मध्य में प्रकाशित हुई हैं। इनमें अधिकांश कहानियाँ इस्लामिक देशों की हैं, परंतु इस्लाम-ईसाई संघर्ष एवं ईसाई देश के जीवन पर भी प्रेमचंद ने कहानियाँ लिखी हैं। कालक्रमानुसार ये कहानियाँ निम्नलिखित हैं :

1. दुनिया का सबसे अनमोल रतन (1908) : ईरान की कहानी
2. शेख मख़मूर (1908) : अफ़गानिस्तान की कहानी
3. सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम (1908): इटली की कहानी
4. शाप (1910) : बर्लिन (जर्मनी) के यात्री की कहानी
5. नबी का नीति-निर्वाह (1924) : अरब की कहानी
6. क्षमा (1924) : स्पेन की कहानी
7. लैला (1926): तेहरान (ईरान) की कहानी
8. फ़ातिहा (1929) : अफ़गानिस्तान की कहानी
9. जिहाद (1929): अफ़गानिस्तान की कहानी
10. धिक्कार (1930) : यूनान की कहानी
11. क़ैदी (1933): रूस की कहानी
12. दिल की रानी (1933): अरब-तुर्क की कहानी

उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद हिंदी के अपने युग के पहले ऐसे कहानीकार हैं, जिन्होंने पाठकों का संपर्क भारतेतर देशों व विदेशी पात्रों से कराया व विदेशी प्रसंगों पर कहानियाँ लिखीं। प्रेमचंद ने ऐसी कुल 20 कहानियाँ लिखीं। इनमें 15 कहानियाँ विदेशी जीवन एवं पात्रों की हैं, दो कहानियाँ विदेशी लुटेरों की, तीन प्रवासी भारतीयों की व दो कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें प्रवासी भारतीय अपने देश लौटकर आते हैं।

इन कहानियों में सर्वप्रथम कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन है, जो आशिक़-माशूक़ की फ़ारसी प्रेम-कहानी के समरूप है, किंतु शिशु के प्रति वत्सलता और पति के प्रति सारे समर्पण एवं निष्ठा के मुक़ाबले अपने देश पर क़ुर्बान हो जाने की भावना को ही सर्वोपरि ठहराया गया है। लेखक लिखता है– 'ख़ून का वह आख़िरी क़तरा जो वतन की हिफ़ाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ है...' [4] दिलफ़िगार (प्रेमी) और दिलफ़रेब (प्रेमिका) की इस प्रेम-कहानी में भारत का एक राजपूत सैनिक 'भारत माता की जय' कहकर युद्ध-क्षेत्र में प्राण त्यागता है और कहानीकार टिप्पणी करता है– 'एक सच्चे देशप्रेमी और देशभक्त ने देशभक्ति का हक अदा कर दिया।' [5] इस कहानी की विशेषता यह है कि दो विदेशी मुस्लिम पात्रों के द्वारा देशभक्ति का उदात्त-भाव उत्पन्न किया गया है। दूसरी कहानी 'शेख मख़मूर' में पाठकों को बामुराद शाह व उसके पुत्र मसऊद (शेख मख़मूर) के माध्यम से देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत रहने की प्रेरणा दी गई है। तीसरी कहानी 'सांसारिक प्रेम और देशप्रेम' में मैंज़िनी और मैग्डलीन के परस्पर प्रेम व देशभक्ति द्वारा भारतीय पाठकों को इटली के राष्ट्रनायक मैंज़िनी के देशप्रेम से अवगत कराया गया है कि किस प्रकार मैज़िनी देश और जाति

के संघर्ष के लिए इटली से लंदन, स्विटज़रलैंड आदि देशों में शरण लेता है और अंततः देश-सेवा का अरमान लिए प्राण त्याग देता है।

देश-प्रेम की पराकाष्ठा हमें 'धिक्कार' कहानी में देखने को मिलती है जब ईरान से पराजित होनेवाले यूनानी डेल्फ़ी के मंदिर में जाकर अपनी इस पराजय का कारण पूछते हैं और पुजारिन अपने देशद्रोही पुत्र पायोनिक्स को दोषी पाए जाने पर उसे क़ैद कराकर दरवाज़े पर पहला पत्थर स्वयं रखती है व उसे मरने के लिए छोड़ देती है। यहाँ प्रेमचंद जी लिखते है– 'वीर माता, तुम धन्य हो। ऐसी ही माताओं से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देशहित के सामने मातृ-स्नेह की धूल बराबर परवाह नहीं करतीं। उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता' [6]

प्रेमचंद जी के कथा-संसार में ईसाई तथा मुस्लिम विदेशी पात्र भारतीय समाज के आदर्श बनकर पराधीन भारतीयों में स्वतंत्रता की प्रबल उत्कंठा व देशप्रेम का संदेश संचारित करते हैं। देशप्रेम की इन कहानियों के अलावा छह कहानियाँ ऐसी भी हैं, जो इस्लामिक देशों और उनके समाजों पर लिखी गई हैं। इनमें 'नवी का नीति-निर्वाह' (1924), 'लैला' (1926), फ़ातिहा (1929), 'जिहाद' (1929) तथा 'दिल की रानी' (1933) की गणना की जा सकती है। 'नवी का नीति-निर्वाह' कहानी जोकि इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद के जीवन पर आधारित है, में प्रेमचंद ने अपने हिंदू पाठकों को हज़रत मुहम्मद की नीति-परायणता तथा न्याय में पारिवारिक संबंधों की उपेक्षा के द्वारा हज़रत मुहम्मद के दामाद अबुलआस का हृदय-परिवर्तन दिखाकर न्याय और नीति की विजय दिखाई है। 'क्षमा' कहानी स्पेन और अरब के ईसाईयों तथा मुसलमानों के संघर्ष की कहानी है। इसमें भी अरब का मुसलमान शेख़ हसन अपने बेटे के ईसाई हत्यारे दाऊद को क्षमा कर देता है, क्योंकि वह मानता है कि रसूल तो स्वयं क्षमा और दया के सर्वोच्च आदर्श थे। 'लैला' तेहरान के शाहज़ादे नादिर और उसकी प्रेमिका लैला की प्रेम-कहानी है। लैला बादशाहत तथा फ़कीरी में फ़कीरी को चुनती है, प्रभुता के स्थान पर प्रेम को श्रेष्ठ मानती है। 'फ़ातिहा' अफ़गानिस्तान के पठान कबीलों के पात्रों की कहानी है, जिसमें प्रेम, हिंसा, प्रतिशोध, चमत्कार आदि की घटनाएँ फ़िल्मी अंदाज़ में संयोजित हैं। इन कहानियों में 'जिहाद' कहानी सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह कहानी इस्लामी आतंकवाद तथा धर्मांतरण की हिंदू-विरोधी नीति एवं व्यवहार पर लिखी गई है। कहानी अफ़गानिस्तान की है, जहाँ सदियों से हिंदू-मुसलमान प्रेम एवं सद्भाव से रह रहे थे, किंतु आज के ओसामा बिन लादेन के समान एक मुल्ला शांतिपूर्वक रहनेवाले हिंदुओं को मुसलमान बनाने या क़त्ल करने का हुक्म पठानों को देता है। इसमें लेखक ने इस्लाम के आतंकवादी और धर्मांधतापूर्ण स्वरूप का निर्भयता से उद्घाटन किया है। आज के इस्लामी आतंकवाद ने इस कहानी को वर्तमान में भी सार्थक बना दिया है।

'दिल की रानी' कहानी में प्रेमचंद ने हबीब के विचारों से इस्लाम का ही नहीं, धर्म का एक आधुनिक चेहरा दिखाया है और जिहाद काफ़िर, कुफ़्र, बुतपरस्ती आदि की परिभाषाएँ बदलकर उन्हें नई सदी के अनुरूप ढाला है हबीब के विचारानुसार इस्लाम क़ैदियों को क़त्ल की इज़ाज़त नहीं देता, खूँरेजी जिहाद ख़ुदा के लिए नहीं, अपनी हबिस के लिए होता है, धर्म-परिवर्तन के अधिकार के समान विचार-स्वातंत्र्य तथा अपने धर्म पर आरूढ़ होने का अधिकार भी होता है। मजहब लूट या क़त्ल का नाम नहीं, खिदमत का नाम है। तैमूर जैसे हिंसक और

बर्बर व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन करके उसे धर्मसहिष्णु बनाकर प्रेमचंद ने इतिहास को एक नया मोड़ दिया है। 'तैमूर ने युवक के सामने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे आँखों से लगाता हुआ बोला– मेरे जवान दोस्त, सचमुच तुम ख़ुदा के हबीब हो, मैं वह गुनहगार हूँ, जिसने अपनी जहालत में हमेशा अपने गुनाहों को सबाब समझा, इसलिए कि मुझसे कहा गया था, तेरी जात बेऐब है। आज मुझे मालूम हुआ कि मेरे हाथों इस्लाम को कितना नुकसान पहुँचा। ... तुम्हारे ही वसीले से मैं ख़ुदा की दरगाह तक पहुँच सकता हूँ।' [7] यहाँ तैमूर के शब्दों में प्रेमचंद ही बोल रहे हैं। इस प्रकार लेखक बड़ी सफलता से युग को नई दिशा देने का कार्य भारतीयेतर पात्रों व उनकी कहानियों से करता है।

'परीक्षा' (1923) कहानी मुस्लिम लुटेरे नादिरशाह की है, जो क़त्लेआम करके दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लेता है और शाही बेगमों को अपने सामने नचवाता है, परंतु एक भी बेगम इस अपमान का बदला लेने के लिए नादिर पर तलवार नहीं उठाती। सुख-भोग और इंद्रिय-लिप्सा ने उनकी मर्यादा एवं आत्मसम्मान को नष्ट कर दिया है। नादिर इस पर बेगमों को फटकारते हुए उपदेश देता है कि जब किसी कौम की औरतों में ग़ैरत नहीं रहती तो वह कौम मुरदा हो जाती है। अब यह सल्तनत ज़िंदा नहीं रह सकती है। इस कहानी में प्रेमचंद ने विदेशी लुटेरे तथा हिंसक नादिरशाह को भारत का हिताकांक्षी बना दिया है। वह हिंदुस्तानी बेगमों की परीक्षा लेता है और उन्हें उपदेश देता है। जो नादिरशाह के इतिहास से विपरीत होने पर भी पाठकों के लिए शिक्षाप्रद है कि देश की रक्षा के लिए आत्मसम्मान का भाव आवश्यक है। यह प्रेमचंद का ही नहीं, युग का संदेश है। इसी नादिरशाह पर प्रेमचंद ने 'वज्रपात' (1924) कहानी भी लिखी है, परंतु वह इतिहास का आख्यान है, कोई संदेश उसमें नहीं है।

प्रेमचंद की कहानियों में कुछ भारतीय पात्र विदेश जाने पर कहानी का आधार बनते हैं तथा कुछ प्रवासी भारतीय स्वदेश लौटकर कहानी को विकसित करते हैं। 'शूद्रा' कहानी में गौरा धोखे से मिर्च के टापू (मारीशस या फिज़ी) में भेज दी जाती है। वहाँ उसका पति मंगरू मिल जाता है। गौरा को, कोठी का साहब, कोठी में बुलाता है। न भेजने पर मंगरू की ख़ूब पिटाई होती है। उसकी इस दुर्दशा से द्रवित होकर गौरा साहब के पास रहना मान जाती है। गौरा साहब को उसकी माँ की याद दिलाती है, यहीं से हृदय-परिवर्तन का सिलसिला शुरू होता है। '... और देखते ही देखते साहब की यह हालत हो गई–दोनों हाथों से मुँह छिपाकर साहब ने रोना शुरू किया और इतना रोया कि हिचकी बँध गई। माता के चित्र के सम्मुख जाकर वह कुछ देर तक खड़ा रहा, मानो माता से क्षमा माँग रहा हो।' [8]

ऐसी ही एक अन्य कहानी 'सोहाग का शव' है, जिसमें प्रो॰ केशव छात्रवृत्ति पर इंग्लैंड जाता है और अपनी पत्नी सुभद्रा से किए वायदों को तोड़कर वहाँ उर्मिला से विवाह कर लेता है। सुभद्रा इंग्लैंड जाती है और विवाह-स्थल पर जाकर पिस्तौल से केशव की हत्या करना चाहती है, परंतु बेसुध-सी कमरे पर लौट आती है। वह उर्मिला को सारे आभूषण दे देती है और केशव के नाम एक पैकेट एवं पत्र छोड़कर चली जाती है। पैकेट में उसके सोहाग की वस्तुएँ हैं और पत्र में लिखा है कि वह इन्हें टेम्स नदी में बहा दे। कहानी का रंगमंच लंदन है। वहाँ एक भारतीय स्त्री अपना आदर्श प्रस्तुत करती है। पति द्वारा दूसरा विवाह करने पर सुभद्रा सोहाग की वस्तुएँ लौटा देती है, लेकिन पति को विवाह से नहीं रोकती, न दंडित करती है, बल्कि स्वयं अलग हो जाती है। सुभद्रा एक आधुनिक नारी होते हुए भी स्त्री-विमर्श और

भारतीय संस्कारों की उदात्तता प्रकट करती है।

'यही मेरी मातृभूमि है' (1908), 'अनाथ लड़की' (1914), 'आदर्श विरोध' (1921) कहानियों में प्रवासी भारतीय पात्रों के दशकों तक विदेशों में रहने के बाद स्वदेश लौटने की कथा है। इनमें 'यह मेरी मातृभूमि है' कहानी प्रमुख है। इसमें एक प्रवासी भारतीय 60 वर्ष अमेरिका में व्यतीत करने के उपरांत जब स्वदेश लौटता है तो वह अपना अंतिम समय यहाँ बिताने की इच्छा लेकर आता है, किंतु यहाँ अँग्रेज़ी सभ्यता के प्रभाव और समाज में परंपरागत जीवन-पद्धति एवं मूल्यों को लुप्त होते देखकर अत्यंत निराश होता है, मगर गंगा जी के किनारे धार्मिक वातावरण देखकर व 'हर-हर गंगे' की वाणी सुनते ही भाव-विभोर होकर कह उठता है कि यही मेरी मातृभूमि है। लेखक के शब्दों में– 'अब दुनिया की कोई इच्छा, कोई आकांक्षा मुझे यहाँ से हटा नहीं सकती, क्योंकि यह मेरा प्यारा देश, मेरी प्यारी मातृभूमि है और मेरी लालसा है कि मैं अपने देश में मरूँ।' [9] देश में बंग-भंग के कारण व्याप्त हो रही राष्ट्रप्रेम की लहर को इस अटूट देशप्रेम की कहानी में बख़ूबी उभारा गया है।

इस प्रकार प्रेमचंद जी के कथा-संसार में ग़ोता लगाने पर कुछ ऐसे सच्चे मोती हाथ लगते हैं कि उनकी चमक साहित्य-प्रेमियों को आत्मविभोर कर देती है। वस्तुतः प्रेमचंद मानव-जीवन के विराट् शिल्पी थे, उनकी चेतना व्यापक थी, जिसमें असीम संवेदनशीलता थी। उन्होंने मानव-जीवन को कथाफलक पर जिस कुशलता से उकेरा, उससे कथा-सौष्ठव में जीवन-रस इस कदर छलका कि विदेशी पात्रों की ओर समीक्षकों की दृष्टि ही नहीं गई। प्रेमचंद की ये कहानियाँ किसी समीक्षक की सहानुभूति की मोहताज नहीं हैं। ये उन युगसत्यों की साक्षी हैं, जो आज के लिए भी उतना ही बड़ा सच है, जितना कि वे उस युग के लिए थीं, जिसमें वे लिखी गई थीं। ये देश-विशेष के घेरे से निकलकर व्यष्टिगत सत्य के साथ दो-चार होने की खुली राह प्रशस्त करती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से राष्ट्रीय समस्याओं पर जो विचारोत्तेजक मंतव्य प्रस्तुत किए, उनसे उनकी सार्वभौमिक प्रतिभा का अनुभव होता है। भारतीयेतर पात्रों को भी भारतीय संस्कृति के रंग में रंगकर राष्ट्र-चेतना उत्पन्न करने के लिए प्रेमचंद जी का योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

संदर्भ

1. 'प्रेमचंद : उर्दू हिंदी कथाकार', सं० डॉ० जाफ़र रज़ा
2. चिट्ठी-पत्री 1, पृ० 39 (संकलनकर्ता-अमृतराय)
3. मानसरोवर भाग 3, पृ० 55
4. सोज़े वतन (हिंदी संस्करण), पृ० 17
5. वही, (हिंदी संकलन, गुप्त धन 1)
6. 'धिक्कार' (मानसरोवर 3), माधुरी प्रकाशन 1930
7. 'दिल की रानी', चाँद प्रकाशन 1933
8. 'शूद्रा', ज़माना 1925
9. सोज़े वतन (हिंदी संस्करण), पृ० 51

❐ **बी**-28, **दूसरा तल,**
झिलमिल कॉलोनी, दिल्ली-110095

समकालीन हिंदी-पंजाबी की कवयित्रियों की रचनाओं में स्त्री-विषयक सरोकार

डॉ॰ योजना रावत
रीडर हिंदी विभाग,
यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़

साठोतरी कविता को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उसमें तत्कालीन समाज का चरित्र प्रतिरोध और आक्रोश की भंगिमा के साथ उजागर हुआ है। यह बात हिंदी और पंजाबी दोनों भाषाओं की कविता पर लागू होती है। प्रतिरोध और आक्रोश की अभिव्यक्ति में रोष की एक आग-सी दबी रहती है, जो परिवर्तन की अभिलाषा से पैदा होती है। यह अभिलाषा जितनी तीव्र होती है, प्रतिरोध व आक्रोश की संवेदना उतनी ही गहराई एवं व्यापकता से अभिव्यक्त होती है। हिंदी व पंजाबी की समकालीन कविता, विशेषकर स्त्री रचनाकारों की कविता, में यह प्रतिरोध, आक्रोश, रूढ़िभंजन, अस्मिता की तलाश व पुरुष के दंभ का अस्वीकार बहुत स्पष्ट है। इसका कारण समाज के मध्यवर्ग में विशेष रूप से आया व्यापक परिवर्तन है, जो शिक्षा तथा सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति के परिणामस्वरूप उपजा और विकसित हुआ है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, बाज़ारवाद, भूमंडलीकरण तथा विभिन्न संस्कृतियों के मध्य आदान-प्रदान भी इस परिवर्तन के अन्य महत्त्वपूर्ण कारण हैं। इस परिवर्तन ने स्त्री रचनाकारों की चेतना एवं सृजनशीलता को भी प्रभावित किया है। हिंदी और पंजाबी भाषा-भाषी समाज के समाजशास्त्रीय स्तरीकरण में आए इस क्रांतिकारी परिवर्तन ने स्त्रियों को लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति इस हद तक सचेत किया है कि वे हर हाल में अपनी अस्मिता को एक ठोस और प्रामाणिक बिंब देने में समुद्यत हो गई हैं। इसी कारण कविता में उनकी अंतश्चेतना की साफगोई का प्रगटीकरण हुआ है।

आधुनिकता के दौर की समाप्ति पर समाज को जो आर्थिक एवं नैतिक विस्तृत खुलापन मिला है, उसकी अभिव्यक्ति स्त्री-विमर्श एवं दलित-विमर्श के साक्षी भाव में देखी जा सकती है। भारतीय समाज में स्त्री और दलित दोनों अवमानना का शिकार हुए हैं। दोनों को उन्नति के सोपानों एवं अधिकारों से वंचित किया गया। इनकी वंचना का इतिहास शताब्दियों पुराना है। हिंदी तथा पंजाबी की समकालीन कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री की इस वंचना के इतिहास का बोध बड़ी निर्भयता एवं टकराहट की मुद्रा में प्रकट हुआ है। ये कवयित्रियाँ स्त्री के अधिकारों की माँग पूरी तत्परता के साथ करती हैं तथा अवमानना के सभी प्रगट-अप्रगट व्यूहों को पूरी तरह तहस-नहस करती हैं। इन स्त्री रचनाकारों की रचनाओं में

स्त्री-विषयक सरोकारों को विस्तृत फलक पर बहुलता में अभिव्यक्ति मिली है। इस दृष्टि से समकालीन हिंदी-कवयित्रियों में अर्चना वर्मा, सविता सिंह, अनामिका, कात्यायनी, गगन गिल, तेजी ग्रोवर, नीलेश रघुवंशी, रेखा मैत्र इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पंजाबी कविता-जगत् में सक्रिय कवयित्रियों में मंजीत रिवाणा, मंजीत इंदिरा, शशि समुंदरा, पाल कौर, सुखविंदर अमृत, निरुपमा दत्त, कुलदीप कल्पना, जसबीर कौर, वनीता, शरण मक्कड़, मनजीत पाल कौर, अमर ज्योति तथा अमृतजीत घुम्मण ने पंजाबी कविता को समृद्ध किया है। समकालीन हिंदी व पंजाबी की अधिकतर कवयित्रियों ने स्त्री-विषयक सरोकारों को काव्य-सृजन का केंद्रीय बिंदु बनाया है। इनके द्वारा अभिव्यक्त काव्यगत सरोकारों में प्रमुख रूप से स्त्री की अस्मिता का प्रश्न, पुरुष के वर्चस्व से स्त्री की मुक्ति की कामना, रूढ़ सामाजिक मान्यताओं का विरोध, स्त्री के दमन एवं उत्पीड़न का विरोध तथा उपभोक्तावादी एवं बाज़ारवादी संस्कृति के फलस्वरूप स्त्री को 'वस्तु' समझे जानेवाली मानसिकता का ज़ोरदार खंडन किया है। सदियों से चली आ रही रूढ़ परंपराओं, पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों तथा पुरुष-प्रधान भारतीय समाज में दमित, शोषित व संघर्षरत स्त्री आज भी दमन-चक्र से मुक्त नहीं हो पाई है। हिंदी व पंजाबी दोनों भाषाओं की कवयित्रियों ने स्त्री-मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को उजागर किया है। फलतः नवसंस्कृतिवाद की व्यवस्था में स्त्री की स्थिति, स्त्री-पुरुष संबंधों की टकराहट, परंपरा व आधुनिकता से उपजे द्वंद्व तथा यथास्थिति के अनेक संकटों का यथार्थ चित्रण स्वाभाविक रूप से कविता का कथ्य बन गए हैं। स्त्री होने के नाते इन कवयित्रियों ने जिस गहराई एवं बारीकी से स्त्री जीवन की व्यथा, ज़रूरतों, अपेक्षाओं, अधिकारों व माँगों पर विचार किया है, वह उनके व्यक्तिगत अनुभव की उपज है। अतः समकालीन हिंदी-पंजाबी की कवयित्रियों की काव्याभिव्यक्तियाँ अनुभूति की प्रामाणिकता लिए हुए हैं।

यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारत-विभाजन के बाद सबसे पहले पंजाबी की सुप्रसिद्ध कवयित्री अमृता प्रीतम ने नारी-संवेदना को काव्यगत विषय बनाया। अमृता प्रीतम वह पहली रचनाकार हैं, जिन्होंने सबसे पहले स्त्री की पीड़ा व यातना को शब्दबद्ध करते हुए स्त्री को उसकी मर्यादित भूमिका तथा रूढ़ सामाजिक मान्यताओं से मुक्त करने का पुरज़ोर समर्थन किया है, क्योंकि ये स्त्री के अस्तित्वबोध एवं आत्मबोध में बाधक हैं।

अमृता प्रीतम ने स्त्री के शारीरिक एवं मानसिक शोषण दोनों का विरोध करते हुए स्त्री की स्वतंत्र पहचान की कामना की है। स्त्री की यातना का चित्रण अमृता प्रीतम की 'सभ्यता' कविता में इन शब्दों में किया गया है।

जिस्मों का व्यापार
इसके कई बाज़ार
वह बात जिसे लफ्ज़ न मिले
वह बात मेरे पास है।
वे लफ्ज़, जिन्हें लब न मिले
वे लफ्ज़ मेरे पास हैं। [1]

इस आलेख में पंजाबी की मूल कविताओं का अविकल हिंदी अनुवाद प्रयुक्त किया गया है।

अमृता प्रीतम ने स्त्री-पुरुष के मध्य असमानता को प्राकृतिक भेद या असमानता मानने से इंकार करते हुए इसे सामाजिक व सांस्कृतिक सभ्याचार की उपज माना है। वे पुरुष की प्रभुता के क्षेत्र में स्त्री के दख़ल तथा पितृसत्ता से स्त्री की मुक्ति पर ज़ोर देते हुए उन तमाम सामाजिक व नैतिक मान्यताओं का बहिष्कार करती हैं, जो स्त्री को पुरुष की सत्ता व रूढ़ियों के कुचक्र का शिकार बनाती है। अमृता प्रीतम की कविताओं में स्त्री-अस्मिता को कुचलने वाली जिन सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर हुआ, वह उनकी परवर्ती पंजाबी कवयित्रियों मंजीत रिवाणा, शशि समुंदरा, शरण मक्कड़, अमर ज्योति तथा दर्शन कौर इत्यादि की कविताओं में भी सुनाई पड़ता है। इन सभी कवयित्रियों ने पुरुष की प्रताड़ना सहती स्त्री की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। दर्शन कौर की 'माफ़ी' कविता में स्त्री की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हुई है–

वह हर बार
गिनी नापी साज़िश के अधीन
मुझ पर वार करता
हर बार मेरे ज़ख़्म देखकर
माफ़ी माँगता
उसकी माफ़ी में माफ़ी नहीं
मार्फ़िया है
जो माफ़ी के रोम-रोम में फैला ज़हर है।[2]

स्त्री की पीड़ा की भयावहता का चित्रण हिंदी की कवयित्री गगन गिल की कविता में इन शब्दों में हुआ है–

एक दिन लौटेगी लड़की
हथेली पर जीभ लेकर
हाथ होगा उसका लहूलुहान
मुँह से टपका लहू कपड़ों में सूखा हुआ। [3]

आधुनिकता के फलस्वरूप अपने अस्तित्व के प्रति सजग व सचेत स्त्री को भी घर-परिवार तथा बाहर हर स्तर पर पुरुष के वर्चस्व का शिकार होना पड़ता है। हिंदी कवयित्रियों सविता सिंह, गगन गिल, अनामिका, कात्यायनी तथा अर्चना वर्मा की कविताओं में स्त्री की दबी व मुखर पीड़ा अनेक स्तरों पर अभिव्यक्त हुई है। अर्चना वर्मा की कविता 'दिनचर्या' में पुरुष के दंभ को स्वीकारने के लिए विवश स्त्री की पीड़ा का उद्‌घाटन इस प्रकार हुआ है–

आज उसने
तुम्हारे ग़लत को ग़लत नहीं कहा
बच्चे को बेबात पड़ा थप्पड़
अपने गाल पर सहा
औरतों की बेअक्कली पर
तुम्हारा लतीफ़ा सुना
और न सुनने का बहाना किया

बल्कि खुद ही जुटा दिए
अपनी बेवकूफ़ी के सबूत
और तुम्हारे दंभ को सहलाया। [4] लौटा है विजेता, पृ॰68

पंजाबी की कवयित्री कुलदीप कल्पना समाज द्वारा सताई स्त्री का दर्द इन शब्दों में प्रकट करती हैं–

लोग कहते हैं
परिवर्तन कुदरत का क़ानून है
वे मेरे हाथों में कील ठोककर
अपने-अपने अँधेरों में गर्क हो जाते
मैं बहुत चीख़ती
कि मैं सलीब नहीं हूँ
पर कौन सुनता। [5]

वजूद की स्थापना इनसानियत का पहला फ़र्ज़ है। उसका नैतिक और व्यावहारिक गौरव बनाए रखना किसी भी मनुष्य के जीवन-क्रम का रास्ता है। नैतिकता और मानवीय न्याय में दरक बनाकर स्त्री को वस्तु बनाए रखने की गुस्ताख़ी आख़िर कब तक चलेगी? सामाजिक नैतिकता और मानवीय न्याय की दोहरी मानसिकता ने स्त्री को घर के अंदर दबा दिया। ख़ुद की अवस्था पर वह सोचने लगी। यही उसकी पहली कोशिश थी। [6] इसी कोशिश में स्त्री के भीतर जीने की इच्छा प्रबल हुई है–

मैं जीना चाहती हूँ
वह कहती थी अपने से अक्सर
मैं जीना चाहती हूँ
दिमाग़ के अँधेरे में
कुतरता था ततैया
एक छोटी-सी नस
आता था यह स्वर वहीं से।[7]

स्त्रीत्व की अवधारणा से जुड़ा साहित्य दोहरा धर्म निभाता है। एक धर्म-स्त्री की यातना एवं पीड़ा के उद्‌घाटन का है तो दूसरा अन्याय का विरोध एवं न्याय की माँग। समकालीन हिंदी एवं पंजाबी की कवयित्रियों ने इस दोहरे धर्म का निर्वाह करते हुए स्त्री-यातना का उद्‌घाटन, अन्याय का विरोध एवं स्त्री के लिए न्याय व उसके अधिकारों की माँग करते हुए उसे समाज में पुरुष के समकक्ष दर्जा दिलाने के लिए आवाज़ उठाई है। स्त्री-अस्मिता का प्रश्न इन कवयित्रियों की काव्यगत संवेदना का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। आज की स्त्री-पुरुष के वर्चस्व का विरोध करती हुई अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए तत्पर है। पंजाबी कवयित्री तरन्नुम रियाज़ की कविता 'पहचान' की पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं–

मैं अपने आपको पहचानती हूँ
अपने माँ बनने
और

उसके बाप बनने के बहुत पहले से
भले ही वह मुझ पर अपनी पहचान थोपता है
मगर
मैं उसे
अपनी पहचान नहीं दूँगी। [8]

हिंदी की कवयित्री निर्मला गर्ग स्त्री को दोयम दर्जा देनेवाली मानसिकता का विरोध करती हैं। वे इस रूढ़ मानसिकता को 'बराबर का दर्जा' कविता में इस प्रकार अभिव्यक्त करती है, उसे ज़िद है कि–

स्त्रियों में बराबर दर्जा दूँ
यानी ठीक अपनी ही तरह समझूँ
यह कितना मुश्किल है
ऐसा मैं कैसे कर पाऊँगा
मुझमें ढेर से दया है उनके लिए
करुणा है अगाध
उसका क्या होगा। [9]

पंजाबी कवयित्री वनीता की कविता में अपने अस्तित्व के प्रति सजग स्त्री द्वारा सच का स्वीकार इन शब्दों में प्रकट हुआ है–

मैं तुम्हें मिली कब थी।
हम जितनी बार मिले
हर बार मेरे अस्तित्व का क़द
बौना होता गया। [10]

पुरुष के वर्चस्व को नकारती आज की स्त्री अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए हर चुनौती का सामना करने के लिए तैयार है। जीवन की विकट परिस्थितियों से बचने या उनके समक्ष समर्पण करने के बजाय वह उन समस्त चुनौतियों को स्वीकार करने का साहस जुटा चुकी है, जो उसके लिए क़दम-क़दम पर ख़तरे पैदा करती है और उसे पुरुष की तुलना में कमज़ोर सिद्ध करने पर उतारू है। हिंदी की कवयित्री काव्यायनी के शब्दों में–

अस्वीकार
इस तरह मरने से अस्वीकार
स्वीकार है मुझे यह अधूरापन
और यह नाउम्मीदी
उम्मीदों के नाम पर
लो मुझे स्वीकार है इस हालात की
समूची चुनौतियाँ।[11]

पंजाबी कवयित्री मनजीतपाल कौर आधे-अधूरे के प्रति अस्वीकार तथा पूर्णता की माँग करती है–

आधा अधूरा हमें

कुछ भी नहीं चाहिए
पूरा जज़्बा, पूरी शिद्दत
पूरा प्यार
पूरा विश्वास चाहिए।[12]

पंजाबी कवयित्री बीबा कुलवंत की कविताओं में न केवल स्त्री का विरोध दर्ज हुआ है, बल्कि उसका आक्रोश भी व्यक्त हुआ है–

मुझे हवा में कहकना नहीं आता
और न ही कोई रेत के महल बनाना
मैं तो म्यान से निकली वह तलवार हूँ
जिसकी काट से लहू नहीं
कोई लावा निकलेगा। [13]

समकालीन हिंदी व पंजाबी कविता में उजागर संवेदना का सरोकार हर वर्ग की स्त्री से है। मध्यवर्गीय कामकाजी स्त्री की दुनिया, शहरी ग्रामीण संघर्षरत स्त्री की व्यथा-कथा, जवान होती लड़कियों के लुटते स्वप्न, बाज़ारवाद तथा आर्थिक कुचक्र में देह को वस्तु की तरह बेचती मध्यम व उच्चवर्गीय स्त्री के अनेक कड़वे सत्य स्त्रीवादी कविताओं में उद्घाटित हुए हैं। पंजाबी कवयित्री शशि समुंदरा की कविता में पुरुष की प्रताड़ना सहती स्त्री की पीड़ा इस तरह प्रकट हुई है–

जब वह दोस्त बना
तो कितना अच्छा था
जब वह महबूब बना
तो कितना सुंदर और प्यारा था
जब वह खाबिंद बना
तो सब बदल गया
वह हिटलर बन गया
और वह उसके कंसंट्रेशन कैंप में
एक यहूदी औरत[14]

पंजाबी कवयित्री समाज द्वारा स्त्री पर थोड़े रूढ़ मानदंडों को इन शब्दों में नकारती है–

अगर तुम मेरे शहर आओगे
तो बुरी औरतों की फेहरिस्त में
मेरा नाम भी दर्ज पाओगे
मेरे पास वह सब-कुछ है
जो एक बुरी औरत के पास होना लाज़मी है।[15]

हिंदी-कवयित्री रेखा मैत्र भी समाज द्वारा स्त्री के लिए नियत मानदंडों को अस्वीकार कर नए रस्ते बनानेवाली स्त्री के मनोभावों को इस तरह शब्दबद्ध करती हैं–

जीवन में मुझे

अपने रास्ते ख़ुद ही गढ़ने होंगे
लोगों के बनाए रास्तों पर
फिसलूँगी
लड़खड़ाऊँगी
गिरूँगी। [16]

पुरुष के वर्चस्व-तले अपनी अस्मिता के कुचले जाने से त्रस्त आज की स्त्री पुरुष के समकक्ष अपनी पहचान बनाने के लिए प्रतिबद्ध है। वह स्त्री-पुरुष के मध्य बराबरी के ऐसे संबंधों की कामना करती है, जिनमें दोनों की इच्छाओं, आकांक्षाओं, सपनों व संघर्षों के लिए बराबर जगह हो। जहाँ जीवन के हर दुख-सुख, हर परिस्थिति व हर अनुभव में स्त्री-पुरुष बराबर के भागीदार हों। पंजाबी कवयित्री पाल कौर के शब्दों में स्त्री की यही कामना प्रकट हुई है–

मिलना चाहे तू मुझे सारी दीवारें ढाह कर
पर होगी तेरी भी फ़ौज और मेरी भी
रख लेंगे थोड़ी कच्ची जगह
नो मैंस लैंड/ साँस लेने के लिए
लड़ने के लिए/ होने के लिए
और जीने के लिए। [17]

नई पंजाबी कविता में, ख़ासकर कवयित्रियों ने घर, प्यार, पति, मर्द और कुछ अन्य रिश्तों के परंपरागत मॉडल को चुनौती दी है। ... अधिकतर नई कवयित्रियाँ तरस, हमदर्दी, सिर्फ़ प्रमाणित रिश्ते या इनके स्थायित्व की माँग नहीं करतीं। वे अपने स्त्री होने के गौरव को, इसकी मानवीय स्वीकृति को उभारती हैं। इस नई पंजाबी औरत संवेदना के अपने भटकाव भरे झंझट हैं। औरत के नकार-सकार के छलावे, भुलावे तथा त्रासदियाँ हैं। मर्द-प्रधान समाज में पहचान बनाने या छा जाने के जायज़ नाजायज़, विचार-व्यवहार, उल्टे-सीधे तर्क और जस्टीफ़िकेशन भी हैं, पर निश्चय ही यह औरत संवेदना की 'मैं मूलकता' का नया दृष्टिमूलक बदलाव है। औरत, औरत होकर बोलती है। प्रथम पुरुष में काव्य-सृजन करती है। [18]

चारों तरफ़ से घिरी विभीषिकाओं से अवगत होकर अपना रास्ता ख़ुद खोजने की दायित्वपूर्ण सक्रियता स्त्री के जीवन-दर्शन में समा जाती है। चयन का विकल्प जहाँ नहीं दिया जाता, वहाँ सबसे पहले मानवाधिकार की माँग उठने लगती है। फिर वह मुक्ति-कामना में परिणत होकर समाज और सत्ता से संघर्ष करती है। स्त्री की आत्मनिर्भरता और सामाजिक संघर्ष के बीच की अभिव्यक्ति उसकी कविता है। उसकी यह देन और अदाकारी 'उसकी रसोई' या 'अपवित्र देह' की गल्प नहीं, नए समाज और सभ्यता के पुनर्निर्माण हेतु अनिवार्य मानवीय परिश्रम है। इसलिए यह अनिवार्य है, अनुपेक्षणीय भी। यहाँ तक कि वेदनावादिनी, रहस्यवादिनी एवं अध्यात्मवादिनी महादेवी की 'टकराएगा नहीं आज उद्यत लहरों से/कौन ज्वार फिर तुझे पार पहुँचाएगा' पंक्तियों में सुरक्षात्मक स्वाभिमान झलक उठता है। इसका अगला चरण समकालीन कविता में है। [19] अपने सीमित परिवेश व नियत जीवन-पथ से बाहर निकलने का साहस आज की स्त्री की परिवर्तन की माँग का प्रमाण है। उसे भी नए क्षितिज की तलाश है। हिंदी-कवयित्री

नीलेश रघुवंशी विचारशील स्त्री की आकांक्षाओं को इस तरह चित्रित करती है–

ओ मारीना,
तुम्हारी तरह मैं भी बनूँगी कवि
मशीन पर सिलते हुए कपड़े सिलूँगी कविता
बुनते हुए स्वेटर बुनूँगी शब्द
खुले आसमान नीचे बैठकर करूँगी बातें
तुम्हारी कविताओं के बारे में। [20]

नीलेश रघुवंशी ने 'माँ' के माध्यम से समाज के परंपरागत ढाँचे में घुटती स्त्री का चित्रण उसकी पीड़ा व उसके अनेक कड़वे सत्यों के उद्‌घाटन के माध्यम से किया है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्त्री होने की नियति झेलती औरत का दर्द पंजाबी कवयित्री अमर ज्योति की कविता 'मुहब्बत के जुगनू' में इन शब्दों में प्रकट हुआ है–

ज़िंदगी के शोरगुल में
दिल के दूसरे कोनों में
अपने बच्चों की मुहब्बत के जुगनू छिपाकर
मेरी माँ जीती थी
जीती क्या/ रोज़ टूटती थी, ख़त्म होती थी
माँ मर गई और अब मैं
अपने दिल के एक कोने में
अपने बच्चों की मुहब्बत के जुगनू छिपाकर
उनकी रोशनी में हँसती, फनाँ होती/ तबाह हो रही। [20]

स्त्री की यातना उसके जन्म से, भ्रूणहत्या से तथा स्त्री व पुरुष के बीच भेदभाव से ही शुरू हो जाती है। शिक्षा से वंचित होने, प्रतिबंधमय वस्त्र पहनने, शरीर-प्रदर्शन से बचने, पुरुषों के संपर्क में आने से प्रतिबंधित होने, बाल-विवाह का शिकार होने, परिवार के दबाव में रहने, यौन-शोषण का शिकार बनने, घर-गृहस्थी को सँभालने व चारदीवारी में बंद रहने तथा आर्थिक-सामाजिक दमन को बर्दाश्त करने में इस यातना का विकास होता है तथा अपने अधिकारों, विशेषत: अपने शरीर, अपनी कोख के अधिकार से वंचित होने में इस यातना की पराकाष्ठा होती है। स्त्री व पुरुष के मध्य जन्म से ही भेदभाव करनेवाली मानसिकता समाज में आज भी व्याप्त है। भारतीय समाज में आज भी भ्रूण हत्या जारी है। अनेक राज्यों में लिंगानुपात एक गहरी चिंता का विषय बन चुका है। समकालीन हिंदी व पंजाबी की कवयित्रियों ने भ्रूणहत्या के ख़िलाफ़ अपना विरोध व आक्रोश प्रकट किया है। पंजाबी कवयित्री दवींदर बंसल की कविता 'ममता' में स्त्री की पीड़ा इस प्रकार प्रकट हुई है–

ओह जालिम दुनिया वालो
एक माँ से उसका प्यार–
उसके बच्चे छीनने वाले हत्यारो
मैं भी तुम्हारी तरह लोरियाँ देना चाहती हूँ
मेरे मन की एक छोटी-सी आशा

मैं भी तुम्हारी तरह हँसना चाहती हूँ
मैं भी तुम्हारी तरह बसना चाहती हूँ।[22]

हिंदी की कवयित्री सविता सिंह ने भ्रूणहत्या के ख़िलाफ़ अपना विरोध इन शब्दों में प्रकट किया है–

नमन करूँ इस देश को
जहाँ मार दी जाती हैं हर रोज़/ ढेर सारी औरतें
जहाँ एक औरत का जीवित रहना
एक चमत्कार की तरह है।[23]

उपभोक्तावाद एवं बाज़ारवादी संस्कृति के बढ़ते वर्चस्व के कारण स्त्री का वस्तु में परिणत होना आज के युग की त्रासदी है। संचार-क्रांति, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, उपनिवेशवादी संस्कृति तथा सामाजिक-आर्थिक दबावों के कारण भारतीय सांस्कृतिक जगत में जो उठा-पटक हुई है, उसके केंद्र में स्त्री है और बाज़ारवादी संस्कृति के केंद्र में 'स्त्रीदेह' है। मध्यवर्गीय अतिसुविधाभोगी जीवन-शैली की लालसा ने आधुनिक स्त्री को इस अर्थतंत्र में बुरी तरह उलझा दिया है। ऐसे में स्त्री की एक लड़ाई स्वयं उसके इस आर्थिक कुचक्र से मुक्त होने की है। सुधीश पचौरी के शब्दों में, 'यहाँ दोहरा संकट बन रहा है। एक ओर स्त्री कर्मक्षेत्र और उपभोक्ता-क्षेत्र दोनों में मर्द के दायरे से निकलकर अपनी भाषा बना रही है और इस तरह मर्दों की निरंकुश दुनिया को विचलित कर रही है तो दूसरी ओर ऐसा लगता है कि वह स्वयं उपभोक्तावादी वस्तु बनती जा रही है ... और फिर स्त्री की एक लड़ाई इस उपभोक्तवाद से बनती है यानी कि एक झगड़ा स्त्री का स्त्री के उत्तर-युग से भी होना है।' [24] इसी संदर्भ में रवींद्र वर्मा का मानना है कि, 'आज औरत ही नहीं, आदमी भी पण्य वस्तु है–कुछ इस तरह जैसे पहले कभी नहीं हुआ था और हमारे यहाँ उदारीकरण की प्रक्रियास्वरूप आदमी रोज़ सस्ता हुआ जा रहा है। जब आदमी सस्ता होता है तो स्त्री कौड़ियों के मोल बिकती हैं।' [25] समकालीन हिंदी-कवयित्रयों ने स्त्री की इस दशा का मार्मिक चित्रण किया है, निर्मला गर्ग की कविता 'तू रोए जा रही है' में मानवीय संवेदनाओं को कुचलती बाज़ारवादी संस्कृति का उल्लेख मिलता है–

लड़की तेरे बाल मुलायम हैं/ और मुलायम बना
लड़की तेरी त्वचा कोमल है/ और कोमल बना
लड़की तू सुंदर है और सुंदर दिख।
नित नई चीज़ें बनाई जा रही हैं तेरे लिए
तेरे लिए ही तो दुनिया सजाई जा रही है
तेरे लिए/ तू है कि रोए जा रही है
बीतती सदी के मुहाने पर
सघन कुहासे-सी फैल रही है/ तेरी आवाज़। [26]

देह की क्रांति ने स्त्री के सारे विकल्प उसके पक्ष में ही नहीं सौंपे हैं, देश के स्वामित्व और देह की छवि से पैसा कमाने की स्त्री की आकांक्षा को बाज़ार ने अपने हित में भुनाया है। स्त्री की इस स्वतंत्रता को सैक्स आयोग ने हाथों-हाथ लपक लिया और स्त्री फिर

खेल बन गई। पुरुष ने अपने 'पौरुषयी बदलों' के लिए उनकी देह का विषकन्या की तरह इस्तेमाल किया और 'हमज़ाद' जैसी रचनाओं का जन्म हुआ। [27] सुधीश पचौरी के अनुसार, 'स्त्री ने समझा है कि क्या शोषण घर पर नहीं है? घर में मरने से तो बाहर मुक़ाबला करना बेहतर है। उसे उम्मीद है कि वह एक दिन बाज़ार की संरचना से मुक्त हो जाएगी। [28] समकालीन हिंदी-कविता में स्त्री की अपनी देह की राजनीति और 'स्व' के प्रति सजगता भी प्रगट हुई है। इस संदर्भ में कात्यायनी की निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं–

अब इतनी सकत नहीं रही
कि दिन भर मुस्कुरा सकूँ/ अदाएँ दिखा सकूँ
निर्माता-निर्देशकों को रिझा सकूँ
या/ दूरदर्शन पर सौंदर्य-प्रसाधनों का
विज्ञापन कर सकूँ। [29]

अपनी देह को 'पण्य वस्तु' बनाने वाली उपभोक्तवादी संस्कृति की साज़िश से वाकिफ़ स्त्री का बाज़ार की साज़िश के ख़िलाफ़ संकल्प हिंदी की कवयित्री अनामिका की कविता में अभिव्यक्त हुआ है–

ये मेरे कपड़े/ मेरे सामने
घुटनों के बल बैठे/ कह रहे हैं कि अब बहुत हुआ।
आओ सब भूलकर नहाओ/ धुल जाएगी सारी मिट्टी
फिर जो बचेगा/ उसको न घर की ज़रूरत होगी
न ही चमड़ी की। [30]

अपने को नग्न घोषित करके स्त्री उस आज़ादी का इज़हार करती है, जो आदिम युग में खुले आकाश के नीचे स्त्री और पुरुष को समान रूप से स्वायत्त थी। इसे ज़िम्मेदारियों से भागकर घर उजाड़ देने को स्त्रीवादी बताकर फिर उसे लघु बनाने की साज़िश की राजनीति को वह पहचान लेती है। [31]

स्त्री-रचनाकारों की कविताओं के केंद्र में स्त्री की वह आकांक्षा है, जो भ्रूणहत्या के विरोध से शुरू होती है और समाज के हर क्षेत्र में पुरुष के बराबर या उससे आगे निकलकर अपनी पहचान स्थापित करना चाहती है। वह अपने स्त्रीत्व को परिपूर्ण देखना चाहती है। आधुनिक हिंदी-कविता में स्त्री की पुरुष के समकक्ष या उससे आगे बढ़कर वर्चस्व की कामना द्विवेदीयुग में मैथिलीशरण गुप्त की काव्यकृति 'द्वापर' में संकलित उनकी कविता 'विधृता' में 'एक नहीं दो-दो मात्राएँ, नर से भारी नारी' के रूप में प्रकट हुई है। इसे महादेवी ने आत्माभिव्यक्ति देकर दृढ़ता प्रदान की, यही संवेदना भिन्न-भिन्न आयामों में समकालीन कवयित्रियों में फलती-फूलती दिखाई देती है। इसके समानांतर पंजाबी कविता में अमृता प्रीतम से शुरू होने वाली स्त्री की आत्माभिव्यक्ति का खुलापन पूरी काव्यात्मकता के साथ प्रकट हुआ है, जो समकालीन पंजाबी कवयित्रियों की मानसिकता की विभिन्न मुद्राओं को उभारता है, जिसमें स्त्री-मुक्ति की कामनाएँ तैरती-उतराती नज़र आती हैं। इससे यह भी पता चलता है कि भाषाओं की यह भिन्नता संवेदना की एकरसता को कहीं भी काटती व बाँटती नहीं है। अत: हिंदी तथा पंजाबी भाषा की कवयित्रियों का रचना-संसार स्त्री-जगत की समस्त आकांक्षाओं,

स्वप्नों, संघर्षों व संभावनाओं की एक मिली-जुली परासंरचना को उद्घाटित करता है।

संदर्भ

1. अमृता प्रीतम, काग़ज़ ते कैनवास, पृ॰ 168
2. दर्शन कौर, (उद्धत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 52
3. गगन गिल, कहती हैं औरतें (सं॰) अनामिका, पृ॰ 28
4. अर्चना वर्मा, लौटा है विजेता, पृ॰ 68
5. कुलदीप कल्पना, (उद्धत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 62
6. डॉ॰ डी॰के॰ प्रमिला (उद्धृत), स्त्री : मुक्ति का सपना, सं॰ (प्रो॰) कमलाप्रसाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ॰ 122-123
7. गगन गिल, अँधेरे में बुद्ध, पृ॰ 57
8. तरन्नुम रियाज़, (उद्धत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 133
9. निर्मला गर्ग, कबाड़ी का तराजू, पृ॰ 101
10. वनीता, (उद्धत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 98
11. कात्यायनी, इस पौरुष समय में, पृ॰ 139
12. मनजीतपाल कौर, (उद्धत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 87
13. बीबा कुलवंत, (उद्धत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 35
14. शशि समुंदरा, (उद्धत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 35
15. निरुपमादत्त, (उद्धत) नवें कवि सितारे, पृ॰ 26
16. रेखा मैत्र, मुट्ठी भर धूप, पृ॰ 29
17. पाल कौर, (उद्धत) नवें कवि सितारे, पृ॰ 27
18. जसविंदर दीद, नए कवि सितारे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 2003, पृ॰ 31
19. डॉ॰ डी॰के॰ प्रमिला (उद्धृत), स्त्री : मुक्ति का सपना, सं॰ (प्रो॰) कमलाप्रसाद, पृ॰ 119
20. नीलेश रघुवंशी, घर निकासी, पृ॰ 24
21. अमर ज्योति, (उद्धृत) बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 72
22. रविंदर बंसल, बीहवीं सदी दा नारी पंजाबी साहित्य, पृ॰ 115
23. सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ॰ 45
24. सुधीश पचौरी (उद्धृत) नारीवादी विमर्श, सं॰ राकेशकुमार, आधार प्रकाशन 2001, पृ॰ 197
25. रवींद्र वर्मा, (उद्धृत), स्त्री के लिए जगह, सं॰ राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1994, पृ॰ 111-112
26. निर्मला गर्ग, कबाड़ी का तराजू, पृ॰ 79
27. रेखा कश्तवार (उद्धृत) स्त्री : मुक्ति का सपना, सं॰ (प्रो॰) कमलाप्रसाद, पृ॰ 123
28. सुधीश पचौरी (उद्धृत) नारीवादी विमर्श, सं॰ राकेशकुमार, आधार प्रकाशन 2001, पृ॰ 198
29. कात्यायनी, इस पौरुष समय में, पृ॰ 64
30. अनामिका, अनुष्टुप, पृ॰ 56
31. डॉ॰ डी॰के॰ प्रमिला (उद्धृत), स्त्री : मुक्ति का सपना, सं॰ (प्रो॰) कमलाप्रसाद, पृ॰ 122-123

मंजुल भगत के कथा-साहित्य में पुरुष पात्रों के विविध रूप

साक्षी अग्रवाल, शोध-छात्रा
डॉ॰ निर्मला शर्मा, शोध-निदेशक
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिंदी विभाग
एम॰एल॰ एंड जे॰एन॰के॰ गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

समाज की रुचियों, चिंतनधाराओं, परंपराओं एवं परिपाटियों में समूल परिवर्तन लाने के लिए कथाकार पात्रों का ही आश्रय ग्रहण करता है। इतना ही नहीं समाज में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भेद तथा त्याज्यात्याज्य का ज्ञान भी पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा ही होता है। स्कॉट मेरेडिथ के अनुसार, 'चरित्र-चित्रण कथा के पात्रों की व्यक्तिगत तथा न्यारी विशेषताओं अथवा उनके स्वभाव को प्रकाश में लाकर उन्हें एक-दूसरे से भिन्न दिखाने की एक विधि है।' [1]

मंजुल भगत ने पात्रों को कथानक का आधार बनाकर उनके विभिन्न रूपों की अवतारणा की है। इन पात्रों में स्त्री और पुरुष दोनों सम्मिलित हैं, क्योंकि स्त्री और पुरुष के सहयोग से ही परिवार और समाज की स्थिति संभव है।

मंजुल जी ने पुरुष पात्रों के रूप में पिता, पुत्र, पति व प्रेमी का सशक्त चित्रण किया है–

(क) पिता रूप :

'महाभारत' में 'यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद' में पिता को अंबर से भी ऊँचा बताया गया है क्योंकि वह संतान का पालक होता है। [2] शब्द कल्पद्रुम के अनुसार, 'पाति रक्षत्यपत्यं यः स पिता अर्थात् संतान की रक्षा करने वाला।' मंजुल भगत ने कहानियों एवं उपन्यासों में पिता के आदर्श, शोषक एवं सामान्य तीनों रूपों को दर्शाया है। पिता का आदर्श रूप जहाँ मन में सम्मान उत्पन्न करता है तो शोषक रूप भर्त्सना का भाव। इसके साथ ही बाबा-नाना तथा श्वसुर के रूप भी मिलते हैं।

(i) **आदर्श पिता :**

'नालायक़ बहू' में कामिनी के पिता दामाद की नौकरी छूट जाने पर न केवल बेटी की नौकरी लगवा देते हैं, बल्कि दामाद द्वारा पैसे माँगने के विषय में भी बेटी को कुछ नहीं बताते, जिससे बेटी के आत्मसम्मान को ठेस न पहुँचे। वह बेटी को समझाते हैं, 'अरे, ज़िंदगी में उतार-चढ़ाव तो आता ही रहता है, जैसे अच्छे दिन नहीं रहे, वैसे ही बुरे दिन भी नहीं रहेंगे।'[3] 'निशा' में निशा के पिता उसे प्रेम देने के साथ-साथ उसके विवाह न करने की इच्छा का

सम्मान करते हुए उसे पढ़ने के लिए विदेश भेज देते हैं। 'शुभ-अशुभ' में शर्मिला की गर्भावस्था में तबियत बिगड़ जाने पर दामाद द्वारा बच्चे को बचाने के लिए कहने पर शर्मिला के पिता उसका विरोध करते हुए कहते हैं, 'देखो, प्रदीप, तुम्हारा बच्चा नहीं मर सकता तो मेरी बेटी भी नहीं मर सकती। वह पल-पल हमारे सामने बड़ी हुई है। चौबीस सालों तक हमने उसे देखा-चाहा है। उसका हर दर्द हमने भुगता है।' [4] 'टूटा हुआ इंद्रधनुष' उपन्यास में प्रभात यह जानते हुए भी कि संध्या उसकी नहीं, मनीष की पुत्री है, उसका पालन-पोषण प्रेम से करता है तथा उसका विवाह उसके प्रेमी अनुराग से कराता है।

(ii) **शोषक पिता :**

'कुएँ का मेढक' में नसीबचंद सबके द्वारा पुत्र को अधिक प्रेम दिये जाने के कारण पुत्र से ईर्ष्या करने लगता है। 'रौनक' में अच्छन मियाँ के सामने ही उनकी बेटी रौनक सबसे भिक्षा माँगकर अपना जीवन-निर्वाह करती है। वह उसके विषय में बात तक नहीं करना चाहते, क्योंकि इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है। 'गुलमोहर के गुच्छे' में पिता द्वारा पीटे जाने के कारण एक पुत्र संवेदनशील हो जाता है तो दूसरा हिंसक प्रवृत्ति का। 'गंजी' उपन्यास में जब गंजी का पति दूसरी स्त्री से प्रेम करने लगता है तो माँ के दु:खी होने पर पिता नंदलाल कहता है, 'जवान काया में भतेरा दम होवे है। गंजी झेल जावेगी। तू काहे पिरान देवे है? तेरे भेजे में भी टिरड़ उट्ठे हैं।' [5]

(iii) **सामान्य पिता :**

'काली लड़की का करतब' में बरसात में चूल्हा भीग जाने के कारण महारानी का पिता स्वयं भूखा रहकर भी उसके लिए चौकीदार से रोटी माँगकर लाता है, क्योंकि उसने 'महारानी के चेहरे पे रोटी चाबा तोष देख रखा।' [6] तो दूसरी ओर काली लड़की का पिता भूख शांत करने के लिये बेटी को रस्सी पर चढ़ाकर करतब कराता है, परंतु बेटी की मृत्यु हो जाने पर दु:खी भी होता है।

(iv) **बाबा :**

'कुएँ का मेढक' में लाला उल्फतराय पोता होने पर बेटे से कहते हैं, 'नसीबचंद, ज़रा लौटने में एक लकड़ी का पालना ठेले पर लदवाते लाना। कहीं अनजाने में करवट ले लो तुम लोग और बच्चे की बाँह दब-दबा जाए। अलहदा ही सुलाओ उसे।' [7] इसी में लाला चरतीलाल बच्चे द्वारा गोद गीली कर देने पर कहते हैं, 'अजी, हमने तो पाँच-पाँच खिला लिए। अब क्या तो कपड़े निचोड़ने? बालिश्त भर का है। क्या तो सड़ाँध उठेगी पेशाब में और क्या तो दाग़-धब्बा लगेगा?' [8]

(v) **शोषक श्वसुर :**

'गुलदुपहरिया' में श्वसुर ही बहू से यौन-संबंध स्थापित करना चाहता है। बहू द्वारा ऐसा न करने पर वह गाँव में पंचायत के सामने ही बेटे से बहू को त्याग देने के लिए कहता है। सबके आश्चर्यचकित होने पर वह कहता है, 'हाँ...हाँ....हम ठीके कहिन हैं विचार-बूझ के कहिन हैं, ई अउरत कुलटा है!' [9]

इस प्रकार पिता के विभिन्न रूप मिलते हैं।

(ख) **पुत्र रूप :**

भारतीय संस्कृति के अंतर्गत पारिवारिक सदस्यों की शृंखला में पिता के पश्चात् पुत्र का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्राचीन ग्रंथ भी इसी का समर्थन करते हैं जैसा कि डॉ॰ मालती आदवानी ने स्पष्ट किया है कि– 'गोपथ ब्राह्मण के अनुसार पुत्र नरक से पिता की रक्षा करता है, ऐसी मान्यता है। दूसरा, वह शास्त्रविधि से पितरों को अन्न पिंड देता है। तीसरा, पुत्र कुल की वृद्धि करता है। ऋग्वेदकाल में विवाह का उद्देश्य पुत्रों की प्राप्ति था।[10] 'महाभारत' के 'यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद' में पुत्र को मनुष्य की आत्मा कहा गया है– 'पुत्र आत्मा मनुष्यस्य।' [11]

मंजुल भगत ने पुत्रों के रूप में आज्ञाकारी तथा माता-पिता की उपेक्षा करनेवाले दोनों ही प्रकारों का उल्लेख किया है।

(i) **आज्ञाकारी पुत्र :**

'शैतान-बाजा' में बिजूका माँ-बहिन के भूखा होने के कारण स्वयं की चिंता न करके पोखरे में से सिंघाड़े निकालने के लिए चल पड़ता है। वह 'पोखरे के किनारे-किनारे धँसा, पैरों से कीच ठेलता, कमीज़ के पल्लू में सिंघाड़े बटोरता जाता था। माई खाएगी, गेंदा खाएगी। छुटिया खाएगी और धोबन मौसी भी खाएगी।'[12] 'छुरी-काँटे' में औटो माँ के उदास होने पर दु:खी हो जाता है। वह सोचता है, 'उसे जल्दी-जल्दी बड़ा होना पड़ेगा, अपने पिता की जगह लेने के लिए। पर वह माँ से लड़े-भिड़ेगा नहीं।' [13]

(ii) **उपेक्षा व घृणा करनेवाले पुत्र :**

'गुलमोहर के गुच्छे' में फ्रेडरिक अपने पिता से घृणा करता है, क्योंकि वह उसकी माँ को मारता-पीटता था। वह डॉ॰ देसाई से कहता है, 'आप जानते हैं डॉ॰ देसाई, मेरा बाप कितना बड़ा बास्टर्ड था। दैट स्वाइन! वाहट डिडंट ही डू टू माई मदर।' [14] जबकि दूसरा भाई सैमुअल पिता के साथ-साथ माँ से भी घृणा करता है, क्योंकि वह उसके पिता के अत्याचारों का विरोध नहीं करती। वह कहता है, 'आइ हेट सच वूमेन! जो सहती जाती है, कर कुछ नहीं सकती। डू यू नो? जब मेरा बाप उसकी धुनाई करता था, तो मुझे उस पर ज़रा भी दया नहीं आती थी।'[15] 'चौराहे के बीच' में पुत्र वृद्ध पिता को घर से निकाल उनके रहने का प्रबंध धर्मशाला में करा देता है। वृद्ध द्वारा पोते को देखने के लिए चौराहे पर खड़ा रहने के कारण वह झुँझलाता हुआ कहता है, 'आप आख़िर चाहते क्या हैं? आपका इंतज़ाम जब धर्मशाला में हमेशा के लिए कर दिया है, तब यहाँ डटे रहने का मतलब!' [16] 'मरने की जगह' में पुत्र पिता को बीमारावस्था में ही अस्पताल में छोड़कर चला जाना चाहता है, परंतु जाने से पहले ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उसके मुख पर कुछ ऐसा भाव था, 'जैसे टेलीविज़न पर 'मनोरंजन' देखते समय 'रुकावट' आ जाने पर बच्चों के मुख पर होता है।' [17]

इस प्रकार मंजुल भगत ने पुत्र के दोनों रूपों की सुंदर अवतारणा की है।

(ग) पति रूप :

पति का शाब्दिक अर्थ है, '(पाति रक्षति- पा+इति), स्वामी, मालिक, अधिपति, शासक।' [18] पति परिवार की रीढ़ होता है, जो गृहस्वामी के रूप में अपने उत्तरदायित्व और

कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए पत्नी के सौभाग्य-सिंदूर का रक्षक माना गया है। भारतीय संस्कृति में कन्या के विवाह के पश्चात् उसके लिए पति ही सर्वोपरि होता है। बचपन में पिता रक्षा करता है तो यौवन में पति– 'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।' [19] पति को सौहार्दपूर्ण, निष्ठा व विश्वास का आगार होना चाहिए। जो पति इन गुणों का निर्वाह नहीं कर पाते उन्हें लंपट, धूर्त और खंडित चरित्र वाला माना गया है।

मंजुल जी ने अपने कथा-साहित्य में सच्चरित्र-दुश्चरित्र, रक्षक-भक्षक तथा पालक-पोषक सभी रूपों में पति को उपस्थित किया है।

(i) **आदर्श रूप :**

'टूटा हुआ इंद्रधनुष' में प्रभात पत्नी शोभना का उसके प्रेमी मनीष के साथ संबंध स्थापित हो जाने पर भी उस पर कोई आक्षेप नहीं करता, बल्कि शोभना के दु:खी होने पर वह उसे समझाता है, 'शोभना, जीवन का कोई भी 'एक' अंश इतना महत्त्वपूर्ण नहीं कि उसके न होने से संपूर्ण जीवन ही नष्ट हो जाए !....शोभा, मनीष अब कभी नहीं आएगा। तुम भी उस तक पहुँचने का साहस न बटोर पाओगी। जो बीत गया, उसका शव लेकर बैठे रहना समझदारी नहीं है।' [20] मनीष और शोभना की पुत्री संध्या का भी वह पुत्रीवत् पालन-पोषण करता है।

(ii) **सामान्य पति :**

'विधवा का शृंगार' में कपिल पत्नी मधुरिमा के अतिरिक्त अन्य स्त्री शामी के प्रति भी स्नेहानुभूति रखता है इसीलिए मधुरिमा के प्रति अपराध-बोध अनुभव करने के कारण वह उसे पत्र लिखता है, 'मैं जानता हूँ, मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ, फिर भी न तो तुमसे क्षमा ही माँग सक रहा हूँ और न ही अपने अपराध को भूल ही पा रहा हूँ।' [21] किंतु पत्र देने का साहस तक अर्जित नहीं कर पाता। 'त्यागमयी' में कमलेश राय पत्नी को प्रेम करने के बावजूद अन्य स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं, क्योंकि 'उसकी परिक्रमा करती, आदेश पालन करती, अल्पभाषी, विचारहीन पत्नी उन्हें बेहद उबाऊ लगती। उसकी प्रसन्न करने की तत्पर, उत्कट अभिलाषा, पति के मन में झुँझलाहट और खीज पैदा कर देती। वह अकारण ही चिढ़ उठते।'[22] 'बीवी और बाँदी' में मीनाक्षी का पति उससे प्रेम करने के कारण नौकरानी द्वारा आकर्षित करने पर वहाँ से चला जाता है, किंतु बाद में मीनाक्षी से उसके सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कहता है, 'अच्छा मीनाक्षी, निर्वस्त्र होने पर उसका शरीर ठीक किसी कैबरे डांसर के तन-सा कटावपूर्ण कैसे निकल पड़ा, मैं तो सोचता था इन कमबख़्त ग़रीब नौकरानियों का पराया माल खा-खाकर पेट-वेट सब मटके की तरह फूला पड़ा रहता होगा। कपड़े उतारकर तो वह नौकरानी जैसी लगी ही नहीं...।'[23] 'बावन पत्ते और एक जोकर' में समीर पत्नी शालिनी को बाहर के कार्य नहीं करने देता, क्योंकि वह समझता है कि घर निगलैक्ट होता है, किंतु 'शालिनी अपनी मन:स्थिति को किस सफ़ाई से बदल ले जाती है, यह तथ्य सदा ही समीर को विस्मित करता रहता है। एक बात और भी। उनके क्लब में औरत को ढालने के लिए जैसे, कोई साँचा है, जिसमें से हर नई मेंबर को गुज़रना ही पड़ता है। झुंड में देखने पर एकाएक शायद वह अपनी पत्नी को दूर से पहचान भी न पाए।'[24] 'गंजी' उपन्यास में मनहर अन्य स्त्री हरियाली के प्रेम में पड़कर पत्नी शांति को उसका सम्मान व अधिकार नहीं देता, परंतु शांति द्वारा दु:खी होने पर वह उससे कहता है, 'मैं तेरी दु:खदरदी समझूँ हूँ। दिमाग़ से पोला नहीं हूँ। अंधा भी नईं। पर क्या करूँ? तू मुझे कुछ बखत दे सकेगी ?....हरियाली रोग की

तरियो मेरे लहू में घुल-मिल गई है।' [25]

(iii) **शोषक पति :**

'नागपाश' में प्रशांत सदैव शराब में डूबा रहता है। वह पत्नी की किसी बात को सुनना नहीं चाहता एवं उससे झगड़ता रहता है। 'खाने में से नुक्स निकालते हुए कभी प्रशांत एकदम चीख़ पड़ता। कभी झन्न से कटोरी फ़र्श पर पटक देता।'[26] 'झरोखे से मुँडेर तक' में रामा कोई काम नहीं करना चाहता। वह केसरी को भी कोई काम नहीं करने देता तथा उसके चरित्र पर शक करता है। केसरी द्वारा अन्न न होने के कारण रोटी न पकाने पर 'रामा कील-ठुँका जूता उठाकर उस पर पिल पड़ा, 'सोचती होगी, उस साले की कमाई खा रहा हूँ। उस साले की कमाई खा ससुरी तू, और खिला अपने पेट जायों को।'[27] 'शुभ-अशुभ' में गर्भावस्था में शर्मिला की तबियत बिगड़ जाने पर जब डॉ॰ माँ अथवा बच्चे में से एक को ही बचा सकने का निर्णय सुनाती है तो पति प्रदीप बच्चे को बचाने के लिए कहता है। शर्मिला के माता-पिता द्वारा इसका विरोध करने पर वह साफ़ कहता है, 'जो कुछ भी हो रहा है उसे भगवान की मर्जी समझकर कबूल क्यों नहीं कर लेते आप? आपके तो एक ओर भी बेटी है। मेरा तो यह पहला ही बच्चा होगा।'[28] 'गुलदुपहरिया' में असरफी पिता द्वारा गुलदुपहरिया पर ग़लत आरोप लगाने पर पत्नी से सत्यता तो पूछता है, परंतु उसका विश्वास न करते हुए उसे ही डाँटता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् भोजन निकालते समय भी वह उससे घृणा ही करता है, 'ई कोआ का...ई कूकर का...ई गऊ का... ई रहा रोगी का...अउर ई पापी, पापन गुलदुप।' [29]

इस प्रकार मंजुल भगत के कथा-साहित्य में पति के विविध रूप मिलते हैं।

(घ) प्रेमी रूप :

प्रेमी प्रिय का वाचक है, प्रिय अर्थात् 'प्यारा, पसंद आया हुआ, अनुकूल, रुचिकर, चाहने वाला, अनुरक्त आदि।' देवर्षि नारद के अनुसार, 'अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्। मूकास्वादनवत्।' [30] अर्थात् प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है, 'प्रेम शब्द का अभिप्राय साधारणत: उस मनोवृत्ति से लिया जाता है, जिससे किसी व्यक्ति को दूसरे के संबंध में उसके रूप, गुण, स्वभाव, सान्निध्य आदि के कारण उत्पन्न कोई सुखद अनुभूति बनी रहती है।' [31] प्रेम में दो पक्ष होते हैं– प्रेमी और प्रेमिका। प्रेमी प्रिय के जीवन को अपने जीवन से मिलाकर दो से एक करने के साथ-साथ उसे सुंदर से सुंदर रूप देना चाहता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, 'प्रेम का पूर्ण विकास तभी होता है, जब दो हृदय एक-दूसरे की ओर क्रमश: खिंचते हुए मिल जाते हैं। इस अंतर्योग के बिना प्रेम की सफलता नहीं मानी जा सकती।' [32]

मंजुल भगत के कथा-साहित्य में प्रेमी रूप में बहुत कम पात्र उपलब्ध होते हैं। इनमें कुछ ऐसे प्रेमी हैं, जो प्रेम को विवाह में परिणत कर लेते हैं तो कुछ ऐसे हैं जो प्रेम तो करते हैं, परंतु परिस्थितिवश विवाह नहीं कर पाते। तीसरी ओर कुछ ऐसे भी हैं, जो विवाहित होते हुए भी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगते हैं और पारिवारिक समस्याओं के कारण बाद में उसका परित्याग कर देते हैं।

(i) **प्रेम को विवाह में परिणत करनेवाले :**

'नागपाश' में प्रशांत शिवानी से अत्यधिक प्रेम करता है। 'शिवानी का साज़-शृंगार,

वेशभूषा, यहाँ तक कि साड़ी का किनारा और चूड़ी का रंग, सभी कुछ जैसे नित्य नवीन रूप से एक महत्त्वपूर्ण घटना बन जाते, प्रशांत की ठहरी हुई निगाहों के लिए।' [33] 'अंधे मोड़' में अमूल्य उजाला पर प्रभाव डालने के लिए उसकी रुचि के अनुसार शायरी तथा उर्दू सीखने का प्रयत्न करता है। उजाला को लिखे गए पत्र 'अमूल्य के व्याकरण की ग़लतियों से यूँ लदे रहते मानो जज़्बात के तेज़ बहाव में व्याकरण आड़े आता हो। मानो अपनी भावनाओं के बीच वह भाषा को भी सहन न कर सकता हो।'[34]

(ii) **प्रेम को विवाह में परिणत न करनेवाले :**

'टूटा हूआ इंद्रधनुष' उपन्यास में मनीष शोभना से प्रेम तो करता है, परंतु शोभना की किसी अन्य से विवाह करने की ज़िद्द के कारण विवाह नहीं कर पाता। शोभना से पुनः मिलने पर वह कहता है, 'शोभा, अगर हमारा विवाह हुआ होता तो वह कितना आकर्षक, कितना विशिष्ट होता!' [35]

(iii) **तीसरे प्रकार का प्रेमी :**

'तीसरी औरत' में गौरव है। वह अपनी पत्नी के होते हुए भी अन्य स्त्री ताशा से संबंध स्थापित कर लेता है, परंतु अंत में पुत्र के विवाहोपरांत उससे संबंध-विच्छेद करता हुआ कहता है, 'मेरी पत्नी को उज्र है....और अब तो घर में बहू भी आ गई।' [36]

निष्कर्ष :

पुरुष पात्रों के विविध रूपों के अध्ययन के पश्चात् कह सकते हैं कि मंजुल जी के पुरुष पात्रों में कुछ आदर्शवादी हैं तो कुछ अत्याचारी। उन्होंने पात्रों के चरित्र की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विशेषता अथवा विलक्षणता को उभारने का प्रयास किया है तथा उसमें पूर्णरूपेण सफलता भी प्राप्त की है। पुरुष पात्र स्त्री पात्रों को सुरक्षा देने के साथ-साथ दबाने में ही अपना अधिकार समझते हैं और उन्हें जब-तब यातनाएँ देकर अपना स्थान सुरक्षित रखना चाहते हैं। उन्होंने उनकी अच्छाई और बुराई, शक्ति और दुर्बलता दोनों को ही दर्शाया है। ये पात्र शहर के हों या गाँव के, उनके वार्तालाप, परस्पर व्यवहार तथा क्रियाकलापों में जीवन का यथार्थ साकार हो उठा है। मंजुल जी के पात्र कठिन दार्शनिक प्रश्नों में कभी नहीं उलझते वरन् वे परस्पर व्यवहार तथा क्रियाकलापों में व्यस्त रहनेवाले परंपरागत एवं प्राकृतिक संस्कारों से युक्त हैं। इन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपराध-बोध तथा कुंठा से मुक्त हैं। संक्षेप में, मंजुल भगत के पात्र भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करने में पूर्णतः समर्थ हैं।

संदर्भ

1. हिंदी के प्रबंधकाव्यों में चरित्र-चित्रण, डॉ॰ प्रेमकली शर्मा, पृ॰ 75
2. खात् पितोच्चतरस्तथा, 'महाभारत', 'यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद', 3/60, व्याख्याकार, डॉ॰ जयकुमार जैन, पृ॰ 43
3. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (2), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 48
4. वही', पृ॰ 335
5. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (1), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 272
6. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (2), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 453

7. वही, पृ॰ 559
8. वही, पृ॰ 559
9. वही, पृ॰ 378
10. लेखिकाओं की नवें दशक की हिंदी कहानियों में पारिवारिक संबंध, डॉ॰ मालती आदवानी, पृ॰ 113
11. महाभारत, यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद, 3/72, व्याख्याकार डॉ॰ जयकुमार जैन, पृ॰ 50
12. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (2), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 273
13. वही, पृ॰ 586
14. वही, पृ॰ 97
15. वही, पृ॰ 100
16. वही, पृ॰ 117
17. वही, पृ॰ 292
18. संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ॰ 568
19. संस्कृत हिंदी भाषा, डॉ॰ कमलसिंह, पृ॰ 138
20. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (1), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 34
21. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (2), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 76
22. वही, पृ॰ 111
23. वही, पृ॰ 94
24. वही, पृ॰ 275
25. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (1)', सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 267
26. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (2), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 33
27. वही, पृ॰ 250
28. वही, पृ॰ 336
29. वही, पृ॰ 379
30. नारदभक्ति सूत्र, 51
31. हिंदी काव्यधारा में प्रेम-प्रवाह, परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰ 01
32. चिंतामणि, भाग-एक, लोभ और प्रीति, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 100
33. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (2), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 30
34. वही, पृ॰ 488
35. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (1), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 26
36. मंजुल भगत : समग्र कथा-साहित्य (2), सं॰ कमलकिशोर गोयनका, पृ॰ 388

विष्णु पुराण में भक्ति

श्रीमती मयूरी त्यागी, शोध-छात्रा
डॉ॰ लता गर्ग, निदेशिका
रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
मुन्नालाल जयनारायण खेमका गर्ल्स कालिज, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

विष्णु शब्द व्याप्त्यर्थक 'विष्' धातु से 'नुक्' प्रत्यय द्वारा व्युत्पन्न है। [1] 'विश्' धातु से 'विष्णु' शब्द की उत्पत्ति का निर्देश निरुक्त में इस प्रकार दिया गया है– 'अथ यद्विषितो भवति तद् विष्णुर्भवति विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा' [2] अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त होता है अथवा सबके अंदर प्रविष्ट होता है। हलायुधकोशानुसार, जो संपूर्ण संसार को व्याप्त करता है तथा संपूर्ण प्राणी जिसमें प्रवेश करते हैं, वह विष्णु है। [3]

मनुष्य जीवन त्रिविध दु:खों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) से भरा हुआ है। वह उनसे छुटकारा चाहता है, परंतु संसार के प्रति आसक्ति तथा माया-मोह के कारण वह चाहते हुए भी इनसे मुक्त नहीं हो पाता, उसकी कामनाएँ निरंतर बढ़ती रहती हैं, जिनकी पूर्ति में वह संपूर्ण जीवन व्यतीत कर देता है। ये कामनाएँ ही उसके दु:ख का कारण बनती हैं और जब ये दु:ख असहनीय हो जाता है, तब उसे ईश्वर की शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय दिखाई नहीं देता। ईश्वर के प्रति यह लगाव ही भक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

भक्ति शब्द भज् धातु से क्तिन् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है। भज् धातु वियोजन, पृथक्करण, विभाजन, प्रभाग आदि अर्थों की वाचक है। [4] क्तिन् प्रत्यय भाव और करण अर्थ में प्रयुक्त होता है। अत: 'भजन भक्ति' तथा 'भज्यतेऽनया इति भक्ति:' अर्थात् ईश्वर की भक्ति करना तथा वे साधन जिनके द्वारा भक्त को जीवात्मा तथा परमात्मा की प्राप्ति होती है, भक्ति कही जाती है।

अनेक आचार्यों द्वारा भक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ईश्वर में अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है। [5] पूजा आदि में प्रगाढ़ प्रेम होना [6] अंतर्मानस का उल्लास विशेष [7] तथा जो ईश्वर की शुद्ध सेवा प्रदान करने वाली है, वह भक्ति है। [8] अत: ऐसा कहा जा सकता है कि भक्ति अपने से बड़े व्यक्ति या आराध्यदेव के प्रति निरंतर स्नेह रखने का नाम है, किंतु विशेष रूप से भक्ति शब्द का प्रयोग केवल ईश्वर-प्रेम के अर्थ में किया जाता है। इसलिए मनोवृत्ति से आराध्य का दर्शन, भावना से सेवा-मनन, नेत्रों से श्री भगवत्प्रेमी संतों का और प्रभु-प्रतिमा चित्रादिकों का दर्शन, मुख से श्री भगवान् की गुण-स्तुति, सुयशयुक्त चरित्रों का कीर्तन, प्रभु-चरित्र का श्रवण, हाथों से श्री हरि प्रतिमा और श्री गुरु संतों की पूजा-सेवा, चरणों से परिक्रमा आदि सभी कर्म भक्ति की सीमा में समाहित हैं।

भक्ति बीज रूप से मनुष्य के चित्त में रहती है। यह एक पवित्र भाव है, जो हृदय के अंत:करण से प्रवाहित होता है। परमात्मा के अधिकाधिक स्मरण से पुष्ट होता है और अंत में पूर्ण आत्मनिवेदन में परिणत हो जाता है।

यद्यपि पुराणों का प्रमुख विषय सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित आदि विषयों का विवेचन करना रहा है तथापि सभी पुराणों में भक्तों द्वारा अपने आराध्यदेव की आराधना भी की गई है। विवेच्य विषय 'विष्णु पुराण में भक्ति का विवेचन' है। समस्त विष्णु पुराण छह अंशों में विभक्त है तथा अंशों का विभाजन पुन: अध्यायों में किया गया है। भागवत [9] तथा देवीभागवत [10] में 'विष्णु पुराण' की श्लोक संख्या 23000 वर्णित है।

विष्णु पुराण में भक्ति, ज्ञान और कर्म व समस्त अध्यात्म विषयों का विवेचन हुआ है। सभी मार्गों के पथिकों को इसमें यथेष्ट संबल सामग्रियों की उपलब्धि बताई गई है। इसमें ज्ञान व कर्म के समान भक्तियोग का भी विशेष रूप से महत्त्व प्रदर्शित किया गया है।[11] डॉ॰ आर॰सी॰ हाजरा के अनुसार विष्णु पुराण सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, इतिहासादि दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।[12]

'विष्णु पुराण' में प्रमुख आराध्य देवता विष्णु ही हैं, परंतु अनेक स्थलों पर कृष्ण, शिव, लक्ष्मी, देवकी, बलराम, गोवर्धन पर्वत आदि की स्तुति भी की गई है। पुराणों में प्रेम को भक्ति का समानार्थक कहा गया है, क्योंकि जिस वस्तु में हमारी भक्ति होती है, वही हमारे प्रेम की वस्तु होती है। विष्णु पुराण के निम्न श्लोक में भक्ति के स्थान पर प्रीति (प्रेम) शब्द का व्यवहार करते हुए कहा गया है कि–

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी
त्वामनुस्मरत: सा मे हृदयान्मापसर्पतु [13]

अर्थात् 'अविवेकी पुरुषों की विषयों में जैसी निश्चल प्रीति होती है, तुम्हें स्मरण करते हुए मेरी वैसी ही प्रीति तुम्हारे अंदर सर्वदा बनी रहे, क्षण-मात्र के लिए भी हटे नहीं।' यहाँ जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि ईश्वर तो निर्गुण-निराकार भी है व सगुण-साकार भी। अत: भक्ति के लिए ईश्वर के किस रूप की आवश्यकता होती है। इस संबंध में लोकमान्य तिलक द्वारा दिए गए समाधान पर दृष्टिपात करना आवश्यक ही होगा– 'उपनिषदों में जिस श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, वह इंद्रियातीत, अव्यक्त, अनंत, निर्गुण और एकमेवाद्वितीय है, इसलिए उपासना का आरंभ उस स्वरूप से नहीं हो सकता, केवल सगुण ईश्वर की ही आवश्यकता होती है, क्योंकि मन स्वभाव से ही चंचल है। इसलिए जब तक मन के समक्ष आधार के लिए कोई इंद्रियगोचर स्थिर वस्तु न हो, तब तक यह मन बार-बार ज्ञानी पुरुषों को भी दुष्कर प्रतीत होता है, तो फिर साधारण मनुष्यों का तो कहना ही क्या। किसी व्यक्त पदार्थ के देखे बिना साधारण मनुष्य के मन में अव्यक्त की कल्पना ही जाग्रत नहीं हो सकती। यथा– जब हम हरे, लाल इत्यादि अनेक व्यक्त रंगों के पदार्थ पहले आँखों से देख लेते हैं, तभी रंग की सामान्य और अव्यक्त कल्पना जाग्रत होती है, यदि ऐसा न हो तो रंग की यह अव्यक्त कल्पना हो ही नहीं सकती।'[14]

अत: स्पष्ट है कि उपासना के लिए ईश्वर के सगुण रूप की आवश्यकता होती है, जिसका ध्यान करते हुए भक्ति की जा सके। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आराध्य विष्णु

हो या कृष्ण अथवा अन्य कोई भी आराध्य हो, इनकी भक्ति सभी वर्ण के लोगों के लिए उपादेय है। भक्ति को इससे कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उसे करने वाला ब्राह्मण है या चाण्डाल, हिंदू है या मुसलमान, ईसाई, भारतीय है कि अमेरिकी या जापानी है। इसी प्रकार वह क्रिया विशेष से भी बँधी हुई नहीं है। जीव-मात्र भक्ति कर सकते हैं, प्रत्येक क्रिया भक्ति का तत्त्व बन सकती है।

भक्ति-प्राप्ति के आवश्यक तत्त्व :

भक्त को भक्ति करते समय जिन कर्तव्यों का पालन करना होता है, वे ही भक्ति के आवश्यक तत्त्व बन जाते हैं। यथा–

ईश्वरीय सत्ता का विश्वास होना सर्वप्रथम भक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। तत्पश्चात् **श्रद्धा** का अपने आराध्य के प्रति होना भी आवश्यक है, क्योंकि श्रद्धा से किया गया प्रत्येक कार्य सफल होता है। नारद पुराण में कहा गया है कि 'श्रद्धा की महान् महिमा है। श्रद्धा रखने वाला मनुष्य ही धर्म की प्राप्ति किया करता है– श्रद्धा से समस्त कामनाएँ सिद्ध होती हैं व जो परम श्रद्धालु होता है, उसी को मोक्ष की प्राप्ति होती है। [15] इसके बाद मनुष्य की इंद्रियों का **विषयों के प्रति अनासक्ति** का भाव होना चाहिए, क्योंकि विषयी मनुष्य सत् चित्त से अपने आराध्य की आराधना नहीं कर सकता, उसका मन विषयों में लगा रहेगा। जो मन, वाणी, प्राण, नेत्र, कर्ण, त्वचा, शिश्न तथा उदर से विषयों का परिवर्जन करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है।[16] भक्त के हृदय में **भक्ति-भावना** भी आवश्यक है। बिना भक्ति-भाव के अपने आराध्य के प्रति किए गए समस्त कार्य निष्फल ही होते हैं। ईश्वर का भक्त अपने प्रभु के अतिरिक्त किसी से भी द्वेष, भेदभाव न रखकर सबके प्रति प्रेम की भावना रखता है। ईश्वर के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा के साथ-साथ भक्ति-भाव का **निरंतर** बने रहना भी आवश्यक है। जिस क्षण भी ईश्वर का स्मरण नहीं किया जाएगा, उसी क्षण विषय आकर मन को अधिगृहीत कर लेंगे [17] जैसे पीतल के पात्र को नित्य साफ़ नहीं करने पर उसमें काई जम जाती है।

भक्ति के अंग में **पवित्रता** का भी अपना एक स्थान है। पानी से मैल को धोकर साफ़ कर देना ही पवित्रता नहीं है, अपितु मन की मलिनता को दूर करना ही यथार्थ शुचिता है। अहंकार तथा छह विकारों से मन दूषित हो जाता है। अतः अनासक्ति से मन की मलिनता दूर होती है। भक्त को प्रभु-भक्ति के द्वारा ही पूर्ण पवित्रता प्राप्त हो सकती है।

यद्यपि भक्ति शास्त्रों शांडिल्य भक्ति-सूत्र, नारद भक्ति-सूत्र, नारद पञ्चरात्र, भक्ति मीमांसा, मुक्ताफल, भक्तिरसामृतसिंधु तथा श्रीभगवद्भक्ति रसायन में भक्ति के विभिन्न प्रकार वर्णित किए गए हैं तथापि उनमें वैधी तथा रागानुगा प्रमुख हैं।

वैधी भक्ति :

इसे वैधी भक्ति इसलिए कहा जाता है कि उसमें प्रवृत्ति की प्रेरणा शास्त्रों तथा नियमों से मिलती है, जिसे विधि कहते हैं।[18] इसमें लौकिक आचार के अनुसार समस्त क्रियाएँ संपादित की जाती हैं। शास्त्रज्ञ, दृढ़, विश्वासयुक्त, तर्कशील बुद्धिसंपन्न और निष्ठावान् साधक ही वैधी भक्ति का अधिकारी है। भगवान् के प्रति ममत्व प्राप्त कर लेना भक्ति का सर्वोच्च सोपान है।

रागानुगा भक्ति :

इस प्रकार की भक्ति में हृदय खोलकर प्रभु के समक्ष रख दिया जाता है और इस प्रकार का आवरणशून्य हृदय नियमों और आचारों के बंधन को स्वीकार नहीं करता। रागानुगा भक्ति में प्रेममूलक भक्ति का भी समावेश है। श्रीजीवगोस्वामी द्वारा रागानुगा को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'तत्र विषयिण: स्वाभाविको विषय संसर्गेच्छामय: प्रेमा राग:, यथा चक्षुरादीनां सौन्दर्य्यादौं, तादृश एवात्र भक्तस्य श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते' [19] अर्थात् प्राणों के स्वत: स्फूर्त आवेग से भगवान् के रूप, गुण, लीला तथा माधुर्य की बातें सुनकर मन में यदि अभिलाषा का उदय होता है, प्रियतम प्रभु के प्रति नैसर्गिक रसमयी अविष्ठता दीख पड़ती है तो वह रागमयी भक्ति कहलाती है। यथा– विषयी पुरुष स्वभाव से ही विषयों के प्रति विषय-संसर्ग की इच्छाओं से युक्त आकर्षित होते हैं, जैसे- आँखों की सौन्दर्य के प्रति और कानों की मधुर स्वर के प्रति प्रबल इच्छा होती है, उसी प्रकार जब भक्त का भगवान् के प्रति आकर्षण या तृष्णा उत्पन्न होती है, उसे राग कहते हैं।

दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि 'जहाँ इष्ट के प्रति तीव्र अनुराग की भावना रहती है, वहाँ रागानुगा भक्ति है–

इष्टे स्वारसिकी राग: परमाविष्टता भवेत्
तन्मयी या भवेद्भक्ति: साऽत्र रागात्मिकोदिता [20]

इस कोटि का तीव्र अनुराग वृंदावन की सरल हृदया गोपबालाओं में प्रकट हुआ था, जिन्होंने अपने समस्त कर्म व संकल्प भगवान् को अर्पित कर दिए, उसके लिए इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वह मानव समाज के नियमों का अवश्य ही पालन करे। 'विष्णु पुराण' के पञ्चम अंश में रागानुगा भक्ति द्रष्टव्य है– 'उस मधुर गान की ध्वनि को सुनकर गोपीगण गृहों का परित्याग कर शीघ्रतापूर्वक कृष्ण के पास आना प्रारंभ कर देती हैं। उस समय कोई गोपी गान का लयानुसार धीरे-धीरे गान करने लगी, कोई सावधान होकर उन्हीं को मन से स्मरण करने लगी, कोई गोपी-कृष्ण, कृष्ण इस प्रकार बारंबार बोलकर उनको पुकारने से लज्जिता हो गई और कोई प्रेमांधा गोपी लज्जा परित्याग कर श्रीकृष्ण के समीप पहुँच गई।' इस प्रसंग में गोपियों द्वारा स्वयं को कृष्ण समझकर कृष्ण जैसा ही आचरण करना भी अनुराग के आधिक्य को वर्णित करता है। वह रास रसिक गोपियाँ माता-पिता, भाई तथा पति आदि के मना करने पर भी मतवाली-सी होकर रात्रि में श्यामसुंदर के साथ रमण करती थी।[21] अत: इससे गोपियों का कृष्ण के प्रति अत्यन्त प्रेम ही द्रष्टव्य है, तभी तो उन्हें समाज आदि किसी का भी बंधन रोक नहीं पाता।

नवधा भक्ति :

भागवत पुराण के एक श्लोक से यह ज्ञात होता है कि भक्तिशास्त्र के विधान से अनुमोदित यह वैधी भक्ति श्रवण-कीर्तनादि के भेद से नौ प्रकार की होती है [22]–

श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् [23]

अर्थात् विष्णु (आराध्य) का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन करना भक्ति के नौ भेद कहे गए हैं। यह नवधा भक्ति दो रूपों में

दिखाई देती है, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष विवेचन वहाँ होता है, जहाँ भक्त स्वयं भक्ति करते हुए दिखाई देते हैं तथा अप्रत्यक्ष विवेचन वहाँ होता है, जहाँ किसी अन्य पात्र के द्वारा भक्ति करते हुए भक्त का वर्णन किया जाता है। अत: विष्णु पुराण में पृथक्-पृथक् भक्त द्वारा इष्टदेव को प्राप्त करने हेतु नवधा भक्ति का आश्रय लिया गया है, जिसका वर्णन करना यहाँ अपेक्षित ही होगा–

श्रवण भक्ति :

'श्रवण' से आशय है सुनना अर्थात् भगवान् के नाम, गुण, चरित्र आदि को सुनना श्रवण भक्ति कही जा सकती है– 'श्रवणं नामचरितगुणादीनां श्रुतिभवेत्' [24] भगवान् के गुणों के श्रवण मात्र से ही भक्त का चित्त अपने आराध्य में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे बाह्य जगत् का ज्ञान ही नहीं रहता और उसे सरलता से भगवत्प्राप्ति हो जाती है। परीक्षित तथा प्रह्लाद के मित्रों के द्वारा की गई भक्ति श्रवण भक्ति के रूप में प्रसिद्ध है।

कीर्तन भक्ति :

शब्दकोश के अनुसार 'कीर्तन' के कथन वर्णन, कीर्ति वर्णन, सस्वर पाठ तथा यश कीर्ति आदि अर्थ दिए गए हैं।[25] अर्थात् भगवान् के नाम व चरित्र का वर्णन जब श्रद्धापूर्वक गीतों व भजनों के द्वारा किया जाता है, कीर्तन भक्ति कहलाती है। कीर्तन भक्ति के तीन भेद किए गए हैं– नाम का कीर्तन, लीला का कीर्तन तथा गुणों का कीर्तन– 'नाम-लीला-गुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्तनम्' [26]

विष्णु पुराण में विष्णु भगवान् का कीर्तन- महावराह के रोम में स्थित मुनिजनों (1.4), प्रचेताओं (1.14), पराशर (1.22), और्व (3.8), पृथ्वी (5.1) आदि द्वारा किया गया है। इसी प्रकार गरुड़ ध्वज का कीर्तन ब्रह्मा द्वारा (5.1), विष्णु कीर्तन नंद द्वारा (5.5), श्रीकृष्ण का कीर्तन बलराम, नागपत्नियों तथा कालीय नाग द्वारा (5.7) किया गया है।

स्मरण भक्ति :

भगवान् के नाम, उनके गुण, रूप, माहात्म्य, उनकी सर्वव्यापकता, लीला आदि का ध्यान करना तथा उन्हीं के ध्यान में लीन रहना स्मरण भक्ति कही गई है। भक्ति के साधन में नाम स्मरण की महिमा सर्वोपरि है। भक्त के मन में नाम इस प्रकार रम जाना चाहिए कि प्रत्येक क्षण उसी प्रभु का स्मरण होता रहे। [27] संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में 'स्मृति' का 'मन में ध्यान करना' अर्थ विहित है। [28] यह स्मरण काम, भय अथवा द्वेष के कारण भी हो सकता है। विष्णु पुराण में भक्त ध्रुव (1.12) तथा प्रह्लाद द्वारा (1.19) विष्णु भगवान् की स्मरण भक्ति की गई है। कृष्ण की अक्रूर जी द्वारा की गई भक्ति भी स्मरण भक्ति ही कही जा सकती है (5.17)।

अर्चन भक्ति :

प्रस्तरादि प्रतिमाओं में स्थित भगवान् की पूर्ति की पूजा करना ही अर्चन भक्ति में निहित है। इसके अतिरिक्त मंदिर मार्जन, जलाहरण, पञ्चामृत स्थान, देवोत्थान, शंख, झांझ आदि बजाना भी अर्चन भक्ति में समाहित है। यथा– सुदामा नामक माली (5.19) तथा देवगणों द्वारा की गई (5.30) श्री कृष्ण की भक्ति भी अर्चन भक्ति के अंतर्गत देखी जा सकती है।

वंदन भक्ति :

भगवान् की महिमा को मन में रखकर चरण कमलों में वंदना-नमस्कार आदि करना ही वंदन भक्ति कही जाती है। [29] यथा विष्णु पुराण में भगवान् विष्णु का स्तवन पृथ्वी (1. 4), ब्रह्मा (1.9) और देवताओं द्वारा (3.17) (5.1) किया जाता है। इसी प्रकार श्री लक्ष्मी स्तवन-इंद्र द्वारा (1.9), अदिति कृत कृष्ण स्त्वन (5.30) में वंदन भक्ति द्रष्टव्य है।

पादसेवन भक्ति :

भगवान् के चरणकमलों की निरंतर सेवा करना तथा पत्र, पुष्प, फल तथा जलादि को भक्ति भाव से अपने आराध्य के चरणों में समर्पित करना पादसेवन भक्ति में अंतर्हित है यथा– 'विष्णु पुराण' में भगवान् विष्णु की देवताओं (1.9), तथा अपने समक्ष प्रकट हुए साक्षात् नारायण की ध्रुव (1.12), प्रह्लाद (1.20), देवगणों (5.1), वसुदेव (5.3) आदि द्वारा की गई भक्ति पादसेवन भक्ति के अंतर्गत समाहित है। उसी प्रकार लक्ष्मी की महर्षि गणों द्वारा (1. 9), कृष्ण की इंद्र (5.12) तथा अक्रूर द्वारा (5.18) पादसेवन भक्ति कही गई है।

सख्य भक्ति :

अपने व भगवान् के मध्य मित्रता का संबंध स्थापित करके भक्ति करना सख्य भक्ति कहलाती है। इस प्रकार की भक्ति में आराध्य के प्रति बंधुभाव की प्रधानता होती है। यथा विष्णु पुराण में कृष्ण बलराम आदि में (5.6), कृष्ण व ग्वालवालों में (5.18) सख्य भक्ति द्रष्टव्य है। भगवान् में पूर्ण विश्वास, उनके प्रति मित्रता का भाव ये दोनों ही सख्य भक्ति के अंतर्गत निहित हैं। उद्धव, सुदामा तथा विभीषण आदि सख्य भक्ति के सर्वोच्च उदाहरण हैं।

दास्य भक्ति :

भगवान् को स्वामी तथा अपने को उनका सेवक समझकर उनकी वंदना करना दास्य भक्ति कही जाती है– 'दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैङ्.कर्यमपि सर्वथा' [30] कर्मों का अर्पण और उनकी सब प्रकार से किङ्. करता दास्य है। मैं श्रीहरि का दास हूँ, इस प्रकार की सुदृढ़ भावना और उसके अनुकूल आचरण करने का नाम दास्य भक्ति है। आत्मदोष, प्रकाशन, विनय, याचना, दीनता आदि भाव दास्य भक्ति के अंग कहे जा सकते हैं, जो भी कर्म किया है, उसको श्री हरि के चरणों में समर्पित कर देने का नाम ही दास्य भक्ति कही जा सकती है। लक्ष्मण, हनुमान और सात्यकि दास्य भक्ति करने वाले प्रसिद्ध भक्त हैं।

आत्मनिवेदन भक्ति :

मन, वाणी तथा कर्मों से अपने आपको श्रीहरि के चरण कमलों में समर्पित कर देना तथा भगवद्भाव से परिपूर्ण होना ही आत्मनिवेदन भक्ति कही जा सकती है। 'भक्ति संदर्भ' में आत्मनिवेदन भक्ति को दो वर्गों में विभक्त किया गया है– भाव रहित तथा भाव वैशिष्ट्य सहित।[31] द्रौपदी, कुंती, उद्धव आदि पात्रों के प्रसंग में आत्मनिवेदन भक्ति द्रष्टव्य है। यथा विष्णु पुराण में शिष्यों द्वारा की गई भक्ति में आत्मनिवेदन भक्ति दर्शनीय है (3.9)। 'एन्सिएंट इंडियन ट्रेडिशन एंड माइथोलोजी' में आत्मनिवेदन भक्ति को नवधा भक्ति की अंतिम कड़ी बताया है– 'Atmanivedana is the last stage out of the highest love and devotion, the devotee surrenders totally to God.' [32] इस नौ प्रकार की भक्ति में आत्मनिवेदन का अत्यंत महत्त्व है।

इसका प्रतिपादन भगवान् कृष्ण ने स्वयं भागवत पुराण में किया है– 'मनुष्य को तब तक अपने मन, वाणी तथा समस्त संकल्पों व कर्मों द्वारा उन श्रीहरि की उपासना करनी चाहिए जब तक समस्त प्राणियों में भगवद्भावना उत्पन्न न हो जाए। [33]

पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य और सख्य भक्ति के बहिरंग साधन हैं तो स्मरण, आत्मनिवेदन, अंतरंग साधन हैं। श्रवण व कीर्तन में दोनों प्रकार का भाव है। इन साधनों के द्वारा अहंवृत्ति को दूर कर बहिर्मुख वृत्ति को अन्तर्मुख कर ईश्वर में लीन करना ही भक्त का मुख्य उद्देश्य होता है। नवधा भक्ति की साधना से मानव इहलौकिक तथा पारलौकिक दोनों संपत्तियों को प्राप्त कर सकता है और यही भक्ति की पराकाष्ठा है। भक्ति की पराकाष्ठा हो जाने पर भक्त और भगवान् में कोई भेद नहीं रह जाता है, कहीं-कहीं पर तो भगवान् ने भक्त को अपने से भी बड़ा निर्देशित किया है। इन साधन रूपी नवधा भक्ति के अतिरिक्त तप, जप, सत्संग, नाम महिमा, व्यवहार, नृत्य तथा वैराग्य को भी भगवत्प्राप्ति के साधन कहा जा सकता है।

भक्ति-प्राप्ति के इन साधनों के बिना प्रभु को संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों तथा पुराणों में इनके महत्त्व का प्रतिपादन यत्र-तत्र किया गया है। मुंडकोपनिषद् में ऋषि द्वारा कहा गया है कि– 'जो स्वाध्यायशील तथा सम्यक् ज्ञान रखने वाले हैं, जो सत्यवादी, नित्य, ब्रह्मचारी और तपस्वी हैं, किंतु भोगी नहीं, जिनके दोष इन समस्त साधनों द्वारा नष्ट हो चुके हैं वे ही शीघ्र ज्योतिर्मय परमात्मा का दर्शन करते हैं।' [34]

भक्ति-प्राप्ति सरल नहीं है, उसमें अनेक विघ्न-बाधाएँ आती हैं, जिन्हें भक्ति मार्ग के शत्रु भी कहा जा सकता है। यथा कुसंग, विषय-वासना, माया, कामना, आलस्य, अहंकार तथा सांसारिक सुख आदि। भक्ति का सबसे बड़ा बाधक तत्त्व जगत् और जगत् में क्रियाशील माया है। सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति ही माया है, क्योंकि प्रकृति ही पुरुष के संयोग से धर्म-अधर्म, राग-वैराग्य, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य तथा अज्ञान रूप सात रूपों से स्वयं ही स्वयं को बन्धन में डालती है। [35] मध्वाचार्य के अनुसार माया व अविद्या समान रूप से अनिर्वचनीय हैं तथा तत्त्व की प्रतीति के प्रतिबंधक आदि हैं। [36] राधाकृष्णन् द्वारा माया को ईश्वर की शक्ति कहा गया है। [37] इस माया से ही तेरे-मेरे का भाव उत्पन्न होता है, जिसमें फँसकर मनुष्य कुसंगति में फँस जाता है तथा काम, क्रोध, मद, लोभ के जाल में जकड़ जाता है। काम के कारण ही वह विषयों में आसक्त होता चला जाता है तथा भक्ति से दूर हो जाता है। विषयों की आसक्ति में ही कामना उत्पन्न होती है, जिसकी पूर्ति में वह रत रहता है। कामना की पूर्ति होते रहने पर अहं की भावना उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य में अहं का भाव बहुत प्रबल होता है। भगवत्प्राप्ति आत्मसमर्पण की भावना से होती है, न कि अहंकार से। भक्ति की प्राप्ति में सांसारिक सुख भी बाधक तत्त्व है। धन के साथ पुत्रादि सभी सांसारिक बंधन भी सांसारिक सुखों में परिगणित होते हैं, क्योंकि इनकी कामना सभी मनुष्य करते हैं तथा मनुष्य इन्हीं की प्राप्ति में लगा रहता है और प्रभु को विस्मृत कर देता है। अतः साधना काल में आने वाली इन बाधाओं को दूर करके ही व्यक्ति मोक्षरूप लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि 'जो पुरुष निर्मलचित्त, ईर्ष्या रहित, शांत, शुद्ध-चरित्र सभी के लिए मित्रस्वरूप, प्रिय एवं हितभाषी तथा माया व अभिमान से रहित है, उसके चित्त में सदैव वासुदेव भगवान् निवास करते हैं।' [38]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भक्त ईश्वर की भक्ति क्यों करता है। इसका समाधान गीता के उस श्लोक से होता है, जहाँ भक्तों के चार प्रकार बताए गए हैं - 'आर्त्ताती, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी जनों द्वारा मेरा भजन किया जाता है।' (7.16-17)

आर्त्ताती भक्त :

संकट के आने पर उससे भयभीत होकर अर्थात् संकट निवारण के लिए भजनेवाले भक्त आर्त्ताती कहे जाते हैं। विष्णु पुराण में अनेक उदाहरण प्रस्तुत हैं, यथा-यमुना के जल को विषाक्त करनेवाले कालीय नाग का मर्दन करने के समय नागपत्नियों द्वारा अपने पति के प्राणों की रक्षा करने हेतु श्रीकृष्ण की भक्ति की गई (5.7.48-59)। इसी प्रकार इन्द्रादि देवता ध्रुव के तप से भयभीत होकर ध्रुव को तप से उपरत कराने के लिए भगवान् विष्णु की भक्ति करते हुए कहते हैं कि, 'हे देवाधिदेव जगन्नाथ! परमेश्वर! हम सब ध्रुव की तपस्या से सन्तप्त होकर आपकी शरण में उपस्थित हुए हैं। हे देवेश आप हम पर प्रसन्न होकर इस उत्तानपाद के पुत्र को तप से निवृत्त करके हमारे हृदय का काँटा निकालिए (1.12.33-37) इनके अतिरिक्त प्रह्लाद, द्रौपदी, उत्तरा, गज आदि भय से त्रस्त होकर भक्ति करने वाले आर्त्ताती भक्त हैं।

जिज्ञासु भक्त :

बहुत से भक्तों को ऐसी भक्ति करते हुए देखा गया है, जिसमें केवल दास्य भाव की प्रधानता है। वह अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित कर देता है। भक्त द्वारा प्रभु को जानने की इच्छा ही जिज्ञासा कही जाती है तथा जिज्ञासा रखने वाला भक्त जिज्ञासु होता है। यथा– 'भागवत पुराण'' में वर्णन किया गया है कि ब्रह्मा द्वारा प्रभु की रूप रहित निर्गुण तथा सगुण दोनों ही रूपों को जानने की इच्छा से अपने समक्ष प्रकट हुए श्रीहरि की कीर्तना भक्ति की गई (2. 9.25) तथा 'विष्णु पुराण' में मैत्रेय पराशर से कहते हैं कि– 'गुरुदेव! मैंने आपसे समस्त वेद, वेदांङ्ग एवं सकल धर्मशास्त्रों का यथाक्रम अध्ययन किया है। वही मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ और आगे कैसा होगा। इस संसार का उपादान कारण क्या है ? यह समस्त चराचर-जिससे उत्पन्न हुआ है, पूर्वकाल में जिसमें लीन था एवं आगे जिसमें लीन होगा। चारों वर्णों का एवं ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों का धर्म, ये समस्त बातें हे शक्ति नन्दन! मैं आपसे सुनना चाहता हूँ कि आप मेरे ऊपर अपने मन को प्रसादोन्मुख कीजिए, जिससे मैं आपकी कृपा से ये बातें जान सकूँ (1.1.6-15)।

अपनी जिज्ञासा को शान्त करने हेतु पराशर से जो प्रार्थना की गई है, इससे उन्हें (मैत्रेय को) जिज्ञासु भक्त कहा जा सकता है।

अर्थार्थी भक्त :

किसी प्रकार की सांसारिक कामना से प्रेरित होकर अर्थात् सांसारिक अभ्युदय, पुत्र-पौत्र, धन-संपत्ति, मान-मर्यादा, सैन्य-शक्ति आदि की वृद्धि के लिए कतिपय भक्त द्वारा जो अपने आराध्य की भक्ति करते हैं, वह अर्थार्थी भक्त कहे जाते हैं। यथा– विष्णु पुराण में वर्णन हैं कि अपने पिता से तिरस्कृत होने पर जगदीश्वर की संतुष्टि हेतु ध्रुव द्वारा जो भक्ति की गई हैं, उससे उसका अर्थार्थी भक्त होना द्योतित होता है तथा प्रचेताओं द्वारा अपनी प्रजा-वृद्धि हेतु दस हजार वर्षों तक समुद्र जल में स्थित होकर श्रीहरि भगवान् की स्तुति की गई। (1.14.17-20)

ज्ञानी भक्त :

कुछ भक्तों द्वारा इस प्रकार की भक्ति की गई है जो तत्त्व वर्णन की भावना से कही गई है, जो संसार के समस्त बंधनों से ऊपर उठ चुके हैं, केवल लोक-कल्याण एवं संसार में उलझे जीवों के उद्धार के लिए भगवान् के गुणों का गान कर सर्वत्र प्रेम की धारा प्रवाहित करते चलते हैं। ऐसे भक्तों की कुछ भी कामना नहीं होती, केवल भगवान् के चरणों में ही निवास करते हैं। ऐसे भक्त ज्ञानी भक्त की श्रेणी में समाहित होते हैं। यथा– पराशर, शुकदेव, व्यास, नारद तथा मार्कंडेय आदि। विष्णु पुराण में पराशर मैत्रेय के सभी प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि– 'हे मैत्रेय! तुम्हारे पूछने से मैं समस्त पुराण संहिताओं को कहता हूँ तुम भलीभाँति श्रवण करो। यह जगत् श्री विष्णु भगवान् से उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में स्थित है तथा विष्णु भगवान् ही इसकी स्थिति एवं लय के कर्ता हैं एवं यह जगत् विष्णु स्वरूप ही हैं।' (1.1.34-35)

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि विष्णु पुराण में अन्य सर्गादि विषयों के साथ-साथ ईश्वर भक्ति का विवेचन भी प्राप्त होता है। ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग ही भक्ति है। विष्णु पुराण में आराध्य देवता विष्णु हैं, किंतु लक्ष्मी, कृष्ण, बलराम आदि अन्य देवताओं की भी भक्ति की गई है। इन देवताओं के प्रति भक्ति के प्रथमतः दो रूप वर्णित किए गए हैं– वैधी और रागानुगा। शास्त्रीय नियमों के अनुसार की गई भक्ति वैधी भक्ति कहलाती है, जिसके नौ रूप नवधा भक्ति के रूप में प्रसिद्ध है। विष्णु पुराण में नवधा भक्ति के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। रागानुगा भक्ति अतिशय आसक्ति का नाम है। भक्ति के लिए आवश्यक तत्त्वों का संकेत भी इसमें मिलता है।

आज मनुष्य आसक्ति और मोह-माया के कारण भौतिकता की ओर अग्रसर है, वहीं वह ईश्वर से भी दूर होता जा रहा है। यही कारण है कि वह निरंतर निराशा, अवसाद तथा असाध्य रोगों से पीड़ित होता जा रहा है। उसकी भौतिक उन्नति तो हो रही है, परंतु आत्मिक उन्नति नहीं। व्यक्ति दुःखों से तभी छुटकारा पा सकता है जब व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास करते हुए सदाचरण को अपनाते हुए किंचित् भक्ति का आश्रय ले, क्योंकि तभी व्यक्ति के माया, मोह आदि दुःख कम हो सकते हैं तथा वह अपना-पराया, तेरा-मेरा आदि भावों को भुलाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से युक्त हो सकता है।

संदर्भ

1. संस्कृत हिंदी कोश, आप्टे, पृ॰ 962
2. निरुक्त भाष्य, उत्तरार्द्ध, भाष्यकार, श्री चंद्रमणि विद्यालंकार, 12.2.19.11
3. हलायुद्ध कोश, पृ॰ 626
4. संस्कृत हिंदी कोश, पृ॰ 734
5. शांडिल्य भक्ति सूत्र, 2
6. नारद भक्ति सूत्र, 18
7. भक्ति मीमांसा सूत्र, 1
8. नारद पञ्चरात्र, 1.1.18
9. भागवत पुराण, 12.13.4
10. देवी भागवत, 3.8

11. विष्णु पुराण, श्रद्धा शुक्ला, प्रस्तावना, पृ॰ 13
12. विष्णु पुराण का भारत, आर॰सी॰ हाजरा
13. विष्णु पुराण, 1.20.19
14. गीता रहस्य, पृ॰ 413-415
15. नारद पुराण, 1.4.6
16. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.2.5.18
17. नारद भक्ति सूत्र, 77
18. भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व वि॰ 2.6
19. भक्तिसंदर्भ, संपा॰ हरिदास शास्त्री, पृ॰ 621
20. श्रीभक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व वि॰ 2.272
21. विष्णु पुराण, 5.13.17-19, 24-26, 58-59
22. पुराण-तत्त्वविमर्श, पृ॰ 102
23. भगवत् पुराण, 11.20.35
24. भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व वि॰ 2.170
25. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ॰ 279, पुराण संदर्भ कोश, पद्मनी मेनन, पृ॰ 59
26. भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व वि॰ 2.145
27. स्तुति कुसुमाञ्जलि एक परिशीलन, दंडी स्वामी डा॰ निगम बोध तीर्थ, पृ॰ 71
28. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ॰ 1152-1153
29. एन्सिएंट इंडियन ट्रेडिशन एंड माइथोलोजी, भागवत् पुराण, भाग-1, खंड-7 प्रस्तावना, पृ॰-63
30. भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व वि॰ 2.62
31. भक्तिसन्दर्भ, पृ॰ 19
32. एन्सिएंट इंडियन ट्रेडिशन एंड माइथोलोजी, भागवत् पुराण, वोल्यूम-7, प्रस्तावना, पृ॰ ix iii
33. भागवत् पुराण, 11.29.17
34. मुंडकोपनिषद्, 3.1.5
35. सांख्यकारिका, 63
36. सर्वदर्शन सङ्गह, 16.728
37. Indian Philosaphy, Vol – I, IX – 547.
38. विष्णु पुराण, 3.7.24

❒ संस्कृत विभाग
मुन्नालाल जयनारायण खेमका
गर्ल्स कालेज, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

राजनीतिक चेतना के कवि उदयभानु हंस

पुरुषोत्तम शर्मा 'पुष्प'

राजनीतिक परिवेश और उदयभानु हंस की काव्य-चेतना तथा उनका रचनाकर्म सात दशकों से भी अधिक विस्तार लिए हुए है। इन वर्षों में हम राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आंदोलन के विभिन्न उतार-चढ़ावों को देखते हैं, स्वतंत्रता-प्राप्ति के उल्लास और देश-विभाजन के दंश को देखते हैं। हम विभाजन के साथ भड़के हिंसक सांप्रदायिक दंगों से सने उन भयावह दिनों की कातर चीख़ें भी सुनते हैं। स्वतंत्रता भारत के लिए आनंद लेकर आई थी, उससे कहीं अधिक चिंताएँ, समस्याएँ और परेशानियाँ भी लेकर आई। हंस जी की कविता अपनी अभिव्यक्ति के उपादान इन्हीं राजनीतिक परिस्थितियों में पाती है, तथा अनेक सद्-असद् परिस्थितियों से साक्षात्कार करती है। यद्यपि हंस जी कवि-रूप में वाद-मुक्त रहे हैं। उनके काव्य में पूर्वाग्रह एवं दलबंदी की भावना कहीं दिखाई नहीं देती। हंस जी ने लेखकीय स्वतंत्रता के सम्मान को महत्त्वपूर्ण माना है। शब्दशक्ति और सम्मान महाकवि के लिए साधना, आराधना से कम नहीं है। उनकी काव्य-साधना का आदर्श इन शब्दों से स्पष्ट होता है -

मैं शब्द का मकरंद नहीं बेचूँगा,
अनुभूति का आनंद नहीं बेचूँगा।
मैं भूख से मर जाऊँगा हँसते-हँसते,
रोटी के लिए छंद नहीं बेचूँगा। [1]

हंस जी की साहित्यिक यात्रा स्वतंत्रता-संघर्ष के उन वर्षों में हुई है, जब 1942 में मुंबई काँग्रेस के महाअधिवेशन में गांधी जी ने 'करो या मरो' का नारा देकर अँग्रेज़ों को भारत छोड़ो का आह्वान किया था। हंस जी की काव्य-सर्जना उसी प्रकार प्रभावित हुई, जिस प्रकार लाखों भारतीयों पर प्रभाव दीख पड़ता था। उन्होंने भारत-भारती की तर्ज पर अपने भावों को प्रकट किया–

क्या देखता है भारती निष्प्राण भारतवर्ष को,
उत्कर्ष भी कृश हो रहा है प्राप्त हो अपकर्ष को।
परतंत्रता की गार में गारत यह भारत हो रहा,
धनधान्य संस्कृति-सभ्यता मिट्टी में है सब खो रहा। [2]

महाकवि हंस को सांप्रदायिक सद्भाव और विद्वेष दोनों ही परिस्थितियों को निकट से देखने का अवसर मिला। सांप्रदायिक विद्वेष और घृणा की ज्वालाएँ उत्तेजित हो उठीं, जिन्होंने सदियों पुराने सद्भाव को जला डाला। इतिहास उजले-काले पृष्ठों से भरने लगा। हंस जी की क़लम सद्भावना का सरंक्षण इस प्रकार करने लगी–

मुसलमाँ हिंदू की ख़ातिर खुशी से क़ुर्बान हो,
और मुस्लिम की ख़ातिर हिंदू की हाज़िर शान हो।
दिल मिले ऐसे कि नफ़रत का नहीं इमकान हो,
जो खुदा मुस्लिम को हो, हिंदू का वो भगवान हो। [3]

सांप्रदायिकता का उन्माद आज़ादी से बहुत पहले ही आरंभ हो चुका था। यात्रा के दौरान सांप्रदायिक घृणा और द्वेष भड़काने वाली बातें अक्सर होने लगी थीं। 'देखो इस डिब्बे में दो हिंदू बैठे हैं अगर इनके पास बम हो तो केवल दो ही मरेंगे, मगर इनके साथ हम तीस चालीस मुसलमान भी मारे जाएँगे।' कैसा भयानक सांप्रदायिक विद्वेष का षड्यंत्र था। इन सारी घटनाओं के प्रतिक्रियास्वरूप हंस जी ने 'धड़कन' काव्य-संग्रह में अपनी व्यथा यों व्यक्त की है–

अज्ञान-तम के काले-काले मेघ भी हैं उड़ रहे,
व्यभिचार अत्याचार के सर्वत्र कौब्बे उड़ रहे।
हे देव! यह दुर्दृष्ट भारत तूने कैसा कर दिया,
मानो सकल ब्रह्मांड को अपकर्ष से है भर दिया। [4]

अनेक वर्षों के अथक् संघर्ष, असंख्य ज्ञात-अज्ञात राष्ट्रभक्त शहीदों के बलिदान और नेताओं के प्रयासों के बाद स्वतंत्रता मिली। महाकवि ने उल्लास के साथ आज़ादी का स्वागत करते हुए शहीदों को श्रद्धांजलि दी–

शहीदो शत्-शत् तुम्हें प्रणाम!
उन दीवानों को प्राणों से, अपना देश अधिक था प्यारा।
फाँसी के तख़्ते पर चढ़कर सदा उन्होंने यही पुकारा,
मर जाएँगे मगर कभी हम होंगे नहीं ग़ुलाम।[5]

महाकवि हंस देश के स्वतंत्रता-दिवस के साक्षी रहे हैं। सदियों की ग़ुलामी के बाद स्वतंत्रता का नया सूर्योदय हुआ, जिसकी प्रथम किरणों के गवाह हंस जी अपने को धन्य मानकर आनंद से आप्लावित हो उठे–

स्वतंत्रता का बोझ तुम्हें मिलकर सँभालना होगा,
भारत माँ के पग से हर काँटा निकालना होगा।
लोकतंत्र का दीपक कोई आँधी नहीं बुझाए,
कभी राष्ट्र की अखंडता पर आँच न आने पाए। [6]

महाकवि ने स्वतंत्रता का सम्मान पूरे मन से किया। इतना ही नहीं, अपनी लेखनी से नई चेतना-जागृति का संकल्प भी प्रचारित किया। भावाभिव्यक्ति दृष्टव्य है–

सपनों का मेरा कमल खिले या न खिले,
कष्टों का हिमालय हिले या न हिले।
मैं देश को परतंत्र न रहने दूँगा,
इस तन को मेरे कफ़न मिले या न मिले। [7]

अँग्रेज़ भारत को खंडित स्वतंत्रता देकर अपनी कूटनीति में कामयाब हो चुके थे, किंतु भारतीय नेताओं ने उनकी चालाकी को सूझबूझ से निरस्त कर दिया। लौहपुरुष सरदार पटेल ने कठोर निर्णय लेकर 560 रियासतों को भारत संघ में शामिल कर लिया, परंतु छोटी-सी

राजनीतिक भूल के कारण कश्मीर पूरी तरह भारत का हिस्सा न बन सका। कश्मीर-समस्या आज भी दोनों देशों में तनाव उत्पन्न कर रही है। प्राकृतिक रूप से कश्मीर भारत का अखंड अंश है। महाकवि ने कश्मीर को भारत का स्वर्ग कहा है–

हम स्वर्ग की तस्वीर न जाने देंगे,
पुरखों की है जागीर न जाने देंगे।
यदि प्राण भी जाएँ तो चले जाएँ भले,
पर हाथ से कश्मीर न जाने देंगे। [8]

विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र के स्वतंत्रता-संघर्ष का अनूठा नायक, अहिंसा का सिपाही, हिंसा के हाथों मारा गया। महात्मा गांधी की हत्या पर सारा देश शोक में डूब गया। कवियों ने शोक-गीत लिखे, साहित्यकारों ने बापू के हत्यारे को कायर, नृशंस, कुत्सित, दनुज से भी घृणित माना। गांधी जी को श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए महाकवि हंस ने कहा–

लिया अहिंसा-अस्त्र हाथ में और हृदय में गीता,
बिना ख़ून की बूँद बहाए स्वतंत्रता-रण जीता।
मुक्त हुई रावण के घर से नवभारत की सीता,
रामराज्य का सपना तेरे जीवन का दर्पण है। [9]

देश अभी आज़ादी में साँस लेना सीख ही रहा था कि चीन ने आक्रमण कर दिया। छलपूर्वक दोस्ती का दम भरकर विश्वासघात कर दिया। महाकवि हंस की लेखनी परिवेशानुसार स्वाभाविक ढंग से गतिशील होती रही, उनके काव्य-स्वर में विश्व-शांति का राग है, तो चीनी आक्रमण के प्रति आक्रोश। वे देश पर आए इस अनायास संकट से जूझने का आह्वान करते हैं–

देश के प्रेमी कभी बलिदान से डरते नहीं,
वीर सैनिक युद्ध के मैदान से डरते नहीं।
मौत की धमकी जो देते हैं, उन्हें कह दे कोई,
डूबने वाले कभी तूफ़ान से डरते नहीं। [10]

पंडित नेहरू इस सदमे को नहीं झेल पाए और 27 मई 1964 को उनकी मृत्यु हो गई। देश एक बार पुनः शोक के सागर में डूब गया। उनके निधन पर शोक-गीत में हंस जी ने अपने भावोद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किए हैं–

बुझ गया दीपक मगर आलोक अब भी शेष है,
मर गया नेहरू मगर उसका अमर संदेश है।
है उसी की सीख संकट में न हम आहें भरें,
जिस तरह हो आज उसके स्वप्न को पूरा करें। [11]

भारत के दूसरे प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री जी बने। देश अभी शोक और संकट से उबर ही न पाया था कि पाकिस्तान ने भारत पर अचानक आक्रमण कर दिया। इसमें अमेरिका ने पाक का साथ दिया। देश में पाकिस्तान को सबक़ सिखाने की लहर दौड़ गई। हर भारतवासी देश के लिए क़ुर्बानी देने को तैयार था। इस पर हंस जी ने 'देशभक्ति' शीर्षक से एक उद्‌बोधन गीत में कहा–

सबक़ सिखाएँगे हम, शत्रुओं को पलभर में,
विरोधी बेड़ा डुबो देंगे हिंद महासागर में।
क़सम है बंदा बैरागी की और नलवे की,
हम उनकी क़ब्र बनाएँगे उनके ही घर में। [12]

भारतीय सेनाओं ने मुँह-तोड़ जवाब दिया, राष्ट्रीय एकता एक बार फिर विश्व के सामने अनुकरणीय उदाहरण बनकर प्रस्तुत हुई। 10 जनवरी 1966 को ताशकंद समझौते के दौरान भारत को जीती हुई ज़मीन वापिस करनी पड़ी। दुर्भाग्य से इस समझौते पर हस्ताक्षर करने के कुछ घंटों बाद भारत के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री जी का आकस्मिक निधन हो गया। श्री शास्त्री जी को श्रद्धांजलि देते हुए महाकवि हंस जी ने वामन-विराट कविता लिखी, जिसके कुछ अंश निम्न हैं–

अस्त हो गया किंतु अंत में जब वह दिव्य दिवाकर,
उमड़ पड़ा सारी धरती पर अंधकार का सागर।
शोकाकुल जीवन में काली रात भयानक छाई,
कोई एक सहारा तक भी दिया न कहीं दिखाई। [13]

शास्त्री जी के निधन के उपरांत पंडित जवाहरलाल नेहरू की सुपुत्री श्रीमती इंदिरा गांधी 24 जनवरी 1966 को भारत की तीसरी तथा प्रथम महिला प्रधानमंत्री बनीं। इनके शासनकाल में अनेक नई विकास-योजनाएँ आरंभ हुईं, जो उनके शासनकाल की विशेष उल्लेखनीय उपलब्धियाँ मानी गईं। हंस जी वैज्ञानिक आविष्कारों तथा तकनीकी विकास को लोकमंगलकारी मानते हैं, किंतु विज्ञान का संहारक पक्ष मानव-सृष्टि के लिए घातक भी है। इसलिए उन्होंने कहा है–

विज्ञान के अभिशाप से दिल हिलता है,
ख़ुश मन को मगर धर्म से ही मिलता है।
चुगते हैं हंस प्यार के मोती जिसमें,
उस झील में शांति का कमल खिलता है।[14]

अपने उदय से ही पाक का रवैया भारत के विरुद्ध वैमनस्य का रहा था। सन् 1971 में भारत-पाक युद्ध में लगभग 1 लाख सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसी के दौरान मुक्ति- वाहिनी के विजयी-संघर्ष के परिणामस्वरूप 27 मार्च 1971 को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में बांग्लादेश का जन्म हुआ। इस विजय का स्वागत करते हुए कवि कहता है–

तानाशाही ने डाला जब प्रजातंत्र पर डाका,
'मुक्ति-वाहिनी' ने छेड़ा तब स्वतंत्रता का साका।
भारतीय सेना के आते ऐसा हुआ धमाका,
रोते रहे उधर श्री भुट्टो इधर ले लिया ढाका। [15]

पाकिस्तानी सेनाओं की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार पर व्यंग्य करते हुए हंस जी कहते हैं–

चाल चली इंदिरा ने ऐसी उलट गई सब बाज़ी,
एक लाख की सेना के संग हार गया मजबूर नियाजी। [16]

आठवें दशक के मध्य देश में उथल-पुथल का माहौल रहा। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने श्रीमती गांधी के चुनाव को असंवैधानिक घोषित कर दिया। महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार के विरुद्ध छात्र-आंदोलन तेज़ होने लगे। देश में आपातकाल घोषित हो गया। महाकवि उदयभानु हंस ने भी आपातकाल को स्वतंत्रता हनन-नीति कहा। नेताओं के स्वार्थपूर्ण भ्रष्ट आचरण को देखकर उनका मन उदास हो गया। राजनीतिक स्थितियाँ बदल गईं। अपनी उदासी व्यक्त करते हुए वे अनायास यह कह उठते हैं–

दिल है बड़ा उदास, कहो क्या होगा?
संकट है आस-पास, कहो क्या होगा?
है स्वार्थ की अंधी गुफा में बंद हुआ,
जनतंत्र का आकाश, कहो क्या होगा? [17]

आपातकाल के बाद देश में सन् 1977 में जनता पार्टी का उदय हुआ। देश में पूर्ण बहुमत से जनता पार्टी ने देश की बागडोर सँभाल ली। किंतु व्यक्तिगत स्वार्थों के परिणामस्वरूप 28 महीनों के बाद 1980 में सरकार टूट गई। नेताओं के गिरते नैतिक स्तर से क्षुब्ध हंस जी कह उठे–

फूल जो चढ़ाते रहे राजघाट पर,
क़समें जो खाते रहे राजघाट पर।
सिंहासन पर बैठते ही वे फिसल गए,
गिरगिटों की तरह उनके रंग बदल गए। [18]

श्रीमती गांधी के पुनः प्रधानमंत्री बनने से राजनीतिक अस्थिरता को विराम लग गया, किंतु सीमांत राज्यों में नई समस्याएँ सिर उठाने लगीं। देश में आंतरिक कलह, अलगाववादी-आंदोलन, राष्ट्रीय अखंडता के लिए चुनौती बन गया। पंजाब में आतंकवाद की आग पर महाकवि हंस जी का दुखी मन रो पड़ा। उनकी सिसकती वाणी दृष्टव्य है–

लूटमार, अत्याचार फैल रहा भ्रष्टाचार,
गांधी, गुरु नानक व गौतम के देश में।
नहीं भक्ति-भाव, अपराधों से लगाव,
हथियारों का लगाव मंदिरों के परिवेश में। [19]

आतंक एवं पृथकतावादी आंदोलनों ने श्रीमती गांधी को निगल लिया। 31 अक्टूबर 1984 को उनके अंगरक्षकों ने उनकी हत्या कर दी। महाकवि का मन एक बार फिर आहत हो उठा। उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि कुछ ऐसे दी–

आज भारत ही नहीं संसार सारा रो रहा,
एक फूल झड़ा सकल उद्यान सूना हो रहा।
किंतु दिव्य सुगंध उसकी नष्ट हो सकती नहीं,
शब्द के ही साथ नभ में गूँज खो सकती नहीं। [20]

श्रीमती गांधी की हत्या से उपजी सहानुभूति की लहर के कारण काँग्रेस दो तिहाई मतों से पुनः सत्ता में आ गई, और राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने। राजीव गांधी की सोच ने देश की प्रगति को नई दिशा व गति दी। वे इक्कीसवीं सदी के स्वप्नदृष्टा, स्वच्छमना, प्रगतिशील

प्रधानमंत्री थे। किंतु राजनेताओं की लोलुपता की लड़ाई में सारे सिद्धांत ढह गए। इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य-प्रहार करते महाकवि हंस–

राजनीति के रंगमंच पर नाच रहे खलनायक,
आज दल-बदल की दलदल में गिरगिट बने विधायक। [21]

देश में आरक्षण-आंदोलन, उग्र हिंसक और समाज-भंजक रूप लेने लगा। देश में मई 1991 में आम चुनाव हुए। एक चुनाव सभा के दौरान 21 मई 1991 को तमिलनाडू के पेरम्बदूर में एक मानव-बम ने श्री राजीव गांधी की हत्या कर दी। राजीव गांधी के विषय में श्रद्धांजलि स्वरूप विचार दृष्टव्य हैं -

वह लगा था रात-दिन नवराष्ट्र के निर्माण में,
देशसेवा का नशा था व्याप्त उसके प्राण में।,
सांप्रदायिक द्वेष का सारा हलाहल पी गया,
स्वयं शंकर की तरह आदर्श जीवन जी गया। [22]

हिंदी-कविता की अतीत से ही परंपरा रही है कि राजनीति के दंभ से वह कतराती नहीं है, प्रत्युत वह इससे टकराती है। नेताओं की मर्यादाहीन भूमिका पर कविता में इसके विरोध की प्रतिध्वनि प्रकट हुई है। हंस जी हिंदी-कविता की निर्भीक प्रवृत्ति के पोषक हैं–

अब घोड़े, गधे, राष्ट्र के गायक होंगे,
सब भेड़िये भेड़ों के सहायक होंगे।
इस देश में वह समय भी अब दूर नहीं,
जब चोर-लुटेरे ही विधायक होंगे। [23]

सांसद ख़रीद घोटाले का प्रकरण बाद तक चला। एक जनहित याचिका के माध्यम से मुकदमा कई वर्ष चला, जिसमें काँग्रेसी एवं अन्य दलों के सांसद भी दोषी करार दिए गए। हंस जी ने उनके कृत्य पर अपनी टिप्पणी यूँ की–

माली ही स्वयं आज चमन बेच रहे हैं,
कैसे हैं पंछी जो गगन बेच रहे हैं।
चाँदी की चकाचौंध से अंधे होकर,
बेटे ही स्वयं माँ का कफ़न बेच रहे हैं। [24]

सन् 1999 के चुनावों के बाद एक बार अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 24 दलों की मिली-जुली सरकार केंद्र में बनी। अटल जी के सुलझे व्यक्तित्व एवं दूरदर्शिता के कारण गठबंधन सरकार ने अपना कार्यकाल सफलतापूर्वक पूरा किया। राजनीति में अवसरवादिता, आदर्शहीनता, भ्रष्टाचार, मर्यादाहीनता, नैतिक पतन का प्राय: बोलबाला रहा है, सेवा, त्याग प्राय: लुप्त होते जा रहे हैं। हंस जी जैसे प्रतिक्रियावादी कवि भला मौन होकर कैसे बैठ सकते हैं–

बीमार सियासत का भरोसा ही नहीं,
वोटों की तिजारत का भरोसा ही नहीं।
जनतंत्र पे विश्वास अगर कर भी लें,
नेताओं की नीयत का भरोसा ही नहीं। [25]

संविधान में यथास्थिति चाहे कितने ही संशोधन हुए, कितनी ही सद्-असद्

राजनीतिक कलाबाज़ियाँ हुईं, कितने ही प्रथक्कतावादी आंदोलन हुए हों, इस देश की अनेकता में एकता विश्व के सामने अनुकरणीय उदाहरण है। भारत की इसी एकता को हंस जी व्यक्त करते हुए कहते हैं–

एक देश उसका संविधान एक है, राष्ट्र-धवज एक राष्ट्रगान एक है।
जातियाँ कई हैं इंसान एक है, हिंदू, सिक्ख और मुसलमान एक हैं।
सबका धर्म एक है ईमान एक है, वाहे गुरु अल्लाह भगवान एक है।
शब्द भिन्न-भिन्न किंतु ज्ञान एक है, गीता ग्रंथ बाइबल क़ुरान एक है। [26]

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-कविता के तेवर राजनीति से सर्वाधिक प्रभावित कहे जा सकते हैं। उदयभानु हंस जी भी इस स्थिति को यथार्थ रूप में देखते हैं। जनता ने जिस सुखी जीवन की कल्पना की थी, वह उसके स्वप्न होकर रह गए। हंस जी को लगा कि व्यवस्था के नाम पर कुछ भी नहीं बदला, बदलाव केवल एक भ्रम है यथा–

पंछी ये समझते हैं चमन बदला है,
हँसते हैं सितारे कि गगन बदला है।
श्मशान की कहती है मगर ख़ामोशी,
है लाश वही सिर्फ़ कफ़न बदला है। [27]

वर्तमान में भाषा, जाति और क्षेत्रीयता जैसी विघटनकारी भावनाएँ प्रमुख बनती जा रही हैं। ऐसे में हंस जी देश की अखंडता और एकता को सुरक्षित रखने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं–

तुम देश को संगठित रखो, मत बाँटो,
भाषा प्रदेश जाति की खाई पाटो।
डालें जो बुरी दृष्टि तिरंगे पे कभी,
उन शत्रुओं की गरदनें धड़ से काटो। [28]

विगत् दो दशकों से संसद में घोषित अपराधियों की संख्या जीतकर आने लगी है, जिनमें बाहुबली, डाकू आदि प्रमुख हैं। इसी अंतर्विरोध की स्थिति को हंस जी इस प्रकार चित्रित करते हैं–

जो हो वोट बटोरकर, सत्ता का सुख भोग,
बाहुबली के सामने, क्या कर लेंगे लोग। [29]

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश की राजनीति से जो तत्त्व अनुपस्थित है, वह है नीति अथवा नैतिकता। हंस जी इन सारी अनैतिक व्यवस्था पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं–

राजनीति में नीति का है सर्वथा अभाव,
स्वार्थ सिद्ध हर मूल्य पर है बन गया स्वभाव। [30]

राजनेताओं का घेराव या विरोध अथवा जाम लगाना आज की आम बात हो गई है। नेताओं पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जब उन्हें जनता के मतों की आवश्यकता होती है, तब राजनीतिज्ञ जोड़-तोड़ खोज लेते हैं। इन्हीं भावों को यथार्थ रूप से चित्रित करते हुए हंस जी ने कहा–

रैली, बंद, घिराव और, जोड़-तोड़ में चुस्त,
खुला तमाशा देख लो राजनीति का मुफ़्त। [31]

भारत की स्वतंत्रता तथा भारतीयता की मौलिकता की रक्षा के लिए निष्काम सेवा करते हुए अनेक राजनेताओं ने अपना जीवन अर्पित किया था, किंतु आज के नेताओं ने देश का धन विदेशों में जमा करा दिया। उनका ध्येय मात्र जेबें भरना रह गया है। हंस जी ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है–

बहा शहीदों का लहू भारत हुआ स्वतंत्र,
लेकिन नेता जप रहे अभी विदेशी मंत्र। [32]

महाकवि उदयभानु हंस नर-सेवा को ही नारायण सेवा मानते हैं। वे निर्बल, निर्धन, असहायों की सेवा करना ही सबसे बड़ा पुण्य, धर्म और पूजा मानते हैं–

मैं न मंदिर न मस्जिद गया, कोई पोथी न बाँची कभी,
एक दुखिया के आँसू चुने, बस मेरी बंदगी हो गई। [33]

महाकवि हंस जी की काव्य-संवेदना केवल परतंत्रता की त्रासद स्थितियों से उपजी निराशा ही नहीं है। उन्होंने भारत-विभाजन के दर्द को कसमसाते हुए झेला है। वे भारतीय स्वतंत्रता के स्वर्णिम आरंभ के साक्षी रहे हैं। सभी स्वतंत्र भारतीयों की तरह हंस जी ने सुखी भारत के भविष्य के सपने सँजोए थे, परंतु स्वतंत्रता के 60 वर्ष बीत जाने पर भी जन-जीवन की विसंगतियाँ नहीं बदल पाईं। हंस जी की वेदना यूँ छलक पड़ी–

कोई लड़ रहा वेतनमान के लिए, रोटी, रोज़ी, कपड़ा, मकान के लिए,
कोई है झगड़ता जुबान के लिए, अपने प्रांत, जाति, धर्म, स्थान के लिए।
शोर मस्जिदों में अजान के लिए, त्रिशूल के लिए, कहीं कृपाण के लिए,
दावे हैं अलग पहचान के लिए, गूँजते हैं नारे खालिस्तान के लिए। [34]

महाकवि उदयभानु हंस की सृजनशीलता का आगम दो भावों से होता है। इसमें एक भाव मुख्य है, उनकी संवेदनशील मनोदृष्टि तथा दूसरा विशिष्ट भाव है उनकी तटस्थ, निष्पक्ष अभिव्यक्ति-शैली। राजनीतिक स्वर की कविताओं में भी उन्होंने निष्पक्षता की भावना को नहीं छोड़ा है। जहाँ उन्हें जनता की समस्याएँ व्यथित करती हैं, वहीं उनका आशावाद भी जाग्रत है। देश की विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति को देखकर हंस जी स्वर्णिम भविष्य के प्रति आस्थामयी दृष्टि भी रखते हैं। समस्त राजनीतिक विकृतियों के बावजूद उनका यह विश्वास दृढ़ है कि हर अँधेरी रात का अंत उजले प्रभात से होता है। इसी आशावादी चेतना को हंस जी प्रस्तुत काव्यांश में व्यक्त करते हैं–

है घोर अँधेरा प्रकाश ले आओ,
दुर्गंध है कुछ तो सुवास ले आओ।
भारत को महाशक्ति बनाना है अगर,
फिर से पटेल या सुभाष ले आओ। [35]

संदर्भ

1. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ, गुरु जंबेश्वर प्रकाशन, हिसार, पृ॰ 57
2. उदयभानु हंस, धड़कन, साहित्य कला संगम, हिसार, द्वितीय संस्करण, पृ॰ 52
3. उदयभानु हंस, सरगम (कौमी एकता), साहित्य कला संगम, हिसार, द्वितीय संस्करण, पृ॰ 90
4. उदयभानु हंस, धड़कन, साहित्य कला संगम, हिसार, द्वितीय संस्करण, पृ॰ 52

5. उदयभानु हंस, वंदे मातरम्, गुरु जंबेश्वर प्रकाशन, हिसार, पृ॰ 6
6. उदयभानु हंस, वंदे मातरम्, पृ॰ 6
7. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ, गुरु जंबेश्वर प्रकाशन, हिसार, पृ॰ 25
8. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ, पृ॰ 29
9. उदयभानु हंस, वंदे मातरम् (बापू), पृ॰ 75
10. संपादक रामसजन पांडेय, उदयभानु हंस रचनावली-1, निर्मल प्रकाश, शाहदरा, दिल्ली, पृ॰ 154
11. उदयभानु हंस, वंदे मातरम् (जवाहर ज्योति), पृ॰ 84
12. संपादक रामसजन पांडेय, उदयभानु हंस रचनावली-1(देशभक्ति), पृ॰ 154
13. उदयभानु हंस, वंदे मातरम्, पृ॰ 84
14. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ, पृ॰ 141
15. उदयभानु हंस, वंदे मातरम्, पृ॰ 52
16. उदयभानु हंस, वंदे मातरम्, पृ॰ 51
17. उदयभानु हंस, दर्द की बांसुरी, गुरु जंबेश्वर प्रकाशन, हिसार, पृ॰ 18
18. उदयभानु हंस, अमृत कलश, गुरु जंबेश्वर प्रकाशन, हिसार, पृ॰ 175
19. उदयभानु हंस, अमृत कलश, पृ॰ 181
20. उदयभानु हंस, अमृत कलश, पृ॰ 71
21. उदयभानु हंस, अमृत कलश, पृ॰ 71
22. उदयभानु हंस, अमृत कलश, पृ॰ 71
23. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ, पृ॰ 44
24. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ, पृ॰ 40
25. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ, पृ॰ 40
26. उदयभानु हंस, अमृत कलश, पृ॰ 76
27. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ (युग झाँकी), पृ॰ 39
28. संपादक रामसजन पांडेय, उदयभानु हंस रचनावली-1, पृ॰ 31
29. उदयभानु हंस, दोहा सप्तशती, गुरु जंबेश्वर प्रकाशन, हिसार, पृ॰ 59
30. उदयभानु हंस, दोहा सप्तशती, पृ॰ 58
31. उदयभानु हंस, दोहा सप्तशती, पृ॰ 58
32. उदयभानु हंस, दोहा सप्तशती, पृ॰ 55
33. उदयभानु हंस, दर्द की बाँसुरी, पृ॰ 11
34. उदयभानु हंस, वंदे मातरम्, पृ॰ 20
35. उदयभानु हंस, हिंदी रुबाइयाँ (युग झाँकी), पृ॰ 34

❐ 31-**शाकुंतलम्**
गणपति ज्योतिष अनुसंधान केंद्र
निकट शिव मंदिर, कीर्ति नगर, भिवानी-127021 **(हरि॰)**
फ़ोन : 09416525637

औपन्यासिक भाषा के कुशल चितेरे : मनोहरश्याम जोशी

सुरेशचंद्र, शोध-छात्र
हिंदी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

अभिव्यक्ति का सबसे प्रथम एवं प्रमुख साधन भाषा है, क्योंकि अंत:करण में जैसे विचार एवं भाव रहते हैं, वाणी उन्हें साकार रूप प्रदान करके दूसरों के सम्मुख अभिव्यक्त किया करती है। विचार एवं भावों का संबंध जीवनानुभव से है, क्योंकि जीवन में जितना अधिक अनुभव करते हैं, उतने ही अधिक विचार एवं भाव समृद्ध एवं सशक्त होते जाते हैं। प्रसाद ने इसीलिए कहा था, 'जो कुछ हम अनुभव करते हैं, वाणी उसी का रूप है।'[1] निस्संदेह वाणी हमारे उन्हीं अनुभवों को, हमारे उन्हीं विचारों को अथवा हमारे उन्हीं भावों को व्यक्त किया करती है, जिनको हम जीवन में संकलित अथवा ग्रहण करते रहते हैं। उपन्यास की भाषा जीवन के व्यापक फलक से अनुप्राणित होती है। यह न केवल विचारों और संवेदनाओं को प्रकट करती है, बल्कि उन्हें ग्रहण-योग्य भी बनाती है। उपन्यास को सर्वसुलभ बनाने में भाषा का स्थान सर्वोपरि होता है। सही अर्थों में उपन्यास को गतिशीलता, अर्थवत्ता तथा मूल्यवत्ता प्रदान करने के कार्य में भाषा अहम भूमिका अदा करती है। डॉ॰ दंगल झाल्टे उपन्यास के सृजन में भाषा की महती भूमिका को स्वीकार करते हुए कहते हैं, 'आधुनिक उपन्यासकार समसामयिक परिवेश तथा स्थितियों के भीषण यथार्थ से आक्रांत मनुष्य की जटिलतम प्रक्रियाओं को गहनता से संप्रेषित एवं अभिव्यक्त कर सकने योग्य भाषा के निर्माण में अपूर्व रूप से संलग्न हैं। आधुनिक उपन्यासकारों का मुख्य मंतव्य भाषा को किसी शाश्वत शास्त्रीय नियम के अनुसार प्रांजल परिमार्जित रखना नहीं है, किंतु भाषा को वह एक जीवंत, मांसल एवं लचीले माध्यम की भाँति मानता है, जिसे आवश्यकतानुसार अथवा स्थितियों के अनुरूप प्रयुक्त किया जा सके।'[2] इस प्रकार अपने कथ्य के तीव्र संप्रेषण के माध्यम के रूप में आधुनिक उपन्यासकारों ने भाषा के परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन तथा परिशोधन करके अनेक नवीन प्रयोगों को जन्म दिया है।

बहुआयामी प्रतिभा रखनेवाले मनोहरश्याम जोशी साहित्य-जगत् में श्रेष्ठ उपन्यासकार, कुशल व्यंग्यकार, फ़िल्म पटकथा लेखक, टी॰वी॰ धारावाहिक लेखक, कुशल स्तंभकार एवं श्रेष्ठ संपादक के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने 'कुरु-कुरु स्वाहा', 'कसप', 'हमज़ाद', 'ट-टा प्रोफ़ेसर', 'हरिया हरिक्यूलीज़ की हैरानी', 'क्याप' आदि उपन्यासों में भाषा के अनेक प्रयोग किए हैं। इनके उपन्यासों का भाषा-फलक बहुत विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है, इसलिए इसमें एकरसता नहीं है। इनके भाषा-प्रयोग में एकरूपता, व्याकरण-सम्मत विशेषणहीनता, भावुक

संवेदनशीलता, प्रयोगबहुल कलात्मकता, सटीक शब्द-योजना, बिंबयुक्त अर्थप्रधानता, अभिनव भाषिक प्रयोगशीलता, शैली विच्छिन्नता, सूक्ष्मता, ध्वन्यात्मकता, अभिव्यक्ति-क्षमता और आंचलिकता स्पष्ट दिखाई देती है। इन्होंने तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी, ग्रामीण, प्रांतीय सभी प्रकार के शब्दों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। इनकी भाषा निजत्व की रक्षा करती हुई यथार्थ के बीच उभरने वाले प्रत्येक रेशे को उभारने में पूर्ण सफल हुई है। उपन्यासकार ने भाषा की रचनात्मक वास्तविकता को तो पहचाना ही है, साथ ही उपन्यास में अंतस् और भाषिक सीमा में संतुलन भी स्थापित किया है। भाषा का यह बदलाव बदली हुई संवेदना की देन है। उस नई संवेदना ने उपन्यासकार को भाषा के अनेक नए प्रयोग करने की ओर प्रेरित किया। इस प्रयोग और नए भाषा कसाव ने अनुभूति को गहनता प्रदान की है, भाषिक अर्थवत्ता दी है, उपन्यासों को एक विशेष प्रकार की लय दी है एवं समर्थ संवेदना की प्राणवत्ता, अर्थनिष्ठता, उद्देश्यपूर्णता, विषयानुकूलता और सांकेतिकता प्रदान की है, जिससे भाषा में इतनी सामर्थ्य आ गई है कि प्रामाणिक यथार्थ को उसने साकार कर दिया है। शब्द नए संदर्भों में नए हो गए हैं, जिनके अर्थ कोशगत अर्थों से व्यापक हैं और व्याकरण एवं भाषा-विज्ञान की सीमा से बाहर निकलने लगे हैं। ये शब्द कृत्रिम अर्थ देने के बजाय भाषा की ऐतिहासिक अर्थवत्ता खोजने में लीन हैं और निजी अनुभूति की विशिष्टता से इसे नए संस्कार देने चाहे हैं। इस भाषा के निर्माण में देश के निर्माणपरक और सहज उन्मुक्तिपरक रूपों का विशेष योग है। उपन्यासकार ने जहाँ सीधी-सादी तथ्यात्मक भाषा को चुना है, वहीं कृत्रिम भाषा के सहारे नई भाषा बुनने का प्रयास भी किया है। साथ ही भारतीय जनमानस की नई चिंतनशक्ति ने भी उपन्यासकार को प्रभावित कर भाषा को प्रौढ़ और प्रांजल बनाने में भी पूर्ण सहयोग दिया है।

मनोहरश्याम जोशी के प्रत्येक उपन्यास में भाषागत विविधता देखने को मिलती है। इनका पहला उपन्यास 'कुरू-कुरू स्वाहा' वास्तव में भाषा की प्रयोगशाला प्रतीत होता है। 'कुरू-कुरू स्वाहा' उपन्यास में विशेष रूप से संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि मनोहरश्याम जोशी ने अपने संस्कृत-पांडित्य का परिचय देने का निश्चय कर लिया हो। लेखक ने अपनी विद्वत्ता का परिचय उपन्यासों में संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग करके भी दिया है। उदाहरणार्थ– 'ईशावास्यमिदम् सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधाः कस्यस्विद् धनम्।[3] जोशी जी का शब्द-भंडार केवल संस्कृत भाषा से ही निर्मित नहीं हुआ है, बल्कि उनमें अन्य भाषाओं तथा कई प्रकार के शब्दों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जोशी ने जिन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें अरबी-फ़ारसी, अँग्रेज़ी, भोजपुरी, अवधी, पहाड़ी, हरियाणवी तथा स्थानीय भाषाओं के शब्द हैं। मनोहरश्याम जोशी ने अपने पहले उपन्यास 'कुरू-कुरू स्वाहा' से लेकर अंतिम उपन्यास 'कसप' में अँग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे– रेलिंग, आइसक्रीम, टाइट, रिकॉर्डिंग, ओरिजनल, ईडियट, हॉस्टल, सिस्टर, रिपीट, इंटेलेक्चुअल, यूनिक, सिचुएशन, डायलॉग, लोकेशन, माइंड, इंप्रूव, मास्टरपीस, केंडल लाइट डिनर, माइनस, सिंपल, मैग्नीफाइंग ग्लास, वुडिंग, लोनलिनेस, गैस्टहाउस, एडिटर, रिजेक्ट, क्लर्की, रिसेप्शन, हैंडशेक, क्वीन, स्ट्राइक, एक्सक्यूजमी, इंटरव्यू आदि अँग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ लेखक ने अँग्रेज़ी भाषा के वाक्यांशों को भी उपन्यासों में जगह दी है। लेखक ने उपन्यासों में अँग्रेज़ी के जिन

शब्दों का प्रयोग किया है, पाठक उन शब्दों का उच्चारण आसानी से कर सकता है। अँग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग में लेखक में कहीं भी लेखन एवं उच्चारण-संबंधी दोष दिखाई नहीं देता है। इससे यह आभास होता है कि लेखक का अँग्रेज़ी ज्ञान काफ़ी गहरा व ठोस है।

मनोहरश्याम जोशी ने उपन्यासों की भाषा की सजीवता बनाए रखने के लिए अरबी-फ़ारसी और उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है। उदाहरणत: नाचीज़, वहैशियत, नुस्खा, अव्वल, मुकद्दर, वल्द, मरहूम, मुकाम, ख़्वाहिश, अफ़सोस, ख़ुशफ़हमी, गुंजाइश, नासाज़, सख़्त, कोफ़्त, खातून, निगाह, मुखातिब, तवारूफ़, अल्फ़ाज, सिज़दे, सोहबत, पेशेखिदमत, अफ़सानानिगार, ख़ानदानी, नामुराद, फ़रमाइश, शुक्रियाशक्ल, ख़ैरियत, औलाद, सनसनीखेज़, मुफ़लिसी, अफ़सान:, शरीफ़जादियाँ, दिलकश, आशिक़ाना आदि शब्द उपन्यासों के पात्रों द्वारा कही गई बात को प्रभावशाली बना देते हैं। ये वाक्य-रचना में सौंदर्य उत्पन्न करने में सफल हैं। उपन्यासों में अरबी-फ़ारसी और उर्दू के शब्दों का प्रयोग मुसलमान पात्र तो करते ही हैं, साथ ही साथ सीधे-सादे, अनपढ़ एवं पढ़े-लिखे पात्र भी अपने संवादों में उर्दू भाषा के शब्दों का बेहिचक प्रयोग करते हैं। अरबी-फ़ारसी के प्रति लेखक का कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं दिखाई पड़ता, बल्कि पात्रों के आपसी संवादों में स्वत: ये शब्द समाहित हो जाते हैं। 'हमज़ाद' उपन्यास में लेखक ने अरबी-फ़ारसी के शब्दों का हिंदी अनुवाद, पाठकों की सुविधा के लिए दिया है, जैसे– ताईद (समर्थन), अज़हद (बहुत), मुतफन्नी (धूर्त), मुत्मइन (संतुष्ट), तसव्वुर (कल्पना), अहले-अदब (साहित्यज्ञाता), तखफ़्युलज़ाद (कल्पना-प्रसूत), ताक़त-ए-पर्वाज़ (उड़ान की तारीख़), तवारीख़ (इतिहास), खवातीन (औरतें), उन्वान (शीर्षक), तहज़ीबो-तमद्दुन (सभ्यता-संस्कृति), महरूम (वंचित), ख़ुदगर्ज़ और ख़ुदपरस्त (स्वार्थी और आत्मपूजक), उन्सीयत (लगाव), तवज्जोह (ध्यान) आदि हिंदी अनुवाद सहित अरबी-फ़ारसी के शब्द हैं। इस प्रकार कथ्य और शिल्प की दृष्टि से 'हमज़ाद' उपन्यास हिंदी कथा-संसार में एक नई सड़क बनाता है, जो वास्तव में उर्दू को हिंदी की ही शैली माननेवाले हिंदी-प्रेमियों को और देवनागरी में फ़ारसी सही लिखने का आग्रह करनेवाले उर्दूपरस्तों को समान रूप से प्रभावित करती है।

मनोहरश्याम जोशी के उपन्यासों में स्थानीय भाषा अथवा देशज भाषा के शब्दों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपनी आरंभिक रचनाओं से ही देशज शब्दों के प्रसंगानुकूल एवं पात्रानुकूल प्रयोग की ओर इन्होंने ध्यान दिया है। इसका अर्थ यह है कि जोशी ने भाषा को आरंभ से ही लोकजीवन के निकट रखा है और उसकी यथार्थ एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए स्थानीय शब्दों को उचित स्थान दिया है, यथा–इदर, ढिबरी, तलक, गहना, साँझ, दुखड़ा, खिलंदड़, लड़केधी, बेमण्ढी, घाम, घरघुस्सू, फटेहाल, मदुए, अलच्छनी, विलैती, ढर्रा, काखी, आमा भदि देशज शब्दउपन्यासों के भाषिक सौंदर्य को चार-चाँद लगाते हैं।

उपन्यासकार मनोहर श्याम जोशी विभिन्न प्रकार की आवाज़ों के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे भाषा में विशिष्ट प्रकार की ध्वन्यात्मकता आ गई है, जैसे– 'ट्रा- ला-ला-ला-ला ट्रिंग, ट्रा-ला-ला-ला-ला ट्रिंग।', 'ही-ही-ही-ही-हिच।', 'धा-धिन-धिन-धा, धा-धिन-धिन-धा, ना-तिन-तिन-ता, धा-धिन-धिन-धा।' इत्यादि शब्द उपन्यासों के शिल्प-सौंदर्य को बढ़ाते हैं। लेखक ने अपने उपन्यासों में पात्रों के संवाद में सजीवता लाने के

लिए कुमायूँनी हिंदी के शब्दों का प्रयोग किया है। इनके उपन्यासों के शीर्षक– 'कसप', 'क्याप' आदि कुमायूँनी हिंदी के ही शब्द हैं। इन शब्दों के प्रयोग में लेखक ने विशेष सावधानी बरती है। पाठकों की सुविधा के लिए इन शब्दों का अर्थ फुटनोट्स के रूप में दे दिया गया है। जैसे– भिसूँगी (फूहड़) बोज्यू (भाभी), बैणा (बहन), इजा (माताजी), चहा (चाय), कुँवर कलेवा (शादी की अगली सुबह बरात को दिया जानेवाला भोज), सिंगल (सूजी का जलेबीनुमा पकवान), क्याप (अजीब से), निमुजी (निम्न वर्ग), खँक (खली, कंगाल) केंजा (छोटी माँ), भिंज्यू (जीजा), झन (मत), कसप (क्या जाने), मालाकोट (ननिहाल), इकलट्ट (अकेला), धागुल-सुतुल (शिशुओं के जेवर), जौल (कुमायूँनी व्यंजन), पेंच (उधार), चेली (बेटी), धुलौ (दूल्हा, पति), गाड़ (पहाड़ी नदी), राठ (परिवार), जतकाली (प्रसवा) आदि हैं। जोशी जी ने 'कसप', 'क्याप', 'हरिया हरिक्यूलीज़ की हैरानी' आदि उपन्यासों में कुमायूँनी हिंदी के शब्दों का प्रयोग किया है। यदि लेखक का पहला उपन्यास 'कुरू-कुरू स्वाहा' संस्कृतनिष्ठ है तो 'हमज़ाद' उपन्यास में अरबी-फ़ारसी के शब्दों की भरमार है।

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में गीत या उसकी कोई कड़ी, पद्यांश, दोहा या शेर दिखाई पड़ता है। यद्यपि ऐसे अधिकांश गीत-शेर आदि एक-दो पंक्तियों के हैं और प्रसंगवश पात्रों द्वारा या लेखक द्वारा किसी मनोभाव में आकर प्रकट किए जाते हैं, यथा–

1. 'तेरी जवानी तोबा रे तोबा, दिलरुबा, दिलरुबा।' [4]
2. 'वह क्या है दो नैना मत खाइयो?' [5]
3. 'मालूम नहीं है यह ख़ुशामद कि हक़ीक़त,
   कह दे कोई उल्लू को अगर रात का शहबाज़।' [6]
4. 'जाने मुज़तर की हक़ीक़त को नुमायाँ कर दूँ,
   दिल के पोशीद: ख़यालों को भी उयाँ कर दूँ।' [7]
5. 'हम नहीं, कम्पैं बिटिया हमारी, ये तो कम्पै है कूस की डारी।' [8]
6. 'मेड़ा धरम भी तू, मेड़ा भरम भी तू,
   मेड़ा शरम भी तू, मेड़ा शान भी तू।' [9]

इस प्रकार इन काव्य-पंक्तियों का प्रयोग कर, औपन्यासिक पात्र आपस में चुहलबाज़ी, व्यंग्य, हँसी-मज़ाक, उपहास करते हैं। काव्य-पंक्तियाँ उपन्यासों की भाषा में चार चाँद लगा देती हैं। अत: ज़्यादा से ज़्यादा काव्य-पंक्तियों का प्रयोग कहीं भी भाषा में दुरूहता या प्रवाह में व्यवधान नहीं उत्पन्न कर रहा है। लेखक ने उपन्यासों में अँग्रेज़ी भाषा की काव्य-पंक्तियों का प्रयोग भी धड़ल्ले से किया है, जो लेखक के अँग्रेज़ी भाषा पर पूर्ण अधिकार को प्रकट करते हैं। अर्चना वर्मा के अनुसार, 'भाषा के साथ लेखक का रिश्ता बहुत आत्मीय और अंतरंग है। यह रिश्ता ही भाषिक व्यापार से इस उपन्यास (कुरू-कुरू स्वाहा) को रंगधर्मी कलाकृति का निकटतम स्थानापन्न बना देने में सफल हुआ है। ऐसी वाक्चातुरी और विदग्धता हिंदी में अरसे के बाद दिखी होगी। हिंदी के गुजराती, पंजाबी, बंगाली, बंबइया आदि अनेक संस्करण मौजूद हैं और भाषा की रचनात्मक प्रकृति की नई संभावनाओं को उजागर करते हैं। ये

उपलब्धियाँ भी अपने आपमें कम महत्त्वपूर्ण नहीं, किंतु इन सबसे आगे और ऊपर जो धर्म भाषा निबाहती है, वह वाग्छल से घिरे हुए जीवन-व्यापार में, घिसे हुए शब्दों में, फिर से अर्थ-अनुसंधान की कोशिश है। इसके लिए स्वयं वाग्छल का ही घटाटोप खड़ा करते हुए लेखक, उस हर जगह को रेखांकित करता है, जहाँ वाग्छल है अथवा होने की संभावना है।' [10]

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों के संवादों की वाक्य-रचना काफ़ी छोटी एवं सरल है, जो भाववृत्तियों की दृष्टि से असरकारक है। पात्रों के तनाव, चांचल्य, उन्मुक्तता, झिझक और द्वंद्व से बने वाक्य शिल्प को जीवंत बनाते हैं। सामान्य कथा-प्रवाह में छोटे-छोटे साधारण वाक्य गत्यात्मकता ला देते हैं। सभी उपन्यासों में वाक्य-गठन में ऋजुता, संक्षिप्तता और प्रासादिकता है। अभिधात्मक कथनों के कारण संप्रेष्यता अधिक है, परंतु प्रकृति-चित्रों, मानसी-स्पंदनों, रोमानी अभिव्यंजनाओं, अभावात्मक परिदृश्यों और ओजपरक संदर्भों में वाक्य-रचना विशिष्ट बन गई है। कहीं-कहीं शब्दों, पदबंधों या वाक्याशों की पुनरावृत्ति हुई है तो कहीं भावात्मक गद्य-लय का सर्जन है। 'कुरू-कुरू स्वाहा' उपन्यास की मुख्य महिला पात्र पहुँचेली अपने संवादों में छोटे-छोटे वाक्यों का ही प्रयोग करती है। उपन्यास में लेखक द्वारा कल्पित पात्र 'मैं' के अनुसार, 'वह उठी। उसने मुझे हाथ पकड़कर आग्रहपूर्वक बैठाया और हँसकर कहा, तुम तो पत्रकार भी हो, प्रेस के लिए फ्री शो भी होता है।'

'प्रीव्यू होता है, प्रेस के लिए।' मैने एक काल्पनिक चुइंगम चबाते हुए कहा।

'जुबली पर भी तो प्रेस को बुलाते हैं।' वह बोली।

'डायमंड जुबली मुबारक हो।' मैंने कहा, 'और कुछ?'

'ख़ामोशी सपने देखती है तुम्हारी?' उसने पूछा।

'देखती है जब-जब अंधी हो जाती है।'

'क्या देखती है?'

'एक बड़ी-सा काली बिल्ली।'

'क्या करती है बिल्ली?'

'पंजे मारती है।'

'किसे?'

'ख़ामोशी को।' [11]

'कसप' उपन्यास में भी नायक और नायिका का आपसी संवाद छोटे-छोटे कथनों में ही होता है। यह छोटे-छोटे वाक्य पात्रों के मन के भाव एवं अनुभूतियों को व्यक्त करने में सक्षम हैं। 'ट-टा प्रोफ़ेसर' उपन्यास के पात्र कलावती बेन और मि॰ जोशी अपनी वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए छोटे-छोटे संवादों का ही सहारा ले हैं। यथा–

'अल्मोड़ा जा रहा हूँ तुम्हारे लिए क्या लाऊँ?'

'आपने सुना नहीं माट सैप कि बिन माँगे मोती मिलें, माँगे मिले न भीख?'

'मैं तुम्हें कैसा लगता हूँ?'

'मुझे तो सब एक-से ही लगते हैं, माट सैप।'

'तुम बहुत सुंदर हो।'

'धन्यवाद।'

'मैंने तुम पर एक कविता लिखी है।'

'यही बात आपने और कितनों से कही है माट सैप?' [12]

उपन्यासों के अशिक्षित और ग्रामीण पात्र कुमाऊँनी हिंदी का प्रयोग बातचीत के लिए करते हैं, वहीं पढ़े-लिखे उच्चशिक्षित पात्र कभी-कभी अँग्रेज़ी में वार्तालाप करते दिखाई देते हैं। 'कसप' उपन्यास का नायक डी॰डी॰ और नायिका के पिता कर्नल शास्त्री (ठुल दा) आपसी संवाद अँग्रेज़ी भाषा में ही स्थापित करते हैं। नायक द्वारा नायिका से विवाह न करने की स्थिति में, एक दिन आवेश में आकर वे नायक को अँग्रेज़ी में अपशब्द कहते हुए, उसका हाथ पकड़ लेते हैं तो डी॰डी॰प्रत्युत्तर में कहता है, 'हैन्ड्स ऑफ़ मी, इफ़ यू प्लीज़, कर्नल शास्त्री।' [13] 'हरिया हरिक्यूलीज़ की हैरानी' उपन्यास की प्रमुख अशिक्षित महिला पात्र हेमुली बोज्यू कुमाऊँनी हिंदी में ही अपनी बात कहती है। उपन्यास-नायक हरिया के साथ होनेवाला उनका प्रत्येक संवाद कुमाऊँनी हिंदी में ही स्थापित होता है। वह हरिया से कहती है, 'शच ललला, तुमने तो अपने बाबू की शेवा में अपनी जवानी श्वाहा कर दी। ...तुम्हारा ब्याह भी नहीं हुआ। मेरे हुआ तो ऐशे-शे जो द्वाराचार के बखत शे ही पगलेट कर रहा था। छै अलग ठहरा। पूरे बारह शाल शेवा कराके तुम्हारे दाज्यू, कोई बच्चा भी नहीं दे गए जो आगे को शहारा बनता।' [14] इस प्रकार भाषा को पात्रानुकूल एवं चित्रात्मक बनाना जोशी की शैली की अन्य विशेष्ताएँ हैं। जोशी ने पात्र की जाति, धर्म, वर्ग, शिक्षा-स्तर परिवेश आदि के अनुरूप, उनकी भाषा का निर्माण कर, हिंदीभाषा को एक नया मुहावरा प्रदान किया। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों के पात्र बहुभाषी हैं। ये अवधी, भोजपुरी, गुजराती, हरियाणवी आदि भाषा एवं बोलियों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। इससे यह आभास होता है कि उपन्यासकार का केवल एक भाषा पर ही अधिकार नहीं है, बल्कि उसे दूसरी अन्य क्षेत्रीय बोलियों एवं भाषाओं की जानकारी है। निष्कर्षत: मनोहर श्याम जोशी की भाषा का आर्रंभिक रूप प्रेमचंद के उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। जीवन-यथार्थ और व्यापक अनुभूति को लेखक ने प्रेमचंद की ही तरह प्रौढ़ अभिव्यक्ति प्रदान कर भाषा का एक नवीन रूप पाठकों के सामने उपस्थित किया। उनकी भाषा अर्थ की गहनता एवं व्यंजना से युक्त सूक्ष्मताओं से ओत-प्रोत है। प्रेमचंद की तरह ही, भाव एवं अनुभूति को अत्यंत अल्प शब्दों में व्यंजित करने और दार्शनिक सिद्धांतों को भी वैचारिक धरातल पर कुछ-कुछ सामाजिक गंध देनेवाली भाषा से अत्यंत शक्तिमत्ता के साथ बाँधने में 'हरिया हरिक्यूलीज़ की हैरानी' उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी अधिक सफल रहे हैं। 'कुरू-कुरू स्वाहा' उपन्यास में जोशी जी शब्दों के जादूगर और भाषा के शिल्पी प्रतीत होते हैं। उन्होंने इस उपन्यास में भाषा का नया संयोजन किया है। उनकी भाषा संस्कृत प्रचुर होने के साथ, उसमें बिंब प्रधानता, गहरी व्यंजना, प्रतीकात्मकता और विस्फोटन के नए आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। प्रादेशिक भाषा के प्रयोग द्वारा सबसे विचारणीय और महत्त्वपूर्ण शैल्पिक उपलब्धि के अंतर्गत 'कसप', 'हमज़ाद' और 'ट-टा प्रोफ़ेसर' उपन्यास आते हैं। इन उपन्यासों में लेखक ने आंचलिक भाषा का इतना गहरा और सटीक प्रयोग किया है कि वह उपन्यास का गौण पक्ष न लगकर, उसका सर्वश्रेष्ठ महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रतीत होता हैं। भाषा के क्षेत्र में सार्थक प्रयोगधर्मिता, ध्वन्यात्मकता तथा जनपद इयत्ता के अनेक अनछुए आयामों को लेखक ने उद्घाटित किया है। इस प्रकार उपन्यासकार मनोहर श्याम जोशी ने भाषागत अनेक प्रयोग किए हैं तथा वे भाषा की

नई संभावनाओं की ओर निरंतर अग्रसर दिखाई देते हैं।

संदर्भ

1. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ॰ 24
2. डॉ॰ दंगल झाल्टे, उपन्यास समीक्षा के नए प्रतिमान, पृ॰ 131
3. अर्चना वर्मा (लेख), हिंदी उपन्यास 1950 के बाद, संपादक (निर्मला जैन) पृ॰ 103-104
4. मनोहरश्याम जोशी, कुरू-कुरू स्वाहा, पृ॰ 42
5. मनोहरश्याम जोशी, कुरू-कुरू स्वाहा, पृ॰ 22
6. मनोहरश्याम जोशी, कसप, पृ॰ 11
7. मनोहरश्याम जोशी, हमज़ाद, पृ॰ 30
8. मनोहरश्याम जोशी, हमज़ाद, पृ॰ 115
9. मनोहरश्याम जोशी, कसप, पृ॰ 30
10. मनोहरश्याम जोशी, हमज़ाद, पृ॰ 124
11. मनोहरश्याम जोशी, कुरू-कुरू स्वाहा, पृ॰ 82
12. मनोहरश्याम जोशी, ट-टा प्रोफ़ेसर, पृ॰ 37
13. मनोहरश्याम जोशी, कसप, पृ॰ 45
14. मनोहरश्याम जोशी, हरिया हरिक्यूलीज़ की हैरानी, पृ॰ 20

डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का बालकाव्य के विविध रूप

कु॰ स्वाति शर्मा, शोध-छात्रा, हिंदी विभाग
एम॰जे॰पी॰ रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली

डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम के बालकाव्य का वर्गीकरण करने से पूर्व बालगीत और उसकी प्रकृति पर चर्चा आवश्यक है। 'बालगीत सरस, सरल और प्रवाहमयी भाषा में आबद्ध वे पद्य रचनाएँ हैं, जो बाल मनोभावनाओं, बाल रुचियों एवं बाल स्वभाव के अनुकूल बाल परिवेश का रोचक एवं यथार्थ रूप प्रस्तुत कर सकें। [1] इस दृष्टि से देखा जाए तो बालगीतों की रचना करते समय बालक की रुचियों, उसका स्वभाव, उसके आस-पास के परिवेश के साथ-साथ बाल-मनोविज्ञान का सम्यक् ज्ञान भी अत्यंत आवश्यक होता है। इन सभी विशेषताओं से युक्त बालगीतों की रचना करना कोई सरल कार्य नहीं है। एक विचारक के मतानुसार 'सफल बाल गीतकार वही हो सकता है, जिसमें बच्चों की दृष्टि से चिंतन करने की क्षमता निहित हो।' [2]

बच्चों के लिए बालगीतों की उपयोगिता निम्न शब्दों में प्रकट होती है। 'बच्चों के लिए बालगीत मनोरंजन का साधन तो है ही, अत्यंत उपयोगी भी है। बालगीतों में शिक्षा के माध्यम से बालकों में अनेक गुण विकसित किए जा सकते हैं।' [3] वही बालगीत सफल होते हैं, जो बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उनमें सद्‌गुणों का भी विकास करें। बालगीतों के विषय में डॉ॰ कुसुम डोभाल के विचार उल्लेखनीय हैं– 'बालगीत काव्य का वह पक्ष है, जिसमें लय, राग व छंद की प्रधानता रहती है। जिसमें स्वरों का प्रवाह और संगीतबद्धता बच्चों के हृदय में आनंद का संचार करती है तथा वस्तुतत्त्व की अपेक्षा रूपतत्त्व का सौंदर्य अधिक होता है। बालगीतों की भाषा सरल, सरलतम आधुनिक शब्द योजना तथा पुनरुक्ति वाली होती है। गेय तत्त्व बालगीतों की आत्मा तथा संगीतबद्धता प्राण होती है।' [4]

बालगीत मनोरंजक होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी होने चाहिए। बालगीत बच्चों की रुचियों, स्वभाव, मनोभाव के साथ-साथ उनके परिवेश का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर सकें। यही बालकाव्य की कसौटी है

बालकों की बालसुलभ जिज्ञासाएँ, स्वभाव, रुचियाँ व कल्पनाशीलता भले ही आयु, स्थान और वातावरण के कारण कुछ परिवर्तित हो जाती हो, लेकिन उनकी मूल प्रवृत्ति कभी नहीं बदलती। वे आज भी वैसे ही हैं, जैसे हज़ारों वर्ष पूर्व हुआ करते थे। कुछ-न-कुछ गुनगुनाते रहना उनकी आदत होती है। छोटे बच्चों को सीमित शब्दों वाली तुकबंदियाँ अच्छी लगती हैं, तो कुछ बड़े होने पर कल्पनाशक्ति और शब्द भंडार को बढ़ानेवाले गीत अच्छे लगते हैं। जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती है, परिवेश और आवश्यकताओं के अनुरूप उनकी रुचियाँ बदलने लगती हैं। बचपन के खेल-खिलौनों तथा पशु-पक्षियों से भरा संसार पीछे छूट जाता है और

स्कूल, किताबों, शिक्षकों व भिन्न-भिन्न स्वभाववाले मित्रों से सामना होता है। सामाजिक व्यवस्थाओं, परिस्थितियों, राष्ट्र आदि से परिचय होता है। बालकाव्य पर भी इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है और अच्छा साहित्यकार भी वही है, जो इन परिवर्तनों को पकड़कर चलता है। इसी आधार पर बाल-साहित्य पर शोध करने वाली डॉ॰ राजकिरन दीक्षित ने बालगीतों को तीन रूपों में बाँटा है। वे हैं– आयु, विधा और विषय।

(क) आयु के अनुरूप : आयु के अनुरूप बालकाव्य के तीन भेद हैं– शिशुगीत, बालगीत तथा किशोरगीत। शिशुगीत बहुत छोटे बच्चों के लिए गेय एवं तुकबंदी पर आधारित होते हैं। बालगीत शैशवावस्था के बाद के आयुवर्ग के बच्चों की रुचि पर आधारित होते हैं। बाल्यावस्था तथा युवावस्था के मध्य की आयुवर्ग के मध्य लिखी गयी वे कविताएँ, जिनका प्रमुख उद्देश्य नैतिक गुणों का विकास करना होता है, किशोर गीत कहलाते हैं।

(ख) विधा के अनुरूप : विधा के अनुरूप बालकाव्य गेय, वर्णनात्मक, छंदबद्ध या मुक्त तथा तुकबंदी पर आधारित होते हैं।

(ग) विषय के अनुरूप : विषय के अनुरूप बालकाव्य के अंतर्गत खेल, पशु-पक्षी, प्रकृति, त्योहार, सूरज, चाँद, सितारे, आकाश, विज्ञान के आविष्कार, राष्ट्रीय पर्वों आदि के गीत तथा आधुनिकता-बोध के गीत आते हैं।

विधा के अनुरूप डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का संपूर्ण काव्य साहित्य गेय, लयात्मक एवं तुकबंदी पर आधारित है। आयु तथा विषय के आधार पर डॉ॰ विक्रम के बालकाव्य का विस्तृत अध्ययन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत करना अधिक समीचीन होगा–

1. शिशु गीत
2. किशोरावस्था-संबंधी गीत
3. खेल-संबंधी गीत
4. त्योहार या उत्सव-संबंधी गीत
5. प्रकृति-संबंधी गीत
6. ऋतु-संबंधी गीत
7. पशु-पक्षी-संबंधी गीत
8. राष्ट्र-संबंधी गीत
9. आधुनिकताबोध-संबंधी गीत

1. **शिशु गीत :** दो से पाँच वर्ष तक की आयु के बालक शिशु कहलाते हैं और उनके लिए लिखा गया काव्य शिशुकाव्य कहलाता है। इसकी मुख्य विशेषता तुकबंदी तथा अंत्यानुप्रास है, जो पाँच वर्ष तक की अवस्था के भाषा विकास के अनुरूप होता है।

शिशुगीत बालपन का वह अंकुर है, जिसको सजा-सँवारकर शिशु के कोमल मन रूपी धरती में रोपा जाता है। पराग के भूतपूर्व संपादक **आनंदप्रकाश जैन** का मत है कि– 'शिशुगीतों की भाषा कोई भी हो, उनकी पहली शर्त यही है कि उनमें कुछ ऐसा अटपटापन हो जो बरबस ही गुदगुदाए, ख़ास तौर पर बच्चों के सरल बोध को, और उन बड़ों को भी, जिनकी प्रवृत्ति बच्चों के समान हो।' [5]

डॉ॰ विक्रम ने ऐसे ही अनेक उत्कृष्ट शिशु गीतों की रचना की है। सुबह सवेरे का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'बड़े सवेरे चिड़ियों ने, आवाज़ लगाई चीं-चीं-चीं।
बड़े सवेरे दूर सड़क पर, मोटर बोली पीं-पीं-पीं।

बड़े सवेरे मुर्ग़े ने, आवाज़ लगाई कुकड़ूँ-कूँ
बड़े सवेरे कौआ बोला–'संग तुम्हारे मैं भी हूँ।' [6]

तुकबंदी एवं सरल काव्य विन्यास द्वारा गर्मी का अत्यंत रोचक वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया गया है–

ताल तलैया सूखे भैया, सब चिल्लाते हापा-दैया।
छम्मक छैया करे मघैया, हाय री गर्मी ता-ता थैया।
सूरज भैया आग लगाते, दम्मक दैया।
खड़ी रँभाएँ मेरी गैया।
हाय री गर्मी' [7]

सच्चा शिशुगीत तो शिशु की आत्मा से निकलता है। एक विद्वान हैगर्ड ने कहा है– 'जीवन के प्रारंभ में ही बच्चों को शिशुगीत देकर हम उसका संबंध उस सृष्टि से जोड़ देते हैं, जो सर्वत्र नियम से क्रमबद्ध है।' [8]

बच्चे की प्रकृति होती है कि वह जिस काम में रुचि लेता है फिर उस काम में वह दिन-भर लगा रहता है। कवि ने एक ऐसे ही बच्चे का चित्रण किया है, जिसे चित्रकारी और पशु दोनों पसंद हैं। चित्रकारी करते हुए उसका पूरा दिन कैसे बीत जाता है, पता ही नहीं चलता–

'अपनी कॉपी के पन्नों में, मैंने चित्र बनाए पाँच।
शेर खड़ा जंगल के भीतर, बंदर दिखा रहा है नाच।
हाथी दादा लिए सूँड़ में, चूस रहे हैं गन्ना।
दो पैरों पर हाथ जोड़कर, खड़ी लोमड़ी पन्ना।
चिड़ियाघर में घूम रहा है, बड़े शान से चीता।
इन चित्रों पर रंग चढ़ाते, सारा दिन यूँ बीता। [9]

डॉ॰ विक्रम का एक अन्य शिशुगीत उल्लेखनीय है, जिसमें बंदर और गौरैया के माध्यम से जाड़े का वर्णन किया गया है। कड़ाके की ठंड से काँपता बंदर माली से कोट माँग रहा है–

अरे बाप रे इतना जाड़ा, बंदर बोला डाली से–
कट-कट, कट-कट, दाँत बज रहे, कोट माँगता माली से।

आँगन में बैठी गौरैया, काँप रही है थर-थर-थर।
सूरज दादा कई रोज से, गये हुए हैं छुट्टी पर। [10]

बंदर का कोट माँगना, गौरैया का काँपना और सूरज के छुट्टी पर जाने की बात सुनकर शिशुओं की हँसी अनायास फूट पड़ती हैं। डॉ॰ विक्रम के शिशु गीतों में नटखटपन एवं चुटीलापन इतना अधिक है कि वे खुद-ब-खुद बच्चों को लुभाते हैं। बाल साहित्यकार निरंकारदेव 'सेवक' के अनुसार– 'शिशुगीत न तो वातावरण और परिस्थितियों के प्रभाव से रचे जाते हैं, न तो बड़ों की समझ या दूसरी भाषाओं की प्रेरणा से। उनमें तो शिशुओं की अपनी भावनाएँ, जिज्ञासाएँ और प्रतिक्रियाएँ अपने आप मुखरित होती हैं।' [11] इस कथन का प्रभाव डॉ॰ विक्रम के ढेर सारे शिशु गीतों पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है। उनके हर शिशु गीत बच्चे के अपने कोमल मन के सहज उद्‌गार हैं।

2. **किशोरावस्था-संबंधी गीत :** विद्वानों ने किशोरावस्था को 'तूफ़ान की अवस्था' कहा है। संवेगों और भावनाओं की अधिकता इस आयुवर्ग के बच्चों को नाज़ुक मोड़ पर ला खड़ा करती है। इसी अवस्था में उन्हें अच्छा-बुरा, ऊँच-नीच की पहचान कराई जा सकती है। 'इस अवस्था में बालक जिन चीज़ों को देखता है या व्यवहार में लाता है उनका रहस्य जानना चाहता है। वह अपने आपसे और अपनी योजनाओं से ही संतुष्ट नहीं होता वरन् दूसरों के जीवन के बारे में जानने के लिए उत्सुक रहता है, और उनके सुख-दु:ख, भय, खोज आविष्कारों को जानने का प्रयत्न करता है।' [12]

किशोरों के इस मनोविज्ञान का अध्ययन यह सोचने पर विवश कर देता है कि आख़िर किस प्रकार का साहित्य रचा जाए, जो उनकी भावनाओं के तूफ़ान को नियंत्रित कर मानसिक क्षुधा को तृप्त कर सके। इसीलिए किशोरों के लिए साहित्य वही लिख सकता है, जिसे उनके मनोविज्ञान की अच्छी पकड़ हो। डॉ॰ विक्रम इस मनोविज्ञान के सिद्धहस्त कवि हैं। उन्होंने 'खेल-खेल में' यह कर दिखाया है–

खेल-खेल में आगे-आगे बढ़ना सीखो जी,
एक-एक उन्नति की सीढ़ी चढ़ना सीखो जी।
खेल-स्वास्थ्य का मूलमंत्र, है, इसकी महिमा न्यारी।
खेल बने साधन तो महके,जीवन की क्यारी-क्यारी।
नई दिशा में नये रास्ते गढ़ना सीखो जी,
खेल-खेल में आगे-आगे बढ़ना सीखो जी। [13]

डॉ॰ विक्रम के लिए प्रकृति सहचरी है, ऋतुओं में उन्हें नयापन दिखता है। तभी तो जाड़ा क्या है? जाड़े में क्या होता है? प्रकृति में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं? मौसम व दिन कैसे हो जाते हैं? इन सभी प्रश्नों का उत्तर कवि की निम्न कविता में बहुत ही सरल ढंग से मिल जाता है–

घट गया दिनमान, जाड़ा आ गया
बँट गया है ध्यान, जाड़ा आ गया।
छिटककर फैली है चारों ओर देखो
धूप की मुस्कान, जाड़ा आ गया।
कोट, स्वेटर बिक रहे हैं सब जगह
सज गई दुकान, जाड़ा आ गया।
काँपते बंदर से चिड़िया ने कहा–
कैसे हो हनुमान, जाड़ा आ गया?'[14]

आज इक्कीसवीं सदी की लोमड़ी अंगूर को तोड़कर अपनी धाक जमा लेती है। वह यह बात झूठी सिद्ध कर देती है कि अंगूर खट्टे हैं और वह उन्हें नहीं तोड़ सकती। डॉ॰ विक्रम की यह रचना किशोरों को प्रेरणा प्रदान करती है–

आज लोमड़ी ने जैसे ही देखा लटक रहे अंगूर,
गुच्छे-गुच्छे फैले हैं, मगर पकड़ से हैं सब दूर।

लगा पेड़ पर झट सीढ़ी को, तोड़ लिया सारा अंगूर,
सबके सब रह गए देखते, पास खड़े थे, कुछ थे दूर।

बदल गया वह समय और अब आया नया ज़माना है,
इक्कीसवीं सदी में सबको, आगे-आगे जाना है।[15]

बच्चे के बढ़ने के साथ ही उससे जुड़े व्यक्तियों की अपेक्षाएँ भी बढ़ने लगती हैं। एक ओर वह शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के दौर से गुज़र रहा होता है तो दूसरी ओर किताबों का बोझ, पढ़ाई का दबाव उसके कोमल मन-कमल को मुरझा देता है। क्या पढ़ूँ? क्या न पढ़ूँ? इसी उधेड़बुन में घिरे बच्चे का एक सजीव चित्र कवि ने कुछ इस प्रकार खींचा है–

इक ऐसी तरकीब़ सुझाओ, तुम कंप्यूटर भैया।
बस्ते का कुछ बोझ घटाओ, तुम कंप्यूटर भैया।
हिंदी, इंग्लिश, जी॰के॰ का ही, बोझ हो गया काफ़ी।
बाहर पड़ी मैथ की कॉपी, कहाँ रखें ज्योग्राफ़ी।
रोज़-रोज़ यह फूल-फूलकर, बनता जाता हाथी।
कैसे इससे मुक्ति मिलेगी, परेशान सब साथी।'[16]

बस्ता भारी होता जा रहा है। ट्यूशन के कारण खेल के लिए समय निकाल पाना मुश्किल हो गया है। आँखों पर चश्मा चढ़ गया है। इससे बचकर बच्चा कहाँ जाए, क्या करे, कैसे यह बोझ कम हो, यह सोचकर उसका सिर चकराने लगता है। बस्ते का बोझ अब उसे आक्रांत करने लगा है। खीझकर वह कंप्यूटर भैया की शरण में जाता है। कवि ने बालक के इस स्वाभाविक मर्म को बड़ी संवेदना से अभिव्यक्त किया है–

मेरी तुमसे यही प्रार्थना, कुछ भी कर दो ऐसा,
फूला बस्ता पिचक जाय, मेरे गुब्बारे जैसा।[17]

'कोई समझ न पाता' कविता के माध्यम से कवि ने किशोर मन की एक और व्यथा को चित्रित किया है–

पापा कहते बनो डॉक्टर, माँ कहती इंजीनियर।
भैया कहते इससे अच्छा, सीखो तुम कंप्यूटर।
सबकी अलग-अलग अभिलाषा, सबका अपना नाता।
लेकिन मेरे मन की उलझन, कोई समझ न पाता। [18]

किशोर मन पर हमेशा ही पारिवारिक सदस्यों की इच्छा का दबाव रहा है। आज के प्रतियोगिता-भरे युग में तो विभिन्न कारणों से यह दबाव और अधिक बढ़ गया है, लेकिन माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्य बच्चे की इच्छा को समझने का प्रयास नहीं करते, यह विडंबना है।

किशोर मन की स्थितियाँ अत्यंत परिवर्तनशील होती हैं, वे कभी एक जगह टिककर नहीं रह पाते। वे कभी सूरज बनकर आसमान में छा जाना चाहते हैं, तो कभी चंदा बनकर तारों पर अपना रौब दिखाना चाहते हैं। कभी तितली बनकर उड़ना तो कभी कोयल बनकर गाना चाहते हैं। कभी चिड़िया बनकर शोर मचाना तो कभी जोकर बनकर हँसना चाहते हैं तो कभी मदारी बनकर दुनिया-भर को अपना तमाशा दिखाना चाहते हैं। बाल मन के इस मनोविज्ञान को डॉ॰ विक्रम ने बड़ी स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है–

मन करता है सूरज बनकर, आसमान में दौड़ लगाऊँ।
मन करता है चंदा बनकर, सब तारों पर अकड़ दिखाऊँ।
मन करता है तितली बनकर, दूर-दूर उड़ता ही जाऊँ।
मन करता है कोयल बनकर, मीठे-मीठे बोल सुनाऊँ।
मन करता है चिड़िया बनकर, चीं-चीं-चूँ-चूँ शोर मचाऊँ।
मन करता है जोकर बनकर, सब बच्चों को ख़ूब हँसाऊँ। [19]

3. **खेल-संबंधी गीत :** खेल बाल-जीवन के अभिन्न अंग हैं। बच्चे के सामने यदि खाने और खेलने में चुनाव करने को कहा जाए तो निःसंदेह वह खेल को प्राथमिकता देगा। खेल उनके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायक भी हैं। चाहे शहर हो या गाँव, पहाड़ हो या मैदान, गली, पार्क, घर या स्कूल बच्चे हर जगह खेलते मिलेंगे। उन पर किसी मौसम का भी बंधन नहीं रहता। वे मौसम के अनुरूप अपने खेल बदल लेते हैं, लेकिन उनका खेलना तय है, क्योंकि यह तो उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया है, इस दौरान यदि उन्हें खेल में गाने को भी मिल जाये या कहें गाने के माध्यम से खेल हो तो मज़ा और भी बढ़ जाता है। 'हरा समंदर गोपी चंदर, बोल मेरी मछली कितना पानी' और दादा/नाना, चाचा/मामा का घोड़ा बनाकर 'चल मेरे घोड़े टिक-टिक-टिक' गाना खेल में आनंद को कितना अधिक बढ़ाता रहा है, यह सर्वविदित है। डॉ॰ विक्रम का कविहृदय इससे भली-भाँति परिचित है। वे खेलने का आनंद लेने के साथ ही खेल-खेल में ही बच्चों को ऊँच-नीच का भेद मिटाने, मुश्किलों से लड़ने, गौरव रूपी पर्वत पर चढ़ने आदि की शिक्षा भी देते हैं–

आओ साथी मित्र बनाएँ, खेल-खेल में।
धरती से सोना उपजाएँ,
ऊँच-नींच का भेद मिटाएँ,
प्यार बड़े-बूढ़ों का पाएँ, खेल-खेल में। [20]

खेलों की बात हो और रेल बनाकर खेलने वाले खेल का ज़िक्र न हो तो कुछ अधूरापन-सा लगता है। डॉ॰ विक्रम ने बच्चों की रेल की जगह चूहों की रेल बनाकर अपनी उत्कृष्ट कल्पनाशीलता का परिचय दिया है–

सौ चूहों ने आपस में मिल, एक बनायी सुंदर रेल।
चश्मा वाला बना ड्राइवर, बाकी सब डिब्बों का खेल।
छुक-छुक करती रेल जा रही, आपस में है ठेलम ठेल।
बड़े मज़े से रेल जा रही, कहीं न डीज़ल, कहीं न तेल।'[21]

डॉ॰ विक्रम खेल को सार्वभौमिक एकता से मिलाकर देखते हैं। खेल जहाँ अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं, वहीं अनेकता में एकता का परिचय देते हैं–

खेल-भावना से बनता है,
एक भरा-पूरा परिवार।
जिसमें कोई बड़ा न छोटा,
सपने सब होते साकार।

सपनों का एक चित्र बनाकर मढ़ना सीखो जी,
खेल-खेल में आगे-आगे बढ़ना सीखो जी।[22]

4. **त्योहार-संबंधी गीत :** भारत गाँवों के साथ ही त्योहारों वाला देश भी है। यहाँ हर दिन एक त्यौहार मनाया जाता है। बच्चों का त्योहारों से लगाव कुछ ज़्यादा ही होता है। त्योहारों पर मिलने वाले नए कपड़े और मिठाइयाँ उनके उत्साह को दोगुना कर देते हैं। कवि ने त्योहारों और उन पर बच्चों द्वारा होनेवाली गतिविधियों का बड़ा गहन अध्ययन किया है। कवि की एक रचना 'दीवाली का गीत' की ये पँक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

दीपों की बारात दिवाली/मुस्कानों की बात दिवाली,
खील, बताशे, लड्डू-पेड़े/खुशियों की सौग़ात दिवाली।[23]

दीपावली बच्चों के लिए दीपों और खील-बताशों का त्यौहार है। बाज़ारों में इन चीजों की रौनक देखते ही बनती है। वर्ष में यह एक बार बिना पूछे ही बच्चों को आनंद देने आ जाती है। बच्चे इस दिन पूर्ण स्वतंत्रता का भी अनुभव करते हैं–

अपने आप बिना पूछे जो, एक वर्ष में आ जाती है।
बाल-वृद्ध सबकी आँखों में, झटपट चढ़कर छा जाती है।
तब सारा जग मस्त मगन हो, अगणित दीप जलाता है।
जिसको जो भी अच्छा लगता, बड़े प्रेम से खाता है।[24]

दीपावली की तरह ही एक अन्य बड़ा त्योहार है होली। कवि ने होली के रंगों से भरपूर पिचकारी के संग गुलाल उड़ाना, हलवा-पूड़ी, कचरी-पापड़, गुझिया आदि खाद्य पदार्थों के खाने तथा हा-हा, ही-ही, हू-हू, हो-हो के हुड़दंग के माध्यम से होली खेलने का बड़ा सटीक व सजीव दृश्य उपस्थित किया है–

हाथ-पैर सब रंग में डूबे, चेहरे पर रंगोली है।
सबके मुख से यही निकलता, बुरा न मानो, होली है।
दीपू लाल गुलाल उड़ाता, सीपू हलवा-पूड़ी खाता।
पिचकारी में भरे रंग से चुन्नू है सबको नहलाता।[25]

होली में बच्चों की टोली मदमस्त होकर सबको रंग लगाती है। होली के रंग में सबको सराबोर देखकर कवि की कल्पना सहज ही साकार हो उठी है–

सभी ओर हुड़दंग मचा है, कैसा सुंदर दृश्य रचा है।
लाल गुलाबी नीला-पीला, कहीं न कोई रंग बचा है।
ऐसा लगता है मौसम में, भंग किसी ने घोली है।
सबके मुँख से यही निकलता, बुरा न मानो होली है।[26]

होली, दीवाली जैसे सार्वजनिक त्योहारों के साथ ही बच्चों का अपना एक त्योहार भी होता है जिसे बच्चे वर्ष-भर याद रखते है। वह है उनका जन्मदिन। हर आयुवर्ग का बच्चा अपने जन्मदिन को मनाने के लिए उत्साहित रहता है। घर सजाना, मित्रों को घर बुलाना, केक काटना, उपहार प्राप्त करना, चाट-पकौड़ी खाना, नाचना-गाना आदि धमा-चौकड़ी की क्रियाएँ बच्चों को रोमांचित करती हैं। डॉ॰ विक्रम ने बालक के जन्मदिन-संबंधी मनोविज्ञान का अत्यंत सूक्ष्म व सजीव वर्णन किया है–

ठीक वर्ष भर बाद हमारा, जन्मदिवस जब आता है।
मम्मी-पापा दीदी-भैया, सबको ही हर्षाता है।
केक काटता खुशी-खुशी में, यार दोस्त सब आते हैं।
जमकर होती धमा-चौकड़ी जी भर धूम मचाते हैं।

मुझे गिफ़्ट के पैकेट मिलते, चाट-पकौड़ी सब खाते,
समय बीतता जल्दी-जल्दी हँसी-खुशी सब घर जाते।[27]

इन त्योहारों के अतिरिक्त बच्चों के लिए महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय त्योहारों जैसे बालदिवस, गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस को भी डॉ॰ विक्रम ने अपने काव्य में प्रमुखता से स्थान दिया है। गणतंत्र दिवस के उत्साह को कवि ने निम्नलिखित पँक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

भारत के कोने-कोने में, अब गूँज उठी शहनाई है।
जन-जन में नव उत्साह लिए, छब्बीस जनवरी आई है।
सूरज लाया है नया रूप, हरियाली जग में छाई है।
जन-जन में नव उत्साह लिए, छब्बीस जनवरी आई है।[28]

5. **प्रकृति-संबंधी गीत :** प्रकृति से बालक का सहज संबंध है। सूर्य, चंद्रमा, तारे, बादल, नदी, पर्वत, झरने, पेड़-पौधे, फल-फूल आदि प्रकृति के अनेक रूपों से वे न केवल अपना मनोरंजन करते हैं, अपितु इनसे शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। कवि डॉ॰ विक्रम ने अपनी कविता से प्रकृति और बच्चों के मध्य के संबंध को और अधिक गरिमामय बना दिया है। फूलों से मुस्कराना, सूरज से सारे संसार को राह दिखाना, चंदा से शीतलता, धरती से धैर्य, आकाश से ऊँचाई तथा सागर से गहराई की सीख कवि ने कुशलता से दी है। [29]

कवि फूलों के माध्यम से बच्चों को यह सीख देने का प्रयत्न करता है कि विपत्ति या सुख-दु:ख किसी भी परिस्थिति में स्वयं को संयत रखना चाहिए। उनसे डरकर भागने की अपेक्षा हँसते-मुस्कराते हुए उनका डटकर मुकाबला करना चाहिए-

सुख-दु:ख दोनों में मुस्काते, दोनों साथ निभाते फूल।
कैसी भी हो कठिन परीक्षा, कभी नहीं घबराते फूल।[30]

बच्चे और फूल दोनों ही अपनी कोमलता के लिए जाने जाते हैं। कवि ने इसी साम्य को ध्यान में रखते हुए बालकों को यह समझाया है कि जब एक छोटा-सा फूल किसी भी विपरीत परिस्थिति को सहन करने में समर्थ है और निरंतर मुस्कराता रहता है तो तुम ऐसा क्यों नहीं कर सकते? अर्थात् तुम भी समर्थ हो।

बादल को आधार बनाकर डॉ॰ विक्रम द्वारा लिखी गई इस कविता में बादल के परोपकारी स्वरूप को दिखाया गया है तथा छोटे बच्चों को उनके इस प्रश्न का उत्तर भी मिल गया है कि बादल पानी कहाँ से लाते हैं–

उमड़-घुमड़ कर आसमान में, सरपट दौड़ लगाते बादल।
तन से काले, मन से उजले, लगते हैं मतवाले बादल।
सात समुद्र पार देश से, पानी ले आते हैं बादल।
बरस-बरस कर सब कृषकों के, मन में बस जाते हैं बादल।[31]

तारे और रेल बच्चों के मन को सहज ही आकर्षित कर लेते हैं। यदि कविता में ये दोनों एक साथ आ जाएँ तो कहना ही क्या? कवि ने बालमन को आह्लादित करने के लिए एक अनोखी कल्पना कर डाली है, जिसमें वे तारों की रेल बनाकर उसे आसमान की पटरी पर दौड़ा रहे हैं–

मिलकर सब तारों ने झट से, एक बना ली सुंदर रेल।
एक इंजन सब डिब्बे बनकर, खेल रहे आपस में खेल।
आसमान है उनकी पटरी, छुक-छुक करती जावे रेल। [32]

आसमान में रहते हुए अपने प्रकाश द्वारा सबको राह दिखाने वाला सूरज सभी के लिए एक समान होता है। जाड़ा और गर्मी में बालक सूरज के बदलते हुए रूप को देखकर बदलती हुई ऋतुओं से उनमें तालमेल बनाता है–

जाड़े में थोड़ा मुस्काते, प्यार दिखाते सूरज जी,
गर्मी में वह गुस्से वाला, रूप दिखाते सूरज जी।[33]

चंद्रमा से बच्चों को बड़ा लगाव है तभी तो वे बच्चों के प्यारे 'चंदामामा' हैं। वे चंदामामा से उनकी चमक का रहस्य जानना चाहते हैं। उनके रूठने पर वह उनके रूठने का कारण जानना चाहते हैं। चंदामामा के सही उत्तर न देने पर वे उनसे कुट्टी कर लेने की धमकी भी दे देते हैं। कवि ने इस बालसुलभ जिज्ञासा को कितनी स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है–

मेरे प्यारे चंदामामा, कैसे चमका करते हो?
कैसे रात-रात भर जगकर, हर क्षण दमका करते हो?
मुझको भी यह बात बता दो, मैं भी तुमसा चमकूँ।
फैले यश जग-भर में मेरा, मैं भी तुम-सा दमकूँ।[34]

चंदामामा से बालक की कुट्टी कर लेने की बात को कवि ने कितने सहज और भावात्मक ढंग से व्यक्त किया है–

प्यारे-प्यारे चंदामामा, सच-सच मुझे बताओ।
आख़िर क्यों मुझसे रूठे हो, सही बात समझाओ?
अगर नहीं तुम सच बोलोगे, मैं भी कर लूँगा कुट्टी।
कभी नहीं फिर बात करूँगा, तब हो जाएगी छुट्टी।[35]

6. **ऋतु-संबंधी गीत :** ऋतुओं की दृष्टि से मौसम को मुख्यतया तीन भागों जाड़ा, गर्मी और बरसात में बाँटा गया है। विशेषकर बच्चों के लिए प्रत्येक ऋतु का अपना अलग-अलग महत्त्व है। वे हर मौसम में अपने आनंद की जगह खोज ही लेते हैं। डॉ॰ विक्रम की कविताओं में भी इन सभी ऋतुओं का स्वाभाविक वर्णन है। गर्मी के दिन किस प्रकार प्राणियों और जीव-जंतुओं को कुम्हला देते हैं, वर्षा आकर उस कुम्हलाए हुए जीवन को कैसे हरा-भरा और सुहावना बना देती है तथा शरद ऋतु उस हरे-भरे मनोहारी रूप को किस प्रकार चिरजीवी बना देती है, आदि के वर्णन आपकी रचनाओं में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

डॉ॰ विक्रम की कविताओं में गर्मी कभी अपने रौद्र तथा कभी सौम्य रूप में दिखाई पड़ती है। ग्रीष्म ऋतु में प्रकृति में क्या-क्या परिवर्तन होने लगते हैं, उन परिवर्तनों की एक झलक दिखलाती हुई निम्नलिखित कविता ग्रीष्म ऋतु के सौम्य रूप को प्रस्तुत करती है–

आयी गरमी, आई गरमी, सभी ओर है छाई गरमी।
फैली पूरे आसमान में, लंबी एक चटाई गरमी।
खरबूजा, ककड़ी और खीरा, रस गन्ने का औ' जलजीरा।
कुल्फ़ी, बरफ़, मलाई लेकर, छुक-छुक करती आयी गरमी।[36]

गर्मी का यह रूप बच्चों के लिए वरदान की तरह है। खरबूजा, तरबूज, ककड़ी, खीरा, गन्ने का रस, बर्फ़ और कुल्फ़ी जैसे अनेकानेक मनमोहक खाद्य पदार्थ एक साथ केवल गर्मी ही लेकर आती है। उस पर रात होते ही खुले आसमान के नीचे चारपाई डालकर दादा-दादी से कहानियाँ सुनना या फ़िल्मों की बातें करना गर्मियों की शाम को और सुहाना बना देती है। [37]

लेकिन गर्मी जब अपने भीषण रूप में आती है तो रास्ते आग उगलने लगते हैं, जिन पर एक क़दम भी चलना मुश्किल हो जाता है। [38]

इस गर्मी में मनुष्य तो फिर भी अपनी सुरक्षा के यत्न कर लेता है, लेकिन मूक पशु-पक्षियों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है। वे अपनी पीड़ा किसी से व्यक्त भी नहीं कर पाते। सहृदय कवि ने इस मर्म को अपनी कविता में उकेरा है–

'झुलस रही लू से गौरैया, कोयल नाचे ता-ता थैया।
बंदर पानी लाए भरकर, और नहाएँ गप्पू भैया।
गर्मी से बिल्ली घबराई, कुत्ते पर अब आफ़त आई।
गरमी आई, गरमी आई।' [39]

वर्षा की मौज-मस्ती का अपना अलग ही आनंद है। डॉ॰ विक्रम ने वर्षा की इसी मस्ती को शब्द देते हुए लिखा है–

'बूँदें टप-टप गीत सुनातीं, ताल मिलातीं वर्षा में।
निकल गगन के आँचल से, वे रौब जमातीं वर्षा में।
टर्र-टर्र अब मेढ़क दादा, लगे टेरने वर्षा में।
झींगुर भी कानों तक आकर, लगे घेरने वर्षा में। [40]

मेढक की टर्र-टर्र वर्षा ऋतु के वर्णन को और अधिक स्वाभाविक बना देती है। बच्चों के लिए वर्षा का महत्त्व तो मूलतः दो बातों पर निर्भर करता है। एक तो मेढक की आवाज़ और दूसरे काग़ज़ की नाव। पानी से भरे छोटे-छोटे गड्ढ़ों में काग़ज़ की नाव चलाते छोटे बच्चे वर्षा की सार्थकता को सिद्ध करते हैं। [41]

वर्षा नवजीवन का स्रोत है। संपूर्ण प्रकृति जब भीषण गर्मी के प्रकोप से त्रस्त हो जाती है तब यह वर्षा ही आकर उसमें नवजीवन का संचार करती है। लेकिन कहा गया है 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। वर्षा भी जब अपनी असीमता में खोने लगती है तो प्रलय आ जाती है। पृथ्वी जलमग्न हो जाती है। वर्षा के कारण लोगों का घर से निकलना मुश्किल हो जाता है। परिणामस्वरूप सारे कार्य-व्यापार तथा विकास रुक जाते हैं। बच्चों पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वे न तो खेल पाते हैं और न ही विद्यालय जा पाते हैं। कवि ने ऐसे ही अत्यधिक वर्षा से बेहाल एक बच्चे का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। [42]

पल-पल रूप बदलने वाले जाड़े की कल्पना कवि ने कहीं मुकुट लगाए राजा के रूप में की है तो कहीं 'ठग' के रूप में–

'मौसम के रथ पर सवार हो, बड़ी दूर से जाड़ा आया।
सात रंग मुकुट लगाकर, राजा जैसा रूप बनाया।'[43]
जग जीवन को ठगने लगते, पग-पग पर है छिपने लगते।
जाड़े के बौने दिन सचमुच, तस्कर जैसे रूप बदलते।'[44]

कवि ने ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद तीनों मुख्य ऋतुओं के लगभग सभी पहलुओं को छुआ ही नहीं, अपितु बालकों से उनका सार्थक संबंध भी स्थापित किया है।

7. **पशु-पक्षी-संबंधी गीत :** पशु-पक्षी सदैव से बच्चों के आकर्षक का केंद्र रहे हैं। उनका रंग-रूप, आकार-प्रकार, हिलना-डुलना, चलना-फिरना, हाव-भाव और आवाज़ आदि कार्य-व्यापार सभी-कुछ बच्चों को आश्चर्यचकित करनेवाले होते हैं। बच्चे उसी में अपना मनोरंजन भी तलाश लेते हैं। पशु-पक्षियों के विषय में नित नयी कल्पनाएँ करने में उन्हें आनंद आता है। वे उनके बारे में अधिक-से-अधिक जानना चाहते हैं, उनकी बोलियों एवं हाव-भाव की नक़ल करते हैं। इसीलिए बालसाहित्यकारों ने भी बालकों के इसी मनोविज्ञान के अनुरूप उनके लिए मनोरंजक एवं सोद्देश्यपूर्ण रचनाओं में पशु-पक्षियों को ही प्रमुख आधार बनाया है। डॉ॰ विक्रम के बाल-साहित्य में भी ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं। कवि ने जहाँ एक ओर कुत्ता बिल्ली, बंदर, हाथी, ख़रगोश, चूहा, कोयल, मोर, गौरैया जैसे सर्वसुलभ पशु-पक्षियों को अपने काव्य में स्थान दिया है, वहीं इस कोटि से अलग उल्लू, छिपकली और भौंरे आदि को भी उतने ही सुंदर रूप में चित्रित किया है।

चूहा और बिल्ली बच्चों के सबसे क़रीबी हैं। बिल्ली का प्रिय भोजन दूध है और उसे उससे भी अधिक प्रिय हैं चूहे। बच्चे बिल्ली के इस कृत्य को अपने घर में बैठे-बैठे ही देखा करते हैं। उनके लिए यह बड़ा रोमांच का विषय है–

दूध जहाँ पा जाती बिल्ली,
दबे पाँव आ जाती बिल्ली,
हर कोने में खोज-खोज कर
सब चूहे खा जाती बिल्ली। [45]

बच्चे चूहों की चूँ-चूँ सुनकर भ्रमित हो जाते हैं। वह सोचने लगते हैं कि चूहे आपस में क्या बात करते होंगे? कवि ने बालमन की इस जिज्ञासा को कल्पना का पुट देने का प्रयास किया है–

चूँ-चूँ कर चूहे जाने क्या, आपस में बतियाते,
अजब-अजूबी इनकी भाषा, समझ नहीं हम पाते। [46]

चूहे दिन-भर घर में उछल-कूद मचाते रहते हैं, लेकिन बिल्ली की आवाज़ सुनते ही फ़ौरन ग़ायब हो जाते हैं। [47]

खरगोश की सुंदरता, उसका भोला-भाला चेहरा, उसके चौकन्ने कान बच्चों को ख़ूब भाते हैं। उसकी चमकीली आँखों का तो क्या कहना?

हरी घास सब धीरे-धीरे,
कुतर-कुतर खा जाता।

धमा चौकड़ी उछलकूद में, फूला नहीं समाता।
मम्मी को भी प्यारा लगता, पापा की आँखों का तारा।
नन्हा सा खरगोश हमारा।'[48]

हरी मिर्च के शौक़ीन मिटठू जी पिंजड़े में बंद रहते हैं लेकिन वह अपनी टें-टें से बच्चों का मनोरंजन किया करते हैं।[49]

कवि पशु-पक्षिओं के स्वभाव से भली-भाँति परिचित है, इसीलिए प्रत्येक पशु-पक्षी के स्वभाव के ही अनुसार ही उसने उनका चयन किया है। यही नहीं डॉ॰ विक्रम की कविताओं में सभी प्रकार के पशु-पक्षियों को स्थान मिला है तथा उसके चरित्रों के साथ न्याय भी हुआ है।

8. **राष्ट्र-संबंधी गीत :** प्रत्येक मनुष्य के लिए राष्ट्र-प्रेम सर्वोपरि होता है। बालक राष्ट्र के भविष्य होते हैं, इसलिए उनमें राष्ट्र-प्रेम की भावना जाग्रत करना आवश्यक है। कवि डॉ॰ विक्रम ने अपनी बाल-कविताओं में इस उत्तरदायित्व को भली-भाँति निभाया है। उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर भाई-चारे का संदेश मिलता है, वहीं दूसरी ओर देश की सभ्यता एवं संस्कृति ध्वनित होती है। अटल, अचल, सत्य के प्रतीक, पावन और प्यारे भारतवर्ष का गुणगान करते हुए कवि कहता है–

'है दुनिया में सबसे न्यारा,
प्यारा भारत, प्यारा भारत
नहीं किसी से झुकने वाला,
नहीं सत्य से डिगने वाला।
प्यारा भारत, प्यारा भारत।'[50]

बलिदानी महापुरुषों की इस धरा पर जन्मा प्रत्येक व्यक्ति इसकी आन-बान-शान के लिए मर मिटने के लिए तैयार रहता है। देश के इसी गौरव को कवि ने एक कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।[51]

कवि ने इस देश के नौनिहालों को इस भारत-भूमि की महत्ता बताते हुए कहा है कि राम-कृष्ण को जन्म देने वाली इस पुण्य भूमि के आगे मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है क्योंकि इसका कण-कण चंदन के समान है। देवता भी जिसका वंदन करते हैं।[52]

बहुत पहले भारत को सोने की चिड़िया के रूप में जाना जाता था। इसी वैभव का स्मरण कराती हुई ये पँक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

'सोना चाँदी हीरे-मोती, इसमें पड़े हुए हैं।
इसके कण-कण में वैभव, खुद ही जड़े हुए हैं।'[53]

वास्तव में डॉ॰ विक्रम की कविताएँ न केवल महापुरुषों के चरित्रों से प्रेरणा दिलाने वाली है, बल्कि उनमें देश-प्रेम हित उर्जा एवं जोश भरने वाली हैं।

9. **आधुनिकताबोध-संबंधी गीत :** आज हम इक्कीसवीं शताब्दी में जीवन-यापन कर रहे हैं। यह ज्ञान-विज्ञान का युग है। जीवन और समाज दिनों-दिन बदल रहा है। बिजली, टी॰वी॰, फ्रिज़, कंप्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल आदि विज्ञान के अनेक उपकरणों के बिना जीवन की कल्पना करना भी असंभव हो गया है। यही कारण है कि आज के बच्चों में भी आश्चर्यजनक बदलाव आता जा रहा है। उनके परंपरागत चोर-सिपाही, लुका-छिपी, गुल्ली-डंडा जैसे अनेक खेल लुप्त

होते जा रहे हैं। वीडियो गेमों तथा कार्टून नेटवर्क की दुनिया ने बच्चों के मन और मस्तिष्क पर अपना जाल फैला दिया है। हम बिना इसके दुष्परिणाम सोचे अपने बच्चों को आधुनिकता की अंधी दौड़ में शामिल करते जा रहे हैं। यहाँ यह कहना आधुनिकता का विरोध नहीं है, बल्कि यह याद दिलाना है कि हमें अपनी भावी पीढ़ी को अतिआधुनिकता से होने वाले ख़तरों से भी बचाना है।

डॉ॰ विक्रम के साहित्य में बाल-जीवन की इस आधुनिकताबोध का परिदृश्य नई चेतना लेकर आया है। उनके बालगीत, बाल-जीवन के बदलते परिवेश की धुरी हैं। आज संचार-माध्यमों, कंप्यूटर, इंटरनेट, टी॰वी॰, रेडियो आदि ने विशाल सामग्री प्रयोग हेतु उपलब्ध करा दी है। बड़ों के लिए यह सामग्री प्रयोग की वस्तु है, लेकिन बच्चों के लिए ये जादुई चीज़ें हैं, जिसके रहस्य को वह तुरंत जान लेना चाहता है। वह उनकी कार्यशैली, उनके लाभ व हानियों से परिचित होना चाहता है।

डॉ॰ विक्रम ने बाल-मन पर आधुनिकताबोध की चुनौती को स्वीकार कर बाल-साहित्य में नया प्रयोग किया है। डॉ॰ विक्रम का 'इक्कीसवीं सदी की ओर' कविता-संग्रह इसी चुनौती का परिणाम है। इस संग्रह की पहली कविता में ही रोबोट द्वारा कक्षा में पढ़ाए जाने की अनोखी कल्पना प्रस्तुत की गई है। [54] कंप्यूटर के प्रयोग से भारी बस्ते से छुट्टी मिल जाने की बात बदलते परिवेश की कहानी है। कंप्यूटर उसके लिए किसी जादूगर मित्र से कम नहीं। [55] आया नया ज़माना शीर्षक कविता में कवि ने भूत-भविष्य और वर्तमान का समन्वय किया है। आज का बच्चा राजा-रानी की कहानियों से पृथक् वैज्ञानिक प्रगति की कहानियों में अधिक रुचि लेता है। [56]

आधुनिकता अपने साथ विकास लाती है, लेकिन साथ ही सामाजिक, आर्थिक व व्यक्तिगत समस्याएँ भी। इन समस्याओं का प्रभाव बड़ों के साथ बच्चों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। उदाहरणस्वरूप आज की सबसे भयंकर समस्या बढ़ती हुई आबादी है, जिसने न केवल महँगाई को बढ़ाया है, बल्कि रहने के लिए घर बनाने की आवश्यकता ने बच्चों के खेलने तक की ज़मीन को छीन लिया है। बच्चों के प्रिय क्रिकेट जैसे खेलों के लिए आवश्यक मैदान आधुनिकता व भौतिकवाद की भेंट चढ़ते जा रहे हैं। इन मैदानों में घर व दुकानें बनने लगी हैं। [57]

ऐसे में यह समस्या मुँह-बाये खड़ी है कि बच्चों के प्रिय खेल का क्या होगा? आधुनिकता की अंधी दौड़ में कहीं हम अपने बच्चों को ख़तरे में तो नहीं डाल रहे। आज उनके प्रश्नों का जबाव हमें देना होगा–

'अब तो कोई हमें बताए/कहाँ खेलने जाएँ हम?
दो कमरों के छोटे घर में/कैसे मन बहलाएँ हम? [58]

आधुनिक इलेक्ट्रानिक माध्यमों में बच्चों की रुचि गहराती जा रही है, लेकिन बाल-मन अपने स्वाभाविक खेलों से भी कितना दूर रह सकते हैं। उनमें ये प्रश्न सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार है, जिसे हमें समझना होगा।

आधुनिक युग में व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। माता-पिता अपने बच्चों को भी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की भेंट चढ़ा देते हैं। इस सबमें बच्चे की इच्छाएँ, अभिलाषाएँ दम तोड़ रही हैं। बच्चा क्या करे, उसे यह समझना कठिन होने लगता है। बच्चे के मन की इसी उलझन के गवाह डॉ॰ विक्रम ने इसे अभिव्यक्ति देते हुए लिखा है–

'पापा कहते बनो डॉक्टर/माँ कहती इंजीनियर,
भैया कहते इससे अच्छा/सीखो तुम कंप्यूटर।
चाचा कहते बनो प्रोफ़ेसर/चाची कहती अफ़सर,
दीदी कहती आगे चलकर/बनना तुम कलेक्टर।'

सबकी अलग-अलग अभिलाषा/सबका अपना नाता।
लेकिन मेरे मन की उलझन/कोई समझ न पाता।' [59]

वस्तुतः डॉ॰ विक्रम ने अपने बाल-साहित्य में आधुनिक समाज की नब्ज़ पकड़कर, समाज के प्रत्येक क्षेत्र के सकारात्मक व नकारात्मक पक्षों का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके बालगीत जहाँ एक ओर बालकों का मनोरंजन करते हैं, वहीं उन्हें आधुनिकता-बोध से परिचित कराते हुए उनमें सामाजिकता की भावना का बोध कराते हैं।

संदर्भ

1. दृष्टिकोण (बाल विशेषांक) अप्रैल, 85, पृ॰ 14
2. वही, पृ॰ 14
3. डॉ॰ कुसुम डोभाल : हिंदी बाल काव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्त्व', पृ॰ 43
4. वही, पृ॰ 41
5. डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम : समकालीन बाल साहित्य, परख और पहचान, पृ॰ 103
6. अमृत प्रभात (साप्ताहिक परिशिष्ट) 8 जुलाई 1984, पृ॰ 3
7. स्वतंत्र भारत (समाचार-पत्र), 25 मई 1980 में प्रकाशित।
8. बालगीत साहित्य : इतिहास और समीक्षा, पृ॰ 53
9. बच्चों के श्रेष्ठ गीत : संपादक पी॰के॰ आर्य, पृ॰ 95
10. रिमझिम (भाग 3), पृ॰ 10
11. बालगीत साहित्य : इतिहास और समीक्षा, पृ॰ 52
12. डॉ॰ हरिकृष्ण देवसरे, बाल साहित्य के सरोकार, पृ॰ 127
13. नेशनल बुक ट्रस्ट की पत्रिका, पाठक मंच बुलेटिन अगस्त 2006, पृ॰ 22
14. शोध-दिशा त्रैमासिक पत्रिका में प्रकाशित कविता, पृ॰ 51
15. डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम की डायरी से साभार
16. इक्कीसवीं सदी की ओर : बस्ते का बोझ, पृ॰ 35
17. वही, पृ॰ 35
18. इक्कीसवीं सदी की ओर : कोई समझ न पाता, पृ॰ 33
19. इक्कीसवीं सदी की ओर : मन करता है, पृ॰ 34
20. खेल-खेल में पुस्तक की 'खेल-खेल में', शीर्षक कविता, पृ॰ 9
21. अब्बक-डब्बक पुस्तक की 'चूहों की रेल' कविता, पृ॰ 11
22. पाठक मंच बुलेटिन : नेशनल बुक ट्रस्ट की पत्रिका : अगस्त 2006, पृ॰ 22
23. दैनिक नई दुनिया : 25 अक्टूबर 1981, पृ॰ 3
24. कवि के अप्रकाशित संग्रह से
25. सारा देश हमारा घर, पुस्तक की कवीति : बुरा न मानो होली है, पृ॰ 13

26. वही, पृ॰ 13
27. तारों की रेल, पुस्तक की 'जमकर होती धमा चौकड़ी' शीर्षक कविता, पृ॰ 31-32
28. खेल-खेल में, पुस्तक की 'हरियाली जग में छाई है' शीर्षक कविता, पृ॰ 21-22
29. नन्हीं मुस्कान (मासिक पत्रिका) अप्रैल-1982
30. स्वतंत्र भारत (साप्ताहिक परिशिष्ट) 9 जनवरी 1981, पृ॰ 3
31. बाल साहित्य समीक्षा, अगस्त 1980 में प्रकाशित।
32. बालरत्न : अक्टूबर 1980, पृ॰ 18
33. दैनिक जागरण : 1 मार्च 1981, पृ॰ 3
34. साप्ताहिक हिंदुस्तान : 18-24 जुलाई, 1982, पृ॰ 47
35. वही
36. स्वतंत्र भारत सुमन (साप्ताहिक) 8-14 मई 1980, पृ॰ 35
37. वही, पृ॰ 35
38. स्वतंत्र भारत (रविवासरीय) 27 अप्रैल 1980, पृ॰ 3
39. बाल पताका (मासिक) अप्रैल-मई (कथा विशेषांक), पृ॰ 7
40. स्वतंत्र भारत सुमन (साप्ताहिक) 10-16 अगस्त 1980, पृ॰ 14
41. दैनिक जागरण (साप्ताहिक परिशिष्ट) सितंबर 1980, पृ॰ 3
42. स्वतंत्र भारत सुमन साप्ताहिक : 17-23 अगस्त 1980, पृ॰ 15
43. आकाशवाणी लखनऊ के 'बाल जगत' कार्यक्रम में प्रसारित।
44. नन्हीं मुस्कान (मासिक) : जनवरी 1982, पृ॰ 19
45. सूरज-चंदा पुस्तक की 'बिल्ली' शीर्षक कविता, पृ॰ 13
46. तारों की रेल पुस्तक की 'छूमंतर हो जाते' शीर्षक कविता, पृ॰ 09
47. तारों की रेल पुस्तक की 'छूमंतर हो जाते' शीर्षक कविता, पृ॰ 09
48. तारों की रेल, पुस्तक : 'खरगोश का गीत' शीर्षक कविता, पृ॰ 25, 26
49. तारों की रेल पुस्तक की 'मिट्ठू जी', शीर्षक कविता, पृ॰ 21
50. चमाचम (मासिक पत्रिका), अगस्त 1982
51. बालपताका (मासिक पत्रिका), फरवरी 1981
52. सारा देश हमारा घर : 'महक रही है क्यारी-क्यारी' शीर्षक कविता, पृ॰ 10
53. सहकारिता (मासिक) फरवरी 1982, पृ॰ 17
54. इक्कीसवीं सदी की ओर, पृ॰ 5
55. वही, पृ॰ 6
56. वही, पृ॰ 8,9
57. सारा देश हमारा घर, पृ॰ 5, 6
58. वही, पृ॰ 6
59. इक्कीसवीं सदी की ओर पुस्तक की कोई समझ न पाता शीर्षक कविता, पृ॰ 33

❐ **द्वारा श्री शिवकुमार शर्मा**
170, **इंदिरा कालोनी, कटघर,**
मुरादाबाद, (उ॰प्र॰) 244001

समकालीन कटु यथार्थ का आईना है डॉ॰ कुँअर बेचैन का साहित्य

नीतू, शोध-छात्रा
गिन्नीदेवी मोदी गर्ल्स स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मोदीनगर (ग़ाज़ियाबाद) उ॰प्र॰

लगभग 32 पुस्तकों के रचयिता, देश-विदेश में काव्य-सम्मेलनों के माध्यम से हिंदी की अलख जगाने वाले, अपनी लेखनी के माध्यम से मानस के अंतस् से क्षुद्रता, स्वार्थ, नैराश्य, घृणा, अहंकार, क्रूरता आदि अवगुणों को निकालकर नर से नारायण बनाने की साधना में प्रयासरत, भारतीय जीवन-मूल्यों तथा मानवीय संवेदनाओं की पैरवी करने वाले डॉ॰ कुँअर बेचैन को विभिन्न पुरस्कारों के रूप में हिंदी संसार ने पर्याप्त स्नेह तथा सम्मान दिया है, परंतु उनके साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रायः अनदेखा-सा रह गया है, वह पक्ष है डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में अभिव्यक्त हुआ समकालीन कटु यथार्थ।

प्रत्येक रचनाकार अपनी अनुभव की भट्टी में गले हुए तनावों, संघर्षों तथा यातनाओं को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। डॉ॰ कुँअर बेचैन भी जीवन और जगत से बहुत गहरे जुड़े हुए रचनाकार हैं। उनका सर्जक-मन मात्र वायवी कल्पनालोक में विचरण नहीं करता वरन् अपने लेखन के लिए कच्चा माल वह अपने आस-पास के जीवन से जुटाता है। सृजन की यह प्रक्रिया उन्हें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अपने युग के कटु सत्यों से संबद्ध कर देती है। उनके साहित्य की बाहरी-भीतरी यात्रा के दौरान मैंने पाया कि उनके साहित्य में समकालीन समय, समाज और राजनीति के अनुभव, सत्यों और पूरी जीवंतता के साथ धड़क रहे हैं। उनके यहाँ किसी भी विचारधारा की रूढ़ प्रतिबद्धता नहीं है। प्रतिबद्धता है तो मनुष्य की चिंताओं और समस्याओं के प्रति। यहाँ बनते मनुष्य की वह अवधारणा है, जिसमें आधुनिकता का संकट, जातीय स्मृतियाँ और अस्मिता का संकट है। मरती हुई भारतीयता, तगड़ी अराजकता के द्वंद्व और तनाव की मानसिकता से निर्मित उनकी सृजनशीलता की मनोभूति में बीसवीं शताब्दी के दहाड़ते-ललकारते सच हैं, जिनके कतिपय आयाम निम्नवत् हैं–

संवेदनशीलता का क्षरण :

सामान्य रूप से संवेदनशीलता किसी के कष्ट को देखकर मन में होने वाला दुःख का भाव है, परंतु आज चहुँ-ओर संवेदनशीलता का क्षरण देखने में आ रहा है। नई पीढ़ी की दृष्टि में केवल वस्तुगत उपयोगिता का ही मूल्य है। भावनात्मक लगाव अर्थहीन हो गया है। नई पीढ़ी प्रदर्शनप्रिय होती जा रही है, अनुभूति और भावना से संबंध शनैः शनैः टूटता जा रहा है।

डॉ॰ कुँअर बेचैन का संवेदनशील मन अपने युग की चेतना में हो रहे इस परिवर्तन की आहट सुनने में न केवल सक्षम है वरन् वह इसकी ओर इंगित कर पाठक के अंतर्मन को भीतर तक झकझोर देता है। बानगी देखिए–

यह सुबह भी कैसी है कि इन्साँ के बदन में
जागे हुए अहसास की अँगड़ाई नहीं है।' [1]
आपका वो बात सुनने का सलीक़ा क्या हुआ
आप जब औरों के दुख सुनते थे हुंकारे के साथ [2]

आधुनिक मनुष्य इतनी हड़बड़ी में है कि वह इस बात की भी परवाह नहीं करता कि कोमल अहसासों के रेशे बिखरते जा रहे हैं। संवेदनशीलता का स्थान हिंसक प्रवृत्ति लेती जा रही है–

मेज़ पर रायफ़ल है, चाकू है
मेज़ से फूलदान ग़ायब है। [3]

यहाँ मेज़ पर 'रायफ़ल' तथा 'चाकू' जैसी हिंसक चीज़ों का रखा होना तथा 'फूलदान' का ग़ायब होना, कोमल अहसासों तथा संवेदना के क्षरण का द्योतक है। संवेदनशीलता की इस कमी की ओर इंगित करते हुए कुँअर जी ने अत्यंत सारगर्भित टिप्पणी की है–

'अब आदमी का अहसास मर गया है। नयी भौतिक सभ्यता के बाह्याडंबर उसे चारों ओर से इस क़दर घेर रहे हैं कि अनुभूतियों के स्थान पर केवल उपयोग और उपभोग ही सब-कुछ रह गए हैं। जो 'उपयोग' की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, वह है 'रिजेक्टेड'। यहाँ तक कि लोग नज़दीकी रिश्तों एवं प्यार के मधुर संबंधों तक में उपयोग, लाभ और स्वार्थ को ढूँढने लगे हैं। बहुत सयानापन आ गया है लोगों में।' [4]

इस प्रकार कुँअर जी के साहित्य में समाज में पसरी संवेदनशून्यता को देखकर उपजी पीड़ा की कराह साफ़ सुनाई देती है, जो भीतर तक झकझोर देती है।

दरकते संबंध एवं लुप्त होती आत्मीयता :

भौतिकता की इस अंधी दौड़ में रिश्तों की गरमाहट धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। पहले संयुक्त परिवार टूटे और फिर एकल परिवारों की बारी आई। विवाह-संस्था अपने मायने खो बैठी। एक ही छत के नीचे रहने वाले लोगों के बीच दूरियाँ बढ़ने लगीं। व्यक्ति अपनों के बीच ख़ुद को बेगाना महसूस करने लगा। सुविधाएँ बढ़ीं परंतु अपनापन घट गया। व्यक्ति-मन की इस त्रासद दशा का विश्लेषण करते हुए कुँअर बेचैन लिखते हैं कि–'वैज्ञानिक युग ने आज के व्यक्ति को बहुत दिया, किंतु उससे बहुत छीन भी लिया है– मिली वस्तुएँ और छिनी आत्मा। मिली बनावट, छिन गई अपनी सहजता। विचारों का बोझ तो मिला, किंतु भावों की पाँखुरी सूख गयी।' [5] कुँअर बेचैन इन अंतर्विरोधों के बीच छटपटाते आम आदमी की त्रासदी देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं। दरकते संबंधों एवं लुप्त होती आत्मीयता को देखकर उनका संवेदनशील मन क्षुब्ध हो उठता है। एक बानगी देखिए–

'रफ्त: रफ्त: जो हक़ीक़त थे, कहानी हो गए
ख़ून से सींचे हुए रिश्ते भी पानी हो गए' [6]

सिक्कों की खनक पर नाचती इस दुनिया में नज़दीकी रिश्तों का संबंध पैसा कमाने

की योग्यता से जुड़ गया है, जिसके बिना व्यक्ति अपने ही घर में महत्त्वहीन एवं अप्रासंगिक बनकर रह जाता है–

जब नौकरी में था तो सभी देखते थे राह
अब कैसा इंतज़ार, कोई देखता नहीं।' [7]

भरे-पूरे परिवार तथा आत्मीय-जनों के बीच भी आज व्यक्ति स्वयं को कहीं बेहद एकाकी पाता है, क्योंकि एक-दूसरे से जोड़ने वाले संवेदना के तंतु टूट चुके हैं–

आती-जाती चहल-पहल
हँसते-गाते मेले हैं।
फिर भी दर्द अकेले हैं।' [8]

संबंधों में बढ़ते जा रहे इस ठंडेपन और निरंतर संवेदनशून्य होते जा रहे व्यक्ति और समय को लेकर कुँअरजी की चिंता स्वाभाविक है–

कहीं मिल जाएँ तो इंसान से इनको मिला दीजे
मुहब्बत, दोस्ती, इंसानियत, रिश्ते, वफ़ादारी।' [9]

वस्तुत: संबंधों को समझना एवं जीना स्वयं में एक संस्कार है। भौतिक वस्तुओं के पीछे आत्मीय संबंधों से वंचित होना कहीं-न-कहीं घुटन और एकांत को आमंत्रित करना है। अत: कुँअर बेचैन का मानना है कि यदि संबंधों को बिखरने से बचाना है तो आपसी संबंधों के मध्य बुनियादी समझ विकसित करनी होगी–

रिश्ते भी, आदमी के दो पाँवों की तरह हैं
गर हो न ताल-मेल तो लँगड़ा के चलेंगे।' [10]

परिवार में सब सदस्य समान दृष्टिकोण रखें, यह आदर्श स्थिति व्यावहारिक जीवन में असंभव है, परंतु मत-विभिन्नता की यह टकराहट आपसी वैमनस्य का रूप धारण न करने पाए। इस हेतु सचेत करते हुए कुँअरजी लिखते हैं कि–

खनक उठती हैं टकराकर भी उनसे चूड़ियाँ सारी
कड़ों से सीखिए रिश्ते निभाने की हुनरदारी।' [11]

यहाँ कुँअरजी का स्पष्ट आग्रह है कि यदि पारिवारिक सदस्यों के मध्य कभी मत-वैभिन्य की टकराहट हो भी तो वह टकराहट 'कड़ों' और 'चूड़ियों' के परस्पर टकराने से उत्पन्न झंकार की भाँति मधुर होनी चाहिए।

अत: कुँअरजी का चिंतन लुप्त होती आत्मीयता एवं दरकते संबंधों पर अपनी चिंता अभिव्यक्त करते हुए इसके कारणों की सम्यक् विवेचना कर तत्संबंधी निदान भी प्रस्तुत करता है, जिसमें उनका संतुलित दृष्टिकोण उभरकर सामने आता है।

समाज में बढ़ता अलगाव एवं धर्म के विध्वंसकारी स्वरूप पर व्यक्त चिंता :

कुँअरजी का साहित्य जाति, धर्म, कुल, वर्ण, रंग और राष्ट्र इत्यादि विभिन्न प्रकार के भेदभावों को आधार बनाकर समाज के विघटन-हेतु प्रयासरत शक्तियों का सशक्त विरोध करता है। ईश्वरैक्य के साथ-साथ मानवैक्य की भावना में उनकी अडिग आस्था है। वे उस संकीर्ण, आत्मकेंद्रित तथा रूढ़िवादी दृष्टि के विरोधी हैं, जो धर्म, संप्रदाय, वर्ग, भाषा आदि के नाम पर मानव-मानव में दीवार खड़ी कर समाज को विभाजित कर देती है। सांप्रदायिक

विद्वेष की आग में सुलगते देश के हालात को देखकर व्यथित कुँअरजी के मन के दर्द को उजागर करती चंद पंक्तियाँ देखिए–

जिस भी घर में गए, सिर्फ़ लपटें मिलीं
आग ऐसी लगी, हर नगर-गाँव में।' [12]

फिज़ाओं में साफ़ नज़र आते अलगाव की एक बानगी देखिए–

हर तरफ़ बारूद का मौसम, कहाँ जाकर रहें
आदमी भी हो गया है बम, कहाँ जाकर रहें।[13]

धार्मिक वैमनस्य, घृणा तथा पारस्परिक विद्वेष के कारण राष्ट्रीय एकता तथा अखंडता के छिन्न-भिन्न होने का संकट बढ़ते देखकर कुँअरजी के चिंतन का सार्थक आग्रह है–

फटे हुए आँचल को अब तुम और न फाड़ो बाबूजी
ऐसे मत भारत माँ की तस्वीर बिगाड़ो बाबूजी' [14]

धर्म के विभाजनकारी स्वरूप को देखकर कुँअरजी सवाल करते हैं–

कि जिनमें सिर्फ़ प्यार की हिदायतें थीं ऐ 'कुँअर'
वो मंत्र सब कहाँ गए, उन आयतों का क्या हुआ' [15]

जो धर्म-स्थल पहले भक्ति, श्रद्धा व करुणा के प्रतीक हुआ करते थे, वह अब सांप्रदायिक वैमनस्य को बढ़ावा देनेवाली शरण-स्थली के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं। एक बानगी देखिए–

कहीं मंदिर कहीं मस्ज़िद के झगड़े/हैं दोनों अपनी-अपनी ज़िद के झगड़े
ये हम कैसी लड़ाई लड़ रहे हैं/यहाँ भाई से भाई लड़ रहे हैं
जो जालिम हैं वही निःशंक देखे/यहाँ बारूद के आतंक देखे
जहाँ खुशियाँ वहीं मातम मिलें हैं/खिलौनों में भी अक्सर बम मिले हैं।' [16]

उक्त पंक्तियाँ वर्तमान परिदृश्य को पूर्ण समग्रता से अभिव्यंजित करने में सक्षम हैं, जिसमें धर्म के नाम पर बँटे समाज को देखकर तल्ख हुए कुँअरजी के तेवर उनके सामाजिक सरोकारों को बयाँ करते हैं।

दिशाहीन राजनीति एवं भ्रष्ट सत्ता-वर्ग का चित्रण :

आज़ादी के बाद राजनीतिक व्यवस्था से मोह-भंग प्रारंभ हुआ। राजनीति शनैः शनैः दिशाहीन होती गयी। नैतिकता से विच्छिन्नता ने सत्ता-वर्ग को भ्रष्टाचार की अतल गहराइयों में धकेल दिया। इस वातावरण को देखकर अपने समय तथा समाज के प्रति पूर्णतया जागरूक कुँअरजी की क़लम भला कैसे ख़ामोश रहती? अपने काव्य-संग्रह 'शामियाने काँच के' में उनका हज़ार कंठों से बोलता मोह-भंग है और मूल्यांधता से उपजी पीड़ा। उनका मन जब इस स्थिति-परिस्थिति की रगड़ से सच की आग उगलना चाहता है तो वे व्यंग्य की मुद्रा में राजनीतिक व्यवस्था को 'काँच के शामियानों' की संज्ञा देते हुए लिखते हैं–

इस चिलकती धूप में कुछ और भी ज़्यादा जलें
सर पै हम ताने हुए थे, शामियाने काँच के' [17]

नोटों के बल पर वोट बटोरने वाले राजनेता जब सत्ता हथिया लेते हैं तो जनता-जर्नादन से मुँह फेरते हुए उन्हें देर नहीं लगती। उनके लिए जनता के दुख-दर्द की कोई अहमियत नहीं

होती। बानगी देखिए–

लोगों के दर्द-ओ-ग़म भी सियासत के ज़ेहन में
झंडों की तरह एक दिन फहरे, उतर गए। [18]

एवं

कि जिनकी साज़िशों से आज अपनी ज़ेब ख़ाली हैं
वो अपने हाथ ज़ेबों में कहीं डाले पड़े होंगे। [19]

उक्त सभी आयामों का अध्ययन करने के उपरांत हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि डॉ॰ कुँअर बेचैन ने अपने समय के सच का खुली आँखों से साक्षात्कार किया है। समकालीन कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति उनके साहित्य की अन्यतम विशेषता है, जिसे अनदेखा कर देना इस जागरूक एवं ज़मीन से जुड़े रचनाकार के प्रति गहरा अन्याय होगा।

संदर्भ

1. कुँअर बेचैन, शामियाने काँच के, पृ॰ 49, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, प्रथम संस्करण, 1983
2. वही, पृ॰ 70
3. वही, नाव बनता हुआ काग़ज़, पृ॰ 17, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1995
4. वही, मरकत द्वीप की नीलमणि, पृ॰ 13, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, प्रथम संस्करण, 1996
5. कुँअर बेचैन, वर्तमान समय में साहित्यकार का दायित्व, कथासंसार (पत्रिका), पृ॰ 39
6. डॉ॰ कुँअर बेचैन के नवगीत, पृ॰ 176, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, प्रथम संस्करण, 2006
7. वही, पृ॰ 11
8. वही, पृ॰ 53
9. आँगन की अलगनी, पृ॰ 20, प्रगीत प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, प्रथम संस्करण, 1997
10. आग पर कंदील, पृ॰ 93, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995
11. कोई आवाज़ देता है, पृ॰ 110, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, प्रथम संस्करण, 2005
12. नदी पसीने की, पृ॰ 70, अयन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006
13. दिन दिवंगत हुए, पृ॰ 115, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, प्रथम संस्करण, 2005
14. पिन बहुत सारे, पृ॰ 30, स्वयं प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, प्रथम संस्करण, 1972
15. आँगन की अलगनी, पृ॰ 28
16. नदी पसीने की, पृ॰ 4
17. शामियाने काँच के, पृ॰ 39
18. वही, पृ॰ 47
19. वही, पृ॰ 62

❐ 1920, **सेक्टर** 3
पुष्प विहार, नई दिल्ली

भारतेंदु मंडल के समानांतर मुरादाबाद का साहित्यिक मंडल

डॉ॰ महेश दिवाकर, डी॰लिट्॰
अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
गुलाबसिंह हिंदू (पी॰जी॰) कॉलेज, चाँदपुर (बिजनौर) उ॰प्र॰

वर्तमान में मुरादाबाद उत्तर प्रदेश की एक प्रमुख औद्योगिक महानगरी है, जिसका न केवल भारत में, अपितु अंतर्राष्ट्रीय जगत् में व्यापारिक एवं व्यावसायिक महत्त्व है। यह ताँबा, पीतल, काशी और शीशे पर जरी और नक़्क़ाशी कार्यों के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्पर पर ख्याति प्राप्त है। यही नहीं, चाँदी, लोहा, सींग और लकड़ी के सजावट के सामान के लिए भी यह विश्वविख्यात है। यहाँ अंतर्राष्ट्रीय हवाई पट्टी भी है, जो विश्व के प्रमुख देशों को सीधे उड़ानों से जोड़ती है। यह रुहेलखंड का महत्त्वपूर्ण संभाग है।

मुरादाबाद भारत की सांस्कृतिक महानगरी भी है, जो सीधे रामायण व महाभारतकाल से जुड़ी है। यह भृगुवंशीय महर्षि परशुराम का क्षेत्र भी है। महाभारतकाल से संबद्ध 'हस्तिनापुर' की सीमा भी मुरादाबाद से ही लगती है। जरासंध का वध भी इसी क्षेत्र में हुआ। भीष्म पितामह का दाह-संस्कार भी यहाँ पर कौशिकी नदी (अब कोसी नदी) के तट पर हुआ। सिकंदर के आक्रमण के समय मुरादाबाद परिक्षेत्र का नाम 'कठहर' था। सन् 1632 में इसका नाम 'मुरादाबाद' पड़ा। मुगलकाल में अनूपशहर के राजा अनूपसिंह की पुत्री सुरजावती कठहर क्षेत्र में अपने पति के साथ रहती थीं। कठहर में सुरजावती के चार पुत्र हुए। चौथे पुत्र का नाम था मुरादशाह। 1590 ई॰ में जन्मे इस चौथे पुत्र के नाम पर इस नगर का नाम मुरादाबाद पड़ा। सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं पुरातत्त्व लेखक श्री पुष्पेंद्र वर्णवाल ने अपने विशिष्ट शोध-आलेख 'मुरादाबाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' में विविध साक्ष्यों के द्वारा इस तथ्य को उजागर किया है।' [1]

साहित्यिक दृष्टि से भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में मुरादाबाद जनपद की उल्लेखनीय भूमिका रही है। यथा–

- खड़ीबोली का प्रथम–'विज्ञान नाटक', (स्वामी शंकरानंद) मुरादाबाद में लिखा गया था।
- खड़ीबोली में ही हिंदी-कहानी का प्रारंभिक लेखन मुरादाबाद में ही पं॰ ज्वालादत्त शर्मा के द्वारा आरंभ किया गया।
- मुरादाबाद ने ही वेदभाष्यकारों के रूप में तीन महाविभूतियाँ दीं–

1. स्व॰ खेमचंद्र त्रिवेदी, 2. स्व॰ रामस्वरूप शर्मा, 3. स्व॰ पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र

- खड़ीबोली में 'सत्यार्थ प्रकाश' के रूप में प्रथम गद्य-ग्रंथ की रचना मुरादाबाद में हुई।

यही नहीं, भारतेंदु मंडल के समानांतर 'मुरादाबाद का साहित्यिक मंडल' भी था, जो हिंदी के लिए विविधरूपेण अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था।

इन रचनाकारों में लाला शालिग्राम वैश्य (सं॰ 1888 से सं॰ 1958), पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र (सं॰ 1919 से सं॰ 1973) और पं॰ बल्देवप्रसाद मिश्र (सं॰ 1926 से सं॰ 1961) की महती भूमिका रही है, वहीं पं॰ झब्बीलाल मिश्र, पं॰ ज्वालादत्त शर्मा, बनारसीदास 'विरही', पं॰ कन्हैयालाल मिश्र, पं॰ पुरुषोत्तम व्यास, स्व॰ छदम्मीलाल 'विकल', स्व॰ कृष्णानंद लीलाधर जोशी की भी उल्लेखनीय भूमिका रही है, जिसके कारण भारतेंदु मंडल के समानांतर मुरादाबाद में भी साहित्यकारों का एक महत्त्वपूर्ण मंडल साहित्य-सेवा में रत था, जिसकी उपेक्षा तत्कालीन इतिहासकारों ने की, अन्यथा मुरादाबाद का हिंदी साहित्य के इतिहास में कम योगदान नहीं है। तत्कालीन मुरादाबाद मंडल के इन साहित्यकारों का परिचय प्रस्तुत है–

1. **लाला शालिग्राम वैश्य :**

लाला शालिग्राम जाति से वैश्य थे। इनका जन्म सं॰ 1888 आश्विन शुक्ल 3 शनिवार को मुरादाबाद नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम लाला आनंदस्वरूप था। ये मुरादाबाद के दीनदारपुरा मुहल्ले में रहते थे। इनकी माता धार्मिक विचारों से संपन्न एक आदर्श भारतीय महिला थीं।

बाल्यकाल में शालिग्राम जी का ध्यान खेल में अधिक होने के कारण पढ़ाई में न लगता था, पर इनके एक आत्मीय के उपदेश ने इन्हें पथ-भ्रष्ट होने से बचा लिया। फलस्वरूप, सब ओर से ध्यान हटाकर ये पढ़ने में जुट गए। कुछ ही समय में हिंदी, उर्दू, मुंडिया तथा कुछ संस्कृत और फ़ारसी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। कहते हैं, आगे चलकर इन्होंने और भी भाषाएँ सीखीं। [2]

वैद्यक, लेन-देन, सूजी-मैदा आदि इनके प्रमुख व्यवसाय थे। वैद्यक से अच्छी आय थी। स्थानीय रोगियों की बड़ी संख्या के अतिरिक्त बाहर से भी लोग चिकित्सार्थ आते थे। इनकी औषधियाँ बाहर भी जाती थीं। लाला शालिग्राम जी ने सं॰ 1954 में मुरादाबाद में 'आयुर्वेदोद्धारक औषधालय' स्थापित किया। इसमें दीन-दुखियों की चिकित्सा मुफ़्त होती थी। इससे इनकी प्रसिद्धि और लोकप्रियता और भी बढ़ी। अनुभवी लाला शालिग्राम जी को समाज में विशेष सम्मान प्राप्त था। प्रायः आसपास के लोगों के झगड़े यही निपटाते थे।

प्रतिष्ठित वैद्य और कुशल व्यवसायी होने के अतिरिक्त साहित्य-क्षेत्र में भी लाला जी ने अच्छी ख्याति पाई। सं॰ 1910 से इन्हें कविता करने की रुचि हुई। ये अपने समय के प्रसिद्ध नाटककार और सुकवि थे। पं॰ भवानीदत्त, उस्ताद कृष्णलाल, पं॰ नारायण शास्त्री, महाराज रामचंद्र, सेठ कुंदनलाल, लाला बहादुरलाल, पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र, पं॰ बलदेवप्रसाद मिश्र आदि स्थानीय साहित्यिक इनकी मित्र मंडली के सदस्य थे। इस मंडली की गोष्ठियाँ प्रायः रामगंगा के निकटस्थ राजा कृष्णकुमार के उद्यान में होती थीं। लाला शालिग्राम जी समस्या-पूर्ति भी अच्छी करते थे। इनकी पूर्तियाँ 'कवि व चित्रकार' में मिलती हैं।

लाला जी बड़े अध्ययनशील और विद्याव्यसनी थे। वैद्यक और व्यापार से जो भी समय मिलता, उसे ये स्वाध्याय और साहित्य-चर्चा में ही लगाते थे। पढ़ने-लिखने का यह क्रम अंतिम दिनों तक चलता रहा। दिन-रात निरंतर कार्य करने पर भी उत्साह कम न होता था। दीन-दुखियों की सेवा, उदारता, सहनशीलता, सत्यनिष्ठा आदि गुणों से इनका चरित्र भरपूर था। अहंकार तो जानते ही न थे। शांत, सरल और दयालु लाला जी रुग्णावस्था में भी रोगियों को उनके घर ही देख आते थे। आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं–'मोरध्वज'; 'माधवानल-कामकंदला'; 'लावण्यवती सुदर्शन'; 'अभिमन्यु'; 'पुरुविक्रम' (नाटक); 'सुदामाचरित'; 'गोपी वियोग की बारहखंडी'; 'कामकुतूहल'; 'द्रव्य गुणशतक'; 'धन्वन्तरि वैद्यक'; 'शालिग्राम औषधि शब्दसार'; 'मालतीमाधव' (अनूदित)।

सन् 1958 वैशाख कृष्ण चतुर्थी को सत्तर वर्ष की अवस्था में इस सहृदय मानव ने परलोक-गमन किया। शालिग्राम जी की धर्मपत्नी का निधन बीस वर्ष पूर्व ही हो चुका था। इनकी एकमात्र कन्या का नाम दुर्गादेवी था। लाला शालिग्राम अपने एकमात्र दोहित्र हरिशंकर को पुत्र से भी अधिक चाहते थे। श्रीयुत् हरिशंकर जी वैद्य, अपने मातामह द्वारा स्थापित 'आयुर्वेदोद्धारक औषधालय' को आज भी मुरादाबाद नगर में सुचारु रूप से चला रहे हैं। [3] वस्तुतः हिंदी साहित्य में आपका योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा। आप मुरादाबाद मंडल के प्रमुख साहित्यकारों में हैं।

2. **पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र 'विद्यावारिधि' :**

पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र जी जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज सुठियांय के रहनेवाले थे। कालांतर में ये लोग पटना में आ बसे। ज्वालाप्रसाद जी के पितामह पं॰ शिवदयालु पटना के प्रसिद्ध वैद्य थे। पटना के ज़िलाधीश विलसन साहब इनकी चिकित्सा के ऐसे प्रशंसक हुए कि जब उनका स्थानांतर मुरादाबाद को हुआ, तो वे शिवदयालु मिश्र को भी साग्रह मुरादाबाद ले आए। ज्वालाप्रसाद जी के पिता का नाम पं॰ सुखानंद [4] और माता का नाम श्रीमती गंगादेवी था। पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र का जन्म सं॰ 1919 आषाढ़ कृष्ण 2 को मुरादाबाद में हुआ। ज्वालाप्रसाद जी की ठीक पाँचवीं वर्षगाँठ के दिन कोई गुंडा इन्हें चुराकर जंगल में ले गया। इनके आभूषणादि तो उतार लिए, पर हिंदी के भाग्य से इन्हें जीवित रहने दिया। उसी दिन आधी रात को कोई सज्जन इन्हें थाने में छोड़ गया।

आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार के साथ इनका विद्यारंभ हुआ। दो वर्ष बाद अँग्रेज़ी पढ़ना आरंभ किया। पाँच वर्ष पढ़कर एक आर्यसमाजी अध्यापक से झड़प हो जाने पर स्कूल छोड़ दिया। इसके अनंतर घर पर ही संस्कृत, व्याकरण, काव्य, कोश आदि के श्रेष्ठ ग्रंथों का अध्ययन कर संस्कृत साहित्य और हिंदू-धर्मशास्त्र में अच्छी योग्यता पाई।

सनातन धर्म में अपूर्व श्रद्धा होने के कारण ही मिश्र जी ने दयानंद जी के मत का खंडन करते हुए 'दयानंद तिमिर भास्कर' नामक पुस्तक लिखी। स्वधर्मियों में इस ग्रंथ की अच्छी प्रतिष्ठा हुई। मिश्र जी अपने समय के अच्छे व्याख्याता थे। हिंदूधर्म के प्रचारार्थ आप उत्तर से दक्षिण तक के अनेक नगरों में भाषण देने जाते थे। अनेक सभाओं में आर्यसमाजी विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त किया था। इन्हीं गुणों के कारण 'भारत धर्म महामंडल' ने इन्हें 'विद्यावारिधि' और महोपदेशक का पद दिया था। कलकत्ते के कान्यकुब्ज मंडल ने भी इन्हें एक स्वर्णपदक प्रदान कर सम्मानित किया था।

धार्मिक जगत् में अभूतपूर्व ख्याति पाने के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र में भी

विद्यावारिधि जी ने अच्छी प्रसिद्धि पाई। इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रंथों का हिंदी पद्य और गद्य में सफल अनुवाद किया। आपके नाटकों में प्रयुक्त विविध राग-रागिनियाँ इनकी काव्य-प्रतिभा और संगीत-ज्ञान की साक्षी हैं। ये समस्या-पूर्ति भी अच्छी करते थे। 'कवि व चित्रकार' में इनकी सामयिक समस्या-पूर्तियाँ मिलती हैं। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद पर मिश्र भाष्य नाम से भाषा भाष्य लिखा, जो अत्यंत विद्वत्तापूर्ण और अपने प्रकार का निराला ग्रंथ है।[5]

मिश्र जी स्थानीय 'कामेश्वरनाथ पाठशाला' में पढ़ाते थे। सन् 1937 की कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को विद्यावारिधि जी का स्वर्गवास हो गया।[6] विद्यावारिधि जी के ज्येष्ठ पुत्र पं॰ जगदीशप्रसाद मिश्र बंबई के प्रसिद्ध 'श्री वेंकटेश्वर प्रेस' में कार्य कर रहे हैं। इनके दूसरे पुत्र पं॰ महावीरप्रसाद मिश्र हरिद्वार में 'विद्यावारिधि पुस्तकालय' के व्यवस्थापक हैं। आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं– 'रामलीला रामायण'; 'वेणी-संहार'; 'शकुंतला'; 'सीतावनवास' (नाटक); 'बिहारी सतसई-टीका'; 'पंचतत्र काव्य-भाषा-टीका'; 'रघुवंश संपूर्ण-टीका'; 'हितोपदेश-भाषा-टीका'; 'रामायण तुलसीकृत भाषा-टीका'; 'रामायणमूल' (3800 टिप्पणी); 'पूरनमल भक्त-संगीत'; 'राजस्थान का इतिहास भाग-2'; 'दशकुमार चरित्र हिंदीकाव्य'; 'गणित चंद्रोदय-बालकोपयोगी ग्रंथ' आदि।

अस्तु, हिंदी-साहित्य के विकास में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आप तत्कालीन मुरादाबाद मंडल के प्रमुख साहित्यकारों में हैं।

3. पं॰ बलदेवप्रसाद मिश्र :

पं॰ बलदेवप्रसाद मिश्र का जन्म पौष शुक्ल 11 सं॰ 1926 (सन् 1869 ई॰) को मुरादाबाद में हुआ था। ये पं॰ सुखानंद मिश्र के पुत्र तथा पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र 'विद्यावारिधि' के सहोदर अनुज थे।

पं॰ बलदेवप्रसाद जी ने यज्ञापवीत के बाद हिंदी का अभ्यास आरंभ कर दिया। तदंतर इनके पिता ने इन्हें अँग्रेज़ी पढ़ाने के लिए गवर्नमेंट हाईस्कूल में भर्ती कराया। यहाँ छह वर्ष पढ़कर इन्होंने अँग्रेज़ी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इसके अनंतर मिश्र जी ने बंगला और संस्कृत का विशेष ज्ञान अर्जित किया। इन चार भाषाओं में दक्षता प्राप्त करने के उपरांत बलदेवप्रसाद जी ने गुजराती, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, मराठी, कन्नड़ तथा पहाड़ी भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। ये इन सभी भाषाओं में बातचीत कर सकते थे तथा इनसे हिंदी में अनुवाद भी कर सकते थे।

बलदेवप्रसाद जी को समाचार-पत्रों को पढ़ने का बड़ा शौक़ था। ये अनेक भाषाओं के कई-कई पत्र मँगाकर पढ़ते थे। इसी कारण 18-20 वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने संपादन जैसे दुस्कर और दायित्वपूर्ण कार्य में दक्षता प्राप्त कर ली। आपने 'साहित्य सरोज', 'सत्य सिंधु', 'भारतवासी', 'भारत भानु', 'सोलजर पत्रिका' आदि पत्रों का सफल संपादन किया था। आपको तंत्र-विद्या से विशेष प्रेम था। 'तंत्र प्रभाकर' नामक प्रेस खोलकर तंत्रविषयक अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए। इन्हें मिस्मैरिज़्म भी अच्छा आता था। इन्होंने इससे संबंधित 'जागृति ज्योति' नामक पुस्तक लिखी थी। पं॰ बलदेवप्रसाद मिश्र हिंदी इस तीव्रता से लिखते थे कि उर्दू के शिखरस्त लेखकों को भी कई बार इनसे हार माननी पड़ी थी। मिश्र जी ने बंगला, गुजराती, मराठी, संस्कृत आदि के अनेक ग्रंथों का हिंदी अनुवाद किया था। इनका टाड राजस्थान का

भाषा अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है। ये कविता भी अच्छी करते थे। मिश्र जी द्वारा लिखित राग-रागिनियाँ उनके संगीत-ज्ञान की द्योतक हैं। 'कवि व चित्रकार' में इनकी समस्या-पूर्तियाँ मिलती हैं। बलदेवप्रसाद मिश्र जी ने हिंदी में इतना लिखा कि उसी की आय से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। अपनी लेखनी से ही जीविकोपार्जन करनेवाले लेखक हिंदी में तो बिरले ही हैं। इन्होंने अपने धन से ही क्रय की हुई पुस्तकों का एक पुस्तकालय भी स्थापित किया था। प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, बालमुकुंद गुप्त जैसे प्रतिष्ठित साहित्यिकों से मिश्र जी का घनिष्ठ संबंध था। पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी कई बार इनसे मिलने मुरादाबाद आए थे। [7]

स्वदेश-प्रेमी मिश्र जी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के अनन्य भक्त थे। बलदेवप्रसाद मिश्र जी कट्टर सनातनधर्मी थे। इन्हीं के प्रोत्साहन पर इनके अग्रज पं॰ ज्वालाप्रसाद 'विद्यावारिधि' आर्यसमाज के विपक्ष में खड़े हुए थे। बलदेवप्रसाद मिश्र जी ने सन् 1898 ई॰ में सनातन धर्म के पक्ष में 'धर्म दिवाकर' लिखा। धर्म में अपूर्व आस्था होने के कारण ही ये जगन्नाथ यात्रा कर आए थे। मिश्र जी नित्यप्रति महावीर के मंदिर में दर्शनार्थ जाते थे।

बलदेवप्रसाद मिश्र जी अत्यधिक दयालु, सहृदय और मिलनसार व्यक्ति थे। प्रकृत प्रेम में विश्वास रखनेवाले मिश्र जी, घंटों बालकों के साथ खेलते और उन्हें हँसाते थे। बंबई के 'श्री वेंकटेश्वर प्रेस' के मालिक खेमराज श्री कृष्णदास इन्हें बहुत मानते थे। छतरपुर और टिहरी गढ़वाल के राजदरबारों में भी इनका विशेष सम्मान था।

विद्या-व्यसन के कारण बलदेवप्रसाद मिश्र जी विवाह न करना चाहते थे, पर परिवार वालों के आग्रह पर सं॰ 1957 में इनका विवाह दिनरा (बरेली) के प्रसिद्ध पं॰ प्यारेलाल मथुराप्रसाद जी की बहिन केतकी देवी के साथ संपन्न हुआ।

मिश्र जी अध्यवसायी तो ऐसे थे कि दिन-भर परिश्रम करके भी जब इनका जी न भरता, तो रात्रि के दो बजे तक लिखते-पढ़ते थे। इस असाधारण परिश्रम का इनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। ये छत्तीस वर्ष की अल्पायु में ही सं॰ 1961 श्रावण शुक्ल सप्तमी (7 अगस्त 1905 ई॰) सोमवार की रात्रि को आठ बजे दिवंगत हुए। [8] पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र 'विद्यावारिधि' को अपने प्राणाधिक प्रिय अनुज की मृत्यु का इतना दुख हुआ था कि वे विषपान द्वारा अपने प्राण त्यागने के लिए प्रत्यनशील थे। पं॰ बलदेवप्रसाद जी की मृत्यु पर संवेदनासूचक पत्रों का ढेर लग गया था। बलदेवप्रसाद मिश्र जी के भ्रातृज पं॰ जगदीशप्रसाद मिश्र ने इन श्रद्धांजलियों को 'श्रद्धांजलि सुमन' नाम से प्रकाशित किया है। पं॰ बलदेवप्रसाद मिश्र की मृत्यु के तीन मास बाद उनकी कन्या ने जन्म लिया, जिसका नाम वीरबाला (अन्नपूर्णा) रक्खा गया। [9] आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं– 'संसार व महास्वप्न'; 'पानीपत'; 'राजपूत कीर्ति'; 'होनहार'; 'अनारकली'; 'पृथ्वीराज चौहान'; 'महामनमोहिनी'; 'तात्याभील'; 'प्रफुल्ल' (उपन्यास); 'कुंदरंदिनी'; 'शिवाजी विजय'; 'देवी' (अनूदित उपन्यास); 'प्रभासमिलन'; 'मीराबाई' (नाटक); 'लल्लाबाबू प्रहसन'; 'नेपाल का इतिहास'; 'टॉड का राजस्थान'–प्रथम भाग 'नाट्य प्रबंध'; 'हितोपदेश'; 'ताजीरात हिंद'; 'नारी रत्नमाला'; 'आल्हाखंड'; 'धर्म दिवाकर'–आलोचनात्मक।

अस्तु, मुरादाबाद के तत्कालीन साहित्य-मंडल और साहित्यकारों को प्रसिद्धि दिलाने में मिश्र जी की महती भूमिका रही। आप मुरादाबाद मंडल के प्रमुख रचनाकार रहे हैं।

4. **पं॰ झब्बीलाल मिश्र** (सन् 1833-सन् 1860) :

पं॰ झब्बीलाल मिश्र का जन्म मुरादाबाद में एक ब्राह्मण परिवार में सन् 1833 में हुआ। इनके पिता संगीत एवं कविता के प्रेमी रहे, फलत: पिता के संस्कारों का प्रभाव उनके पुत्र पर पड़ना स्वाभाविक था। अपने पिता के सान्निध्य में ही उन्होंने हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया और लोकसंगीत की तर्ज पर कुछ कृतियों की रचना की। उनकी लोकसंगीत कृतियों में उल्लेखनीय हैं [10] –'हीरापरी और लाल शहज़ादा'; 'सनोवर परी और गुलशहज़ादा'; 'परीरू और गुलरू शहज़ादा'; 'सब्ज़परी और महान शहज़ादा'; 'प्रेम-सरिता'; 'राजापरीक्षित'; 'अधर जोगन' आदि। आपने श्रीमद्भागवत के एकादशस्कंध का हिंदी अनुवाद भी किया, जिसकी उस समय काफ़ी चर्चा हुई।

पं॰ झब्बीलाल मिश्र ने लोकसंगीत शैली की तर्ज पर जो कृतियाँ हिंदी को दीं; वे आज़ादी-प्राप्ति के दशक तक बड़ी चर्चित हुई। अक्सर शादी-विवाह और लोकपर्वों पर इनका मंचन भी किया जाता था। लाला शालिग्राम वैश्य, स्वरूपचंद्र जैन, सूफ़ी अंबाप्रसाद, पं॰ ज्वालाप्रसाद मिश्र, पं॰ बलदेव मिश्र आदि साहित्यकारों से इनके अच्छे संबंध थे। मुरादाबाद में होनेवाली गोष्ठियों में पं॰ झब्बीलाल मिश्र की उपस्थिति प्राय: रहती थी। इनका कंठ भी मधुर था। फ़ारसी के प्रेम-कथानकों को इन्होंने चयनित करके भारतीयता में ढालकर प्रस्तुत किया। इनकी संगीत-कृतियों को अतीव लोकप्रियता मिली। लगभग 27 वर्ष की अल्पायु में ही इनकी मृत्यु सन् 1860 में हो गई। इस अवधि में आपने हिंदीभाषा एवं साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवा की और काफ़ी लोकप्रियता प्राप्त की। पं॰ झब्बीलाल मिश्र कवि होने के साथ-साथ लोकगीति साहित्य के अप्रतिम रचनाकार थे। आज भी यत्र-तत्र पुराने पुस्तकालयों में उनकी लोकसंगीत कृतियाँ मिल जाती हैं। मुरादाबाद-मंडल के आप प्रमुख रचनाकारों में हैं।

5. **पं॰ ज्वालादत्त शर्मा** (सन् 1888-सन् 1958) :

पं॰ ज्वालादत्त शर्मा का जन्म 1888 में मुरादाबाद के किसरौल मुहल्ला में पिताश्री पं॰ दुर्गादत्त शर्मा के परिवार में हुआ। माता-पिता के संस्कारों का प्रभाव आपके ऊपर व्यापक रूप से पड़ा। पिताश्री ज्योतिष के प्रकांड विद्वान थे और माताश्री धार्मिक आस्थाओं और पूजा-पाठ में रत रहती थीं। आपकी शिक्षा घर पर ही माता-पिता की देख-रेख में संपन्न हुई। हिंदी, संस्कृत, उर्दू, अँग्रेज़ी और बंगला में आपने पांडित्य प्राप्त किया। तत्कालीन साहित्यकार पं॰ भवानीदत्त जोशी आपके साहित्यिक गुरु थे।

आपने सन् 1912 में मुरादाबाद में ही नागरी प्रचारिणी सभा की संस्थापना की, जिसके माध्यम से आपने 'प्रतिभा' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन एवं संपादन प्रारंभ किया। मुरादाबाद के तत्कालीन सभी साहित्यकारों ने 'नागरी प्रचारिणी सभा' और 'प्रतिभा' पत्रिका की सदस्यता ग्रहण की। इसका प्रवेशांक सन् 1917 में प्रकट हुआ, जिसमें प्रमुख रूप से कहानियाँ और कविताएँ तथा समीक्षाएँ संगृहीत थीं। यही नहीं, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, पं॰ चंद्रधर शर्मा गुलेरी, इलाचंद्र जोशी, पं॰ गोविंदवल्लभ पंत, उपेंद्रनाथ अश्क, पं॰ माधवप्रसाद मिश्र, पं॰ पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', पं॰ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पं॰ श्रीधर पाठक, पं॰ श्रद्धाराम फिल्लौरी, यशपाल प्रभृति साहित्यकारों की रचनाएँ इस पत्रिका में प्रकाशित हुईं। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर से पं॰ ज्वालादत्त शर्मा के बहुत अच्छे संबंध थे। भारत के

तत्कालीन बड़े-बड़े साहित्यकार पं॰ ज्वालादत्त शर्मा सहित अन्य साहित्यकारों से मिलने मुरादाबाद आते रहते थे। आपके कारण मुरादाबाद-मंडल को साहित्य के राष्ट्रीय पटल पर बड़ी ख्याति मिली। यही नहीं, पं॰ ज्वालादत्त शर्मा ने उस समय देश के कई प्रांतों बंगाल, मध्य प्रांत, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, गुजरात, बिहार आदि के कई नगरों का साहित्यिक भ्रमण कर साहित्यकारों को न केवल एकजुट किया, अपितु 'प्रतिभा' पत्रिका के माध्यम से प्रोत्साहित भी किया। वे एक कुशल संपादक और साहित्यकार के साथ-साथ एक अच्छे व्यक्ति भी थे। सृजन, संपादन और प्रकाश–तीनों में उनकी अहम भूमिका थी।

उनकी कृतियों में उल्लेखनीय हैं [11]–मौलाना हाजी और उनका काव्य; मौलाना दाग़ और उनका काव्य; ग़ालिब और उनका काव्य; उस्ताद ज़ौक और उनका काव्य; गोस्वामी तुलसीदास का दर्शनशास्त्र; आत्मतत्त्व प्रकाश; गीता में ईश्वरवाद; जीवनी शक्ति; आचार्य भवभूति, सिक्खों के दस गुरु; गल्प पंचदशी, रूपरेखा, सोहं तत्त्वं तथा सोहं गीता आदि। आपका आलोचनात्मक और अनूदित साहित्य अधिक है। सन् 1958 में आप दिवंगत हो गए। हिंदी के लिए आपका योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

6. **बनारसीदास 'विरही'** (सन् 1889 से सन् 1961) :

आपका जन्म सन् 1889 में मुरादाबाद में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। संस्कृत और हिंदी का आपको विशद ज्ञान था। एक सफल कवि और लेखक के रूप में आपने अपनी पहचान बनाई। आपकी प्रमुख कृतियों में उल्लेखनीय हैं12–'लवकुश'; 'परीक्षा'; 'मातृभक्ति'; 'प्रेमयोगी'; 'प्रेमयोगी'; 'राम विजय' (सभी नाटक); 'ज्ञान कुसुमाकर'; 'सतीमोह' (खंडकाव्य) और 'दुर्गास्तुति' काव्य-संग्रह। 'विरही' जी ने इनके अतिरिक्त कई संस्कृत कृतियों का अनुवाद भी किया जो आज उपलब्ध नहीं हैं। मुरादाबाद के समकालीन कवियों में आपको प्रचुर ख्याति प्राप्त थी।

7. **पं॰ कन्हैयालाल मिश्र** (सन् 1872 से सन् 1927) :

आपका जन्म मुरादाबाद में सन् 1872 में हुआ। आपने अपने माता-पिता से घर पर ही हिंदी, संस्कृत, उर्दू और अँग्रेज़ी की अच्छी शिक्षा प्राप्त की। आपने एक समर्थ लेखक और कवि के रूप में ख्याति प्राप्त की। 'नारी देहत्व'; 'भोज-प्रबंध'; 'प्रेमसरिता'; 'योगवसिष्ठ'; 'वैराग्य'; 'हरिश्चंद्र नाटक'; 'श्रीराम'; 'होरी रहस्य'; 'हमेशा बहार'; 'सनातन धर्मशाला' आदि आपकी सुप्रसिद्ध कृतियाँ हैं। [13] नाटक, कविता, खंडकाव्य समीक्षा, निबंध आपकी प्रिय विधाएँ हैं। आपकी मुरादाबाद प्रेस और भार्गव प्रेस, काशी से कई कृतियाँ प्रकाशित हुईं। सन् 1927 में मुरादाबाद में ही आपका निधन हो गया।

8. **पं॰ पुरुषोत्तम व्यास** (सन् 1893 से सन् 1963) :

पं॰ पुरुषोत्तम व्यास का जन्म सन् 1893 में पितृविसर्जनी अमावस्या को मुरादाबाद के जीलाल मुहल्ला में हुआ था। इनके पिता हिंदी, संस्कृत, उर्दू और अँग्रेज़ी के प्रखर विद्वान थे। उनकी ही देखरेख में आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई। पं॰ पुरुषोत्तम व्यास संगीत एवं साहित्य के असाधारण साधक थे। आपने कृष्ण-सुदामा चरित [14] की रचना प्रमुख रूप से की, जो कि अत्यंत चर्चित भी हुई। इसके अतिरिक्त आपने अनेक गीत, पद और लावनियों की रचना भी की। इनको

अपने समय में काफ़ी प्रसिद्धि मिली। सन् 1963 में आप स्वर्गवासी हुए। पं॰ नरोत्तम व्यास (सन् 1895 से सन् 1980) का जन्म भी मुरादाबाद में हुआ। ये पं॰ पुरुषोत्तम व्यास के अनुज थे तथा संगीत, अध्यात्म और साहित्य के प्रकांड विद्वान थे। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि के रूप में इनकी दो खंडों में ग्रंथावली प्रकाशित हुई।

9. **श्री छदम्मीलाल 'विकल'** (सन् 1895 से सन् 1953) :

आपका जन्म मुरादाबाद में सन् 1895 में हुआ और शिक्षा भी घर पर ही पूर्ण हुई। अपने पिता की देखरेख में आपने, संस्कृत, हिंदी, उर्दू का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया। आपने 'परशुराम' [15] नामक महाकाव्य का सृजन किया, जिसको अत्यंत ख्याति मिली। इसके अतिरिक्त गीत, कविता और कहानियाँ भी लिखीं, जो आज अप्राप्य हैं। वस्तुत: 'परशुराम' महाकाव्य के कारण 'विकल' जी को मुरादाबाद के साहित्यकारों में विशेष प्रसिद्धि मिली। सन् 1953 में आपका निधन हुआ।

10. **श्री कृष्णानंद लीलाधर जोशी** (सन् 1895 से सन् 1935) :

कविवर कृष्णानंद लीलाधर जोशी का जन्म मुरादाबाद में सन् 1895 में हुआ। इनके पिता संस्कृत एवं हिंदी के प्रखर विद्वान थे। वे ज्योतिष की भी गहरी जानकारी रखते थे। अपने पिताश्री से इन्होंने संस्कृत, हिंदी की विशिष्ट शिक्षा प्राप्त की और ज्योतिष का ज्ञान भी प्राप्त किया। इन्होंने कई प्रबंधकाव्यों की रचना की। इनमें नल-दमयंती, 'सावित्री-सत्यवान', 'द्रोपदी' तथा 'श्रवणकुमार' को विशिष्ट ख्याति प्राप्त हुई। [16] इनके कारण मुरादाबाद को उस समय बड़ी ख्याति मिली। सन् 1935 में आप लगभग 40 वर्ष की अल्पायु में स्वर्ग सिधार गए। हिंदी-साहित्य में मुरादाबाद के लिए आपकी उपलब्धियाँ विशिष्ट अर्थ रखती हैं। आपके कारण मुरादाबाद को साहित्य में उस समय बड़ी प्रसिद्धि मिली।

सारत: भारतेंदु मंडल के समानांतर मुरादाबाद मंडल में उपर्युक्त साहित्यकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य साहित्यकार भी चर्चित रहे हैं, जिनका योगदान भी उल्लेखनीय है। [17] लेकिन आज इनकी कृतियाँ अप्राप्य हैं। ये हैं–

11. **स्व॰ रूपचंद्र जैन** (सन् 1836 से सन् 1907) कुंदरकी, मुरादाबाद :

इनकी कृतियों में 'बीरबल और विक्रम' (1860) तथा 'भोज और कालिदास' (1880) प्रसिद्ध रहीं। ये गल्प साहित्य की अनूठी कृतियाँ रहीं।

12. **सूफ़ी अंबाप्रसाद** (सन् 1858 से सन् 1915) मुरादाबाद :

आपका नाम भी मुरादाबाद के तत्कालीन चर्चित साहित्यकारों में हैं। इन्होंने 'हरामपुर' (1890) नामक प्रसिद्ध उपन्यास हिंदी को दिया। इसमें रामपुर के नवाब के जीवन के बारे में लिखा है, जो व्यंग्यपूर्ण है।

13. **स्व॰ जयंतीप्रसाद उपाध्याय** (सन् 1860 से सन् 1920) मुरादाबाद :

इन्होंने भी हिंदी को 'तात्याभील' नामक उपन्यास (1901) दिया, जिसका कथानक वीरचरित काव्य के रूप में प्रख्यात है। तात्याभील के द्वारा उपाध्याय जी ने राष्ट्रप्रेम की भावना का संदेश दिया है।

संक्षेप में भारतेंदु मंडल के समानांतर मुरादाबाद जनपद के साहित्यिक मंडल ने अनेकानेक लोकप्रसिद्ध साहित्यकारों को जन्म दिया, जिन्होंने न केवल भारतेंदुयुग में मुरादाबाद

को साहित्य के क्षेत्र में ऊँचाइयाँ दीं, अपितु आगे द्विवेदीयुग में भी इनमें से अनेक साहित्यकारों ने मुरादाबाद का नाम रोशन किया। लेकिन दुर्भाग्य! हिंदी-साहित्य के तत्कालीन इतिहासकारों ने मुरादाबाद के इन साहित्यकारों को, जोकि साधना में रत तो रहे, लेकिन प्रचार से विरत रहे, उनके लेखन की उपेक्षा की। हिंदी-साहित्य के इतिहास में यत्र-तत्र उनके नामों की तो सामान्यतया चर्चा की है, लेकिन उनकी उपलब्धियों को इंगित नहीं किया है। इनमें चाहे मिश्रबंधु रहे हों, या आचार्य रामचंद्र शुक्ल अथवा डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी आदि। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी-साहित्य के अनुसंधित्सु इस साहित्यकारों के साहित्य की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं से खोज करें और उनके सृजन पर उपर्युक्त शोध-ग्रंथ लिखे जाएँ। यही इनके प्रति उचित श्रद्धांजलि होगी। एक ओर इससे हम अपने दायित्व की पूर्ति करेंगे, तो दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में इन साहित्यकारों की उपलब्धियों को भी हिंदी-जगत् के सामने उपस्थित कर सकेंगे।

संदर्भ

1. डॉ॰ महेश 'दिवाकर', बाबू लक्ष्मणप्रसाद अग्रवाल, अभिनंदन ग्रंथ, पृ॰ 23
2. डॉ॰ अविनाशचंद्र अग्रवाल, भारतेंदुयुगीन कवि, पृ॰ 93
3. प्रस्तुत परिचय मुख्यतया 'सरस्वती' (जनवरी जून, भाग 29 खंड 1) में प्रकाशित 'लाला शालिग्राम वैश्य' (लेखक श्री देवीदत्त दीक्षित) शीर्षक लेख और लाला शालिग्राम कृत 'मोरध्वज नाटक' (वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई सन् 1947) की भूमिका पर आधारित है।
4. डॉ॰ श्यामसुंदर दास ने 'हिंदी कोविद रत्नमाला' (भाग 1) में ज्वालाप्रसाद जी के पिता का नाम पं॰ सुखनंदन मिश्र दिया है, पर विद्यावारिधि जी के सुपुत्र पं॰ जगदीशप्रसाद मिश्र ने 'श्रद्धांजलि सुमन' (सन् 1940 में वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित) में अपने पितामह का नाम पं॰ सुखानंद ही लिखा है।
5. डॉ॰ अविनाशचंद्र अग्रवाल, भारतेंदुयुगीन कवि, पृ॰ 102
6. प्रस्तुत परिचय के लिखने में डॉ॰ श्यामसुंदरदास कृत हिंदी कोविद रत्नमाला (भाग 1) की विशेष सहायता ली गई है।
7. डॉ॰ अविनाशचंद्र अग्रवाल, भारतेंदुयुगीन कवि, पृ॰ 103
8. संयोग से महाकवि गोस्वामी तुलसीदास और पं॰ बलदेवप्रसाद मिश्र का निधन एक ही तिथि को हुआ। कई स्थानों पर इन साहित्यिकों की जयंतियाँ एक साथ मनाई जाती हैं।
9. प्रस्तुत परिचय विशेषतया 'श्रद्धांजलि सुमन' (विद्यालय प्रेस, बंबई 1940 ई॰) पर आधारित है।
10. सं॰ अशोक विश्नोई, संकेत, पृ॰ 133
11. वही, पृ॰ 135
12. वही, पृ॰ 135
13. वही, पृ॰ 134
14. वही, पृ॰ 134
15. वही, पृ॰ 134
16. वही, पृ॰ 133
17. वही, पृ॰ 133

उपभोक्तावाद और बाज़ारीकरण के संदर्भ में 'दस बरस का भँवर'

रीतू चौहान, शोध-छात्रा
डॉ॰ सरिता वशिष्ठ, निदेशिका
रीडर, हिंदी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरि॰)

उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद तथा उत्तर-आधुनिकता के संदर्भ में इन दिनों कुछ उपन्यास उल्लेखनीय रहे हैं, जैसे–सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चाहिए', मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब', चित्रा मुद्गल का 'आवाँ', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक', अलका सारावगी का 'कलिकथा वाया बाईपास', मनोहरश्याम जोशी का 'कुरु-कुरु स्वाहा', प्रकाश मनु का 'यह जो दिल्ली है' आदि। इसी शृंखला में रवींद्र वर्मा का उल्लेखनीय उपन्यास 'दस बरस का भँवर' आता है, जिसमें विश्व पूँजी व्यापार में उपभोक्तावाद का बढ़ता पसारा, वैश्वीकरण की सौग़ात के रूप में अपसंस्कृति के अनेकश: रूप और प्रकार, अमेरिकीकरण और ब्रांडेड संस्कृति में नई पीढ़ी का ढलते चले जाना आदि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को इसमें उठाया गया है।

मार्क्स का समय औद्योगिक पूँजीवाद का समय था। आज बहुराष्ट्रीय निगमों वाले पूँजीवाद का समय है। मार्क्सवादी चिंतक अर्नेस्ट मैंडल ने 'लेट-कैपीटलिज़्म' शीर्षक अपनी पुस्तक में कहा कि हमें पूँजी के नए-नए रूपों की व्याख्या, पुनर्व्याख्या करनी होगी, क्योंकि पूँजी का अर्थ बदल रहा है। हालत यह हो गई है कि पूँजीवाद 'विश्व-बाज़ार' या विश्व-बाज़ारवाद की स्थिति तक पहुँच गया है। उसी ने नई तकनीकी क्रांति को संभव बनाया है और उसी ने पूरी गति के साथ 'बहुराष्ट्रीय निगमों की सत्ता' को बाज़ार के वर्चस्ववाद में स्थापित कर दिया है। 'लेट-कैपीटलिज़्म' पूँजी का वह 'अतिरूप' है, जो तकनीकी क्रांति का नक्शा बदलता और बनाता है–पूँजी का निर्माण करता है और उत्पादकता की गति को बेहद तीव्र कर देता है। यह घर में फास्टफूड, सिले हुए आकर्षक वस्त्र, वाशिंग मशीन पहुँचाकर 'सेवा' करता है। टूरिज़्म, संचार, सूचना-उद्योग सभी 'सेवा' के उद्योग हैं। इसलिए उपभोक्तावाद एक नवीन उपयोगिता-क्रांति के सुरक्षित रहकर अपना प्रभाव विस्तार करता है। विज्ञापन की 'भाषा' को बदल देता है और नए ग्राहक तैयार करता है। बाज़ार में नई-नई उपभोग सामग्री की बाढ़ आ जाती है।' [1]

आज समाज उत्तर उपनिवेशवादी समाज भी है। अब विचारधाराएँ प्रजातंत्र और बाज़ार के बीच टी॰वी॰ सेटेलाइट और फ़िल्म जैसे गैर परंपरागत सोफिस्टिकेटेड साधनों द्वारा संतुलन बनाने का काम करती है। एरिक फ्राम ने लिखा है कि विचार, भावना और सौंदर्यवाद सभी

आज इसी भावना से काम कर रहे हैं। उनके शब्द हैं, 'जनसंचार माध्यमों की वृद्धि के कारण आज व्यक्ति बहुत तेज़ी से यह सीख लेता है कि कौनसे विचार 'उचित' हैं, कैसा आचरण 'सही' है, कौनसी भावनाएँ 'उपयुक्त' हैं, कैसा आचरण रुचिबोध 'प्रचलित' है। उसे सिर्फ़ मीडिया के संकेतों को ठीक-ठीक पकड़ते रहना है, और यह सुनिश्चित हो सकता है कि उससे ग़लती नहीं होगी। फ़ैशन पत्रिकाएँ उसका परिधान तय कर देंगी, पुस्तक क्लब या पाठक मंच उसके पढ़ने के लिए उचित पुस्तकों का निर्धारण कर देंगे और अब तो हालात यहाँ तक आ पहुँचे हैं कि वैवाहिक जोड़े तय करने के लोकप्रिय हो रहे तरीक़े भी कंप्यूटरी कुंडली के निर्णयों पर आधारित हैं। हमारे ज़माने में ईश्वर का विकल्प भी ढूँढ निकाला है।' [2]

'सर्वमंगल मांगल्ये पूँजी सर्वार्थ साधिके' के सूत्र को उत्पादक और उपभोक्ता दोनों मिलकर आजमा रहे हैं। बाज़ारवाद का सबसे बड़ा अस्त्र है–विज्ञापन। 'विज्ञापन बाज़ारवाद की सबसे महत्त्वपूर्ण विधा है, एक उपभोक्ता समाज बनाया जहाँ उत्पादकता और स्पर्धा ने पारिवारिक संबंधों के समीकरण बदल दिए। संबंधों की सहजता नष्ट कर दी। परिवार के संबंधों की स्थिरता और निरंतरता का निर्णय विशेष कंपनी के सूटकेस और वार्डरोब करते हैं। आपसी संबंधों का सौंदर्य विभिन्न प्रकार की क्रीम, तेल, इत्र, घड़ियाँ, शैंपू, खाने-पीने-पहनने की चीज़ें, वनस्पतियाँ और साबुनों इत्यादि द्वारा निर्धारित होता है। आज इन संचार-माध्यमों और विज्ञापनों ने हमारे समाज को एक बड़े बाज़ार में बदल दिया है।' [3]

पूँजीवाद के तीसरे चरण में वह मीडिया एवं विज्ञापन की संस्कृति की ताक़त पर आश्चर्यजनक रूप से निर्भर है। बहुराष्ट्रीय निगमों वाले पूँजीवाद ने अपने राजनीतिक-आर्थिक सिद्धांतों, विचारों, प्रवृत्तियों, मूल्यों और मंतव्यों आदि को जनता के दिमाग़ में ठोक-पीटकर बैठाने के लिए बहुत बारीक मनोवैज्ञानिक औज़ार विकसित किए हैं। विज्ञापन एजेंसियाँ बड़ी सीमा तक मनोविज्ञान का प्रभावकारी उपयोग न केवल अपने माल की खपत, बल्कि विचारों आचार-व्यवहार, उद्देश्य यहाँ तक कि भाव एवं मनोदशाओं को वशीभूत रखने में करती है। 'आज जब एक ओर नई पूँजी सभ्यता, तरह-तरह के नारों, विज्ञापनों, सूचनाओं और प्रचार-सामग्रियों के दल-बल सहित, तीसरी-चौथी दुनिया को अपने आर्थिक मायाजाल में उलझाकर उनकी सांस्कृतिक पहचाने छीन लेना चाहती है, हमारे कथाकार उसकी इस साज़िश के प्रति धीरे-धीरे लामबंद हो रहे हैं।' [4] उपभोक्तावादी पूँजीवादी ने संस्कृति को अपसंस्कृति में बदल दिया। अर्थक्षेत्र और संस्कृति क्षेत्र एक हो गए हैं। संस्कृति भी एक उत्पाद बन गई है। उपभोक्ता संस्कृति के पसरने से सैक्स की विकृति को ही बढ़ावा मिला है।

इन सब स्थितियों को उपन्यास में बाँकेबिहारी और रतन की कथा के द्वारा विशेष रूप से तथा उनके अन्य पारिवारियों बेटे-बहुओं के प्रसंगों द्वारा भी कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है। रतन को ऐसी नई पीढ़ी का प्रतिनिधि बनाया गया है, जो दुनिया की बाह्य चकाचौंध से अत्यंत प्रभावित है और किसी भी क़ीमत पर अपने सपनों को साकार करने के लिए दिग्भ्रमित है। अपने सपनों को पाने के लिए उसके दो ही रोल मॉडल हैं– आमिर ख़ान तथा धीरूभाई अंबानी जैसा कोई उद्योगपति। डॉ॰ पांडेय उसकी मन:स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहते हैं–'रतन अपनी पीढ़ी का नौजवान है। वह जल्दी में है। उसे फास्ट फूड की तरह 'फास्ट सक्सेस' चाहिए। वह इंतज़ार नहीं कर सकता। वह सीधा पहले नंबर की सीढ़ी पर उछल जाना चाहता है। नौकरी छोड़कर वह

अंबानी और आमिर के सपनों को देखता है, सपने तो सपने हैं।' [5]

सारा मध्यवर्ग आज भौतिकता की जिस दौड़ में पड़कर एक विशिष्ट वर्ग में छलांग लगाने की जद्दोज़हद में पड़ा हुआ है। भौतिकतावादी दृष्टि, उपभोक्तावाद, बाज़ार, बाज़ार की ब्रांडेड संस्कृति इन्हें 'क्रेजी' बना रही है और बाज़ार इन्हें भड़काता है। डॉ॰ पांडेय का कथन द्रष्टव्य है–'हर लड़के को लीवाइस की जींस, सेल-फ़ोन, मारुति और तीन लड़कियों में से एक लड़की चाहिए, जो नए ब्रीफ़ के विज्ञापन में समुद्र की लहरों से दौड़ती हुई लड़के की ओर रोज़ टी॰वी॰ के परदे पर आती हो।' [6]

उपभोक्ता संस्कृति उच्च जीवन-स्तर को ना काफ़ी मानती है और सवाल खड़ा करती है कि और अच्छा क्यों नहीं। फ़ैशन-सजगता उत्पन्न करना और सबसे महँगे व बढ़िया माल या ब्रांड की उपलब्धता की ललक पैदा करना बाज़ारवाद के मूल पोषक हैं। छोटे-से-छोटे बच्चे को भरमा रही है, नूर और अमर का बेटा मुन्ना सोलह सौ रुपयों के जूतों की माँग करता है। मध्यवर्गीय परिवार भी मारुति और उससे भी बढ़िया बड़ी गाड़ियों की क़तार देखकर उन्हें प्राप्त करने का स्वप्न पालते हैं, उसके लिए ऑफ़िस या बैंक से लोन लेते हैं। विदेश की हर चीज़ को हम अपने देश में और अपने पास देखना चाहते हैं। शराब भी विदेशी चाहता है रतन, क्योंकि 'यह विश्व ग्राम का ज़माना है। धरती के टुकड़ों फ़र्क़ नहीं रहा।' [7]

यह उपन्यास विज्ञान, प्रौद्योगिकी और स्पेस-साइंस के और कई-कई सवालों पर गौर करता है। आज के तांत्रिक युग की स्थिति यह है कि यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि यंत्र मानव को परिचालित कर रहा है या मानव यंत्र को। इस तथ्य की प्रतीति उस घटोत्कच रोबोट से कराई गई है, जो प्रकाश के साथ अंतरिक्ष में भेजा जाता है। जो न हँस सकता है, न बोल सकता है, न इसे भूख, प्यास, संवेदना, उत्तेजना का और किसी संबंध माँ-बाप, रिश्तेदार, दोस्त को समझने का समय है। उपन्यासकार ने महानगरीय जीवन की इस यांत्रिकता का चित्रण रतन-पवन के कथा-प्रसंग के माध्यम से किया है–'लोग समुद्र और दुकानों से लौटकर अपने घर जा रहे थे। मुंबई में घर शहर से इतनी दूर थे जैसे परदेस हो। लोग घर-परदेस की तरह जाते थे और दिन-भर दफ़्तरों या रेलगाड़ियों में रहते थे।' [8]

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हाइटेक तकनीक, संचार-माध्यमों के सैलाब में बहती चली आई आयातित संस्कृति, आचार, व्यवहार विचार सभी को भ्रष्ट करती हुई आक्रामक उपभोक्तावाद का पर्याय बन रही हैं, जिसमें आर्थिक स्थिति ही नहीं इतिहास, संस्कृति और समाज तीनों प्रभावित हो रहे हैं। उपभोक्तावाद संस्कृति के पसरने से सैक्स की विकृति दुर्गति में प्रवेश पा रही है। उपन्यासकार ने रतन और सपना की प्रेम-कहानी के माध्यम से इस स्थिति को स्पष्ट किया है कि टी॰वी॰ ने कस्बे और छोटे शहरों तक किस प्रकार अपसंस्कृति को बढ़ावा दिया है– 'ऐसी दोस्ती का अंजाम अब इस छोटे शहर में भी एक अदद सूना कमरा और एक अदद कंडोम हो गए थे–जिसमें परिवार नियोजन और टी॰वी॰ का भरपूर योगदान था। अब वह ज़माना नहीं था कि लड़के-लड़कियाँ मोहल्लों की छतों से नज़रों के तीर चलाएँ और मंदिरों में एक-दूसरे से टकरा जाएँ। तब शहर में प्रेमी-प्रेमिका के बीच चुंबन का एक पराक्रम था। अब प्रेमी ने प्रेतिका का बलात्कार किया। फिर प्रेमिका ने थाने में जाकर रपट लिखाई। लोग इससे खिलखिलाकर हँसते फिर सहम जाते। शहर को क्या हो गया था?' [9]

बहुराष्ट्रीय हो जाने के कारण छोटे और मझोले देशों के आर्थिक और राजनीतिक हितों पर पलीता लगाया जा रहा है। अमेरिका जैसा पूँजीवादी देश चाहता है कि दुनिया के वाणिज्य-व्यापार की व्यवस्था पर उसका वर्चस्व बना रहे। ऐसा न हो कि वह केवल सामरिक महाशक्ति बनकर रह जाए। इसी के चलते उन्होंने वैश्वीकरण नाम का एक जटिल आर्थिक जाल सारी दुनिया पर डालने का सफल प्रयास किया है। अमन का कथन द्रष्टव्य है– 'उसने आँकड़ों की मदद से बताया है कि भूमंडलीकरण का पहला दशक अवसान की ओर अग्रसर है और उसके राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रवक्ताओं के सुनहरे वादे धूल में लौट रहे हैं। मध्यवर्गीय कर्मचारी किसी धोखे में न रहें। यह पिज्ज़ा और डिज़ाइनर कपड़ों का संसार, घरों में टी॰वी॰ का परदा उठाकर घुस रहा है। बच्चे, हज़ारों के कपड़े और जूते माँगते हैं। दो सदी पहले अँग्रेज़ों ने एक हाथ में सलीब और दूसरे हाथ में बंदूक़ लेकर हमारे देश में प्रवेश किया था। इस दशक में गोरों ने फिर एक हाथ पेप्सी और दूसरे हाथ में टी॰वी॰ का केबल लेकर हमारी धरती पर क़दम रखे हैं। धरती पर क़दम रखनेवाले ये खुद नहीं हैं। उनके अक्स हैं। ये अक्स अंतरिक्ष में घूमते सैटलाइट के ज़रिए हमारे घरों में आते हैं। हमें पता नहीं चलता। हम अमरीकी बिंबों के ग़ुलाम हैं।' [10]

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'दस बरस का भँवर' एक ऐसी महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें उपन्यासकार ने आज के उपभोक्तावादी जीवन की सुखकर अवस्थितियों और आत्मनिष्ठ व्यक्तिवादी रुझानों का चित्रण किया और साथ ही इस उद्देश्य का चित्रण किया है किस प्रकार उपभोक्तावादी पूँजीवाद ने संस्कृति को अपसंस्कृति में बदल दिया, अर्थक्षेत्र और संस्कृति क्षेत्र एकाकार हो गए हैं। संस्कृति एक उत्पाद बन गई है। पैसे की अंधी दौड़ में मनुष्य का उपयोगितावाद और उपभोक्तावाद का मोहरा बनकर रह जाना, घर और परिवार के रिश्तों और माहौल का एक बाज़ार में तब्दील हो जाना, संसार के नैतिक पतन का एक 'काउंट डाउन' प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने संपूर्ण जीवनमूल्यों को गहरे संकट में डाल दिया है।

संदर्भ

1. कृष्णदत्त पालीवाल, उत्तर आधुनिकतावाद की ओर, पृ॰ 60
2. मानव-समाज में टेक्नोलॉजी के नियंत्रण, पहल, 50-51, त्रैमासिक भोपाल, 1994, पृ॰ 145
3. सं॰ मुक्ता, उत्तर आधुनिकता उत्तरसंवाद, पृ॰ 170
4. मनोहरश्याम जोशी, आज का समाज, पृ॰ 56-57
5. रवींद्र शर्मा, दस बरस का भँवर, पृ॰ 76
6. वही, पृ॰ 77
7. वही, पृ॰ 65
8. वही, पृ॰ 117
9. वही, पृ॰ 162
10. वही, पृ॰ 73-74

प्रेमचंद और राजेंद्रमोहन भटनागर के उपन्यासों में नारी-पात्र

मंजु पुरी, शोध-छात्रा
हिंदी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरि॰)

भारतीय संस्कृति में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार में यदि नारी न होती तो सभ्यता और संस्कृति ही न होती। भारतीय दर्शन में नारी को प्रकृति रूपा माना गया है। सृष्टि के मूल में नारी ही है। वह पुरुष की अनुगामिनी, 'सहगामिनी तथा सहचरी है। नारी को सृष्टि की साधना और प्रकृति का मूर्त रूप माना गया है। नारी को पूजनीय मानते हुए स्वामी विवेकानंद का कहना है–'स्त्री पूजन से ही समाज की प्रगति होती है। जिस देश अथवा समाज से नारी का पूजन नहीं होता, वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। 'पश्चिमी देशों के अध:पतन का कारण उन्होंने शक्तिशाली स्त्री की अवहेलना माना है।' [1]

प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में हर वर्ग से संबंधित नारी का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने माँ के वात्सल्यमय, त्यागपूर्ण, आदर्शमय रूप का तथा आत्मसमर्पण की पराकाष्ठा का श्रद्धा-भाव से चित्रण किया है। जैसे 'रंगभूमि' उपन्यास की रानी जाह्नवी अपने पुत्र को समाज-सेवा के लिए उत्सर्ग करना जानती है ताकि देश का उद्धार हो–'मैं उसे सपूत बेटा, निश्छल मित्र और नि:स्वार्थ सेवक बनाना चाहती हूँ। मुझे उसके विवाह की लालसा नहीं . .. आज वह किसी की रक्षा के निमित्त अपने प्राण दे दे तो मुझसे अधिक भाग्यशाली माता संसार में न होगी।' [2]

पत्नी रूप में नारी के सहानुभूति, सेवा, त्याग और आत्मसमर्पण गुणों को चित्रित किया है, जो गबन की जालपा, गोदान की धनिया, कर्मभूमि की सुखदा, कायाकल्प की मनोरमा व इंदु के माध्यम से उभरा है। कर्मभूमि की सुखदा अमरकांत से स्पष्ट शब्दों में कहती है–

'माता के साथ क्यों रहूँ? मैं किसी की आश्रित नहीं रह सकती। मेरा दुख-सुख तुम्हारे साथ है। जिस तरह रखोगे, उसी तरह रहूँगी। मैं भी देखूँगी, तुम अपने सिद्धांतों के कितने पक्के हो।' [3]

कायाकल्प की मनोरमा जानती है कि लौंगी घर की दासी है, पर वह उसको माँ का ही दर्जा देती है, क्योंकि वह जानती है कि लौंगी अम्माँ ने उसके और गुरु सेवक के लिए अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था। जब गुरुसेवक लौंगी को घर लाने के लिए तैयार नहीं होता तो वह गुरुसेवक को कहती है–

'क्यों, मैं क्या हूँ। क्या भूल गई हूँ कि लौंगी अम्माँ ने मुझे गोद में लेकर पाला है?

जब मैं बीमार पड़ी थी तो वह रात की रात मेरे सिरहाने बैठी रहती थी। क्या मैं इन बातों को कभी भूल सकती हूँ? माता के उऋण से कभी ऋण नहीं हो सकती, चाहे ऐसे-ऐसे दस जन्म लूँ।'[4]

इसी प्रकार रंगभूमि की इंदु, कर्मभूमि की नैना, कायाकल्प की मनोरमा, गोदान की रूपा व सोना के माध्यम से पुत्री रूप को चित्रित किया है तो वही रंगभूमि की सोफ़िया, कायाकल्प की मनोरमा, गबन की जोहरा, गोदान उपन्यास की मालती को आदर्श प्रेमिका रूप में चित्रित किया है, जो प्रेम को श्रद्धा का विषय मानती है।

'बहुत दिन हुए मैंने अपने को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर दिया। तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, गुरु हो। तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया। यह वरदान मेरे जीवन को सार्थक करने को काफ़ी है। यह मेरी पूर्णता है।' [5]

कर्मभूमि की नैना को सहायक ननद के रूप में वर्णित करते हैं, जो अपने और भाभी के रिश्ते को आदर से देखती है और कठिन परिस्थितियों में पूरा साथ देती है, वहीं निर्मला की रुक्मिणि व कायाकल्प की मंगला को हम सहायक ननद के रूप में पाते हैं। 'भाभी' के रूप में धनिया का चरित्र बहुत ही कोमल व कठोर है क्योंकि जहाँ वह हीरा व शोभा को पाल-पोसकर बड़ा करती है और माँ का प्यार देती है, परंतु शादी के बाद दोनों में बहुत अंतर आ जाता है। जिस भाभी को माँ की तरह मानते थे, उसे शादी के बाद डाइन कहने से भी नहीं हिचकिचाते। गोदान (धनिया), कर्मभूमि (रेणुका), प्रतिज्ञा (देवकी) के माध्यम से सास रूप को रेखांकित किया है। 'सेवासदन' उपन्यास में सुमन को साली रूप में चित्रित किया है, जो अपनी बहन शांता की शादी से पहले अज्ञानतावश उसके पति से प्रेमभाव रखती है, लेकिन ग़लती का अहसास हो जाने पर साली का रिश्ता स्वीकार कर लेती है। वह सदन को कहती है–

'मैं तुम्हारी बड़ी साली हूँ, अगर कोई कड़वी बात मुँह से निकल जाए तो बुरा मत मानना।' [6]

विमाता रूप में निर्मला उपन्यास की निर्मला की स्थिति बहुत ही सोचनीय दिखाई है। सब अच्छा करने पर भी वह विमाता ही रहती है। माँ नहीं बन पाती–'हाँ मुझे क्या? मैं तो तुम्हारी दुश्मन ठहरी। विमाता का नाम ही बुरा होता है।' [7] बहन रूप का सजीव चित्रण हमें रंगभूमि की इंदु, निर्मला में कृष्णा और रुक्मिणी, प्रेमाश्रम की विधा, सेवासदन की सुमन व कर्मभूमि की नैना के माध्यम से किया है। वह अमरकांत का खत मिलने पर उसका उत्तर लिखकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करती है–

'आपके इतने दिनों की चुप्पी का कारण मैं समझती हूँ, पर वह आपका भ्रम है भैया। आप मेरे भाई हैं। मेरे वीरन हैं। राजा हो तो मेरे भाई हैं, रंक हो तो मेरे भाई हैं। संसार आप पर हँसे, सारे देश में आपकी निंदा हो, पर आप मेरे भाई हैं।' [8]

दूसरी ओर प्रसिद्ध उपन्यासकार राजेंद्रमोहन भटनागर ने नारी को आंतरिक शक्ति माना है, जिन्हें समाज पतित, उपेक्षित तथा कलंकित मानता है। भटनागर जी ने अपने उपन्यासों में समाज के विविध पक्षों व नारी के विविध रूपों को उभारा है। उन्होंने माँ के वात्सल्यमय,

त्यागपूर्ण, स्वाभिमानी व जागरूक रूप का चित्रण किया है, जो ज़िंदगी का अहसास (खुशी), माटी की पुकार (उमादेवी) वाग्देवी, मोनालिसा (क्रस्टीना), ब्रह्मकमल (डॉ॰ दामिनी कपूर), सर्वोदय (बलवंती) के माध्यम से चित्रित हुआ है। जैसे–ब्रह्मकमल में दामिनी कपूर का कथन–'मुझे माँ का दायित्व निभाना है। ... मैं माँ बनी हूँ। ... माँ नाजायज नहीं होती फिर बच्चा नाजायज कैसे होगा? तू तो जानती है न डॉक्टर, वो हम दोनों के मेल से है।' [9]

पत्नी रूप का चित्रांकन अत्यंत कुशलता से हुआ है, जो नया मसीहा (इति) अंतिम सत्याग्रही (धतूरी) ज़िंदगी का अहसास (खुशी) में उभरा है जैसे 'अंतिम सत्याग्रही' की धतूरी अपने पति नागरा को ही अपना पति परमेश्वर मानती है–

'तुझे .... तू म्हारा महाराणा है। फिर तू म्हारा श्री जी हुआ कि नाहीं। हर औरत का मर्द उसका महाराणा होता है। महाराणा यानी उसका श्री जी ...।' [10] बहन चरित्र को स्नेही व अन्याय विरोधी बताया है जैसे 'नया मसीहा' की कांता सगी बहिन है, लेकिन जब उसे पता चलता है कि उसका भाई उसकी होने वाली भाभी के चरित्र पर शक कर रहा है तो संकीर्ण मनोवृत्ति को दूर करने में सहायता करती है–'काश तू मेरा भाई नहीं होता तो तेरे कारण मुझे यह अपमान न झेलना पड़ता जो मैं अब झेल रही हूँ।' [11]

भटनागर जी के कुछ उपन्यासों में सास रूप का सहृदय चित्रण है तो कहीं लालची व धूर्त रूप का चित्रण है, जो हमें सन्नो, वाग्देवी व माटी की गंध में दृष्टिगोचर होता है।

प्रेमिका रूप त्यागी, नि:स्वार्थी व स्वाभिमानी है। नया 'मसीहा' की ममता का प्रेम नि:स्वार्थ प्रेम है, जो अपने प्रेमी की सहायता के लिए सरकारी नौकरी का भी त्याग कर देती है। 'सबक़' उपन्यास की स्मिरण वत्रा, नितिन पारेख का पत्र पढ़ने के बाद सोचती है–

'क्या कोई इस हद तक उसे प्यार कर सकता है कि एक संपन्न धनाढ्य रूपवती, सर्वगुण संपन्न और पवित्र हृदय वाली युवती के प्रस्ताव को विनम्रता से अलविदा कर दें। किसी ने किया है उसे ऐसा प्यार। किसी ने चाहा है इस हद तक उसे।' [12]

परिधि उपन्यास के माध्यम से दादी रूप का सफलतापूर्वक चित्रण है वहीं विद्यार्थी रूप को मोनालिसा व परिधि के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। पोती रूप का चरित्रांकन अत्यंत भावुक है, जो सर्वोदय की पार्वती के माध्यम से चित्रित हुआ है। सौतेली माँ का अन्यायी व अत्याचारी रूप सर्वोदय उपन्यास में उभरा है–

'अपने पति को डसने वाली रांड तुझमें ज़रा-सी हया होती तो तू अपने पति के साथ सती हो जाती।' [13]

प्रेमचंद और राजेंद्रमोहन भटनागर दोनों उपन्यासकार नारी-मन के पारखी हैं, नारी के विविध रूपों का उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रण किया है। पत्नी, सास, सहेली रूपों में असमानता दृष्टिगोचर न होने के कारण समानता को आधार बनाया है। माँ, पुत्री, बहन, प्रेमिका, विमाता रूपों में समानता व असमानता को रेखांकित किया है। चाची, भाभी, ननद, साली रूप केवल प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलते हैं। राजेंद्रमोहन भटनागर के उपन्यासों में नहीं। राजेंद्रमोहन भटनागर ने पोती रूप का सफलतापूर्वक चित्रण किया है, जो प्रेमचंद के उपन्यासों में नहीं मिलता। प्रेमचंद के उपन्यासों में ग़रीबी के कारण अनमेल विवाह को प्रमुखता दी है, जैसे गोदान उपन्यास में सोना-रामसेवक का अनमेल विवाह, सेवासदन में सुमन-गजाधर का अनमेल विवाह व निर्मला

में निर्मला-तोताराम का अनमेल विवाह। वहीं राजेंद्रमोहन भटनागर के उपन्यासों में ग़रीबी के बावजूद शिक्षा को मुख्य आधार बनाया है ताकि नारी शिक्षित होकर स्वावलंबी बन सके। प्रेमचंद्र जी के उपन्यासों में बहन का रूप भटनागर जी के उपन्यासों में चित्रित रूप से कुछ अलग लगता है, क्योंकि भटनागर जी की बहन, अपने भाई-बहनों पर प्राण उत्सर्ग करनेवाली है। वहीं प्रेमाश्रम की 'गायत्री' देवी अपने स्वार्थ के कारण अपनी ही बहन का घर तोड़ने पर आतुर है। प्रेमिका रूप में देखा जाए तो भटनागर जी के उपन्यासों में यदि प्रेमिका के प्रेम की परिणति शादी में नहीं होती तो भी वह अपने कर्त्तव्यों को पूरा करती है। जैसे– नया मसीहा की ममता व रिवोल्ट की कनु। लेकिन प्रेमचंद के उपन्यास गोदान की मालती, वरदान की माधवी ऐसी नि:स्वार्थी प्रेमिकाएँ हैं, जो अपने प्रेमी की प्राप्ति पर भी उसे इसलिए स्वीकार नहीं करतीं ताकि वह उसके कर्त्तव्य-पथ पर बाधा न बन जाएँ। इसलिए वह मित्र बनकर रहना अधिक पसंद करती है। जैसे माधवी प्रताप को विवाह बंधन में नहीं बाँधती, बल्कि अनुचरी बनकर रहना अधिक पसंद करती है–'स्वामी जी! मैं परम अबला और बुद्धिहीन स्त्री हूँ। यदि आपने यह विचार किया कि मेरे प्रेम का उद्देश्य केवल यह है कि आपके चरणों में सांसारिक बंधनों की बेड़ियाँ डाल दूँ तो आपने इसका तत्त्व नहीं समझा।'

अत: स्पष्ट है प्रेमचंद और राजेंद्रमोहन भटनागर के उपन्यासों में नारी का चित्रण देशकाल-वातावरण के कारण कुछ ही स्थानों पर अलग-अलग दिखाई देता है। क्योंकि दोनों उपन्यासकारों में 50 वर्ष का अंतराल है, जो दोनों के पात्रों के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है। समय की गति का उपन्यासकार की मानसिकता पर जो प्रभाव पड़ता है वह उसके पात्रों की मानसिकता से अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ

1. वल्लभदास तिवारी, हिंदी काव्य में नारी, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा प्रथम संस्करण, 1974
2. प्रेमचंद, रंगभूमि, भारतीय ग्रंथ निकेतन, वर्तमान संस्करण, 1987
3. वही, कर्मभूमि, पृ॰ 57, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980
4. वही, कायाकल्प, पृ॰ 103, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990
5. वही, गोदान, इलाहाबाद प्रकाशन, दिल्ली, वर्तमान प्रकाशन, 1981
6. वही, सेवासदन, पृ॰ 200, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973
7. वही, निर्मला, पृ॰ 127, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990
8. वही, कर्मभूमि, पृ॰ 136, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980
9. राजेंद्रमोहन भटनागर, ब्रह्मकमल, पृ॰ 76, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1997
10. वही, अंतिम सत्याग्रही, पृ॰ 84, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1992
11. वही, नया मसीहा, पृ॰ 158
12. वही, सबक़, पृ॰ 138
13. वही, सर्वोदय, पृ॰ 56

डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम और उनका बालकाव्य सृजन

कु॰ स्वाति शर्मा, शोध-छात्रा, हिंदी विभाग
एम॰जे॰पी॰ रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली

प्राय: काव्य के सभी रूपों में ज़बरदस्त आकर्षण होता है। कविताएँ सहज अभिव्यक्ति, सरल भाषा तथा गेयता के कारण बालकों के मनोरंजन के साथ-साथ उनमें सद्‌गुणों का भी संचार करती हैं। इसीलिए बच्चे उन्हें अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं। इसी बाल-मनोविज्ञान को देखकर डॉ॰ विक्रम ने अपनी रचनाधर्मिता में काव्य को अधिक महत्त्व दिया है। 'तारों की रेल' (1992), 'बच्चों के मनमोहक गीत' (1992), 'अब्बक-डब्बक' (1992), 'सूरज चंदा' (1996-97), 'इक्कीसवीं सदी की ओर' (1997), 'सारा देश हमारा घर' (1998) तथा 'खेल-खेल में' (2000) आपके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त आपकी सैकड़ों कविताएँ समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। डॉ॰ विक्रम के बालकाव्य-संकलनों का विवरण इस प्रकार है–

1. **तारों की रेल :**

डॉ॰ विक्रम का यह प्रथम काव्य-संग्रह है। इसकी सभी कविताएँ बच्चों के परिवेश की विभिन्न वस्तुओं, दृश्यों और प्राणियों को आधार बनाकर लिखी गई हैं।

किसी भी कार्य का प्रारंभ बिना ईश्वर का स्मरण किए संभव नहीं। कवि ने 'वर दो' शीर्षक कविता के माध्यम से न केवल ईश्वर का स्मरण किया है, अपितु उसे ही सर्वशक्तिमान मानकर समाज में सच्चे पथ पर चलने, दीन-दुखियों का दुख दूर करने, कष्टों से विचलित न होने और देश के लिए बलि हो जाने तक की क्षमता प्राप्त करने का वरदान माँगा है–

हे भगवन! हमसे प्रसन्न हो, सुंदर-सा वर दो।
अच्छे पथ पर चलें हमेशा, मन निर्मल कर दो।
दुखियों की सेवा कर उर में, उत्तम भाव भरें।
कैसी भी कठिनाई आए, नहीं कदापि डरें। [1]

बादलों के प्रति बच्चों का स्वाभाविक स्नेह और उनकी बालसुलभ अभिव्यक्ति 'बादल भैया' शीर्षक कविता में साकार हो उठी है–

अरे! अरे! तुम बादल भैया कहाँ चले?
प्यासी रह गई मेरी गैया कहाँ चले?
भीग चुके कुछ खेत भले ही धरती के,
पर ख़ाली हैं ताल-तलैया कहाँ चले?

नन्हे मुन्नों की जिज्ञासा देखो तो,
हाथें में काग़ज़ की नैया, कहाँ चले?' [2]

डॉ॰ विक्रम ने 'जाड़े में' शीर्षक कविता में शीत ऋतु के आगमन पर लस्सी, कुल्फी, बरफ़, मलाई की दुर्गति का अत्यंत सजीव वर्णन किया है कहना न होगा कि ये सब वस्तुएँ बच्चों की ज़िंदगी का अहम हिस्सा हैं–

लस्सी, कुलफ़ी, बरफ़ मलाई, चित हो गए अखाड़े में।
मफ़लर स्वेटर, कोट, दुपट्टे, फिर से निकले जाड़े में।' [3]

जाड़े में निश्चित रूप से होने वाली वर्षा का भी अपना अलग रंग है। कविता में बादल दादा का सूट पहनकर वर्षा को खोजना कल्पना का अनोखा पुट है–

छम-छम कर वर्षा भी दौड़ी, छिपकर खड़ी किवाड़े में
खोज रहे हैं बादल दादा, सूट पहनकर जाड़े में।' [4]

'होगा बड़ा तुम्हारा नाम' शीर्षक कविता में गिनती के बहाने अच्छे बच्चों के गुणों को प्रदर्शित करनेवाली पूरी आचार-संहिता ही बच्चों के सामने प्रस्तुत कर दी गई है–

प्रथम चरण पर सत्य बोलना, द्वितीय चरण पर रखना मेल।
तृतीय चरण पर पढ़ना-लिखना, चौथे चरण खेलना खेल।
पंचम उजले वस्त्र पहनना, छठे रखो चमकीले दाँत।
सप्तम ख़ूब सफ़ाई करना, अष्टम करो न बढ़कर बात।

नवाँ चरण नन्हे कर जोड़ें, करना सबको नित्य प्रणाम।
दसवीं सीढ़ी मिले सफलता, होगा बड़ा तुम्हारा नाम।' [5]

'अच्छे पापा' शीर्षक कविता के माध्यम से कवि ने उस बाल-मनोविज्ञान का चित्रण किया है, जिसमें बालक अपनी माँ के प्यार को किसी अन्य के साथ बाँटना पसंद नहीं करता। उसे मम्मी पर अपना अधिकार ख़त्म होता दिखने लगता है, तो उलाहना देने लगता है। [6]

बच्चों को अपना जन्मदिन मनाया जाना सबसे प्यारा उत्सव लगता है। बालक अपने जन्मदिन के लिए क्या-क्या सोचता है, इसका सजीव वर्णन भी कवि ने किया है। [7]

'तारों की रेल' संग्रह में बाल रुचि से संबंधित खरगोश, पतंग, जूता, तारे, पापा आदि अनेक विषयों को कवि ने सरल भाषा में पिरोकर बच्चों के स्तर के अनुरूप प्रस्तुत किया है।

2. **बच्चों के मनमोहक गीत :**

यह चौदह मनोहारी कविताओं का संग्रह है। कवि जितना बाल-मनोविज्ञान से परिचित है उतना ही ग्रामीण परिवेश से भी। संग्रह की 'पिपिहरी' शीर्षक कविता इसका उदाहरण है। यूँ तो पिपिहरी साधारण विषय है, लेकिन बच्चों और उनके मनोरंजन से जुड़ जाने के कारण यह असाधारण विषय बन जाता है। ग्रामीण परिवेश के बच्चों का तो यह प्रिय वाद्य-यंत्र है। इसीलिए डॉ॰ विक्रम ने इसे अपनी कविता का विषय बना लिया। [8]

बच्चों का प्रकृति से विशेष अनुराग होता है। सूरज, चाँद, तारे, नदियाँ, झरने, पर्वत हों या पेड़-पौधे, सब बच्चों के मन को आकर्षित करते हैं। डॉ॰ विक्रम ने बच्चों के मनोविज्ञान को समझते हुए प्रकृति के प्रत्येक रूप पर कविताओं की एक लंबी शृंखला प्रस्तुत की है। प्रकृति

की प्रत्येक वस्तु अपने अंदर कोई-न-कोई सीख छिपाए हुए है। कवि अपनी कविताओं के माध्यम से बच्चों को भी उन गुणों को अपनाने की सीख देता है। जैसे सूरज अपने प्रकाश से संसार के कोने-कोने से अंधकार दूर कर देता है। वैसे ही कवि चाहता है कि बच्चे अपने सद्‌गुणों के प्रकाश से धरती का कोना-कोना चमका दें। [9]

बच्चों को फूलों से बहुत प्यार होता है इसीलिए बच्चों की तुलना फूलों की कोमलता से की जाती है। काँटों के बीच खिलने वाला गुलाब हमेशा मुस्कराता रहता है। कवि बच्चों को भी यही सीख देता है कि विपत्ति का सामना हमेशा मुस्कराकर करना चाहिए–

है साथ हमेशा काँटों का, फिर भी तो मुस्काता गुलाब।
काँटों के संग पलता गुलाब, फिर भी न जलता गुलाब। [10]

पर्वत जैसी निर्जीव वस्तु भी हमें ऐसी सीख दे जाती है कि हम अपने सामने आनेवाली समस्याओं का डटकर मुक़ाबला कर सकें। डॉ॰ विक्रम 'हिमालय' के माध्यम से बच्चों में साहस और दृढ़ता जैसे गुणों का विकास करना चाहते हैं। [11]

हिमालय देश की अखंडता, स्वतंत्रता, देश के उत्कर्ष की कामना और इसके लिए बलिदान हो जाने की भावना को जगानेवाला है इसीलिए कवि हिमालय और भारतवर्ष का रिश्ता जोड़कर बच्चों में देशभक्ति की भावना भरने का प्रयास करता है–

जिएँ तो सदा इसी के लिए, मरें तो सदा इसी के लिए।
देश का हो सदैव उत्कर्ष, हमारा प्यारा भारतवर्ष। [12]

बरसात की पहली फुहार जब गर्मी से तपती धरती के आँचल पर पड़ती है तब उसका रूप मनमोहक और मनभावन होता है। इसीलिए सभी प्राणी बेसब्री से बरसात की प्रतीक्षा करते हैं। बरसात आते ही प्रकृति का हरा-भरा रूप सभी को आकर्षित करता है; किंतु जब यही वर्षा लगातार घनघोर रूप ले लेती है तब यही मनोहारी रूप कष्टकारी प्रतीत होने लगता है। चारों तरफ़ जल ही जल दिखाई देने लगता है। तब सभी की 'बादल कितना जल बरसोगे' पुकार सुनाई देने लगती है। प्रस्तुत कविता में जंगल के पशु-पक्षियों की पुकार को कवि ने वाणी दी है–

भीग गया डाली पर बंदर, भीग गए पशु-पक्षी के घर।
भीग गई बैठी गौरेया, शोर मचाती दैया-दैया।
उफनाए सब ताल-तलैया, गिरे जा रहे छप्पर-छैया। [13]

कुल मिलाकर कवि का यह संग्रह एक ओर बच्चों और प्रकृति के मध्य संबंध स्थापित करता है वहीं दूसरी ओर गौरवशाली इतिहास के दर्शन भी कराता है।

3. **अब्बक-डब्बक :**

'अब्बक-डब्बक' संग्रह में बच्चों के प्रिय विषय जानवरों के कल्पना-संसार तथा ऋतुओं का ज्ञान कराती कविताओं का समावेश है। संग्रह की प्रथम कविता अब्बक-डब्बक हाथी को आधार बनाकर लिखी गई है। हाथी की विराटता और स्थूलता बच्चों को स्वाभाविक रूप से आश्चर्यचकित करती है तथा उनका सारा ध्यान अपनी ओर खींच लेती है। एक चित्रण देखिए–

अब्बक डूबा डब्बक डूबा, नदी नहाया हाथी।
दो गज लंबी सूड़ चलाकर, पानी लाया हाथी।

गर्मी बढ़ी नहाया पोखर, तब सुस्ताया हाथी।
अंपक-डंपक कान हिलाकर, हवा चलाया हाथी। [14]

बच्चों का तरबूज-प्रेम जगज़ाहिर है। गर्मी का यह लोकप्रिय तथा मज़ेदार फल बच्चे बड़े शौक़ से खाते हैं। गर्मी आने पर तरबूज का न मिलना उन्हें व्याकुल कर देता है, अतः अगले वर्ष दिखने पर बालक तरबूज से पूरे साल न मिलने का उलाहना देता है। बालक के इसी मनोभाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण कवि ने इस चतुराई से किया है कि बच्चा बरबस उस कविता को पढ़ने के लिए आतुर हो उठता है। [15]

और एक वर्ष बाद उसे देखकर बच्चा उसे खाने को मचल उठता है–

ठीक वर्ष-भर बाद मिले हो, अब मैं तुमको खाऊँगा।
बचा-खुचा झोले में रखकर, अपने घर ले जाऊँगा। [16]

घर ले जाकर वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों को भी मिल-बाँटकर खिलाना चाहता है। कवि की यही विशेषता है कि वह तरबूज के माध्यम से भी बच्चों में पारिवारिक संस्कार डालने का कार्य कर जाता है। 'दाल न गलना' मुहावरे का प्रयोग एक ओर कविता को गति प्रदान करता है तो दूसरी ओर कविता के सौंदर्य को बढ़ाता है तथा बच्चों को शिक्षित भी करता है।

रेल को देखकर एवं उसकी छुक-छुक की आवाज़ सुनकर बच्चे कितने उत्साहित हो जाते हैं इसका अंदाज़ा लगाना कठिन है। बचपन में बच्चे एक-दूसरे के पीछे खड़े होकर रेल का रूप बनाकर दौड़ते-फिरते हैं। कवि बच्चों की इस उत्सुकता एवं उत्साह से भली-भाँति परिचित है। बच्चों के मनोरंजन के लिए कवि चूहों की एक अनोखी रेल बनाकर चश्मे वाले चूहे को ड्राइवर बना देता है ताकि वह दूर तक साफ़-साफ़ देख सके–

सौ चूहों ने आपस में मिल, एक बनाई सुंदर रेल।
चश्मा वाला बना ड्राइवर, बाक़ी सब डिब्बों का खेल। [17]

कवि सोचता है कि बच्चे अपने मनोरंजन के लिए तो विभिन्न तरीक़े अपना लेते हैं, लेकिन जानवर क्या करते होंगे? बच्चों के पास खेल-खिलौने हैं, किताबें हैं, दोस्त हैं लेकिन जानवरों के पास ऐसे कोई साधन नहीं हैं। वस्तुतः यह कवि की सोच ही बालमन की सच्ची सोच है। कवि जानवरों के प्रति भी संवेदनशील है और इसी कारण जानवरों के मनोरंजन के लिए अद्‌भुत सर्कसघर की कल्पना करता है। [18]

सुसंस्कारों की दृष्टि से 'सत्य की जीत' बच्चों के लिए सर्वोत्तम जीवनोपहार है। प्रस्तुत कविता जहाँ एक ओर संस्कारवान बनाती है, वही दूसरी ओर सच्चाई पर चलने का मार्ग दिखाती है–

जीत सत्य की ही होती है, होती सदा असत् की हार।
सच्चे पथ पर चलकर राही, दुर्गम मग कर लेता पार। [19]

सत्य खरे सोने की तरह कांतिवान होता है इसलिए उसकी पहचान करना भी कोई कठिन कार्य नहीं। सत्य के मार्ग पर चलने वाले भय से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए डॉ॰ विक्रम ने बच्चों को सदैव सत्य के मार्ग पर चलने की सलाह दी है। [20]

'नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज़ को चली' लोकोक्ति को सार्थक करती हुई 'बिल्ली रानी' कविता यह दिखाती है कि दुष्ट के मन को कभी नहीं बदला जा सकता। चाहे वह

कमंडल लेकर साधु का चोला ही क्यों न धारण कर ले। कवि ने बिल्ली की दुष्टता, छल-प्रपंच तथा अवसरवादिता को निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से दर्शाया है–

बिल्ली की बातों में आकर, सारे चूहे दौड़े आए।
किया सफ़ाया बिल्ली जी ने, चूहे बचकर भाग न पाए। [21]

वस्तुत: प्रस्तुत कविता में किसी पर भी आँख मूँदकर विश्वास न करने की सलाह दी गई है। नौ कविताओं के इस संग्रह की प्रत्येक कविता नौ रत्नों की तरह है, जिसमें समान आकर्षण, मनोरंजन और प्रेरणा है। निश्चय ही यह संग्रह बाल-साहित्य की अभिवृद्धि में एक सार्थक प्रयास है।

4. **सूरज-चंदा :**

सूरज-चंदा नामक काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताएँ पशु-पक्षी जगत जैसे–बिल्ली, मेढक, मोर, कोयल, बंदर, घोड़ा, हाथी, भालू तथा चिड़ियों से संबंधित हैं, जो कवि के पशु विज्ञान अध्ययन का पुख्ता प्रमाण है। संग्रह का पहला शिशुगीत वात्सल्यरस में पगा हुआ है। माँ अपने लाड़ले को प्रात:काल उठने के लिए आवाज़ लगाती है। बच्चा माँ के जगाने पर जाग जाता है और माँ भी वायदे के अनुसार उसे मिठाई देती है। माँ के प्रेम में डूबी प्रस्तुत पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

बड़े सवेरे मुन्ने को जब, मम्मी ने आवाज़ लगाई।
राजा बेटा झटपट जागा, खाने को मिल गई मिठाई। [22]

बच्चों के मन में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि 'सूरज दादा गर्म क्यों हैं? और चंदामामा ठंडे क्यों हैं? बच्चों की इसी बाल-सुलभ जिज्ञासा का उत्तर कवि निम्नलिखित पंक्तियों में देता है–

सूरज दादा गरम जलेबी, मीठी-मीठी, गोल-गोल।
चंदामामा ठंडा शरबत, पीते हैं सब घोल-घोल।[23]

सूरज के साथ दादा का रिश्ता तथा चंदा के साथ मामा का रिश्ता कविता को बच्चों के अधिक निकट ले आता है।

हास्यरस जितना बड़ों के लिए आवश्यक होता है, उतना ही बच्चों के लिए भी। हास्यरस का समावेश किसी भी रचना को बोझिल बनने से रोकता है। संग्रह की 'गप्पीमल', 'बंदर जी', 'भालू' तथा 'नाना जी' कविताएँ अनायास हास्यरस उत्पन्न कर बच्चों को गुदगुदाने लगती हैं।

वर्षा के पश्चात् होने वाली मेढकों की टर्र-टर्र और उनका फुदक-फुदक कर चलना बच्चों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। मेढकों की आवाज़ सुनकर बच्चों को ऐसा लगता है जैसे वे किसी को बुला रहे हैं, उन्हें जिज्ञासा होती है, लेकिन उन्हें कोई उनके प्रश्नों का उत्तर देने वाला नहीं मिलता। तो वे स्वयं ही हल निकालने लगते हैं। उन्हें लगता है कि जैसे पापा-मम्मी को आवाज़ लगाकर बुलाते हैं। कहीं मेढक मामा भी मामी को आवाज़ लगाकर तो नहीं बुला रहे हैं?

टर्र-टर्र आवाज़ लगाकर, मामा किसे बुलाते हो?
समझ गया मामा, तुम मामी को आवाज़ लगाते हो। [24]

कवि ने अनेक पशु-पक्षियों और उनकी गतिविधियों को न केवल अपनी आँखों से

देखा है अपितु उसे महसूस भी किया है। मधुर आवाज़ वाली कोयल को पास से न देख पाना बच्चों को नागवार गुज़रता है। वह अपने बालमन से कोयल को डरने वाली या शर्मीली मान लेता है। कवि ने इसी बालसुलभ जिज्ञासा को इन पंक्तियों में चित्रित किया है–

कोयल रानी रूठी हो क्यों, पास नहीं आती हो।
लगता है मुझसे डरती हो, या फिर शरमाती हो। [25]

सूरज-चंदा संग्रह में बच्चों की रुचि से संबंधित अधिक से अधिक विषयों को समेटा गया है। यह शिशुओं के लिए अत्यंत उपयोगी एवं मनोरंजक गीत-संग्रह है।

5. **इक्कीसवीं सदी की ओर :**

आज इक्कीसवीं सदी में जी रहे बच्चों के लिए कविताएँ लिखना कोई सरल कार्य नहीं है। आज उन्हें ऐसी कविताओं की आवश्यकता है, जिसमें नयापन हो, नई ताज़गी हो जो उनकी मानसिक क्षुधा को शांत कर उनमें नई सोच विकसित कर सके। बच्चे ज्ञान-विज्ञान से जितना अधिक जुड़ते जा रहे हैं, कविता से भी उनकी अपेक्षा उतनी ही बढ़ती जा रही है। अब वे सूरज, चाँद, सितारों, परियों, पशु-पक्षियों, प्रकृति या त्योहारों की कविता तक ही सीमित नहीं रहना चाहते वरन् वे ऐसा साहित्य चाहते हैं, जो उनकी मानसिक खुराक बन सके। क्योंकि उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता जा रहा है। कवि ने बच्चों की बढ़ती हुई इसी वैज्ञानिक मानसिकता को ध्यान में रखकर 'इक्कीसवीं सदी की ओर' नामक काव्य-संग्रह की रचना है। जिसमें सचित्र 14 कविताएँ संगृहीत की गई हैं। संग्रह की प्रथम कविता इक्कीसवीं सदी में शिक्षण के क्षेत्र में कंप्यूटर तथा रोबोट के प्रयोग की कल्पना बच्चों के मन में उत्साह एवं रोमांच पैदा करती है–

अब तो कक्षा में आकर 'रोबोट' पढ़ाएगा।
दुनिया में क्या? कहाँ तुरत सबको बतलाएगा।
लंबा-चौड़ा, गुणा-भाग, सब झटपट कर देगा।
अंगुली रखते ही भैया, सब चटपट कर देगा। [26]

'आया नया ज़माना है' कविता के माध्यम से कवि ने बच्चों की बदलती हुई रुचियों की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है। अब उन्हें परियों, भूत-पिशाच, राजा-रानी, विक्रम-बेताल की कहानियाँ पहले की अपेक्षा उतना आकर्षित नहीं करती हैं। आधुनिक बच्चे जानना चाहते हैं कि पंखा कैसे चलता है? कंप्यूटर, रोबोट, एक्सरे आदि मशीने काम कैसे करती हैं? टेलीप्रिंटर दुनिया की ख़बरें कैसे लाता है? टी॰वी॰ पर तस्वीरें कैसे आती हैं? सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहण कैसे और क्यों लगते हैं? आदि-आदि–

अब तो हमें बताओ नानी, हवा कहाँ से आती है?
पंखा कैसे चलता है, बिजली कैसे मुस्काती है?
कंप्यूटर, रोबोट, एक्सरे, कैसे अपना काम करें।
दिन और रात मशीनें चलतीं, तनिक नहीं आराम करें।
सूर्यग्रहण कैसे लगता, क्यों पृथ्वी चक्कर खाती है?
जाड़ा, गर्मी की ऋतुएँ क्यों, बारी-बारी आती हैं? [27]

प्रस्तुत संग्रह पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कमलेश भट्ट 'कमल' ने लिखा है कि 'पुस्तक की कविताओं में बाल-मनोविज्ञान का अच्छा विश्लेषण है। बच्चों की ओर से

लिखी गई कविताओं में बालमन की उड़ान बड़ों को भी गुदगुदाने में सक्षम है।' [28]

'चेहरे लगते खिले-खिले', 'मौज-मस्ती मनाएँगे', 'दिन न कटे पहाड़ हो गए', 'बादल-भैया कहाँ चले?' आदि कविताओं में प्रकृति के साथ निकटता, आत्मीयता और उत्सुकता का मिश्रित भाव देखने योग्य है। इन कविताओं में डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम ने प्रकृति से बच्चों का रिश्ता भी दर्शा दिया है जैसे–सूरज के साथ दादा, चंदा के साथ मामा, बादल के साथ भैया, तितली के साथ रानी का रिश्ता। डॉ॰ विक्रम जानते हैं कि रिश्तों की डोर से बँधे संबंध अटूट होते हैं।

'कुल्फ़ी' जैसे सामान्य विषय को लेकर भी कवि ने बाल-मन की लंबी कल्पना की है–

अब तो मज़े तुम्हारे होंगे, घूमोगी बस इधर-उधर।
इतने दिन तुम कहाँ रही, क्या गई हुई थी छुट्टी पर।
नहीं-नहीं मैं चली गई थी, बहुत दूर नानी के घर,
जहाँ ढेर-सी सुंदर परियाँ, भी आई थीं सज-धजकर।[29]

कवि की बाल-मनोविज्ञान के साथ-साथ पशु मनोविज्ञान पर भी अच्छी पकड़ है। इस बात की पुष्टि 'जंगल में मंगल' तथा 'हुआ तमाशा पक्का' कविताओं में होती है। जानवरों को खेलते हुए तथा मेले में स्टाल लगाकर टिक्की बताशे बेचते हुए देखना कवि की उत्कृष्ट दृष्टि का नमूना है।

डॉ॰ हरिकृष्ण देवसरे के अनुसार– 'डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम की कविताओं की यह विशेषता रही है कि वह बच्चों के आज के व्यवहार, परिवेश और समस्याओं को निकटता से देखकर उन्हें कविताओं में अभिव्यक्त कर देते हैं। आज बच्चों की कविताओं से जो अपेक्षा है, वह सुरेंद्र विक्रम की ये कविताएँ बख़ूबी पूरा करती हैं।' [30]

वस्तुतः इस संग्रह की सभी रचनाएँ अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हैं। इनकी भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण एवं गेय है। डॉ॰ श्रीप्रसाद के शब्दों में 'इस संग्रह में प्रकृति का सौंदर्य भी है तो वैज्ञानिक सोच भी भरपूर हैं। रचनाकार बच्चों की भावी जीवन की तैयारी के साथ-साथ उन्हें आनंद की दुनिया में भी ले जाता है।' [31]

6. **सारा देश हमारा घर :**

13 कविताओं के इस संग्रह में बच्चों की प्रतिदिन की ज़िंदगी से जुड़ी समस्याओं और अनुभवों का लेखा-जोखा है। बढ़ती जनसंख्या के कारण खुली हुई जगह एवं खेलने के स्थानों की कमी हो गई है। बढ़ते अतिक्रमण ने बड़ी समस्या पैदा कर दी है। बच्चों की इसी चिंता को व्यक्त करनेवाली कविता है 'पार्क हाथ से निकल गया'। कवि के द्वारा अभिव्यक्त ये भाव न केवल समाज की समस्या को उजागर करते हैं, अपितु बालमन की उद्विग्नता कि वे खेलने कहाँ जाएँ, का मर्म भी व्यक्त करते हैं। बच्चों की चिंता का मुख्य कारण है– पार्क ख़त्म होना तथा उसके स्थान पर बड़े-बड़े मकानों तथा दुकानों का निर्माण हो जाना–

खुले पार्क में लंबे-चौड़े, दो दर्जन बन गए मकान।
बाक़ी जो कुछ जगह बची थी, उसमें दस सज गईं दुकान।
अब तो कोई हमें बताए, कहाँ खेलने जाएँ हम।
दो कमरों के छोटे घर में, कैसे मन बहलाएँ हम। [32]

महँगाई आज के समाज की सबसे विकट समस्या बन गई है। रोटी, कपड़ा मकान तो इससे प्रभावित हैं ही, बच्चों की चिंता यह है कि उनकी प्रिय टॉफ़ी, लालीपाप और चाकलेट सभी कुछ महँगे हो गए हैं, इसलिए अब पहले से दिया जानेवाला ज़ेबख़र्च कम पड़ने लगा है। अब महँगाई के इस युग में बच्चे अपना ज़ेबख़र्च दो गुना करने की सिफ़ारिश अपने मम्मी-पापा से करने लगे हैं। कवि ने बड़े रोचक एवं बालसुलभ चतुराई से इस बात को अभिव्यक्ति दी है–

सभी ओर फैली महँगाई, दाम बड़े हैं चीज़ों के।
फल तो फल हैं सब्ज़ी महँगी, दाम बढ़े हैं बीजों के।
बस्ता बढ़ा, किताबें महँगी, तीन गुना है फ़ीस बढ़ी।
किसका-किसका हाल बताएँ, सब चीज़ें आकाश चढ़ी।
ऐसे में इस ज़ेबख़र्च पर, अंकुश रखना ठीक नहीं।
ज़ेबख़र्च अब चार गुना हो, हम बच्चों की माँग यही। [33]

यहाँ कितनी चतुराई से बच्चे पहले मम्मी-पापा को सब्ज़ी तथा फलों के महँगे होने की बात बताते हैं, फिर किताबें महँगी होने की बात करते हैं। इसके बाद अंत में बड़ी चतुराई से 'ज़ेबख़र्च अब चार गुना हो' कह डालते हैं।

प्रस्तुत दोनों कविताओं के संबंध में डॉ॰ शेफाली चतुर्वेदी ने कहा है कि 'यह भौतिकवादी संस्कृति के आकाश तले हठधर्मिता का ऐसा उदाहरण है, जो बच्चों की कोमल भावनाओं पर हावी होता दिखाई देता है। उपभोक्तावादी संस्कृति के युग में हम इस परिवर्तन को अनदेखा नहीं कर सकते।' [34]

जून का महीना बच्चों के लिए मौज़-मस्ती का महीना होता है, क्योंकि वर्ष-भर में यही एक महीना है, जिसमें उन्हें बस्ते तथा किताबों से मुक्ति मिलती है। लेकिन जून की मौज़-मस्ती जुलाई में पढ़ाई में बाधक बन जाती है। इसके लिए शिक्षक से लेकर माँ-बाप और घर के अन्य सदस्यों तक को बच्चे को पढ़ने के लिए प्रेरित करना पड़ता है–

लूडो-कैरम बंद करो, अब जमकर करो पढ़ाई जी।
पहले पढ़ो, बाद में खेलो, कहते ताऊ-ताई जी। [35]

वास्तव में ताऊ-ताई का बच्चों को समझाना संयुक्त परिवार की ओर इशारा करता है। पारिवारिक विघटन के इस दौर में संयुक्त परिवार की कल्पना सहृदय मन को ढाँढ़स बँधाती है।

संग्रह की 'सारा देश हमारा घर' तथा 'महक रही है क्यारी-क्यारी' शीर्षक कविताएँ राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं तथा 'वसुधैवकुटुम्बकम्' से अनुप्राणित हैं। [36]

वस्तुतः इस संग्रह में संकलित गीत विभिन्न पारंपरिक एवं समसामयिक विषयों का अनुकरण करते हैं। वे पहले बच्चों से, फिर परिवार से और अंततः राष्ट्र से जुड़ जाते हैं।

7. **खेल-खेल में :**

खेल और बच्चे एक-दूसरे के पर्याय होते हैं। बच्चों के लिए खेल से अधिक प्रिय और कुछ नहीं होता। इसीलिए खेल-खेल में सिखाई गई हर बात को वे शीघ्र आत्मसात कर लेते हैं। इसलिए पुस्तक के नामकरण पर ही मुख्य पृष्ठ पर खेलत` हुए मासूम बच्चों का चित्र हमारा ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट करता है।

नौ कविताओं के इस संग्रह में विभिन्न विषयों से संबंधित कविताएँ रोचक हैं।

खेल-खेल में ही मित्र बना लेना, आगे बढ़ने की सीख, ऊँच-नीच का भेद मिटाने तथा हर मुश्किल से संघर्ष की प्रेरणा, कवि ने बड़े सहज ढंग से दे दी है–

आओ साथी मित्र बनाएँ, खेल-खेल में।
धरती से सोना उपजाएँ, ऊँच-नीच का भेद मिटाएँ।
प्यार बड़े-बूढ़ों का पाएँ, सुख-दुख दोनों गले लगाएँ
गौरव गिरि पर चढ़ते जाएँ, खेल-खेल में। [37]

प्रात:काल होने पर सभी प्राणी अपने-अपने कार्यों में जुट जाते हैं। सुबह होने पर चिड़ियाँ चहचहाने लगती हैं। मुर्ग़ा बाँग देने लगता है तथा कौआ भी काँव-काँव करके 'मैं भी तुम्हारे साथ ही जग गया हूँ' का संदेश देने लगता है। परिवार के सभी सदस्यों जैसे दादा-दादी, दीदी-भैया सभी उसे जल्दी उठने को कहते हैं। तभी बालक के अंतर्मन से आवाज़ आती है कि जब सभी उठ गए हैं। तो मैं क्यों आलस करूँ? बालक के अंतर्मन को जगाती इस कविता का अपना अलग अंदाज़ है–

बड़े सवेरे चिड़िया ने, आवाज़ लगाई चीं-चीं-चीं।
बड़े सवेरे दूर सड़क पर, मोटर बोली पीं-पीं-पीं।

बड़े सवेरे मेरे मन ने भी ऐसी आवाज़ लगाई।
बड़े सवेरे बिस्तर त्यागो, झटपट आलस छोड़ो भाई।[38]

बच्चों के दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी घड़ी और क़लम जैसे सामान्य वस्तुएँ भी कवि की लेखनी से निकलकर विशिष्ट हो गईं हैं। बच्चा देखता है कि घड़ी देखकर ही लोग अपना काम करते हैं। पापा घड़ी देखकर ही ऑफ़िस जाते हैं, टीचर पढ़ाने आते हैं। पढ़ने और खेलने का समय भी घड़ी ही बताती है। वह सब कामों को समय से करने की प्रेरणा देती है–

अच्छी-अच्छी कितनी अच्छी घड़ी हमारी।
घड़ी देख मेरे पापा जी, ठीक समय से आफ़िस जाते।
घड़ी देख मेरे टीचर जी, कक्षा में आ पाठ पढ़ाते।
खेल-कूद जब मैं घर जाता, कहती 'अब पढ़ने की बारी'।
अच्छी-अच्छी कितनी अच्छी, घड़ी हमारी। [39]

इसी प्रकार 'किरणें', 'हरियाली जग में छाई है', तथा 'हम बच्चे हैं' आदि कविताओं में भी कवि की विषय चयन-क्षमता एवं उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

संदर्भ

1. तारों की रेल पुस्तक की 'वर दो' शीर्षक कविता, पृ॰ 5-6
2. तारों की रेल पुस्तक की 'बादल भैया' शीर्षक कविता, पृ॰ 17-18
3. तारों की रेल पुस्तक की 'जाड़े में' शीर्षक कविता, पृ॰ 15
4. वही, पृ॰ 15
5. तारों की रेल पुस्तक की 'होगा बड़ा तुम्हारा नाम' शीर्षक कविता, पृ॰ 23-24
6. तारों की रेल पुस्तक की 'अच्छे पापा' शीर्षक कविता, पृ॰ 11
7. तारों की रेल पुस्तक की 'हँसी-खुशी सब घर जाते' शीर्षक कविता, पृ॰ 32

8. बच्चों के मनमोहक गीत पुस्तक की 'पिपिहरी' शीर्षक कविता, पृ॰ 5
9. बच्चों के मनमोहक गीत पुस्तक की 'सूरज' शीर्षक कविता, पृ॰ 11
10. बच्चों के मनमोहक गीत पुस्तक की 'गुलाब' शीर्षक कविता, पृ॰ 20
11. बच्चों के मनमोहक गीत पुस्तक की 'हिमालय' शीर्षक कविता, पृ॰ 30
12. बच्चों के मनमोहक गीत पुस्तक की 'प्यारा भारतवर्ष' शीर्षक कविता, पृ॰ 32
13. बच्चों के मनमोहक गीत पुस्तक की 'बादल कितना जल बरसोगे' शीर्षक कविता, पृ॰ 20
14. अब्बक-डब्बक पुस्तक की 'अब्बक-अब्बक' शीर्षक कविता, पृ॰ 7
15. अब्बक-डब्बक पुस्तक की 'तरबूजी लाल' शीर्षक कविता, पृ॰ 9
16. वही, पृ॰ 10
17. अब्बक-डब्बक पुस्तक की 'चूहों की रेल' शीर्षक कविता, पृ॰ 11
18. अब्बक-डब्बक पुस्तक की 'सर्कसघर' शीर्षक कविता, पृ॰ 13-14
19. अब्बक-डब्बक पुस्तक की 'सत्य की जीत' शीर्षक कविता, पृ॰ 21
20. वही, पृ॰ 22
21. अब्बक-डब्बक पुस्तक की 'बिल्ली रानी' शीर्षक कविता, पृ॰ 16
22. सूरज-चंदा पुस्तक की 'बड़े सवेरे' शीर्षक कविता, पृ॰ 5
23. सूरज-चंदा पुस्तक की 'सूरज-चंदा' शीर्षक कविता, पृ॰ 7
24. सूरज-चंदा पुस्तक की 'मेढक' शीर्षक कविता, पृ॰ 14
25. सूरज-चंदा पुस्तक की 'कोयल रानी', शीर्षक कविता, पृ॰ 15
26. इक्कीसवीं सदी की ओर पुस्तक की 'इक्कीसवीं सदी की ओर' शीर्षक कविता, पृ॰ 5
27. इक्कीसवीं सदी की ओर पुस्तक की 'आया नया ज़माना' शीर्षक कविता, पृ॰ 9-10
28. देवपुत्र (मासिक) जुलाई 1998, पृ॰ 30
29. इक्कीसवीं सदी की ओर पुस्तक की 'कुल्फी जी' शीर्षक कविता, पृ॰ 24
30. हिंदुस्तान, दैनिक (रविवासरीय) 1 मार्च, 1998, पृ॰ 3
31. अमर उजाला, 15 मार्च 1998, पृ॰ 3
32. सारा देश हमारा घर पुस्तक की 'पार्क हाथ से निकल गया' शीर्षक कविता, पृ॰ 6
33. सारा देश हमारा घर पुस्तक की 'ज़ेबख़र्च अब चार गुना हो' शीर्षक कविता, पृ॰ 8
34. रेल राजभाषा (पत्रिका) जुलाई-सितंबर, सन् 2007, पृ॰ 37
35. सारा देश हमारा घर पुस्तक की 'लूडो कैरम बंद करो' शीर्षक कविता, पृ॰ 17
36. सारा देश हमारा घर पुस्तक की 'महक रही है क्यारी-क्यारी' शीर्षक कविता, पृ॰ 15
37. खेल-खेल में, पृ॰ 19
38. खेल-खेल में पुस्तक की 'बात सुबह की' शीर्षक कविता, पृ॰ 7
39. खेल-खले में पुस्तक की 'घड़ी हमारी' शीर्षक कविता, पृ॰ 14

❐ **द्वारा श्री शिवकुमार शर्मा**
170, **इंदिरा कालोनी, कटघर**
मुरादाबाद (उ॰प्र॰) 244001

पंजाब के हिंदी-साहित्य की चिंतनधारा में डॉ॰ हरमहेंद्रसिंह बेदी का अवदान

शैलजा सैली

हिंदी-साहित्य के इतिहास में पंजाब प्रदेश ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पंजाब में 15वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक प्रचुर मात्रा में हिंदी-साहित्य रचा गया। पंजाब में हिंदी-साहित्य लिखने का आरंभ आदिकाल से हुआ। सिद्धों तथा नाथों ने पंजाब की भूमि पर विचरते हुए हिंदी-साहित्य को विपुल सामग्री प्रदान की। तदुपरांत भक्तिकाल के अंतर्गत रामकाव्य, कृष्णकाव्य, संतकाव्य, सूफ़ीकाव्य, सगुण काव्यधारा, निर्गुण काव्यधारा की रचनाएँ प्रस्तुत हुईं। ये संपूर्ण साहित्य ब्रजभाषा तथा गुरुमुखी लिपि में रचा गया। चूँकि पंजाब के कवियों के लिए देवनागरी एक कठिन लिपि थी तथापि पंजाब में रहते हुए उनका अधिक झुकाव गुरुमुखी लिपि की ओर ही था। विशेषतया गुरुवाणी की रचना इसी लिपि में हुई है। अत: पंजाब के साहित्य में गुरुमुखी लिपि का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भी मानी जा सकती है। पंजाब का अधिकतर पद्य साहित्य ब्रजभाषा में है तथा गद्य साहित्य पर खड़ीबोली का प्रभाव अवश्य नज़र आता है। रीतिकालीन कवियों ने हिंदी-रीतिग्रंथों का गुरुमुखी में अनुवाद करके रीति साहित्य का प्रचार तथा प्रसार किया। आधुनिककाल तक आते-आते पंजाब के लेखकों ने गद्य की अनेक विधाओं में हिंदी-साहित्य की रचना की।

पंजाब में साहित्येतिहास-लेखन की परंपरा का सूत्रपात चंद्रकांत बाली ने किया। इस परंपरा का निर्वाह करनेवालों में मनमोहन सहगल, हरिभजन सिंह, धर्मपाल मैनी, जयभगवान गोयल, गोविंदनाथ राजगुरु, हुकुमचंद राजपाल इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी ने भी इनका अनुसरण करते हुए पंजाब के हिंदी-साहित्य का मूल्यांकन किया है। चंद्रकांत बाली ने पंजाब के आदिकालीन साहित्य का अत्यंत सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। आदिकालीन हिंदी-साहित्य की रचनाओं का भाषा, शैली तथा संस्कृति के आधार पर आकलन किया है।

तदुपरांत शमशेरसिंह अशोक ने अपने शोध-ग्रंथ 'पंजाब हिंदी-साहित्य दर्पण' के अंतर्गत 1937 से 1977 ई॰ तक के शोध-पत्रों को संकलित किया है। हरिभजन सिंह द्वारा रचित पुस्तक 'गुरुमुखी लिपि में हिंदीकाव्य' में पंजाब के ऐतिहासिक, पौराणिक प्रेम-संबंधों का विस्तृत वर्णन किया गया है। गुरु दरबारी काव्य तथा राजदरबारी काव्य के विषय में भी तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। गोविंदनाथ राजगुरु ने 17वीं तथा 18वीं शती में रचित गुरुमुखी लिपि की गद्य रचनाओं का विवेचन दिया है। उन्होंने हस्तलिखित गद्य रचनाओं का संग्रह अनेक विश्वविद्यालयों से किया है। डॉ॰ धर्मपाल मैनी ने आदिकालीन तथा मध्यकालीन हिंदी-साहित्य के इतिहास को बख़ूबी प्रस्तुत

किया है। इन सभी के प्रयासों के अतिरिक्त काशी की प्रसिद्ध संस्था नागरी प्राचारिणी सभा ने भी पंजाब के हिंदी-साहित्य को प्रकट करने में सहयोग दिया है।

डॉ॰ हरमहेंद्रसिंह बेदी ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इन्होंने सर्वप्रथम आदिकाल के संबंध में कुछ ग्रंथों के आधार पर तथ्य प्रस्तुत किए हैं। आचार्य हेमचंद्र ने अपने प्राकृत व्याकरण 'सिद्ध हेमचंद्रशब्दानुशासन' में अपभ्रंश तथा प्राकृत के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जो पंजाबी भाषा के ही पुरातन रूप हैं। मुसलमान कवि शाह अदहमान 'संदेश रासक' के रचयिता के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके काव्य में भी प्राकृत शब्दों की बहुलता के कारण उसे भी पंजाबी की रचना कहा जा सकता है। आदिकाल के संदर्भ में गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

पंजाब के हिंदी-साहित्य का भक्तिकाल लगभग एक पूर्ण साहित्य है, जिसमें विभिन्न विद्वानों ने असंख्य मत प्रस्तुत किए हैं। 'गुरु ग्रंथसाहिब' पंजाब के मध्ययुगीन साहित्य का प्रेरणा-ग्रंथ हैं, जिसमें गुरुवाणी, भक्तवाणी तथा भट्टवाणी का विस्तृत लेखा-जोखा दर्शाया गया है। श्री गुरु ग्रंथसाहिब का महत्त्व केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं है, अपितु साहित्यिक दृष्टि से भी यह ग्रंथ अक्षुण्ण है।

बेदी ने 'गुरु ग्रंथसाहिब' के अतिरिक्त पंजाब में रचित सूफ़ीकाव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य तथा प्रेमकाव्यों पर भी दृष्टिपात किया है। युग-युगांतरों से चली प्राचीन परंपरा का प्रचुर साहित्य पंजाब में उपलब्ध हुआ है। पंजाब के रामभक्त कवियों में सोढी मिहिरवान, कपूरचंद त्रिखा, हृदयराम भल्ला, हरिनाम इत्यादि प्रमुख हैं। इसी प्रकार कृष्णभक्त कवियों में गुरु गोविंदसिंह, साहिबसिंह मृगेंद्र, खुशहाल इत्यादि हैं, जिन्होंने कृष्ण के बालरूप, योगीरूप, रसिकरूप तथा ब्रह्मरूप का सुंदर चित्रण किया है।

पंजाब में उपलब्ध रीतिसाहित्य का भी हिंदी-साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान है। रीतिकाव्य में पंजाब की रियासतों के दरबारों का विशेष योगदान है। गुरु गोविंदसिंह के विद्या दरबार, जिनमें बावन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पंजाब के हिंदी-साहित्य में अपना अतुलनीय योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन गद्य साहित्य का भी योगदान महत्त्वपूर्ण है। पंजाब में खड़ीबोली गद्य एवं पद्य की चार-पाँच सौ वर्ष पुरानी समृद्ध परंपरा विद्यमान रही है।

पंजाब के हिंदी-साहित्य के इतिहास में आधुनिककाल एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। 1857 ई॰ के स्वतंत्रता-संग्राम के पश्चात् भारतीय साहित्यकारों ने अँग्रेज़ों के विरुद्ध अपनी लेखनी उठाई। पंजाब के आधुनिक हिंदी-साहित्य पर शोध करते हुए लगता है कि पंजाब की हिंदी-कविता अनेक सोपानों से गुज़रती हुई विकसित हुई।

पंडित श्रद्धाराम फिल्लौरी को पंजाब की हिंदी-कविता का अग्रगण्य कवि कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। इन्होंने 'सत्यधर्म मुक्तावली', 'शतोपदेश' तथा 'बीजमंत्र' जैसी काव्यकृतियाँ पंजाब को प्रदत्त की हैं। पंजाब के अन्य कवियों में देवराज दिनेश, सुरेश वात्स्यायन, कुमार विकल, द्वारिकाप्रसाद उत्सुक, तरसेम गुजराल, मोहन सपरा, उपेंद्रनाथ अश्क, नरेंद्रमोहन, बलदेव वंशी, विनोद शाही, कीर्ति केसर इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कवि तथा कवयित्रियों ने, जिनका यहाँ वर्णन नहीं किया गया, अपनी रचनाओं के माध्यम

से पंजाब की हिंदी-कविता के इतिहास में अपार श्रीवृद्धि की है। पंजाब की हिंदी-कविता में डॉ॰ हरमहेंद्रसिंह बेदी एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। 'गर्म लोहा', 'पहचान की यात्रा' तथा 'किसी और दिन' इनकी तीन प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। 'गर्म लोहा' काव्य-संग्रह पर इन्हें भारत सरकार की ओर से राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला है। इन्होंने अधिकतर भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था, आधुनिक जीवन की विद्रूपताओं तथा विडंबनाओं पर लिखा है। इनकी कविताओं में नगरीय जीवन की जटिल समस्याओं को उजागर किया गया है। इनके काव्य-संग्रहों में विविधता है, जिसके आधार पर कुछ कवियों ने डॉ॰ बेदी को 'कोलाज का कवि' माना है।

पंजाब की हिंदी-कविता के उपरांत डॉ॰ बेदी ने पंजाब के हिंदी-कहानीकारों, उपन्यासकारों, समीक्षकों, नाटककारों का भी हिंदी-साहित्य में योगदान प्रस्तुत किया है। समकालीन हिंदी-साहित्यकारों के अंतर्गत यशपाल, अज्ञेय, उपेंद्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, महीपसिंह, सुरेश सेठ, इंदु बाली, भीष्म साहनी, वीरेंद्र मेहंदीरत्ता, मनमोहन सहगल, विष्णु प्रभाकर, रवींद्र कालिया, सैली बलजीत, चंद्रशेखर, राजी सेठ इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अनेक चर्चित तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों के नाम यहाँ नहीं गिनाए गए हैं।

आलोचकों में प्रमुखत: संसारचंद्र, डॉ॰ धर्मपाल मैनी, डॉ॰ हुकुमचंद राजपाल, डॉ॰ इंद्रनाथ मदान, डॉ॰ मनमोहन सहगल, डॉ॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी इत्यादि के नाम प्रसिद्ध हैं। इनकी अनेक समीक्षाएँ पंजाब की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। डॉ॰ बेदी ने 'दैनिक जागरण' समाचार-पत्र के माध्यम से पंजाब के कृतिकारों तथा उनकी कृतियों का लेखा-जोखा एक कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्होंने सुरेश सेठ, संसारचंद्र, कुमार विकल, रवींद्र कालिया, अज्ञेय, मोहन राकेश सरीखे सुप्रसिद्ध रचनाकारों का ब्यौरा दिया है। डॉ॰ मदान की काव्य-आलोचना को उजागर करने का प्रयास किया है। समकालीन कविता के संदर्भ में डॉ॰ मदान की आलोचना-दृष्टि अधिक जागरूक, सामाजिक और विचार-प्रधान है। डॉ॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी ने आधुनिक साहित्य तथा मध्यकालीन साहित्य पर पैनी दृष्टि डाली है। इनके पूर्वकालीन इतिहासकारों ने केवल आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल के इतिहास को ही प्रस्तुत किया है। डॉ॰ हुकुमचंद राजपाल ने अपने इतिहास में आधुनिककाल का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने गद्य की समस्त विधाओं तथा उनके प्रसिद्ध रचनाकारों का सिंहावलोकन किया है। पंजाब की छायावादी चेतना के कवियों में द्वारिकादत्त 'उत्सुक' का नाम अग्रगण्य कवियों में गिना जाता है। नई कहानी को रचनात्मक दिशा देने का श्रेय मोहन राकेश को 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से दिया जाता है। एकांकीकारों में उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क, विश्वप्रकाश दीक्षित, डॉ॰ चंद्रशेखर इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त पंजाब के बहुचर्चित निबंधकारों में संतराम बी॰ए॰, देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ॰ ज्ञानसिंह मान, डॉ॰ जयनाथ नलिन प्रसिद्ध हैं। पंजाब के हिंदी-साहित्य के इतिहास को उजागर करने में अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'अमृत', 'भारत मित्र', 'मिलाप', 'प्रताप', 'वीर भारत', 'उषा', 'जनप्रदीप', 'पंजाब सौरभ' तथा 'सप्तसिंधु' इत्यादि पत्रिकाओं का कार्य सराहनीय है।

तत्पश्चात् नौवें और आख़िरी दशक में 'अजीत समाचार', 'जागरण' तथा 'अमर

उजाला' इत्यादि समाचार-पत्र नियमित रूप में नज़र आने लगे। रामेश्वर पांडेय के संपादन में 'अमर उजाला' में पंजाब के जनमान्य रचनाकार तथा नवोदित रचनाकारों को सम्मानजनक स्थान मिला। 'जागरण' के संपादक गीता डोगरा तथा कुछ समय से अजय शर्मा भी पंजाब के हिंदी-लेखकों को उचित स्थान प्रदान करने में प्रयासरत हैं। 'दैनिक ट्रिब्यून' तथा 'जनसत्ता' समाचार-पत्र भी अच्छी रचनाओं को प्रकाशित कर रहे हैं। आजकल यह कार्य चंडीगढ़ से छपने वाला 'दैनिक भास्कर' समाचार-पत्र कर रहा है।

डॉ॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी ने 'पंजाब का समकालीन हिंदी-साहित्य' संपादित किया है। उसमें विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर अपने मत प्रकट किए हैं। बेदी ने पंजाब के हिंदी-उपन्यास में प्रवासी चेतना का विदेशी हाशिया लेख में नगरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण को उजागर किया है। उन्होंने इसके अतिरिक्त पंजाब के हिंदी-साहित्य के इतिहास को उद्घाटित करने के लिए अनेक राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में भी आलेख प्रकाशित किए हैं। इनमें कुछ पत्रिकाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है– सौरभ, फिर, कल्पतरु, बरोह, साहित्य-अभियान, शब्द-सरोकार, प्राधिकृत, परिशोध, साहित्य मार्ग, सप्तसिंधु, पंजाब-सौरभ, जागृति, संचेतना, शीराज़ा, पल-प्रतिपल तथा विपाशा इत्यादि उच्चकोटि की पत्रिकाएँ हैं, जिन्होंने पंजाब तथा इसके पड़ोसी राज्यों से संबंधित रचनाकारों को उज्ज्वल भविष्य प्रदान किया है।

डॉ॰ बेदी ने मध्यकालीन साहित्य की विविधता का बड़ी गहनता से विवेचन किया। गुरु काव्यधारा, रामकाव्यधारा, कृष्णकाव्यधारा, दरबारी काव्य, गुरु गोविंदसिंह का विद्या दरबार, रीतिकालीन काव्य के महत्त्वपूर्ण कवियों तथा उनकी कृतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

गुरुग्रंथसाहिब मध्यकालीन साहित्य की लोकपरंपराओं का एक सामाजिक दस्तावेज़ है। इस ग्रंथ में संकलित वाणी उच्चकोटि की साहित्य-परंपरा को दर्शाती है। गुरु ग्रंथसाहिब में 6 गुरुओं की, 19 भक्त कवियों की, 11 भट्ट कवियों की वाणी संकलित की गई है। इस ग्रंथ में 11वीं शती से लेकर 17वीं शती के समाज का विस्तृत वर्णन मिलता है। ग्रंथसाहिब की भाषा को लेकर विभिन्न विद्वानों में मतभेद हैं। इस ग्रंथ में कहीं-कहीं प्राकृत, कहीं अपभ्रंश, कहीं ब्रजभाषा तथा कहीं खड़ीबोली का प्रयोग हुआ है।

इतिहास-परंपरा लिखनेवाले विभिन्न विद्वानों ने गुरुग्रंथसाहिब के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। डॉ॰ बेदी ने भी गुरुग्रंथसाहिब की भूमिका को बख़ूबी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। पंजाब के हिंदी-साहित्य के इतिहास में आधुनिककाल में गद्य की अनेक विधाओं का विकास हुआ। कविता तथा कहानी का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत तथा विशाल है। पंजाब में सर्वाधिक कविता लिखी जा रही है। नाटक-लेखन में पंजाब के लेखकों ने अत्यधिक हाथ नहीं आजमाए, परंतु फिर भी पंजाब में उच्चकोटि के नाटककारों ने अपनी भूमिका निभाई है।

पंजाब की समकालीन आलोचना भी कई सवालों से जूझती हुई प्रतीत होती है। डॉ॰ बेदी ने इस दिशा में एक ख़ास योजनाबद्ध संकल्प के साथ कार्य किया है। इन्होंने पुरानी महत्त्वपूर्ण कृतियों का संपादन किया है तथा अज्ञात सामग्री को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। उन्होंने भाई गुरदास के कवित्त सवैये, पंडित श्रीराम फिल्लौरी ग्रंथावली (तीन भाग), गरब गंजनी टीका कृत भाई संतोखसिंह, हिंदी साहित्येतिहास दर्शन की भूमिका, गुरु गोविंदसिंह और पंजाब का हिंदी वीर-साहित्य, पंजाब के हिंदी-साहित्य का इतिहास जैसी कृतियों के सहयोग

से पंजाब के हिंदी-साहित्य का सिंहावलोकन अत्यंत ख़ूबसूरती से किया है।

इसके अतिरिक्त डॉ॰ बेदी ने संपादन के क्षेत्र में, अनुवाद के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। 'सौंदर्योपासक', 'स्वामी विवेकानंद और भारत', 'फतेहनामा गुरु खालसा जी का', 'विजय विनोद कृत कवि ग्वाल', 'स्वामी विवेकानंद : दर्शन और विचार' इत्यादि इनकी संपादित कृतियाँ हैं। 'टैगोर की जीवनी', 'अरविंद आश्रम की माँ', 'वे दिन', 'कबहूँ न छाड़ै खेत' इत्यादि इनकी अनुवादित कृतियाँ हैं। डॉ॰ बेदी की कुछ पाठ्य पुस्तकें भी स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में संकलित की गई हैं। इनकी एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है– पंजाब के सुप्रसिद्ध रचनाकारों तथा उनकी कृतियों का लेखा-जोखा 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित करना। यह ब्यौरा 'कृति और कृतिकार' कॉलम के अंतर्गत एक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ है, जिसमें इन्होंने रवींद्र कालिया, डॉ॰ संसारचंद्र, कुमार विकल, मोहन राकेश, यशपाल, जगदीशचंद्र, भीष्म साहनी, डॉ॰ ऋता बावा, इंदु बाली, प्रेम विज, फूलचंद्र मानव, महीपसिंह, कीर्ति केसर, मोहन सपरा, नरेंद्र मोहन, सुरेश सेठ, तरसेम गुजराल सरीखे रचनाकारों की कृतियों का मूल्यांकन किया है। इनके इस सराहनीय प्रयास से पंजाब की महान् विभूतियों तथा उनकी कृतियों से साधारणजन तथा साहित्य-प्रेमी अवगत हो सके हैं। पंजाब के रचनाकारों ने अपनी कृतियों रूपी अमूल्य धरोहर से प्रकाशकों तथा पाठकों के ज्ञान में जो अभिवृद्धि की है, वह अतुलनीय है। यह महत्त्वपूर्ण कार्य डॉ॰ हरमहेंद्रसिंह बेदी सरीखे व्यक्ति ही कर सकते हैं। इससे उनकी पंजाब प्रदेश की भूमि, संस्कृति, भाषा, सभ्यता तथा साहित्य के प्रति लगन तथा अपार श्रद्धा व्यक्त हुई है। डॉ॰ बेदी ने पंजाब के इतिहास-संबंधी अनगिनत शोध किए हैं तथा अपने निर्देशन में अनेक छात्र-छात्राओं से शोध करवाए भी हैं। अब तक इनके निर्देशन में 28 शोधार्थी पीएच॰डी॰ कर चुके हैं तथा 55 शोधार्थी एम॰फिल॰ की डिग्रियाँ प्राप्त कर चुके हैं। इनके महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के आधार पर इन्हें भारत सरकार से विशेष सम्मान भी प्राप्त हुए हैं। सन् 2003 में पंजाब हिंदी-साहित्य अकादमी पुरस्कार, सन् 2004 में शिरोमणि साहित्यकार पुरस्कार पंजाब सरकार, उत्तर प्रदेश हिंदी-साहित्य परिषद् द्वारा 'कवि-रत्न' की उपाधि, गृह मंत्रालय की ओर से 2006 में राजभाषा पुरस्कार, 'गर्म लोहा' काव्य-संग्रह पर राष्ट्रपति से पुरस्कार, सन् 2006 में केनेडा की ओर से 'हिंदी कुल गौरव' का पुरस्कार इत्यादि महत्त्वपूर्ण सम्मानों से विभूषित होने का गौरव प्राप्त किया है।

पंजाब के हिंदी-साहित्य इतिहास लेखन की परंपरा से लेकर वर्तमान हिंदी-साहित्य लेखन में डॉ॰ बेदी की अविरल अथक् यात्रा निश्चित रूप से प्रशंसनीय है। प्राचीन पोथियों, ग्रंथों की पुर्नव्याख्या, अज्ञात सामग्री को प्रस्तुत करना, सुप्रसिद्ध रचनाकारों तथा रचनाओं का नोटिस लेने जैसे सराहनीय कार्यों द्वारा डॉ॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी ने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान स्थापित की है।

❐ द्वारा श्री सैली बलजीत
1288, **लेन**-4, **रामशरणम् कालोनी**
डल्हौजी रोड, पठानकोट (पंजाब)
मोबाइल : 98157-85878

नरेंद्र कोहली के रामकथापरक उपन्यासों में मिथकीय चेतना : एक विवेचन

श्रीमती गुंजन शर्मा, शोध-छात्रा
हिंदी विभाग
महाराज सिंह कॉलेज, सहारनपुर (ऊ॰प्र॰)

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा।[1]

[रघुकुल को आनंद देनेवाले श्री रामचंद्र जी के मुखारविंद की जो शोभा राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक की बात सुनकर) न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुःख से मलिन ही हुई, वह मुखकमल की छवि मेरे लिए सदा सुंदर मंगल की देने वाली हो।]

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का उपर्युक्त भाव एवं संवेग-संतुलन रामकथापरक साहित्यिक परंपरा का केंद्र-बिंदु है, चाहे वह इतिहासपरक महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण हो, भक्ति-भाव-समन्वित लोकभाषा में अभिव्यक्त गोस्वामी तुलसीदास कृत 'श्रीरामचरितमानस' हो, मुक्तक छांद्स संकलन से युक्त आचार्य केशवदास की 'रामचंद्रिका' हो, मैथिलीशरण गुप्त के पूर्व-स्वातंत्र्ययुगीन राम के राज्यादर्श से परिचित कराने वाला आधुनिकता से मंडित महाकाव्य 'साकेत' हो, कम्बन द्वारा रचित प्रायद्वीपीय संस्कृति का अभिव्यंजक 'तमिल रामायण' हो, भास-विरचित 'प्रतिमा-नाटकम्' हो, भवभूतिकृत करुणरस प्रधान नाटक 'उत्तररामचरितम्' हो, प्रतीक नाटक मौलिमणि 'अनर्घराघवम्' हो अथवा पुरातनता में समसामयिकता का बोध करानेवाली 'अभ्युदय खंड-1' तथा 'अभ्युदय खंड-2' में समाहित 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर', 'साक्षात्कार', 'पृष्ठभूमि', 'अभियान', एवं 'युद्ध' की सप्तपर्णी उपन्यास शृंखला ही क्यों न हो; यह एक ऐसी सरिता है, जो अजस्र प्रवाहमयी होकर प्रत्येक युग में मानवता के अस्तित्व का संदेश देती है, क्योंकि जब देवता अपनी क्रयशक्ति और प्रलोभन के आधार पर तथा राक्षस अपनी शोषण-प्रवृत्ति तथा आतंक के आधार पर जनशक्ति को दुर्बल एवं निरीह बना दें, तब जगन्नियन्ता को भी मानव के रूप में अवतरित होकर जन-उद्बोधन करना होता है और राम इसी उद्बोधन के प्रतीक होने के नाते शाश्वतप्रमेयमनघं बन जाते हैं; इन सबका सरलतम आभास नरेंद्र कोहली के उपन्यासों में मिलता है।

नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यासों में राम के युगप्रवर्तक स्वरूप की कल्पना की है। महाकाव्यों के घटनाक्रम को छंदबद्धता से मुक्त कराकर गद्य विधा में पिरोने एवं उपन्यास के परिधान में वेष्टित करने का श्रेय उन्हें इसलिए जाता है कि उन्होंने बीसवीं शताब्दी की समसामयिकता के समीचीन अंशो का चयन किया तथा घटनाओं को एक विशिष्ट चिंतन के

परिप्रेक्ष्य में देखा।

रामकथा पर आधृत उपन्यासों की शृंखला में प्रथम कड़ी 'दीक्षा' है, जिसमें उपन्यासकार ने महर्षि विश्वामित्र के समाजदर्शन के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि रावण किसी व्यक्ति का नहीं, प्रवृत्ति का प्रतीक है। राक्षसी आतंकवाद के कारण जनमानस निरीह एवं जर्जर हो चुका है और बुद्धिजीवी स्वतंत्र चिंतन परंपरा को छोड़ चुके हैं। या तो उन्हें इंद्र ने ख़रीद लिया है या रावण ने अपनी शक्ति से दबा दिया है। दोनों ही अवस्थाएँ समस्या का समाधान नहीं हैं। ऐसा भी नहीं कि इस प्रवृत्ति का विरोध नहीं हो रहा हो, परंतु वह विरोध प्रभावकारी नहीं दिखता। दंडकारण्य में मुनि अगत्स्य जनजागरण के कार्य में संलग्न हैं, पंचवटी के पास जटायु गृध्रजनजाति में ऊर्जा का संचार कर रहा है, शरभंग ऋषि ने आत्मदाह कर लिया, भील महिलाओं में शबरी यह कार्य कर रही है, किष्किधा में इसका निष्पादन सुग्रीव द्वारा हो रहा है तथा लंका में विभीषण विरोध के स्वर को मुखरित कर रहा है। इस प्रकार डॉ॰ कोहली ने इन घटनाओं के गर्भ में मिथकीय समसामयिकता खोजने का प्रयास किया है। जनमानस में शक्तिसंचार करने का कार्य अयोध्या की वेतनभोगी सेना नहीं कर सकती। उसके लिए तो किसी 'राम' को पैदल ही वन जाना होगा और प्रत्येक व्यक्ति में संघर्षशील 'राम' की ऊर्जा भरनी होगी। रही अयोध्या के राज्य की बात, तो राज्य कोई भी सँभाल लेगा, भरत, लक्ष्मण अथवा शत्रुघ्न में से कोई भी राज्य का संचालन कर सकता है। तभी घटघट में राम के पुरुषोत्तम रूप की कल्पना चरितार्थ हो सकेगी। ऐसे राम की जीवनसंगिनी अभिजात्य कुल की राजकुमारी न होकर अज्ञात कुलशीला सीता होंगी तभी स्त्रीजाति में सशक्तीकरण का संचार हो सकेगा। इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र ने एक आर्य राजकुमार को दीक्षित करके संघर्ष के सभी सूत्रों को जोड़ दिया है। साथ ही वह इस तथ्य से भी अवगत हैं कि युद्ध शस्त्रास्त्रों से जीता जाता है, इसीलिए उन्होंने राम को विभिन्न दिव्यास्त्रों से संपन्न किया और शिवजी के धनुष को तुड़वाकर नष्ट कर दिया, जिससे कि यह अनपेक्षित हाथों में न पड़ जाए। अहल्या के आश्रम में जाकर राम ने सूत्र वाक्य कहा, 'मैं प्रयत्न करूँगा कि इस जड़ता को यथाशक्ति तोड़ूँ...जाओ देवि! तुम्हें कौशल्या के पुत्र राम का संरक्षण प्राप्त है। अब कोई भी जड़, चिंतक, ऋषि, मुनि, पुरोहित, ब्राह्मण, समाजनियंता तुम्हें सामाजिक और नैतिक दृष्टि से अपराधी नहीं ठहराएगा।'[2]

अयोध्याकांड की मूलकथा पर आधारित उपन्यास, अवसर, राजनीतिक शतरंज के तंतु समवाय पर बुना गया है। सम्राट दशरथ ने राम को राज्य सौंपने का निर्णय मात्र पुत्र-प्रेम, जनकल्याण अथवा 'जो मत पांचहिं लागै नीका' की परम्परा के निर्वाह के लिए नहीं लिया अपितु इसलिए लिया कि इसके अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प नहीं बचा था। वह कैकेयी के रूप से प्रभावित तो थे, परंतु युधाजित में निहित केकय देश की शक्ति एवं अयोध्या की राज-व्यवस्था में बढ़ते हुए हस्तक्षेप से त्रस्त थे। भरत को युवराज बनाने का निर्णय चारों पुत्रों के जन्म से पूर्व ही लिया जा चुका था। इधर न्याय के लिए जनता का राम में विश्वास पराकाष्ठा पर था। राम के राज्याभिषेक का निर्णय अत्यंत गोपनीय रखा गया था; कैकेयी को विश्वास में नहीं लिया गया था; मंथरा ने कैकेयी को वस्तुस्थिति से परिचित कराया था। बड़ी विकट परिस्थिति थी कि एक अल्हड़ माता अपने सौतेले पुत्र से न्याय की याचना करती है। इस प्रकरण में एक मिथकीय सत्य अनुशीलनीय है। कैकेयी राम को सबसे अधिक मानती थी और उन

पर उसका अटूट विश्वास भी था। राम इस बात को बखूबी जानते थे कि वह कैकेयी के वचन की रक्षा के लिए वन जा रहे हैं। देवासुर संग्राम में आहत दशरथ को देखकर रावण अट्टहास कर बैठा था। उस समय युद्धस्थल में कैकेयी ने उसे अनरण्य ऋषि का अभिशाप याद दिलाते हुय कहा था 'इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न मेरा पुत्र ही राक्षस साम्राज्य का अंत करके तुम्हारा वध करेगा', इस प्रकार का दुष्कर कार्य राम के पराक्रम, दूरदर्शिता तथा प्रतिभा से ही संभव था। कौशल्या भी कदाचित् इस बात को जानती थी, इसलिए उन्होंने कहा था :

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़िमाता।
जौं पितु मातु कहेउ वन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।[3]

भरत का अभिषेक एवं चौदह वर्ष के लिए राम का वनगमन प्रस्तावित किया जाता है। राम भी वनवास को सहर्ष स्वीकार मात्र इसलिए नहीं करते कि वह पिता की आज्ञा अथवा वचन है, अपितु वन जाने के लिए महर्षि विश्वामित्र ने उन्हें पूर्णतः दीक्षित कर दिया था— 'गुरु ने स्पष्ट कहा था, मुझे तापस वेश में उन ऋषियों के निकट जाकर, उनसे समान धरातल पर मिलना होगा और उनकी याचना के बिना ही उनकी रक्षा करनी होगी। यदि किसी समय मेरा व्यक्तिगत बल तथा दिव्यास्त्रों का ज्ञान उनकी रक्षा में असमर्थ हुआ तो सेना की आवश्यकता पड़ेगी। किंतु लक्ष्मण! वह सेना अयोध्या की वेतनभोगी सेना नहीं होगी...जब जनता जाग उठती है तो बड़े-से-बड़ा अत्याचारी भी उसके सम्मुख टिक नहीं सकता।'[4] राम का वनगमन अयोध्या की जनता के करुण विलाप से ऊपर उठकर बहुत कुछ है, वह राम द्वारा जन-उद्बोधन की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, 'अयोध्या का दायित्व मैं आप पर छोड़ रहा हूँ। राजा कोई भी हो, पर अयोध्या आपकी है। राज्य शासक का नहीं, जनता का होता है। आप सजग रहें, सचेत रहें। अपनी अयोध्या की रक्षा करें और देखें कि अयोध्या का कोई भी शासक अनीति के मार्ग पर चल, दंभ अथवा विलास में पड़, जन-विरोधी शासन न करे।'[5] गोस्वामी तुलसीदास प्रशस्ति-भावना में बहकर कह गए, 'भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।'[6] परंतु नरेंद्र कोहली के राम, भरत को त्रुटिकारक मानव के रूप में भी देखने से नहीं हिचकते, वह निषादराज से कहते हैं, 'संभावना बहुत कम है...दुहरा रहा हूँ, संभावना बहुत कम है; किंतु यदि हमारा अनिष्ट करने के लिए, भरत ने इस ओर सैनिक अभियान किया, तो तुम बाधा दोगे; और चित्रकूट में हमें इसकी सूचना भिजवाओगे।'[7] प्रयाग में महर्षि भारद्वाज द्वारा राम को एक विशिष्ट सूत्र मिलता है, 'व्यक्ति रावण से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रावण है।'[8] यही नहीं, सीता की दीक्षा भी उनके पति वनवासी राम द्वारा संपन्न होती है— 'तो ऐसा ही हो, प्रिये! कल से तुम्हारा नया जीवन आरंभ हो। कल प्रातः से तुम वनवासिनी वैदेही बन जाओ; एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर व्यक्ति; राम के साधारण जीवन की संगिनी और सहगामिनी।'[9] कोहली ने जयंत प्रकरण में भी एक अपूर्व यथार्थ की कल्पना की है और शरणागत परित्राण को दुर्बलता से ऊपर उठकर देखने की कोशिश की है। कौवे के स्वरूप की कल्पना को धरातल से देखा गया है। 'उसका स्वर सुनकर सीता चौंक उठीं। कैसा कर्कश स्वर था इस पुरुष का—एकदम वनैले कौवे का-सा! और आँखें भी तो वैसी ही थीं—छोटी-छोटी, तीखी और गोल! कौवा, एकदम कौवा! सीता ने सोचा...'[10] जब जयंत क्षमा-याचना के लिए राम की शरण में आया तो राम मुस्कराए, 'मुझे मेरे आदर्शों में बाँधने की कुटिलता मत करो, पापी पिता

के पापी पुत्र! क्षत्रिय शरण में आए व्यक्ति की रक्षा करता है, किंतु मैं तुम-जैसे नीच की शरण-याचना को एक षड्यंत्र मानता हूँ।'[11] चित्रकूट की जनता में मानसिक साहस जगाकर, राम उन्हें सावधान भी करते हैं। 'बुद्धिजीवी होने के अहंकार में जनसामान्य से दूर मत हो जाना, अन्यथा तुम शोषकों के हाथ के खिलौने बन, जनसामान्य के शत्रु हो, क्रांति की प्रक्रिया की सबसे बड़ी बाधा बन जाओगे।'[12]

अरण्यकांड के इतिवृत्तों पर आधारित उपन्यास 'संघर्ष की ओर' धनकुबेरों द्वारा किए गए श्रमिकों के शोषण की एक कथा है, जिसमें इंद्र तथा रावण एक ही धरातल पर रखे गए हैं; एक को अपनी संपत्ति का अभिमान है तथा दूसरे को अपनी दमन-शक्ति पर गर्व है; दोनों ही श्रमिकों को धनार्जन हेतु प्रयुक्त की जाने वाली पशुवत् मूक संपदा समझते हैं तथा सोचते हैं कि यदि इनको मानवोचित सुविधाएँ मिल गईं तो इनका पाशविक प्रयोग असंभव हो जायगा। इनका उद्धार राम की संगठन-क्षमता से ही संभव था, अतः राम जनवाहिनी के गठन की ओर प्रवृत्त हुए। कालिदास ने शरभंग ऋषि के चिता-प्रवेश को मात्र त्याग और पवित्रता के परिप्रेक्ष्य में देखा था, 'चिराय सन्तर्प्य सभिद्भिरग्निं यो मन्त्र पूतां तनुमप्यहौषीत्' (रघुवंश सर्ग 13)। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी प्रकरण को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा।
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ।'[13]

परंतु नरेंद्र कोहली सांप्रतिक संदर्भ में इसे आत्मदाह मानते हैं, जिसके पीछे एक दर्शन काम कर रहा था। तीन दिन पूर्व शरभंग ऋषि के आश्रम में सहसा देवराज इंद्र का पदार्पण हुआ। ऋषि ने सोचा श्रमिकों के शोषण की समस्याओं का कतिपय समाधान हो जाएगा। किंतु परिणाम वही ढाक के तीन पात। इंद्र के जाने के बाद ऋषि निःशब्द तथा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए थे। वे अपने आपसे कहते हैं— 'न्याय का क्या होगा...धनवान और सत्तावान तो पहले से ही रक्तपान कर रहा है, बुद्धिजीवी भी उन्हीं के षड्यंत्र में सम्मिलित हो जाएगा तो फिर दुर्बल और असहाय मानवता का क्या होगा? यह कर्मकार, ये श्रमिक, ये दास—ये इसी प्रकार मरते-खपते रहेंगे, पशुओं के समान जीवन काटेंगे? मानव की श्रेणी में ये कभी नहीं आएँगे?...कभी नहीं! शायद कभी नहीं, कोई नहीं चाहता, ये मनुष्यों का जीवन जिएँ। रावण बुद्धिजीवियों को खा जाता है, इंद्र उन्हें ख़रीद लेता है...तो कौन आएगा उनकी सहायता को।'[14] राम को आघात यह जानकर होता है कि विराध गंधर्व जाति का था और उसने मात्र भोगवादी प्रवृत्ति के कारण राक्षस प्रवृत्ति अंगीकार कर ली। मृत्यु से पूर्व उसकी स्वीकारोक्ति में '...कोई वैधानिक सुशासन नहीं है। जीविका के बने-बनाए उपयुक्त साधन नहीं हैं...मेरे लिए दो में से एक ही मार्ग था—या तो किसी आश्रम में रहता। स्वयं को ज्ञान-विज्ञान में दीक्षित करता और आस-पास के क्षेत्र में राक्षसों के विरुद्ध जनसामान्य को स्वायत्त शासन-स्थापित करने के लिए संघर्ष करता। पर उससे मुझे क्या मिलता? भूख, पीड़ा, चिंता और अंत में मृत्यु...दूसरा मार्ग मैंने अपनाया...अपनी देह के सुख के लिए लूट-पाट, हत्या-बलात्कार। इसमें वैभव था, विलास था, सुख था...रावण से मेरा कोई सीधा संबंध नहीं है...न्याय का शासन न हो तो प्रत्येक समर्थ मनुष्य अपने-आप राक्षस बनता चला जाता है और असमर्थ जनता उसका भक्ष्य पदार्थ...उन्होंने राक्षस बनकर मेरी सहायता की और मैने राक्षस बनकर उनकी।'[15] राम को लगा कि सिद्धाश्रम, ताड़कावन, गौतम

आश्रम, चित्रकूट और दंडकारण्य में कोई विशेष अन्तर नहीं। जहाँ तक बुद्धिजीवियों की जबान बंद किए जाने का संदर्भ है, ऋषि शतकर्णि अथवा मंडाणी की कथा कुछ नए मिथकीय सत्यों का उद्‌घाटन करती है। उक्त ऋषि खान श्रमिकों के नेता के रुप में उभरते हैं। उनकी चेतावनी तब सत्य सिद्ध हुई, जबकि खान की दीवार गिर गई और कोयला खोदने वाले सारे मजदूर दबकर मर गए। अब उन्हे श्रमिकों का कुलपति बना दिया गया। इस सूचना को पाकर खान के मालिक अग्निमित्र अपने कुलपति अग्निदेव के पास गया। अग्निदेव स्वयं मंडाणी के पास गए और ऋषि के लिए सुंदर भवन बनवाया और पाँच सुंदरी अप्सेराओं से युक्त पंचाप्सर नाम की विहारस्थली बनवाई। परिणामस्वरूप ऋषि भोगविलास में डूब गए और शांत बैठ गए। मिथक के माध्यम से लेखक ने बिकाऊ नेताओं और बुद्धिजीवियों पर कटाक्ष किया है। राम को लगा कि सिद्धाश्रम, ताड़कानन, गौतम, चित्रकूट और दंडकारण्य में कोई अंतर नहीं।

महर्षि अगत्स्य द्वारा राम को दी गई चेतावनी तथा राम के आत्मविश्वास की उद्‌घोषणा के माध्यम से भी एक नए मिथक का सृजन हुआ है। महर्षि अगत्स्य कहते हैं, 'वह ग्राम अथवा वन में बसने वाला राक्षसों का टोला नहीं, उस व्यवस्था की सेना है, जो दसों दिशाओं में राक्षसों को जन्म देती है, उन्हें पोषित करती है और उनको संरक्षण प्रदान करती है।' [16] इस पर राम कहते हैं, 'कोई शस्त्र, कोई आयुध, कोई सेना या कोई साम्राज्य जनता से बढ़कर शक्तिशाली नहीं है। आप मेरा विश्वास करें—राम मिट्‌टी में से सेनाएँ गढ़ता है, क्योंकि वह केवल जनसामान्य का पक्ष लेता है और न्याय का युद्ध करता है।'[17]

अरण्यकांड के ही कथा-तारतम्य में सीता-हरण प्रकरण तक का आख्यानक 'अभ्युदय खंड-1', 'संघर्ष की ओर' के द्वितीय भाग में समाहित हो जाता है। महर्षि अगत्स्य के निर्देशानुसार राम दंडक वन में प्रवेश करके पंचवटी में अपना आश्रम स्थापित करते हैं। यहीं दशरथ के पूर्व मित्र गृध्रराज जटायु से उन्हें ज्ञात होता है कि जनस्थान में शूर्पणखा के नेतृत्व में राक्षसों का एक विशाल सैनिक स्कंधावार स्थापित है, जिसके सेनापति रावण के भाई खर, दूषण तथा त्रिशिरा हैं। राम के प्रथम दर्शन से कामविह्वला शूर्पणखा अपमानित होकर जनस्थान पर आक्रमण कराती है, परंतु राम द्वारा खर, दूषण, त्रिशिरा एवं चौदह सहस्र राक्षसों का वध हो जाता है। कूटनीतिक युद्ध के प्रथम सोपान के रूप में सीता का अपहरण होता है। जटायु के माध्यम से एक नए मिथक का सृजन हुआ है। गृध्र कोई पक्षी नहीं, अपितु वनांचल में रहने वाली एक न्यायप्रिय तथा दूरदर्शी जनजाति थी। इसी का नेता दशरथ-मित्र जटायु था। इसने सीता को बचाने के लिए रावण से युद्ध किया था। संपाती नामक गृध्र के सूर्य तक उड़ने के मिथक के पीछे यथार्थ यह है कि उसने सौर ऊर्जा के जनहित में प्रयोग की कल्पना की थी। यथार्थ का धरातल यहाँ तक पहुँचता है कि शूर्पणखा ही अशोकवाटिका में सीता की रक्षा का निर्देश त्रिजटा को देती है, 'किसी भी प्रकार वह सम्राट की शक्ति से भयभीत न हो, उनकी सत्ता से अभिभूत न हो। वह हताश न हो—न आत्महत्या की बात सोचे, न आत्मसमर्पण की। उसका साहस और जिजीविषा बनी रहे।' [18]

किष्किधा कांड के घटनाक्रम को 'पृष्ठभूमि' की संज्ञा इस आधार पर दी गई है कि यहीं से राम को रावण-साम्राज्य से टक्कर लेने के लिए एक साम्राज्य-विरोधी राजव्यवस्था की नींव डालनी है, जिसमें जनवाहिनी तथा संगठित एवं अनुशासित राज सेना का समन्वय हो। सीता

की मुक्ति-हेतु जिन दो राज्यों में युद्ध होता है, वे किष्किधा और लंका है। किष्किधा की राजव्यवस्था जर्जर हो चुकी है, क्योंकि उसका सूत्र-संचालन लंका से मायावी जैसे राजदूतों के माध्यम से होता है। अलका नामक तरुणी के माध्यम से राजनीति का संचालन होता है। मायावी और अलका के शारीरिक संबंध तथा अलका के मोहजाल में फँसा बालि प्रतिद्वंद्विता के स्तर पर पहुँच जाता है। बालि को इंद्रपुत्र कहने का भी मिथक तोड़ा गया— '...किष्किधा के जन-सामान्य ने उनका ऐसा ही एक नाम रखा था—इंद्रपुत्र! स्त्रियों के प्रति उनके आकर्षण के कारण, जनता ने उन्हें विलासी देवराज इंद्र का पुत्र घोषित कर दिया था।... या फिर लोग उनकी तुलना इद्रपुत्र जयंत से करते होंगे...कामुक और लंपट जयंत के साथ।' [1] बालि की अनुपस्थिति में सुग्रीव शासन सँभालता है, पर लौटकर आया बालि उस पर आक्रमण करता है और सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर रहना प्रारंभ कर देता है। राम द्वारा बालि-वध के उपरांत सुग्रीव राजा बन जाता है, परंतु सीता के अन्वेषण की बात भूल जाता है। लक्ष्मण उसके लिए राम का संदेश लाते हैं, 'जिस मार्ग से बालि गया था, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है।' [20] इस संबंध में कतिपय मिथक भी टूटते हैं, लक्ष्मण की क्रोधाविष्ट वाणी से आहत तारा का अहम् जाग उठता है और वह कहती है, 'किंतु इतनी बात मेरी सुनते जाओ, राजकुमार! कि संसार में ऐसा मनुष्य कोई नहीं है, जिसे किसी अन्य व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं है... अन्यथा राम सुग्रीव का वध कर, अपनी पत्नी की खोज में इन वनों, पर्वतों तथा समुद्र की लहरों पर अपना कपाल पटकने को पूर्णतः स्वतंत्र हैं।' [21]

सुंदरकांड की इतिवृत्तात्मकता को दौत्य-संप्रेषण, शक्ति-प्रदर्शन, कूटनीतिक भेद, सर्वग्रासी साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक सच्चरित्र शरणागत का युद्ध निर्णय के पूर्व ही एक निस्पृह जनकल्याणकारी तापस द्वारा राज्याभिषेक आदि का समीचीन तथा प्रासंगिक विश्लेषण 'अभियान' (अभ्युदय खंड-दो, युद्ध-1) का मूल उद्देश्य है। किष्किधा में जातिबाहुल्ययुक्त समाज से जनवाहिनी और अनुशासित राजकीय सेना का गठन होने के उपरांत सीता के अन्वेषण का कार्य हनुमान ने ऋक्ष यूथपति जाम्बवान के परामर्श पर अपने हाथ में लिया तथा समुद्र को तैरकर पार करने का निर्णय लिया। सुरसा और सिंहिका कोई राक्षसियाँ नही थीं अपितु समुद्र में विचरण करने वाले जलजंतु थे, जो हनुमान के लिए मार्गावरोध बनकर पड़े हुए थे। जब उनका मुख दीर्घाकार होकर खुलता था तो हनुमान कौशलपूर्वक उस पार चले जाते थे। नगर प्रहरी लंका को पराजित करके हनुमान ने नगर में प्रवेश किया। अशोकवाटिका में सीता को यातना देने वाली रक्षिकाएँ भी भयभीत थीं कि न जाने कालचक्र किधर घूम जाए; त्रिजटा बोली, 'इसे अधिक पीड़ित मत किया करो। जिस दिन यह महाराजाधिराज के अनुकूल हो गई, उस दिन तुम लोगों से सारा वैर निकाल लेगी।' [22] जब हनुमान की पूँछ में आग लगा दी गई तो सर्वप्रथम विस्फोटक पदार्थों से भरे भंडारों में लगी आग से लंका नगरी उद्वेलित हो गई। खोज-कार्य सफल हुआ तथा दल सुग्रीव के पास आ गया।

लंकाकांड, जिसे उपन्यासमाला में युद्ध (अभ्युदय खंड-2, युद्ध-2) का नाम दिया गया है, संपूर्ण घटनाक्रम का पटाक्षेप है। सागर पार करने हेतु सेतु-निर्माण हुआ। राम की सेना ने समुद्र पार कर लिया, इससे विक्षुब्ध रावण ने सभा बुलाई। संधि का परामर्श देनेवाले अनुज विभीषण का निष्कासन हुआ और शरणागत वत्सल राम ने विभीषण को सम्मानपूर्वक लंकेश

पद पर अभिषिक्त कर दिया। यह तथ्य विचारणीय है कि विभीषण ने राम से संधि के कुछ देशहित में अनुबंध भी रखे थे। 'युद्ध की अनिवार्य स्थितियों को छोड़कर, लंका तथा लंकावासियों का नाश नहीं किया जाएगा...न उस पर कोई बाहरी शासन आरोपित किया जाएगा।'[23] इधर लंका में मंदोदरी द्वारा रावण को समझाया जाना भी एक नए मिथक का सृजन करता है। मंदोदरी न तो अपने सुहाग की दुहाई देती है और न ही सीता की रक्षा या लौटाने की भीख माँगती है। वह रावण पर राजनीतिक दबाव डालती है और सोचती है कि लंका की शक्ति केवल रावण और शूर्पणखा की ही नहीं, अपितु मंदोदरी और इंद्रजित् की समवेत शक्ति है, जिसके बिना लंका की राक्षस-शक्ति अपंग हो जाएगी। रावण-वध के उपरांत राम विभीषण के समक्ष न्याय का सूत्र प्रस्तुत करते हैं, यही नरेंद्र कोहली का भी अभीष्ट है, 'किंतु ऐसा न हो कि नया समाज बनाने की आड़ में एक नई शोषण-व्यवस्था आरंभ हो जाए...सुख अर्जित करना चाहिए, एकत्रित नहीं।'[24]

प्रस्तुत अध्ययन में जिस बात पर बल दिया गया है, वह है मिथकीय संप्रसारण, प्रतीकात्मकता, उपादेयता, प्रासंगिकता एवं स्थान कालजयी शाश्वतता। मिथक एक सतत् गतिशील प्रक्रिया होती है। जब कोई सामान्य व्यक्ति परामानवीय कृत्य में प्रवृत्त होता है तो वह मिथक बन जाता है। मिथक में आदिम यथार्थ के अंश छिपे होते हैं। ये नितांत वायवीय नहीं होते। रामकथा में भी तत्कालीन समय एवं समाज के यथार्थ का समावेश अवश्य हुआ होगा, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। रामकथा इस प्रकार के कितने ही मिथकों के बनने-मिटने की एक प्रक्रिया है। क्योंकि इसके अनंत 'समय की शिला पर मधुर चित्र कितने, किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए।' जब राम ने अजगव धनुष भंग किया तो एक मिथक टूटने के साथ ही एक युग का भी पटाक्षेप हुआ; जब राम ने परशुराम को 'समय सिद्ध क्रांतिदर्शी ऋषि' शब्द से संबोधित किया तो भृगुवंशशिरोमणि में संवेग संतुलन का समावेश हुआ और वह बोले, 'मेरी क्रांति-दृष्टि पुरानी पड़ चुकी है, रूढ़ हो गई है। क्रांति तो निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है। नित नए संदर्भों को पहचानने वाली, संसार को आगे, और आगे, और आगे ले जाने वाली।'[25] इन सबके होते हुए भी इस उपन्यास-शृंखला में मानवीय विवेक पर विशेष बल दिया गया है और यही विवेक हमारी चेतना को निर्धारित एवं नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चाऽपि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ़ः परप्रत्ययनेय बुद्धिः।[26]

संदर्भ

1. हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्रीरामचरितमानस, पृ॰ 307, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2060
2. नरेंद्र कोहली, अभ्युदय खंड-1 (दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर), पृ॰ 153, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, 2004
3. श्रीरामचरितमानस, पृ॰ 351
4. अभ्युदय खंड-1, पृ॰ 251
5. वही, पृ॰ 259

6. श्रीरामचरितमानस, पृ॰ 489
7. अभ्युदय खंड-1, पृ॰ 276
8. वही, पृ॰ 287
9. वही, पृ॰ 303
10. वही, पृ॰ 343
11. वही, पृ॰ 347
12. वही, पृ॰ 370
13. श्रीरामचरितमानस, पृ॰ 577
14. अभ्युदय खंड-1, पृ॰ 374
15. वही, पृ॰ 379-380
16. वही, पृ॰ 581
17. वही, पृ॰ 582
18. वही, पृ॰ 739-740
19. नरेंद्र कोहली, अभ्युदय खंड-2 (युद्ध-1: साक्षात्कार, पृष्ठभूमि एवं युद्ध-2: अभियान, युद्ध), पृ॰ 45, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, 2004
20. वही, पृ॰ 269
21. वही, पृ॰ 282-283
22. वही, पृ॰ 369
23. वही, पृ॰ 466
24. वही, पृ॰ 614-615
25. अभ्युदय खंड-1, पृ॰ 191
26. कालिदास, प्रस्तावना, मालविकाग्निमित्रम्

समकालीन रचनाकार एवं रचनाएँ समकालीन काव्य के संदर्भ में

डॉ॰ अरुणलता वर्मा
रीडर हिंदी विभाग
एम॰एम॰एच॰ कालेज, ग़ाज़ियाबाद (उ॰प्र॰)

हमारे देश में कभी हृदय का तो कभी बुद्धि का शासन चलता रहता है और इसी का बिंब सामयिक साहित्य में प्रकट होता है। इस बिंब या प्रवृत्ति को साहित्यिक आंदोलन कह दिया जाता है। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काव्य, कला और संस्कृति को अधिशासित कर रही प्रवृत्ति को 'आधुनिकता' का नाम दिया गया, जिसका प्रकर्ष सन् 1910 से 1930 के मध्य दिखाई दिया और जिसका पुनरागमन 1960 के दशक के मध्य दिखाई दिया। टी॰एस॰ इलियट, एज़रा पाउंड, वरजीनिया वोल्फ आदि इसके हाई प्रीस्टेज कहलाते हैं। आधुनिकता की विशेषता थी वैयक्तिकता, जिसमें लेखक की व्यक्तिगत दृष्टि का महत्त्व था। वर्णन में वस्तु-निष्ठता का अभाव, वर्णन शैली में बदलाव जैसे कविता का डॉक्यूमैंट्री की तरह गद्यवत् होना आदि।

समकालीन कविता का स्वरूप :

सन् 1980 के दशक में समकालीन कविता के दर्शन हुए। समकालीन कविता से क्या तात्पर्य है, यह जानने से पहले समकालीन शब्द का अर्थ जान लेना अति आवश्यक है। समकालीन शब्द अँग्रेज़ी के कांटेंपरेरी का हिंदी-पर्याय है, जिसका अर्थ है– एक ही समय का, अपने समय का, समवयस्क आदि। 'समकालीनता काल के साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुक़ाबला करना है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केंद्रीय महत्त्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।' [1] समकालीनता के अर्थ को घोषित करने के लिए समसामयिकता और तत्कालीनता आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है, किंतु समकालीनता शब्द की वास्तविकता को ये शब्द प्रस्फुटित नहीं कर पाते। 'समकालीनता काल-ध्वनि-प्रधान शब्द है। सर्जनात्मक ईमानदारी और एकनिष्ठता की मानसिक संस्थिति को दायित्वपूर्ण ढंग से ग्रहण करने के लिए यह सर्वथा उपयुक्त और सार्थक है।' [2]

'समकालीनता का प्रश्न सुखद मृगमरीचिका की प्रवंचना न होकर स्थिति-बोध की धधकती उर्वरता का पोषक है। जिस प्रकार प्रत्येक युग के वर्तमान बोध को लेकर आधुनिकता को उछाला जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक सामयिक आयाम को लेकर समकालीनता को भी, किंतु वास्तविक बोध के तौर पर दोनों का अपना-अपना विशिष्ट संदर्भ है। प्रत्येक वर्तमान बोध समकालीनता से ही यथार्थता ग्रहण करता है।' [3]

रवींद्र भ्रमर ने आधुनिक को अधिक व्यापक और मूल्यगर्भित मानते हुए अत्याधुनिकता को एकदम आज का कालखंड माना है। 'समकालीन अत्याधुनिक को अपने-आपमें समाहित किए हुए आधुनिक की पीठ पर स्थित कालखंड है।' [4] अत: समकालीनता जीवन के प्रत्येक क्षण के प्रति उत्तरदायी रहती है। समकालीनता का प्रत्यय-बोध प्रत्येक युग के साहित्यकार के समक्ष परिप्रेक्ष्य एवं परिस्थितियों के बीच से उठा करता है। साहित्य का सृजन शून्य में न होकर ऐतिहासिक परिवेश में होता है, इसलिए उसका बोध एक आवश्यक मुद्दा हो जाता है। समकालीन बोध में अनुभूति की प्रामाणिकता और वर्तमान के प्रति प्रतिबद्धता का महत्त्व होता है। क्षण की प्रामाणिक अनुभूति, मानव के संपूर्ण अस्तित्व को नए यथार्थ के दर्शन से जोड़ती है। समकालीन कवि आत्मचेतना एवं वैयक्तिक उपलब्धि को समग्रता से देखने का हिमायती है। समकालीनता का विशेष संदर्भ है, परिवेश के बदलते यथार्थ को वस्तु के शुद्ध अनुभव के रूप में तटस्थ होकर अभिव्यक्त करना। कवि वर्तमान में ही आत्यंतिक क्रियाशीलता को प्राप्त करता है। समकालीनता वैश्विक मानवीय अस्तित्व के प्रति वह सजग जीवन-दृष्टि है, जो स्थिति-विशेष में स्वातंत्र्यपूर्ण दायित्व का निर्वाह करती है।

समकालीनता का प्रत्यय व्यक्ति, स्थान और काल के त्रिकोण के ऐतिहासिक एवं सामाजिक दबाव से उभरता है। यह दबाव निरंतर परिवर्तनशील है। इस दबाव को व्यक्ति, काल और देश की संपूर्णता के अस्तित्व से भी जोड़ा जा सकता है। साहित्य काल का वास्तविक साक्ष्य होता है।

'स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् से ही एक धूर्तता-भरा छद्म चोरदरवाज़े से हमारे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में प्रवेश कर गया था और हमारी मासूम नागरिकता भद्रता के नाम पर उसे चमकाने में लगी हुई थी। इस नक़ली चमक की कलई 1962 में व्यापक रूप से बेनक़ाब हो गई। भारत पर किया गया चीनी आक्रमण इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे विश्वबंधुत्व अथवा मानवतावाद की रूमानियत की इमेज टूटी है और उसकी खोल में पलने वाला छद्म अपनी सारी कुरूपताओं के साथ नंगा हुआ है। सांस्कृतिक और साहित्यिक शब्दावली में इसे मोहभंग और मूल्यहीनता के रूप में परिभाषित करने की चेष्टाएँ की गई हैं।' [5] कुछ ऐसे भी आलोचक हैं, जो 'समकालीन कविता को 'संपूर्ण परिवेश के यथार्थ' की कविता कहना उचित समझते हैं।' [6] 'समकालीन कविता का दावा है कि वह न तो भावावेग है, न कल्पना का अतार्किक विस्तार। वह तो जीवन-जगत् के व्यापार अनुभवों के सच्चे और ठोस आधारों को अपनाती है। इसलिए वह यथार्थ के भीतरी-बाहरी, जिए-भोगे गहरे आत्मसंघर्षों, तनावों, दबावों से विवश होकर रची जाती है। जीवन-जगत् की कठोर स्थितियों-परिस्थितियों का प्रभाव-दबाव समकालीन कविता में इतना अधिक बढ़ गया है कि कवि स्वयं ही जूझकर लहू-लुहान है। उसकी कविता ख़ुद से अपने परिवेश से मुठभेड़ करती कविता है। व्यापक अर्थों में यह कहा जा सकता है कि परिवेश ही इस काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा है। यहाँ महामानव और लघुमानव की बहस को समाप्त करता हुआ मामूली आदमी या सामान्य मानव कविता के केंद्र में आ गया है। अत: समकालीन कविता अपने परिवेशगत यथार्थ की व्यापक अभिव्यक्ति है।' [7]

नेहरू-युग के बाद की राजनीतिक विकृतियों, विद्रूपताओं, जीवन के हर क्षेत्र में

विघटित टूटते मूल्यों, पीड़ाओं-कुंठाओं, मरते स्वप्नों और विक्षोभों ने इस काव्य-सृजन की अनुभूतियों, संवेदनाओं, अनुभवपुंजों में अभिव्यक्ति पाई है। यह काव्य-सृजन युग की पीड़ाओं-चिंताओं से साक्षात्कार करता हुआ हमें विकल-बेचैन कर देता है, सोचने-विचारने को विवश करता है। विद्रोह, विक्षोभ, असंतोष से जन्मी यह कविता मामूली आदमी की व्यथाकथा का इतिहास है।

आधुनिकतावादी लेखक में अतीत के प्रति क्षोभयुक्त मोह दिखाई देता है, जबकि समकालीन लेखक अतीत की रचनाओं और मान्यताओं को उन्मुक्त अर्थ में ग्रहण करता है। ये दोनों आंदोलन यूरोप में उपजे और अब इन्होंने वैश्विक परिवेश को प्रभावित कर दिया है। क्षेत्रवाद, महँगाई, इंटरनेट ने दुनिया-भर की सभ्यता व संस्कृति में परिवर्तन ला दिया है और सोचने-समझने की एक सांझी बौद्धिकता का निर्माण किया है।

आज लेखक परंपरा से जुड़कर चलना नहीं चाहता। कोई रामायण और महाभारत की कथा को कल्पना-मात्र कहता है तो कोई श्री हनुमान को प्रथम आंतकवादी कह देता है। कोई वीर शिवाजी को गुरिल्ला कहता है तो कोई मनुस्मृति का विरोध करते हुए महिला-आंदोलन और दलित-आंदोलन के तराने गुनगुनाता है और जनचेतना लाकर इतिहास को बदलना चाहता है। उसे समग्रता के स्थान पर विखंडन प्रिय है। दो शब्दों में उसकी आस्था है–सिम्यूलेशन अर्थात् असत्य को सत्य के रूप में प्रतिपादित करना और फ्रैगमैंटेशन अर्थात् विखंडन-समग्रता के विपरीत संबंधों का, व्यक्तित्व का, समाज का, देश का, धरती का विखंडन आदि। अपरिचय व अलगाव, जिसे समाजशास्त्र में 'एलिनेशन' कहते हैं, हमारे ऊपर हाबी है। आज हम निकट बैठे हुए दूर हैं, परस्पर व्यवहार करते हुए भी अपरिचित हैं। यहाँ तक कि मुखौटा लगाते-लगाते स्वयं के असली रूप को भी भूल जाते हैं। विवाह-तलाक, विवाह-तलाक की न रुकने वाली शृंखला साहित्यिक विषयों की नई रुचि का परिचय देती है। यह सब समकालीन यथार्थ है, जो विशेषकर साहित्य में और महानगरीय जीवन में देखा जा सकता है। इतना विखंडन आधुनिकतावादियों को प्रिय नहीं था। Peer Barry लिखते हैं 'The modernist laments fragmentation while the past modernist celebrates it.'

समकालीन कविता की प्रवत्तियाँ :

आज जब हम समकालीन कविता पर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि बुद्धि के व्यापारी ने कविता-कामिनी की कमर इतनी ज़ोर से पकड़ रखी है कि उसे चलना भी भारी पड़ रहा है। 'नित नई कथित नूतनता, प्रतिबद्धता, अतियथार्थता, अतिबौद्धिकता, अतिसूक्ष्मता, बिंब एवं प्रतीक-विधान एवं प्रगति के नाम पर पंगु होती कल्पना, यथार्थ का गँदला एवं नारी का अश्लील चित्रण, शब्दों का बाह्याडंबर आदि ये ऐसे मूलभूत दुराग्रही कारण है, जिनसे कविता की कलरवता बहुत अधिक प्रभावित हुई है।' [8] समकालीन कविता बौद्धिकता के रंग में रँगी है।

समकलीन कविता में 'भोगवाद, यौन-जुगुप्सा में बदल गया है। नारी मात्र देह रह गई है। आस्था, आदर्श व आशा जैसे शब्द कविता से लुप्त हो गए हैं। कविता के क्षेत्र में संपूर्ण अराजकता की स्थिति व्याप्त हो गई है।' [9] बढ़ती महँगाई, सूखा, बाढ़ आदि ने आम लोगों के जीवन को कष्टों से भर दिया है। प्यार-प्रेम जैसी सुकोमल भावनाएँ केवल छलावा बनकर रह

गई हैं। इनकी आड़ में मनुष्य कुछ भी घटिया-से-घटिया कर्म करने से भी नहीं चूकता।

सहानुभूति व प्यार
अब एक ऐसा छलावा है
जिसके ज़रिए
एक आदमी, दूसरे को अकेले
अँधेरे में ले जाता है और
उसकी पीठ में
छुरा भोंक देता है।[10]

क़स्बों व छोटे नगरों में रहनेवाले युवा कवि जब महानगरों में रहने लगे तो उन्हें एक नए आश्चर्यलोक के दर्शन हुए। महानगर में फैली संपन्नता, विलासिता और चमक-दमक ने उन्हें चकाचौंध से भर दिया। अपने क़स्बे के गतिहीन जीवन और महानगर की इस रफ़्तार-भरी ज़िंदगी को वे सहज ही स्वीकार नहीं कर पाए। इस अंतर्विरोध को समझने के बजाय उन्हें यहाँ और वहाँ दोनों ही जीवन निरर्थक लगने लगे। अकेलेपन की भावना उनके मन में घर कर गई। एक तो इसलिए क्योंकि वह उनकी मध्यवर्गीय पहुँच से परे था और दूसरा इसलिए कि उनकी आकांक्षाओं से अत्यंत अल्प था। ऐसे में सब-कुछ को नकारने के विद्रोही तेवर अपनाते हुए वे हर चीज़ को और अपने-आपको भी निरर्थक मानने लगे। विचार, प्रेम, आस्था आदि शब्द उन्हें गाली की तरह लगे। क्योंकि विज्ञान की महान् उपलब्धियों ने मानव को आज इतना शक्ति-संपन्न बना दिया है कि झूठे अंहकार में चूर हुआ मानव अपने-आपको ईश्वर ही समझने लगा है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, धर्म-अधर्म आदि किसी से उसे भय नहीं लगता। मानवीय मूल्य अपना महत्त्व खोते जा रहे हैं। समाज में चारों ओर हा-हाकार मचा है। कहीं आतंकवाद है तो कहीं बाढ़, कहीं आत्महत्याएँ हैं तो कहीं छोटी-छोटी बच्चियों के साथ शर्मनाक घटनाएँ हो रही हैं। ऐसी ह्रासोन्मुखी स्थिति में रचनाकार का चिंतित होना स्वाभाविक है, इसलिए वह कहता है–

प्राण हुए सस्ते अब पानी के मोल बिके,
स्नेह, प्रेम, नेह, मोह दिखते हैं थके-थके।[11]

जीवनमूल्यों के प्रति यह दृष्टिकोण आम आदमी के जीवन में दिखाई पड़ता है। कवि ने तो केवल उसे अभिव्यक्ति दी है। जिस समाज में 'लाभ' व 'पद' सबसे ज़्यादा मूल्यवान बन गए हों, जिस समाज में बेईमानी, रिश्वतख़ोरी, भाई-भतीजावाद, सिफ़ारिश, गुंडागर्दी आदि को सम्मान मिलने लगा हो, उसमें यदि रचनाकार में दृष्टिकोण उत्पन्न होता है तो यह आश्चर्य की बात नहीं। कैलाश वाजपेयी ने कहा है–

जहाँ हर यात्रा का अर्थ दुर्घटना है
और अस्पतालों में मृत्यु अधिक निश्चित है
जहाँ धूर्त होना, अतिरिक्त गुण और बेईमानी
प्रामाणिक हो चुकी है।
दोहरा व्यक्तित्व, पाखंड, चाटुकारिता
प्रचार, पक्षपात और उलझन,

जहाँ के सर्वमान्य मूल्य हैं।
जहाँ सत्य शब्द का उच्चारण
अब केवल अर्थी ले जाने में होता है।
गाली ही अब जहाँ एक मात्र भाषा है।

समाज की इस तस्वीर ने कवियों में आक्रोश को पैदा किया है। यह किसी सकारात्मक परिणति की ओर जाने के बजाय विनाश की तीव्र आकांक्षा के रूप में अभिव्यक्त हुआ।

जगदीश चतुर्वेदी ने 'इतिहासहंता' में कहा है कि–

मैं प्रेम जैसे अभिशप्त रोग को
मुट्ठी में भरकर
आग में झोंक देना चाहता हूँ।
मैं आसपास के घरों में एक हाहाकार मचाना चाहता हूँ
एक अनिर्दिष्ट व्याघात
मैं तमाम यात्राओं को दुर्घटनाओं में बदलना चाहता हूँ।

देश की उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुखी स्थिति के लिए कवि भ्रष्ट नेताओं को ही दोषी मानता है, क्योंकि इनकी क्षुद्र राजनीति केवल कुर्सी तक सीमित है, इनका दीन-ईमान सब कुर्सी है–

अरमान बसे हैं कुर्सी में
मन-प्राण बसे हैं कुर्सी में
भगवान बसे हैं कुर्सी में
सब धर्म-कर्म कुर्सी उनके।
वे कुर्सी छोड़ नहीं सकते।
लाचारों को आवाज़ न दो। [12]

इस कुर्सी के लिए वे धर्म-ईमान सब-कुछ बेचने को तैयार रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे दल-बदलने से भी नहीं चूकते–

लाल टोपी पहनकर गया हुआ विधायक
सफ़ेद टोपी पहनकर लौट आता है।
और सफ़ेद वाला काली
इसके अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं बदलता।

समकालीन काव्य में वर्गविहीन समाज की परिकल्पना भी प्रमुख है। लोकतंत्र की इस वनतंत्री व्यवस्था से क्षुब्ध होकर कवि-मानस का ऐसी विराट् विश्वव्यापी चिंतन-प्रक्रिया के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक था।

इन विषम परिस्थितियों से टकराने का एकमात्र विकल्प संघर्ष ही है, इसीलिए वह सामान्य से सामान्य व्यक्ति के पास जाना चाहता है, चाहे वह कोई भी हो।

राजतंत्र की इस वनतंत्री व्यवस्था में
मैं अकेला और असक्षम हूँ।
मेरे स्नायुतंत्र पर भय और आतंक की,

कँटीली झाड़ियाँ उग आई हैं,
जिन्हें काटने के लिए
ठीक हाथों और ठीक शब्दों की तलाश में–
मैं होरी किसान और
मोचीराम के पास जाऊँगा।
मैं अपने मुहल्ले के पास जाऊँगा।[13]

आज की कविता में गद्यात्मकता का अधिक समावेश है। कहीं-कहीं तो यह भी पहचानना मुश्किल हो जाता है कि यह गद्य है या पद्य। समकालीन कविता का प्रतिपाद्य यथार्थपरक और आम आदमी के दैनंदिन से लिया गया है तो स्वाभाविक है कि उसका शिल्प भी सहज होगा। जीवन-संघर्ष की रगड़ से फूटी काव्य-भाषा की सर्जनात्मकता में जीवन-संग्राम-भरा गद्य फूटता है।

बाबू जी! सच कहूँ मेरी निगाह में
न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है।
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ा जूता है।
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।
असल में वह एक दिलचस्प ग़लतफ़हमी का
शिकार है।
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है।
और भाषा पर आदमी का नहीं,
किसी जाति का अधिकार है। [14]

व्यंग्य भाषा का अचूक वाण है। यही वह धारदार अस्त्र है, जिसके माध्यम से जीवन और जगत् की अनगिनत विसंगतियों-विद्रूपताओं के मर्म पर सीधा प्रहार किया जा सकता है। इस काव्यभाषा में ग़ुस्सा-आक्रोश, नफ़रत, विद्रोह की अर्थच्छायाएँ साफ़-साफ़ उभरती हैं। भाषा का भाव-संप्रेषण-व्यापार इतना सक्षम है कि अपनी बात पाठक तक पहुँचाने में उसे बाधा नहीं होती। भाषा कभी संवाद लगती है, कभी एकालाप, कभी वक्तव्य, कभी घटना, कभी स्थिति का पूरा बिंब। समकालीन कविता में बिंबों का अत्यंत सुंदर एवं कलात्मक नियोजन हुआ है, चाहे वह मुक्तिबोध हो या सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नरेश मेहता हों, रघुवीरसहाय हों या लीलाधर जगूड़ी, सभी ने उच्चकोटि के सुंदर बिंबों को प्रस्तुत किया है।

नाव को केवट-वधू के रूप में मूर्तित करनेवाला यह बिंब सुंदर है–

हवा से उथरा हुआ कुछ पाल
शीश पर आँचल लिया है डाल
दूर नदियों के किनारे गाँव
जा रही केवट-वधू-सी

युवा-लेखन की निर्भीकता और खुलेपन में सपाटबयानी की दरिद्रता पैठती गई। फलतः एक संस्कारवान सृजनधर्मी भाषा वे नहीं दे सके। अशोक वाजपेयी ने भरे हृदय से लिखा 'भाषा ने बात को सीधे साफ़-साफ़ कहने की क्षमता ज़रूर उपलब्ध की, लेकिन जैसे ऐसा

करने से उससे पहले जो कहा गया था, वह सब-कुछ भुला बैठी। हमारी भाषा स्मृतिहीन भाषा है और चूँकि अपने तात्कालिक प्रसंग के अलावा और कुछ और नहीं उकसाती या याद करती, वह एक अतीतहीन, एक अनवरत वर्तमान की भाषा है। एक अनैतिहासिक मुहावरा है।'

समकालीन कविता में मुक्त छंद की सर्जनात्मक संभावनाओं का जी भरकर उपयोग किया गया है। इस मुक्त-छंद को हर तरह से छीलकर गद्य की लय में ढाल लिया है। रघुवीर सहाय ने इस क्षेत्र में अविस्मरणीय क्षमता हासिल की है। जैसे–

बच्चा गोद में लिए
चलती बस में
चढ़ती स्त्री
और मुझमें कुछ दूर तक घिसटता जाता हुआ।

इस कविता में गद्य के वाक्यों का छोटा-बड़ा विस्तार भीतर के वैचारिक तनाव को भाषा की लय में बाँधने का सफल प्रयास है। इसी तरह अरुण कमल की 'उर्वर प्रदेश' कविता में गद्य या पद्य को पहचानना मुश्किल हो जाता है। जैसे–

खोलता हूँ खिड़की
और चारों ओर से दौड़ती है हवा
मानो इसी इंतज़ार में खड़ी थी पल्लों से सट के
पूरे घर को जलभरी तसल्ली-सा हिलाती
मुझसे बाहर मुझसे अनजान
जारी है जीवन की यात्रा अनवरत
बदल रहा है संसार।

रघुवीर सहाय को इस युग के कवि अपना अग्रज या गुरु मानते हैं। ये वे पहले कवि हैं, जिन्होंने न्यूनतम विषय को लेकर न्यूनतम काव्य की रचना की। समकालीन कवियों में अशोक वाजपेयी का नाम महत्त्वपूर्ण है। इनकी कविता पर न तो साठोत्तरी कविता की निषेधवादी प्रवृत्तियों का प्रभाव है और न ही प्रगतिशील जनवादी कविता का। अशोक वाजपेयी मूलत: निजी अनुभवों के कवि हैं। इन अनुभवों में जीवन के राग-विराग व्यक्त हुए हैं। उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं 'शहर की अब भी संभावना है' और 'एक पतंग अनंत में'। कुमार विकल के काव्य में भी आम आदमी के जीवन-संघर्ष की संवेदनशील तस्वीर मिलती है, जिसमें बड़बोलापन नहीं है। उनके प्रमुख काव्य-संग्रह है 'एक छोटी-सी लड़ाई' और 'रंग ख़तरे में है।'

मंगलेश डबराल की कविता पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं– 'मंगलेश डबराल की कविता में दुख और थकान के, उदासी और निराशा के अनुभव अनेक रूपों में मौजूद हैं। पर मंगलेश उन कवियों में नहीं हैं, जो एक तरह के आत्ममोह के रंग में इन अनुभवों को ग्रहण करते हैं। इनके पीछे जो ठोस सामाजिक कारण-तर्क काम कर रहे हैं, मंगलेश उनके प्रति भी अधिक सूक्ष्म स्तर पर समीक्षाशील दिखाई देते हैं।' इनके दो काव्य-संग्रह हैं–'पहाड़ पर लालटेन' और 'घर का रास्ता'।

समकालीन कविता में असद ज़ैदी का नाम भी सम्मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने

'बहनें' नामक कविता के माध्यम से स्त्रियों की करुण सामाजिक स्थिति के द्वारा उनके जीवन-यथार्थ का सूक्ष्म अवलोकन किया। इनके दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए– 'बहनें तथा अन्य कविताएँ' और 'कविता का जीवन'। इब्बार रब्बी की कविताओं में व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वजनिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनके प्रमुख काव्य-संग्रह 'घोषणा पत्र' व 'लोग बाग़' हैं।

अत: समकालीन कविता के कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, आलोक धन्वा, कुमार विकल, अरुण कमल, इब्बार रब्बी, मंगलेश डबराल, राकेश जोशी, मनमोहन, विष्णु नागर आदि हैं। गीतकारों में शंभुनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, वीरेंद्र मिश्र, उमाकांत मानवीय, रवींद्र भ्रमर, ठाकुरप्रसाद सिंह, राकेश रंजक, हरीश भवानी, माहेश्वर तिवारी आदि हैं।

अंत में मैं यही कहना चाहूँगी कि समकालीन रचनाकारों की रचनाओं में समाज का अति यथार्थ चित्र देखने को मिलता है। समकालीन काव्य में सांबंधिक टूटन को, खंडित व्यक्तित्व को, सामाजिक अजनबीपन को, क्षेत्रीयता को वाणी दी गई है, जो आज की वैश्विक सच्चाई है। इसके अतिरिक्त असुरक्षित मानव-जीवन का, लाखों-करोड़ों शोषित-पीड़ित व्यक्तियों का चित्रण भी आज की कविता में मिलता है। मानवीय सरोकारों से जुड़ी यह कविता जीवनानुभूत कविता है, ज़मीन से जुड़ी कविता है। साधारण व्यक्तियों, साधारण घटनाओं को अपना प्रतिपाद्य बनाने वाली कविता सचमुच अपने-आपमें असाधारण है।

संदर्भ

1. समकालीन सिद्धांत और साहित्य, डॉ॰ विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ॰ 16
2. समकालीन हिंदी कविता और जनवादी चेतना, डॉ॰ नकछेदराम, पृ॰ 14
3. समकालीन हिंदी कविता और जनवादी चेतना, डॉ॰ नकछेदराम, पृ॰ 15
4. समकालीन हिंदी कविता, रवींद्र भ्रमर, (प्रथम सं॰ 1971), पृ॰ 19
5. सं॰ नरेंद्रमोहन : विचार कविता की भूमिका, श्यामनारायण के लेख से उद्धृत, पृ॰ 82
6. हिंदीभाषा व साहित्य का इतिहास : समकालीन कविता : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मानविकी विद्यापीठ एम॰एच॰डी॰ 06, पृ॰ 58
7. हिंदीभाषा व साहित्य का इतिहास : समकालीन कविता : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मानविकी विद्यापीठ एम॰एच॰डी॰ 06, पृ॰ 58
8. बौद्धिकता से बोझिल कविता और कटता पाठक, डॉ॰ महेंद्र जैन मुकुर, पृ॰ 30 (अनुशीलन, केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान एवं केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो)
9. हिंदी-साहित्य का इतिहास एवं साहित्य परिचय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मानविकी विद्यापीठ, ई॰एच॰डी॰, पृ॰ 76
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ राजसजन पांडेय, पृ॰ 343
11. वही, पृ॰ 343
12. वही, पृ॰ 342
13. वही, पृ॰ 345
14. वही, पृ॰ 345

कन्या भ्रूणहत्या

(Female Foeticide)

सुदेश कुमारी
हिंदी प्रवक्ता
राजीव गांधी महाविद्यालय, उचाना (जींद)

संसार में जबसे मानव ने जन्म लिया तो समस्याएँ भी साथ-साथ आईं, लेकिन पहले आदिम युग में जो समस्या थी, वह रहने और खाने की थी। समय बदलता गया और समस्या भी, लेकिन आज जिस भँवर में हम गिरते जा रहे हैं, वह किसी देवता की देन नहीं है और न ही कोई प्राकृतिक आपदा है, जिसके ऊपर हमारा वश न हो। यह मुसीबत तो हमारी खुद की पैदा की हुई है, जिससे सभी परिचित हैं और उस समस्या का नाम है 'भ्रूणहत्या' यानि पैदा होने से पहले ही बच्चे को गर्भ में ही मार देना। यह सिर्फ़ हमारी घटिया मानसिकता और परिस्थितियों के कारण ही संभव हो रही है। इस समस्या ने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि एक दिन यह प्राकृतिक आपदाओं से भी भयंकर रूप लेकर हमारे सामने आएगी और तब हम सिर्फ़ भूतकाल को सोचकर सिर्फ़ अपना सिर ही धुनेंगे, इसके लिए हमारे पास कोई समाधान नहीं होगा।

कन्या को जन्म से पहले ही मारने के जो तर्क दिए जाते हैं, वे सब बेबुनियाद हैं, क्योंकि सबसे बड़ा जो तर्क दिया जाता है कि बेटा वंश चलाएगा, लेकिन इस संसार में ऐसे कितने व्यक्ति होंगे, जो ये जानते हों कि वे किसका वंश चला रहे हैं, दो-तीन पीढ़ी से आगे किसी को भी अपने पूर्वजों का नाम याद नहीं होता। उनकी बात को यदि हम भी मान लें तो अकेला लड़का कहाँ से वंश की बढ़ोत्तरी करेगा, जब उसकी शादी करने के लिए कन्या ही नहीं होगी।

दूसरी जो प्रमुख समस्या बताई जाती है दहेज की, जो काफ़ी लंबे समय से हमारे सामने मुँह फैलाए खड़ी है, लेकिन इस बारे में भी हम सब एक से बढ़कर एक विचार प्रस्तुत करते हैं और बड़े-बड़े आदर्शों की बातें करते हैं परंतु जब खुद पर वह बात अमल करने का समय आता है तो हम सब-कुछ भूल जाते हैं और सारे आदर्श खड़े-के-खड़े रह जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यथार्थ के धरातल पर उनका कोई मूल्य नहीं है। डॉ॰ बलजीत सिंह की ये पंक्तियाँ इस विषय उपयुक्त प्रतीत होती हैं–

स्वयं न पालन कर सको, मत दो वह उपदेश।
हृदयंगम करते रहो, ऋषियों के संदेश। [1]

अगर हम ये कहें कि–

हृदयंगम करते रहो, कितना मिले दहेज़

तो इन लोगों को ज़्यादा समझ में आएगा। अगर हम सभी ये प्रण कर लें कि शादी में किसी प्रकार का दहेज व फ़िज़ूलख़र्ची नहीं करेंगे तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि यह समस्या खड़ी रह जाए, क्योंकि एक-एक व्यक्ति से समाज बनता है और व्यक्ति के सुधरने से समाज अपने आप सुधर जाएगा, चाहे तो आजमाकर देख लीजिए।

दहेज़ की आड़ लेकर किस प्रकार से डॉक्टर माँ-बाप को भ्रमित करते हैं, इसका उदाहरण हमें एक रिपोर्ट से पता चलता है, जो कि सोनाल्डा देसाई [2] ने दी है– 'बंबई में एक विज्ञापन खुले-आम लगाया गया था कि यदि आप 500 रुपए ख़र्च करोगे तो आने वाले समय में 5 लाख देने से बच जाओगे।'

डॉक्टर जो कुछ पैसों के लालच में आकर इतना घृणित कार्य करते हैं कि उनको यह तक आभास नहीं कि जो ये काम वे कर रहे हैं। उसका आने वाले समय में क्या प्रभाव पड़ेगा और इस भ्रूणहत्या की पापी चिंगारी से वे भी बच नहीं पाएँगे तथा इन पैसों का पागलपन उन्हें ऐसे गर्त में ले जाएगा, जहाँ से बाहर निकलना असंभव है, क्योंकि पैसा कभी भी सुख प्रदान नहीं कर सकता–

पैसा सुख देता नहीं, पैसा देता भोग।
इसके पीछे हो रहे, पागल सारे लोग। [3]

लेकिन अगर हम इन लोगों को समझाने की कोशिश भी करते हैं तो इनके ऊपर कोई असर नहीं होता, क्योंकि सभी इस कार्य के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि इन्होंने तो इस धरती पर कन्या के लिए एक शैतान का रूप धारण कर लिया है–

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान,
धीरे-धीरे बन गया, वह पक्का शैतान। [4]

हमारे भारत में ही नहीं, यह समस्या तो सारे विश्व के सामने धीरे-धीरे क़दम बढ़ा चुकी है, लेकिन दक्षिण और पूर्वी एशियाई देशों में यह समस्या मुँह-फैलाए खड़ी है। इसमें प्रमुख रूप से चीन और भारत का नाम आता है। भारत के राज्यों में प्रमुख रूप से पंजाब, हरियाणा और दिल्ली का क्षेत्र हैं, जहाँ पर भ्रूणहत्या ने भंयकर रूप ले लिया है। इसके परिणामस्वरूप 35 से 40 मिलियन लड़कियाँ व औरतें भारत की जनसंख्या से ग़ायब हो चुकी हैं। अब आप स्वयं ही अनुमान लगा लीजिए कि आने वाले समय में क्या हालात होने वाले हैं। ये आँकड़े तो 2004 तक के हैं, जिसमें लड़के-लड़कियों का अनुपात 1000:800 था।[5] As a result of selective abortion, between 35 and 40 millions girls and women are missing from the Indian Populations. In some parts of the country the sex ratio of girls to boys has dropped to less than 800 : 1000.

'सन् 1975 में अल्ट्रासाउंड मशीन का प्रयोग बच्चे के अंगों का सही विकास हो रहा है या नहीं, इसका पता लगाने के लिए किया गया था' [6] लेकिन इंसान ने हमेशा ही जब भी कोई आविष्कार हुआ है तो उसका दुरुपयोग करने के रास्ते भी साथ-साथ खोज लिए हैं और उस समय से ही यह भ्रूणहत्या का कुत्सित कार्य शुरू हो गया, जो अब तक थमने का नाम नहीं ले रहा। परंतु आविष्कार का दुरुपयोग करनेवाले यह बात भूल गए कि अगर जननी ही

जन्म नहीं लेगी तो मानव-समाज कहाँ से पैदा होगा–

यदि सब भावी जननियाँ, जन्म न लेंगी आज,
कल को होगा लुप्त यह सुंदर मनुज समाज। [7]

अब तो लगता है कि पुरुष-प्रधान समाज नारी से कुछ ज़्यादा ही भय खाने लगा है, क्योंकि पहले तो यह इसको सती-प्रथा से मारता था, किंतु कुछ महान् व्यक्तियों के संघर्ष से जब यह प्रथा बंद हुई तो इसने दहेज़ के लालची दानव का रूप धारण कर इसको ख़त्म करना आरंभ कर दिया लेकिन आज जब नारी ने अच्छी शिक्षा, उच्च पद व हर प्रकार के क्षेत्र में क़दम आगे बढ़ाकर इसे मात देनी शुरू कर दी तो अब इसने उसे गर्भ में ही ख़त्म करना प्रारंभ कर दिया, जो इस प्रणाली पर चल रहा है कि 'ना रहेगा बाँस, ना बजेगी बाँसुरी'। ऐसे दृष्टिकोण से ग्रस्त व्यक्तियों पर कटाक्ष करते हुए डॉ बलजीत सिंह जी कहते हैं कि–

अब नारी से हो गया, पुरुष बहुत भयभीत,
वध कर उसका भ्रूण में, मना रहा है जीत। [8]

लेकिन उस जीत मनाने वाले दंभी व डरे हुए पुरुष को यह नहीं मालूम कि आने वाले समय के लिए वह अपनी क़ब्र स्वयं ही तैयार कर रहा है, क्योंकि जो दूसरों के लिए गड्ढा खोदते हैं, वे उसमें स्वयं ही गिर जाते हैं।

आज व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए स्वयं ख़तरा बना हुआ है, क्योंकि हर समय जो पुत्र-प्राप्ति की चाह उसके मन में लगी रहती है, वह उसका मर्म समझ नहीं पाता, लेकिन अपनी भावी पीढ़ियों के लिए वह दागदार इंसान साबित होगा। प्रकृति का अपना एक नियम होता है, जिसके द्वारा वह इस सृष्टि का संचालन करती है और उसमें संतुलन बनाए रखती है, लेकिन मनुष्य ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उस नियम के साथ खिलवाड़ करना शुरू कर दिया है। भगवान जो इतने बड़े संसार का रचयिता है, उसने कुछ सोच-समझकर ही लड़के-लड़कियों का निर्माण किया होगा, यदि लड़कियों की सृष्टि-निर्माण में कोई आवश्यकता नहीं होती तो भगवान भी इसे पैदा ही न करता लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर का नियम तोड़ना आज के मनुष्य की नियति बन चुकी है। वह यह भूल गया है कि जो नारी आज उसके लिए हर क्षेत्र में वरदानस्वरूप कार्य कर रही है, वह एक दिन जब नहीं रहेगी तो यह जीवन एक शाप की तरह हो जाएगा–

प्रकृति देवि को मत सता, रे मानव नादान।
बन जाएगी शाप वह, जो है अब वरदान। [9]

वे मनुष्य, जो कन्या भ्रूणहत्या करके इस संसार के शत्रु बने हुए हैं, एक दिन ऐसा आएगा कि ये कड़वी सच्चाई उनके सामने आएगी और उस समय हाथ मलने के सिवा उनके पास कोई चारा नहीं होगा।

ऋग्वेद में लिखा है : जीवेम्: शरद: शतम्। हम सौ वर्ष तक स्वयं जीने की कामना करते हैं, परंतु कन्या को गर्भ में ही नष्ट कर देते हैं, फिर कैसे सुनेगा परमात्मा हमारी सौ वर्ष तक जीने की प्रार्थना को। आज कन्या भ्रूणहत्या के कारण लड़कियों की संख्या में इतनी कमी आ गई है कि गाँव हो या शहर हर जगह आपको कुँवारे लड़कों की लाइनें लगी हुई मिलेंगी और यदि यह समस्या इसी तरह बढ़ती रही तो दहेज़ लेना तो दूर, पैसे देकर भी विवाह नहीं

होगा।

भ्रूणहत्या की बराबर की दोषी कुछ हद तक नारी-जाति भी है, जो अपने पति, सास व अन्य उसके पारिवारिक सदस्य का दबाव मानकर यह जघन्य कृत्य करने के लिए तैयार हो जाती है। वह अपने ही हाथों अपना और मानवता का भविष्य नष्ट करने पर तुली हुई है, उसे मालूम होना चाहिए कि–

भ्रूण गर्भ में चीखता, कोई न सुने पुकार।
कैसा होगा सोचिए, बेटी बिन संसार। [10]

एक बेटी की पुकार अपनी माँ से कहती है कि–

मनैं दुनियां देखण दे री क्यूं, बिना खोट मरवावै सै।
माँ मेरी तैं रहाण दे क्यूं, गर्भ बीच मरवावै सै।
तेरी कोख नै मिली बधाई, तू बहोत घणी हर्षाई थी।
फेर गर्भ की जाँच कराई, पता चल्या मुरझाई थी।
के बिना बुलाई आई थी जो, इब तू पिंड छुड़ावै सै।
माँ मेरी तू ...।

रूखी-सूखी खा ल्यूंगी, हर काम मैं हाथ बंटा ल्यूंगी
तेरे सारे कहण पुगा ल्यूंगी, सब तरियां मन समझा ल्यूंगी।
मैं तो आपै गला दबा ल्यूंगी माँ, तूं क्यूं पाप कमावै सै।
माँ मेरी तू ...।

जै बणी गर्भ में चिता मेरी यमराज करै ना तनै बरी
बता कुणसी गलती मनैं करी, जो खड़े चौगरदे लिएं छुरी
या जन्म देण की कोख तेरी, क्यों मरघट इनै बणावै से।
माँ मेरी तू ...।

जन्म देण की हो सै माँ और कष्ट खेण की हो सै माँ।
ममता की मूरत हो से माँ, भगवान की सूरत हो सै माँ।
यो देव रूप नै खोके माँ, क्यूं माँ का मान घटावै सै।
माँ मेरी तू ...।

हमारे देश में कुछ राज्य ऐसे भी हैं, जहाँ पर 2001 से 2007 तक एक भी कन्या भ्रूणहत्या नहीं हुई, ये राज्य हैं– मेघालय, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर लेकिन बाक़ी राज्य इस कमी को पूरा करते हुए दिखाई देते हैं। अब तक 20 करोड़ कन्या भ्रूणहत्याएँ हो चुकी हैं। [11] ऐसे आँकड़े जिन्हें देखकर व सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और हम भविष्य की कल्पना करके सिहर उठते हैं।

हमारे हरियाणा के बारे में यदि विचार किया जाए तो कुछ ज़िलों में 1991 से 2001 में लड़कियों की संख्या कुछ बढ़ी है, लेकिन कई ज़िले ऐसे भी हैं, जहाँ पर यह संख्या लगातार घटती जा रही है।

कैथल और करनाल दो ऐसे ज़िले हैं, जहाँ पर 1991 में जितनी संख्या लड़कियों की थी, उतनी ही 2001 में भी है। यानि–

	1991	2001
कैथल	853	853
करनाल	864	864
लेकिन जिनमें यह संख्या बढ़ी है, वे हैं–		
जींद	838	852
फतेहबाद	877	884
भिवानी	878	879
महेंद्रगढ़	910	918
गुड़गाँव	871	873
फरीदाबाद	828	839
लेकिन जिनमें यह संख्या घटी है–		
अंबाला	903	868
पानीपत	852	829
सोनीपत	840	839
सिरसा	885	882

हरियाणा प्रदेश में महेंद्रगढ़ ज़िले में सबसे ज़्यादा लड़कियाँ हैं, वहीं पर पंचकुला में सबसे कम लड़कियाँ हैं। महेंद्रगढ़ में लड़के-लड़कियों का अनुपात है 1000: 918 और पंचकूला में 1000: 823[12]

यदि हम निष्कर्ष निकालने का प्रयास करें तो हमें भारतीय संविधान का भी आश्रय लेना पड़ेगा, जो संक्षेपत: इस प्रकार है–

यदि कोई भी व्यक्ति कन्या भ्रूणहत्या का जघन्य अपराध करता हुआ पाया गया तो भारतीय दंड संहिता की धारा 313, 314, 315 के अनुसार उसे ग़ैरजमानती जेल की सज़ा हो सकती है। अगर इसमें औरत की सहमति नहीं है तो यह सज़ा आजीवन कारावास के तौर पर भुगतनी पड़ सकती है और यदि औरत की सहमति से यह काम करवाया जा रहा है तो यह सजा 10 साल तक होगी। यही क़ानून उस डॉक्टर पर भी लागू होगा, जो कन्या भ्रूणहत्या का काम करेगा।

लेकिन इस बारे में जब जींद के पटियाला चौक क्षेत्र में सर्वे किया गया तो लोगों के अलग विचार उभरकर सामने आए। जिनके पास पहले से ही तीन या चार लड़कियाँ हैं और जिन्हें पुत्र-प्राप्ति की इच्छा है तो वे लोग इसके पक्ष में खड़े हुए दिखाई दिए, क्योंकि उन लोगों के तर्क के अनुसार इतने बच्चों का वे पालन-पोषण नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी मानसिकता तो लगातार तीन चार बालिकाएँ उत्पन्न होने के पश्चात् पुत्र-प्राप्ति की ही होती है, जो कि उनके मन में बैठ चुकी हैं। कई स्त्रियाँ तो ऐसी भी मिलीं, जिनका कहना था कि सरकार को यदि लड़कियों की आवश्यकता है तो वे उसे अपनी बेटियाँ दे सकती हैं, लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे भी मिले, जिनका कहना था कि प्रथम बच्चे के समय जाँच नहीं करवानी चाहिए, लेकिन यदि

पहले से ही एक या दो बेटी हैं तो इसमें कोई हर्ज़ नहीं है। दूसरी तरफ़ लोग इस बात से भी परेशान हैं कि खुले-आम जब लिंग के बारे में बताया जाता था तो कम पैसे लगते थे, लेकिन अब चोरी-छिपे करवाने पर कई गुना पैसे लगते हैं। इस प्रकार यह धंधा अब भी उसी प्रकार फल-फूल रहा है जैसा कि पहले था।

संदर्भ

1. डॉ॰ बलजीत सिंह, शब्द-शब्द-संदेश, पृ॰ 77
2. Sonalda Desai's Report, from Internet.
3. डॉ॰ बलजीत सिंह, शब्द-शब्द-संदेश, पृ॰ 74
4. वही, पृ॰ 72
5. Female Foeticide in India – By Indu Grewal and J. Kishore, from Internet.
6. Female Foeticide in India/ International Humanist and Ethical Union, from Internet.
7. डॉ॰ बलजीत सिंह, शब्द-शब्द-संदेश, पृ॰ 19
8. वही, पृ॰ 18
9. डॉ॰ बलजीत सिंह, इंद्रधनुष के रंग, पृ॰ 18
10. महीपाल आर्य, जाट ज्योति 2009, पृ॰ 31
11. Unicef Report from Internet.
12. संजय कुमार, Know Your State Haryana-2008, पृ॰ 74

गढ़वाली लोकगाथाओं में पवाड़े

डॉ॰ वीरेंद्रसिंह बर्त्वाल

लोकगाथाएँ गढ़वाल के लोकसंगीत का सशक्त आधार हैं। यहाँ के लोकसंगीत में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये गाथाएँ इस देवभूमि के ऐतिहासिक, धार्मिक और राजनीतिक जनजीवन का प्रतिबिंबन करती हैं। आख्यानमूलक इन गाथाओं में लोक की भावनाएँ ध्वनित होती हैं। लुभावने संगीत और शब्दों के जादुई चमत्कार वाली इन गाथाओं में प्राचीन उत्तराखंड के हर्ष-विषाद, हास-परिहास, समृद्धि-दरिद्रता, वैभव, प्रेम-प्रसंग, करुणा, अनुराग और शौर्य-पराक्रम की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है।

लोकगाथा गीत की भांति वह लंबा-चौड़ा आख्यान है, जिसमें कल्पना के साथ ऐतिहासिक बिंदु भी होते हैं।[1] लोकगाथाएँ प्रबंधात्मक गीत हैं। इनमें गेयता के साथ कथानक की प्रधानता होती है। लोकगाथाएँ आकार में बड़ी और विस्तृत होती हैं। इनमें प्रेम का गहरा पुट, संघर्ष और अंत में प्रेम की जीत होती है। ऋग्वेद में अनेक मंत्रों में पद्य अथवा गीत के अर्थ में 'गामिन' शब्द का प्रयोग किया मिलता है। 'गामिन' शब्द एक विशिष्ट गाने वाले के अर्थ में किया गया है। 'गाथा' शब्द एक विशिष्ट विधा के लिए प्रयोग किया गया है।[2] लोक गाथा काव्यात्मक कथाख्यान है। लोकगीतों से भिन्न लोकगाथाओं में कथा तत्त्व अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है।[3] वर्ण्य विषय, कथानक आदि के आधार पर गढ़वाली लोकगाथाएँ मुख्यत: चार भागों में विभक्त की गई हैं [4]–1. जागर, 2. पवाड़े (वीरगाथाएँ), 3. प्रणयगाथाएँ, 4. चैतीगाथाएँ।

जागर गाथाएँ एक प्रकार से देवी-देवताओं की नत्यृमयी उपासना हैं। श्रीकृष्ण नागराजा आदि इनके वर्ण्य विषय हैं। पवाड़े प्राचीन गढ़वाल राज्य के वीर-योद्धाओं की वीरता के आख्यान हैं, प्रणयगाथाएँ प्राचीन गढ़वाल के क्षेत्र विशेष के प्रसिद्ध प्रेमी-प्रेमिकाओं की प्रेमगाथाएँ हैं तथा चैतीगाथाएँ चैत के महीने में ढोल वादकों द्वारा सवर्ण जाति के लोगों के गृहद्वारों पर गाई जानेवाली गाथाएँ हैं। विवाहिता का मातृगृह के प्रति प्रबल प्रेम और वहाँ जाने की प्रबल इच्छा आदि इनका कथानक हैं और ऐसी विवाहिताएँ इन गाथाओं के वर्ण्य विषय हैं।

पवाड़े : वीरगाथा के लिए उत्तराखंड में 'पवाड़ा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ये मध्यकाल की रचनाएँ हैं, जब गढ़वाल 52 गढ़ों में विभाजित था। इन गढ़ों में सामंत अपनी सत्ता की सुरक्षा और सत्ता विस्तार के लिए परस्पर संघर्ष करते थे। कभी-कभी यह संघर्ष भीषण बन जाता था और कई दिनों तक चलता था। इन युद्धों को लड़ने के लिए ये सामंत स्वयं तो वीर-भड़ होते ही थे, अन्य वीर-पराक्रमियों को भी जागीर अथवा वेतन देकर अपनी सेना में रखते थे। इन भड़ों में शूर-वीरता की प्रतिस्पर्धा रहती थी। संघर्षों के अवसरों पर इन्हें अपना रण-कौशल और

पराक्रम दिखाने का अवसर मिलता था। वीर पुरुषों को तब बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। इन योद्धाओं के साहस, कला, रण-कौशल, बल का वर्णन जिन गाथाओं में होता है, वे वीरगाथाएँ अथवा पवाड़े कहलाती हैं।

उत्तराखंड में 'पवाड़ा' सामान्यत: उन गेय आख्यानों को कहा जाता है, जिसमें नायक का शूरता-बल, पराक्रम, रण-कौशल का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है। इनमें सत्य का अंश विद्यमान रहता है।

'पवाड़ा' शब्द को मोहनलाल श्रीदेसाई ने प्रवाद (सूचना, किंवदंती, लोकोक्ति, लोक धारणा) से व्युत्पन्न माना है।[5] डॉ॰ सत्येंद्र ने 'परमारा' अथवा 'पंवारा' के शाब्दिक रूप के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि पवाड़े अथवा पंवारे प्रारंभ में पंवार क्षत्रियों की की वीरगाथाएँ रही होंगी।[6] मोहनलाल बाबुलकर ने उन लंबी-चौड़ी गाथाओं को पवाड़ा कहा है, जिनमें वीरों की शूरता का विवरण होता है। उनके अनुसार गढ़वाली बोली में पवाड़ा पद्य रूप में पाए जाने वाले स्थानीय शूरमाओं एवं वीरों तथा वीरांगनाओं के क्रियाकलापों के चरित्र हैं, जिसे हम गढ़वाल का लोक काव्य मानते है।[7] कई साहित्यकार पवाड़ों को शब्दिक आधार पर पंवार वंश से संबद्ध मानते हैं,किंतु कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। इनमें डॉ॰ गोविंद चातक प्रमुख है। उनके अनुसार वस्तुत: 'पवाड़ा' शब्द युद्ध-गीत अथवा वीरगाथा का ही पर्याय हैं और उसका पंवारों से संबंधित होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।[8]

वीरगाथाओं और प्रेमगाथाओं को गढ़वाली में पवाड़ा कहा जाता है। इनमे जहाँ इतिहास की रंग-बिरंगी झलकियाँ और कल्पना के इंद्रधनुषी ताने-बाने मिलते हैं, वहीं शब्दों के जादुई चमत्कार, उपमाओं का सुंदर सौष्ठव और शैली का अद्‌भुत रूप भी मिलता है।[9]

अत: कहा जा सकता है कि पवाड़े मध्यकाल के उन वीर-भड़ों के युद्ध आख्यान हैं, जो दूसरे गढ़पति को परास्त करने और राज्य को हथियाने के लिए हर समय तत्पर रहते थे। भड़ों की इन कथाओं में वीर रस का आधिक्य है। कल्पना और अतिश्योक्ति के ताने-बाने मे बुनी ये गाथाएँ आकार मे लंबी और ऐतिहासिकता के तत्त्व से युक्त हैं।

गढ़वाल में पवाड़ों का संबंध यथार्थ जीवन से होने के बाद भी इनमें अतिमानव और अतिप्राकृतिक तत्त्वों की भरमार है। इनमें देवी-देवताओं, अप्सराओं, पशुओं तथा विभिन्न क्रिया-कलापों के प्रति अप्राकृतिक धारणाएँ भी मिलती हैं। इन कई गाथाओं में पिता नपूता अथवा औता (संतानहीन) होता है और देवताओं के आशीर्वाद से उसे पुत्र की प्राप्ति होती है। 'जिस के पिता ने तलवारी मारी, उसका पुत्र भी तलवार मारेगा' जैसी उक्तियाँ युद्ध परंपरा और वीरत्व को विरासत में प्राप्त होने की बात को बल देती हैं। भड़ का रण में जाते समय यह कहना कि वीरों की मृत्यु शैय्या पर नहीं, अपितु रण क्षेत्र में होती है, दर्शाता है कि उस काल में वीरत्व को अत्यंत प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त था। पवाड़ों में एक विशेषता यह उभरी दिखती है कि मल्लयुद्ध में घायल अथवा मृत्यु होने पर वीर की पत्नी अथवा माँ को अनिष्ट की अशंका हो जाती है। रिखोला लोदी की माँ अमरावती को तब अनिष्ट की आशंका हो जाती है, जब लोदी दिल्ली से गंगोली भाले को लाते समय मूर्च्छित हो जाता है–

रिखोला घायल पड़ी गैगे चचमुंडो,
माँ अमरावती तै अशकुन ह्वैग्या।[10]

अनेक पवाड़ों में वीरों का किसी सुंदरी पर मोहित होकर उससे विवाह करने की ठान लेने का वृतांत मिलता है। कुछ नायक इस संकल्प में सफल हो जाते हैं तो कुछ विफल। इन सुंदरियों के नख-शिख वर्णन में शब्दों का जादुई चमत्कार है, भाषा आलंकारिक है। सुंदरियों की उपमा चंद्रमा, फ्यूंली के फूल (पहाड़ में उगने वाला पीला फूल), साँप की बच्ची, बुरांस के फूल (रक्तिम वर्ण का पहाड़ी जंगली पुष्प), दीपक की ज्योति, दही की परत, आदि से की गई है। अत्युक्ति इतनी है कि नायिकाओं के सौंदर्य में सूर्य का प्रकाश धूमिल और यमुना मैली प्रतीत होती है। गढ़ू सुमरियाल की गाथा में गढ़ू की मुरली पर मोहित होने वाली सुंदरी सरू कुमैण के सौंदर्य की तुलना पर्वतों में उगने वाले पुष्प से की गई है। उसकी बलशाली बाहें हैं। हाथों में छनकती चूड़ियाँ हैं। उसके कोमल पैर हैं और मधुर स्पर्श वाले हाथ। उसके रूप में रात की चंद्रमा भी मैली होती है। उस पर हाथ नहीं रखा जाता, वह ज़मीन में नहीं रखी जाती–

सरू कुमैण होली डांड्यों जसो फूल,
मरमरी बांही होली छमकदी चूड़ी,
रूबसी खुटी होली गौंछ्याली हाती,
वींका रूप मा मैली ह्वैली धुमैली रात की चाँदना,
स्या हात नी लियेंदी, भ्वां नी धरेंदी।[11]

उत्पत्ति : पवाड़ों की उत्पत्ति का निश्चित समय बतलाना कठिन है। विद्वानों ने अपने मतानुसार इनकी उत्पत्ति का अलग-अलग समय माना है।

नारायण वासुदेव ने पवाड़ों का रचना काल शिवाजी का समय बताया है। उनके अनुसार मराठी में पवाड़े शिवाजी के काल में रचे गए। नवीं शताब्दी में पवाड़ों की विशेष रूप से रचना हुई है।[12] गुजराती में 1414 ई॰ में रचित 'हंसा उलि' को प्रथम पवाड़ा माना गया है।[13] जैनाचार्य हीरानंद सूरि ने 1428 में रचित विद्याविलास चरित को पहली बार पवाड़ों की संज्ञा दी।[14] राजस्थानी में बाबूजी आदि के पवाड़े प्रसिद्ध हैं। इनका रचना काल 17वीं शताब्दी माना गया है।[15] पवाड़े मध्यकाल की रचनाएँ हैं। इस काल में गढ़वाल 52 गढ़ों में विभक्त था। इन गढ़ों में सामंत अपने सत्ता संघर्ष के लिए परस्पर लड़ते थे। उनमें रण कुशलता और शूर-वीरता की निरंतर होड़ लगी रहती थी।[16]

विद्वानों उक्त मतों के आधार पर कहा जाना चाहिए कि पवाड़ों का रचना काल 15वीं शताब्दी से भी पहले का है।

डॉ॰ रणवीर चौहान ने आठवीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक के काल को गढ़वाल में कत्यूरी राजाओं का शासन काल बताया है। उनके अनुसार आठवीं से 10वीं ई॰ तक का राज्य काल पूर्व कत्यूरी काल तथा 11वीं से 15वीं ई. तक उत्तर कत्यूरी काल रहा। इसी काल में अनेक भड़ हुए, जिनके कृतित्व का वर्णन हमें आज भी मिलता है।[17] इस आधार पर कहा जाना चाहिए कि गढ़वाली पवाड़ों की उत्पत्ति 14वीं से 15वीं शताब्दी के बीच हुई। यद्यपि इसका एक निश्चित समय निर्धारित करना कठिन कार्य है।

प्रमुख पवाड़े

कफू चौहान : यह पवाड़ा उप्पू गढ़ (टिहरी गढ़वाल के पुराने टिहरी नगर से लगभग

15 किमी॰ दूर उत्तरकाशी मार्ग पर) के गढ़पति कफू चौहान और उसकी माँ-पत्नी के आत्मसम्मान, स्वाभिमान, संकल्पबद्धता और शौर्य का परिचायक है। पवाड़े के कथानक के अनुसार 15वीं शताब्दी में गढ़वाल में पंवार वंश के शक्तिशाली राजा अजयपाल ने उप्पू के गढ़पति कफू चौहान को अधीनस्थ करना चाहा, किंतु कफू ने इसका प्रतिरोध करते हुए राजा को संदेश भिजवाया कि मैं पशुओं में शेर के समान और पक्षियों में बाज के समान स्वतंत्र हूँ। मैं पराधीनता से अच्छा मृत्यु समझता हूँ। मैं जीते जी तेरे आगे नहीं झुकूँगा। कफू की माँ और पत्नी ने भी उसे समझाया, किंतु वह नहीं माना। उसकी माँ ने देखा कि कफू राजा की सेना से संघर्ष करके ही रहेगा तो उसने प्रमुख सेनापति देबू से कहा कि यदि युद्ध में उप्पू गढ़ परास्त हो गया तो पहले हमें सूचना देना। हम भी जीते जी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे। अजयपाल उप्पू गढ़ नहीं, उसकी राख पर ही अधिकार कर पाएगा। श्रीनगर से राजा की सेना ने कफू पर चढ़ाई कर डाली। असंख्य शत्रुओं से कफू को घिरा देख प्रमुख सेनापति देबू ने कफू की माँ को सूचना दे दी कि गढ़पति शत्रु से घिर चुके हैं, अब क्षण भर में पराजय निश्चित है। इस बीच शत्रुओं को धकेलकर कफू अपने गढ़ की ओर मुड़ा तो उसने गढ़ से धुआँ उठता देखा। (बताते हैं कि उसकी माँ ने पूरे किले में आग लगा दी और वधू समेत भस्म हो गई) कफू आहत हो गया कि उसकी माँ ने उसकी वीरता पर विश्वास नहीं किया। विलाप करते कफू को अजयपाल के छिपे सैनिकों ने बंदी बना लिया। उसे श्रीनगर ले जाया गया। वहाँ उसे प्रजाजन के सम्मुख रखा गया। अजयपाल ने उससे कहा कि वह अभी भी अधीनता स्वीकार कर ले तो उसे छोड़ दिया जाएगा। कफू ने पुनः कहा कि मैं खोकर इन गढ़पतियों की तरह पराधीनता में जीने से मृत्यु को श्रेयष्कर समझता हूँ। अजयपाल इस प्रत्युत्तर पर क्रोधित हो गया। उसने एक सैनिक को आज्ञा दी कि कफू की गर्दन को इस तरह काटा जाए कि इसकी गर्दन मेरे चरणों पर गिरे। कफू ने झट से मुँह में कंकड़-बालू भर दी। जैसे ही तलवार उसकी गर्दन पर पड़ी, उसने सिर को ऐसा झटका दिया कि अजयपाल के आगे की अपेक्षा उसका सिर पीछे की ओर गिरा और मुँह में रखी कंकड़-बालू अजयपाल के मुँह में जा गिरी। अजयपाल भी उसके साहस और स्वाभिमान को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसने इस पर कहा था-वीर गया, परंतु उसकी वीरता शेष रह गई।[18]

माधोसिंह भंडारी : सोलहवीं शताब्दी में माधोसिंह भंडारी गढ़वाल के राजा महिपतशाह के काल में महान योद्धा रहा। इस काल में उसने वीरता ही नहीं दिखाई, जनकल्याण के लिए पुत्र की बलि देकर भी इतिहास सृजित किया। आज गढ़वाल में टिहरी गढ़वाल के मलेथा की कूल (नहर) और दीपावली माधोसिंह की स्मृति को यहाँ के लोक में जीवित कर देती है।

माधोसिंह के शौर्य-संबंधी पवाड़े के कथानक के अनुसार सोलहवीं शताब्दी में महिपतशाह ने उसे तिब्बती सेना पर आक्रमण का आदेश दिया था। माधोसिंह ने वीरों की सेना संगठित कर दाबा के नरेश पर चढ़ाई कर उसे परास्त कर दिया और उसे पुनः कर देने के लिए बाध्य किया। माधो ने उक्त नरेश से संधि कर दाबा और गढ़देश की सीमा पर मुनेरे (सीमा विभाजक चिह्न के रूप में छोटे चबूतरे) गाड़े। इस बीच माणा द्वार बर्फ़ से ढक गया। धीरे-धीरे बर्फ़ बढ़ती गई और वापस लौटने के मार्ग बंद हो गए। गढ़वाल की सेना किसी तरह कुमाऊँ

के दुशांत दानपुर क्षेत्र से कुमाऊँ पहुँची। कई महीने से गढ़वाली सेना के बारे में कोई सूचना नहीं मिल पाई। प्रतिद्वंद्वी सरदारों ने झूठी सूचना फैला दी कि माधोसिंह युद्ध में मारा गया। उधर, माधोसिंह अपने वीर साथयों के साथ कुमाऊँ राज्य में पहुँच गया। उसने साथियों को बताया कि उचे उच्छंदन गढ़ की राजकुमारी से प्रेम है, परंतु आज वहाँ किसी का विवाह हो रहा है। सभी साथी नर्तक मंडली का स्वाँग रचकर बारात में शामिल हो गए और नृत्य करने लगे। दुलहन उदीना भी इस तांदी नृत्य पर मोहित हो गई। माधो ने उदीना को पहचान लिया और उदीना ने माधो को। माधो ने एक हाथ से उदीना का हाथ पकड़ा और दूसरे हाथ में तलवार उठाई। कुछ ही समय के लिए युद्ध हो गया। सैनिक उदीना की पालकी को श्रीनगर ले आए। इधर, वीरों की माँएँ और अन्य संबंधी, ग्रामीण माधो और अन्य सैनिकों के न आने से दु:खी थे। दशहरे के बाद दीपावली भी आ गई, किंतु ये लौटकर नहीं आए। मार्गशीर्ष में माधो और साथी लौट आए। इस विजय समाचार पर समस्त गढ़वाल में उत्सव मनाया गया। इन लोगों के आने पर पुन: दीपावली मनाई गई। तब भी से यहाँ मार्गशीर्ष में एक दीपावली माधोसिंह की दिवाली के नाम से मनाई जाती है।[19]

माधो द्वारा पुत्र की बलि दिए जाने संबंधी एक गाथा[20] के अनुसार–माधोसिंह भंडारी को रुकमा नामक एक सुंदरी से प्रेम था, किंतु माधोसिंह के गाँव मलेथा में पानी न होने के कारण उसने माधोसिंह से विवाह करने के लिए मना कर दिया। इसलिए माधो ने डांगचौरा के निकट छोटी-सी नदी से एक पहाड़ी को काटकर गाँव तक नहर बना दी, किंतु उससे पानी नहीं गया। इससे चिंतित माधोसिंह के सपने में देवी ने कहा कि उसे नर बलि चाहिए, तभी पानी इस नहर से जा पाएगा। माधो ने नहर के उद्‌गम पर अपने पुत्र का गला काट दिया। आगे-आगे उसके पुत्र का सिर बहता गया और पीछे-पीछे पानी। इस पवाड़े में माधोसिंह के साहस का आकर्षक और अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है। उसे शेरनी का पुत्र, वीरों में वीर दर्शाया गया है–

खरी सेवा लांदू भड़ माधो त्वैक,
सिंहणी कू जायो माधो वीरू माँ कू वीर,
राजा राय सिंह रैंद होलो लगनपुर मांज,
राजा राय सिंह को पैदा होई माधोसिंह भड़। [21]

पाँच भाई कठैत : गढ़वाल के महाराजा दिलीपशाह की मृत्यु के बाद एक समय तक गढ़वाल राज्य में पाँच भाई कठैतों का भारी अत्याचार रहा। इन्होंने प्रजा का जीवनयापन करना दूभर कर दिया। इन्होंने राज्य में धुरपला कर (प्रति मुंडेर पर एक टैक्स), स्यूंदी सुपा कर (प्रति माँग और सूप पर कर), गाड तर कर (नदी पार करने पर कर), हल कर जैसे दर्जनों कर लगा कर भारी लूट मचा दी। स्यूंदी सुपा कर न दे सकने पर सात भाई एक ही पत्नी रखने लगे और हल कर न दे सकने पर कई लोगों ने साझी खेती करनी आरंभ कर दी। तबके करों के दुष्प्रभाव और प्रजा की दीन-हीन दशा यूँ व्यक्त हुई है–

गढ़वाल रैयत प्रजा हाय भाई दीणे मचाई,
सात भाइयों की एक जनाने स्युपा सुपा की डैर,
सात भाइयों को एक हल बैल हलकरा की डैर,
सात भाइयों को एक ही चुलो चुला कर की डैर। [22]

दिलीपशाह की रानी के मायके से आए इन पाँच भाई कठैतों-भगोतसिंह, रामसिंह, उदेसिंह, सबलसिंह और सुमनसिंह के अत्याचारों को आज भी गढ़वाल में 'कठैतगर्दी' के नाम से जाना जाता है। महाराजा दिलीपशाह की मृत्यु के समय उनकी पत्नी गर्भवती थी। अत: पुरिया नैथानी ने राजा के छोटे भाई उपेंद्रशाह को शासनाधिकारी नियुक्त किया। तय हुआ कि रानी की पुत्री हुई तो उपेंद्र शाह ही राजा रहेंगे और पुत्र हुआ तो वह राजगद्दी सँभालेगा। पुत्र होने पर उसका राजतिलक कर दिया गया। इधर, कठैतों के अन्याय-अत्याचार की पराकाष्ठा हो गई थी। वे इस शिशु की हत्या कर स्वयं राज करना चाहते थे। उन्होंने राज्य के वफादार शंकर डोभाल को मारकर उसका शव पुरिया नैथानी के पास भिजवा दिया। उन्होंने गजेसिंह को भी अपने मार्ग का कांटा समझते हुए उसकी हत्या कर दी थी। जब इनके पाप का घड़ा भर गया तो राज्य कर्मचारियों ने राजमाता से इसकी शिकायत की। राज माता ने गजेसिंह के हत्यारे को प्राणदंड की आज्ञा दी। श्रीनगर के अत्याचार और गजे सिंह की मृत्यु के प्रति आक्रोशित जनता राजधानी में एकत्र हो गई। घमासान युद्ध हुआ। कई कठैत मारे गए। कठैत संघ दशोली की ओर गया। मदनसिंह भंडारी और भीमसिंह बर्त्वाल ने सेना सहित उनका पीछा किया। रुद्रप्रयाग के निकट पाँचों भाई कठैत मार लिए गए। यह स्थान अब पंचभैया खाल के नाम से प्रसिद्ध है। इस पवाड़े के कुछ प्रमुख अंश-

औंलू को अचार,
राणी राज होए कठैत मैत्यों की होये बार।
गुलैर की गारी,
माधोसिंह कठैत कदो कोंर की हेर्वालचारी।
ग्वैन मा की गैन,
हेर्वालचारी क्या मिले तौंन सब कर लगैन।
गजकरो, मुंडकरो, चुल्लकरो स्यूंदी सुप्पो,
जंदेऊ करो कना कना कर लगैन।

❐

रीटि जालो बाज,

माधोसिंह कठैत बोद-खड़कसिंह, मेलसिंह, जसो सिंह, भगतसिंह भायों एक मन करा एक काज।

❐

तब राणी बोदी हे मेरा वजीर अब क्या होलो।
बंदूकी को नेजा,
एक कागली लेखी लोबा बधाण भेजा।

❐

काटी त घास,
तुम जावा मेरा मालू कठैतू का पास।
बाखरी का गौणा,
तुमन मेरा माल कठैत मारीक लौणा।

लगाई त जाली,
तौं बधाण्योंन पाँच भाई कठैत घेरियाली।
थकुला की थरी,
पां भाई कठैतून अपणू परिवार खतम करी।
गाड़ी त पेंच,
तब भागीन कठैत सिरनगर का ऐंच।
ग्वैरू मा की ग्वैन,
पाँच भाई कठैत वख मार्‌या गैन।
बजाई त चाल,
पाँच भाई कठैत मरीन पंचभैया खाल।[23]

इस एक ही पवाड़े के पात्रों-पाँच भाई कठैतों के नामों को लेकर विद्वानों-गाथाकारों में मतभेद भी है। डॉ॰ रणवीर चौहान ने 'उत्तराखंड के वीर भड़' में इन कठैत भाइयों के नाम भगोतसिंह, रामसिंह, उदेसिंह, सबलसिंह और सुमनसिंह बताए हैं, जबकि डॉ॰ गोविंद चातक ने 'गढ़वाली लोक गाथाएँ' में इनके नाम माधोसिंह, खड़कसिंह, मेलसिंह, जसो सिंह, भगतसिंह बताए।

तीलू रौतेली : अदम्य साहस, शौर्य के कारण गढ़वाल की वीरांगना तीलू रौतेली को यहाँ झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई का स्थान प्राप्त है। वह पहाड़ की साहसी नारी के लिए प्रेरणा स्रोत है। तीलू के पवाड़े के कथानक के अनुसार कत्यूरी राजा अपने अंतिम दिनों में बड़े अत्याचारी हो गए थे। उन्हीं दिनों उन्होंने अपने हमले गढ़वाल की गढ़ियों पर करने आरंभ कर दिए थे। इस बीच गोरख्याणी भी आरंभ हो गई थी। गुजड़ू गढ़ी का सरदार पृथ्वी रावत उसके दो पुत्र, भाई, भतीजे सब युद्ध में मारे गए। शेष रह गई थी उसकी बेटी तीलू। तीलू ने भी स्वयं युद्ध का बाना पहना और मैदान में आ गई और अंततः अपने अप्रतिम शौर्य के कारण विजयी हुई, किंतु कत्यूरी घायल सिपाही ने उसे छिपकर मार डाला। आज भी उसकी स्मृति में हर छठे या बारहवें वर्ष खाटली में लोक तीलू की चिता सजाते हैं, गाजे-बाजे के साथ उस स्थल पर पहुँचते हैं और दाह संस्कार करते हैं।[24]

डॉ॰ चौहान ने वीरबाला तीलू रौतेली स्मारक समिति के हवाले से उसका समय 1663 से 1683 तक के मध्य का बताया है। तीलू ने अपने पिता भूप सिंह गोर्ला व दो भाइयों भगत-पत्वा के कत्यूरियों से हुए बलिदान से छूटे अधूरे कार्यों को पूरा करने का संकल्प लेकर चार वर्ष तक घोर युद्ध किया तथा अनेकों विजय प्राप्त कर कांडा के निकट नयार में स्नान करते समय राजू रजवार के धोखे से हुए आक्रमण में वीरगति को प्राप्त हुई थी। (गढ़ गौरव 15 जून, 1983)[25]। तीलू के पवाड़े का एक अंश–

ओ कांडा को कौथीग उर्‌यो,
ओ तीलू कौतिक बोला,
धका धैं धैं तिलू धका धैं धैं,
द्वी वीर मेरा रणशूर ह्वैन,
भगतू पत्वा को बदलो लेक कौतिक खेलला,

धका धैं धैं तीलू रौतेली धका धैं धैं,
अहो रणशूर बाजा बजीगैन रौतेली धका धैं धैं।[26]

रिखोला लोदी : गढ़वाल के राजा मानशाह ने उत्तराखंड के तपोवन की बासमती को लेकर सिरमौर के राजा मौलिचंद के साथ हुए विवाद में माली जवाड़ी के भड़ भौसिंह को युद्ध के लिए तपोवन भेजा। उसने खूब मार-काट मचाई। सिरमौर का राजा और उसका त्यूणा नाई एक झाड़ी में छिप गए। शत्रुओं के मारने के बाद भौसिंह शेषधारा में स्नान करने के पश्चात पूजा करने लगा तो त्यूणा नाई ने घात लगाकर उसे मार दिया और उससे बदरीनाथ का निसाण (ध्वज) और कैलापीर का नगारा सिरमौर ले गया। इस पर राजा ने सभा बुलाई। उसमें मुसद्दियों ने कहा कि जिससे यह गलती हुई, उसीका पुत्र सजा भुगतेगा। अर्थात भौसिंह के पुत्र रिखोला लोदी को इन्हें लाने के लिए भेजा जाए। राजा ने उसे सिरमौर की गद्दी जीतने और दिल्ली का दरवाज़ा उठाकर लाने का आदेश दिया। बालक रिखोला लोदी ने सिरमौर जाकर भयंकर मार-काट मचाई और कैलापीर के नगारे और बदरीनाथ के निसाण को श्रीनगर भिजवा दिया। इस बीच उसे सिरमौर के राजा की पुत्री मंगला ज्योति से प्रेम हो गया और उसने उससे विवाह कर लिया। उसे दिल्ली का दरवाजा भी श्रीनगर पहुँचाना था। वह दिल्ली के फाटक को भी श्रीनगर ले गया। वहाँ मुसद्दियों को रिखोला की इस सफलता पर ईर्ष्या हुई। उन्होंने पूछा कि यह तूने कैसे उखाड़ा और कैसे इसे लाया है? रिखोला ने कहा कि मैंने गंगली भाले से यह दरवाजा उखाड़ा है। वह हमारी कुलदेवी का निसाण है। मुसद्दियों ने पूछा कि बता कहां वह भाला? पता चला कि भाला तो दिल्ली ही छूट गया। रिखोला उस भाले को दिल्ली लेने गया। वह उसे ला रहा था। मुसद्दियों के कहने पर काने तोपची ने रास्ते में बर्छी बिछा दीं। वह रिखोला के पैरों में चुभ गईं, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। रिखोला की पत्नी मंगला भी पति की चिता में भस्म होकर सती हो गई–

अहो सुबेर बेला की फूल पाती,
सांझ बेला की दीप बाती,
पौंछ्यान भूमि का भूमिया, कुल देवता,
कि दैणी ह्वै जाया देवी सरसुती।

❐

तब राजान खबर पौंछ्यैइले माली जवाड़ी,
तख रंद होलो भौसिंह नामी भड़,

❐

राजा मानशाहीन सुणाए परवानो,
आज बेटा त्वैन तपोवन जाण।

❐

वैन तख कोदो बूतणो कर्याले,
वैरी को बीज को निर्बीज कर दीने।

❐

नाईन स्यो भलो देख घत,
पिछाड़ी बिटीन दौ देखीक वो मारी दीने।

❐

रिखोला घायल पड़ी गैगे चचमुंडो

❐

रिखोलान माँ की गोद मा प्राण त्याग दिन्या,
तब मंगलान घाट पर चिता रंच्याले,
अर पति का साथ सती ह्वै गए। [27]

जीतू बगड्वाल : जीतू बगड्वाल का यह पवाड़ा वचनबद्धता (प्राण जाइ, पर वचन न जाई) को बल देता है। आछरियों (अप्सराएँ या एक प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ) द्वारा हर लेने पर वह उन्हें वचन देता है कि आज मुझे छोड़ दो, आषाढ़ के महीने की छह प्रविष्टे को धान रोपाई के दिन मेरा हरण कर लेना। आछरियाँ ऐसा ही करती हैं। जब जीतू हल चला रहा होता है तो आसमान से एक रथ आता है, अजीब-सी आवाज़ें आती हैं और जीतू बैलों की जोड़ी समेत खेत में समा जाता है। इस तरह वह वचनबद्धता के लिए लोक में उत्कृष्ट उदाहरण बन गया।

जीतू के पवाड़े के कथानक के अनुसार महाराज मानशाह के समय में जीतू बगड्वाल छोटे राज्य बगूड़ी का राजा था। पंवारवंशी जीतू मोटी बुद्धि का था। वह उन्मत्त और रसिक था। उसने कई कर लगाकर बगूड़ी में ख़ूब ऐश की। एक दिन श्रीनगर से राजा ने उसे बुलाने के लिए पत्र भेजा। जीतू की माँ सुमेरा ने वहाँ जाने से मना कर दिया। फिर भी जीतू राजा के पास चला गया। उसने राजा से बुलावे का कारण पूछा तो राजा ने कहा कि तुम्हे हमारा दीवान बनना है। जीतू ने इसका प्रतिरोध करते हुए कहा कि महाराज! ऐसे में तो मेरी बगूड़ी की भूमि बंजर हो जाएगी। मेरी माँ भी मेरे यहाँ आने के कारण रोती है, किंतु राजा की प्रबल इच्छा के आगे जीतू हार गया। वह राजमहल में ही रहने लगा। इस स्थिति में कई वर्ष बीत गए। वह परिजनों-संबंधियों को भूल गया। एक दिन अपनी बगूड़ी और मलारी की खेती के बंजर होने को लेकर चिंतित जीतू के छोटे भाई शोभनू जीतू को पत्र भेजता है। उसे पढ़कर जीतू राजा से घर जाने की अनुमति माँगता है कि मेरा मलारी का सेरा (सिंचित खेती) बंजर हो गया है, मुझे घर जाने की अनुमति दीजिए। बगूड़ी जाने पर वह शोभनू को ज्योतिष के पास धान रोपाई के शुभारंभ का मुहूर्त निकलवाने भेजता है। यह कार्य छह गते (प्रविष्टे) जीतू नहीं, बल्कि उसकी बहन शोभनी के हाथों होना निकलता है। जीतू शोभनी की ननद भरणा से प्रेम करता था। इसलिए वह प्रसन्न हो गया कि शोभनी को बुलाने के बहाने भरणा से भी मिलन हो जाएगा। वह शोभनी को लिवाने निकल पड़ता है। मार्ग में एक पेड़ की छाया में बैठकर वह भरी दोपहर में नौसुरों वाली मुरली बजाता है। इस मोहिनी धुन पर नौ बहन आछरियाँ उसे हरने दौड़ी आती हैं। वह कहता है कि तुम मेरी धर्म बहने हों, आज मुझे छोड़ दो। मैं धान रोपाई के शुभारंभ के लिए अपनी बहन बुलाने जा रहा हूँ। छह गते आषाढ़ को इस शुभारंभ अवसर पर जब मैं हल चला रहा हूँगा, तब तुम आकर मेरा हरण कर लेना। ये मेरे वचन हैं। इस पर आछरियाँ चली गईं। उक्त तिथि पर जीतू ने पाटा सँभाला, मुरली बजाई। जैसे ही वह पाटा को तीसरी बार ले गया, एक आसमानी रथ जैसा आया, बिजली जैसी चमकी, मधुमक्कियों की गुंजाहट सुनाई दी, पक्षियों के पंखों के फड़फड़ाने की जैसी ध्वनि हुई और जीतू इस आकस्मिक अपूर्व घटना के बीच हल एवं बैलों की जोड़ी समेत खेत में समा गया। खेत में पूरा परिवार विलाप करने लगा–

कि जिते सिंह होलो बगूड़ी को राजा,
छै जूला बगूड़ी छई नौ जूला मलारी।

❐

राजा भेजद कागूली तै बांकी बगूड़ी,
जितेसिंह तब कागूली बांचद।

❐

रौड़दो दौड़दो चलीगे सैणा सिनग्र
हमारा ऊपर राजा क्या लगे हुकम?
तू ह्वैजा जिते सिंह ड्योढी को दीवान।

❐

तब जिते सिंह रै गए राजों का दरबार,
बगूड़ी की भूलीगे खबर-सार।

❐

जदेऊ लगौंदू जदेऊ राजा मानशाई
मैं सणी देण घर जाण को हुकम।

❐

पैटीगे तब जीतू बैणी का गौं,
मन मा स्याली भरणा का सुरमुणा कर्द।

❐

तब चलदो चलदो पौंछीगे वो गजू की धूमकी,
पौंछी गै जीतू रैंथल की थाती।

❐

तब हात गाड्याले वैन नौसुर मुरली
नौसुर मुरली धवाड्या बांसुली।

❐

काणी आछरी स्या उन्मादी बणीगे,
वींका बोल्यान नौ बैणी आछरी,
पौंछी गैन जितेसिंह का पास।

❐

आज मैं जाण देवा बैणी बैदौण,
छै गते असाड़ तुम मलारी सेरा आन।

❐

छै गते असाड़ राजा पौंछीगे बल्दू लीक मलारी का सेरा,
मलारी का सेरा पौंछीगे सारी रैदल सैदल।

❐

जितेसिंह तब एका हात मैया लांद हैका मुरली बजांद,
मुरली की धुन पौंछीगे उचा खैट खाल,

नौ बैणी आछरी जागदी ह्वै गैन,
तौंकी खुटयों कनो लैगे पराज?

❐

अंगुडो छयो जीतू पछिंडो फरके,
स्यूं बल्दू की जोड़ी वो सेरा डूबीगे।[28]

जागर और पवाड़े

वर्ण्य विषय, गायन पद्धति और अनुष्ठान के आधार पर जागरों और पवाड़ों में पर्याप्त अंतर है। पवाड़ों के प्रस्तुतिकरण में अनुष्ठान नहीं के बराबर होता है। पवाड़ों के वर्ण्य विषय मध्यकालीन वीर-योद्धा और उनका कृतित्व होता है, जबकि जागरों के वर्ण्य विषय शास्त्रीय और स्थानीय देवता और उनका वैभव-चमत्कार होते हैं। पवाड़ा गायन और प्रस्तुतिकरण के पीछे मनोरंजन और इतिहास की जानकारी प्राप्त करना लक्ष्य होता है। वहीं, जागर गायन और प्रस्तुतिकरण का लक्ष्य देवता विशेष को नृत्यमयी उपासना के माध्यम से प्रसन्न करना होता है। अनेक पवाड़ों का गायन गढ़वाल के गाथाकार बाद्दी (अनुसूचित जाति के लोगों का एक समुदाय विशेष। इसमें पुरुष ढोलक बजाकर गाथाएँ गाता है और महिला गायन करते हुए नृत्य करती है।) भी करते आ रहे हैं। इधर, जागर गायन के लिए पहाड़ के वाद्य यंत्रों ढोल-दमाऊँ के साथ भंकोरों आदि का होना भी अनिवार्य है अथवा उन्हें घडियाला (कांस की थाली, डमरू का समन्वित संगीत) पर प्रस्तुत किया जाता है। पवाड़ा गायन के लिए अवसर, मुहूर्त, दिन-वार विशेष की आवश्यकता नहीं होती। वे कहीं भी, कभी भी गाए जा सकते हैं, जबकि जागर गायन के लिए विशेष मुहूर्त, दिन-वार की अनिवार्यता है।

उक्त आधार पर सिद्ध होता है कि गढ़वाली पवाड़े इतिहास के संवाहक होने के साथ ही प्राचीन भारतीय संस्कृति का भी प्रतिबिंबन करते हैं। इनमें प्रेम तत्त्व भी विद्यमान है, किंतु उसमें वासना का सर्वथा अभाव है। वीर रस के आधिक्य वाले इन पवाड़ों में करुण, रौद्र, वात्सल्य, शृंगार आदि रसों का भी अभाव नहीं है। इनमें शृंगार की संयोग और वियोग दोनों दशाओं की प्रभावी अभिव्यंजना है तो कला और भाव पक्ष का सुंदर समन्वय है, घटनाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रभावी है। मध्यकालीन जनजीवन को आख्यायित करती इन गाथाओं में तत्कालीन विवश नारी की भावनाएं ध्वनित हैं। आत्मसम्मान और स्वाभिमान को श्रेष्ठता प्रदान करती इन गाथाओं में मानव के स्वभावों-ईर्ष्या-षड्यंत्रों और छल-प्रपंच की राजनीति को प्रमुखता से उभारा गया है। 'प्राण जाइ पर वचन न जाई' की नीति को इनमें बल मिला है। पवाड़े के आरंभ और अंत में गाथाकार द्वारा समस्त संसार के प्राणियों-प्रकृति के कल्याण और समृद्धि की कामना किया जाना इनकी अद्वितीय विशेषता है। इनके गहन अध्ययन से तत्कालीन समाज के मनोविज्ञान को समझने में सहायता मिलती है।

संदर्भ

1. मोहन लाल बाबुलकर, गढ़वाली लोकसाहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ॰ 92
2. वही, हिम ओज अप्रैल-जून, 2003 पृ॰ 13
3. डॉ॰ हरिमोहन, शिवप्रसाद नैथानी, उत्तराखंड और उसकी संस्कृति, पृ॰ 179

4. डॉ॰ गोविंद चातक, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ॰ 243-244
5. अगरचंद नारटा, प्राचीनकाव्यों की रूप परंपरा, पृ॰ 96-97
6. डॉ॰ सत्येंद्र, ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ॰ 348
7. मोहनलाल बाबुलकर,गढ़वाली लोकसाहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ॰ 126
8. डॉ॰ गोविंद चातक, भारतीय लोकसंस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ॰ 268
9. डॉ॰ हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, पृ॰ 180
10. डॉ॰ गोविंद चातक, गढ़वाली लोक गाथाएँ, पृ॰ 324-325
11. वही, पृ॰ 306
12. नारायण वासुदेव गोडवाले, मराठी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 70-77
13. डॉ॰ गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ॰ 268
14. जयंत कृष्ण हरिदेव, गुजराती साहित्य का इतिहास, पृ॰ 30
15. अगर चंद नाहटा, प्राचीन काव्यों की रूप परंपरा पृ॰ 96-97
16. डॉ॰ गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ॰ 268
17. डॉ॰ रणवीर चौहान, उत्तराखंड के वीर भड़ पृ॰ 40-41
18. वही, पृ॰ 240-247
19. वही, पृ॰ 260-263
20. मयाली नैलचामी के गाथाकार शिवजनी की गाथा से प्राप्त
21. वही
22. डॉ॰ रणवीर चौहान, उत्तराखंड के वीर भड़ पृ॰ 272-273
23. डॉ॰ गोविंद चातक, गढ़वाली लोक गाथाएँ, पृ॰ 447-450
24. डॉ॰ गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, पृ॰ 285
25. डॉ॰ रणवीर चौहान,उत्तराखंड के वीर भड़, पृ॰ 227
26. डॉ॰ शिवानंद नौटियाल, गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत पृ॰ 96
27. डॉ॰ गोविंद चातक, गढ़वाली लोक गाथाएँ, पृ॰ 317-325
28. वही, पृ॰ 288-295

❐ वरिष्ठ उप संपादक
दैनिक जागरण
एच 301, **नेहरू कालोनी, धर्मपुर, देहरादून (उत्तराखंड)**
फ़ोन : 09411341443

नारी के विविध सामाजिक स्वरूप

डॉ॰ कामना कौशिक
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सी॰एम॰के॰ नेशनल स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, सिरसा (हरियाणा)

नारी का परंपरागत स्वरूप :

स्त्री की सबसे बड़ी विडंबना रही है कि उसे कब क्या करना है, यह सब पुरुष निर्धारित करता है। बाह्य रूप से देखने पर हमें यह अवश्य लगता है कि परंपरागत नारी सुरक्षित अधिक व आज़ाद कम थी। निश्चय ही नारी की स्थिति उलझी हुई रही है। नारी के परंपरागत स्वरूप के अवलोकन से पता चलता है कि वह पीड़ित (दुखी) रही है। वह अपनी बात को किसी से नहीं .कह पाती थी। 'वह कभी सिर्फ़ '... नीर भरी दुख की बदली' बनकर रह गई, तो कभी 'पिंजड़े के पंछी रे तेरा दर्द न जाने कोय...' गाकर रह गए लोग। अगर किसी ने इस पिंजड़े को तोड़ने का दुस्साहस किया तो वह या तो नफ़रत की पात्र बनी या पूजा की।' [1] नारी के जीवन में इतनी दख़लअंदाज़ी थी कि वह कुछ करने की चाह या किसी भी सपने को पूरा करने की सोच भी नहीं सकती थी। हालाँकि किसी ज़माने में औरतें स्वतंत्र भी रही होंगी। समाज के संचालन में भी उनकी अति महत्त्वपूर्ण भूमिका रही होगी। लेकिन परंपरागत रूप में हमें ऐसा कुछ बहुत कम, अपवाद स्वरूप ही देखने को मिलता है। इसीलिए परंपरा की बातें करते हुए भी उसी प्रथा की बातें कर रहे हैं, जो अधिकतर समाज ने अपनाईं। नारी की स्थिति में थोड़ा-बहुत बदलाव तो आता रहा, लेकिन ठोस बदलाव नहीं आया। नारियों के हिस्से घर-गृहस्थी व बच्चों का पूर्ण दायित्व बुनियादी रूप में आया। हर युग में मानव नारी को तो सीता-सी पवित्र देखना चाहता है, लेकिन स्वयं राम-सा मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं बनना चाहता। परंपरा में हमने सीता को अपना आदर्श माना। सीता से उसकी अग्नि-परीक्षा स्मरण हो आती है। वह ज़िंदा अग्नि में कूदकर अपनी पवित्रता का प्रमाण देती है। उसने हमेशा राम का अनुसरण किया। उसका स्वयं का तो कोई व्यक्तित्व था ही नहीं। हर युग में उसको इसी परीक्षा में ख़रा उतरने के लिए मजबूर होना पड़ता है। भले ही हम भूल जाते हैं कि सीता ने राम के साथ सभी चुनौतियों को स्वीकार किया था। अग्नि-परीक्षा के बावजूद राम ने उसे जंगल भिजवाया था। लेकिन इस पर सीता ने न तो आत्महत्या की और न ही भ्रूणहत्या की। ऐसे में उसने धैर्य से काम लिया और संघर्ष करती रही। सामान्य औरतों की भाँति सीता ने कार्य करते हुए अपने जीवन को आगे बढ़ाया। उसे अपने राजमहल को त्यागने का तनिक भी अफ़सोस न था। उसका केवल एक ही लक्ष्य था, बच्चे को जन्म देना। यह सब देखकर ऐसा लगता है कि परंपरा में स्त्रियों की सशक्त व चुनौतिपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन हमने उस वीरांगना, संघर्षशील सीता

को भुला दिया अगर उस बेज़ुबान, अस्वीकार्य, दुत्कारी सीता को याद रखा। 'स्नेहलता रेड्डी ने अपने नाटक 'दूसरी सीता' में दिखाया है कि सीता ने अग्नि-परीक्षा देने से इंकार कर दिया था। राम को अपने साथ-साथ अग्नि-परीक्षा देने के लिए ललकारा था। राम के तैयार न होने पर उसने स्वेच्छा से रावण के साथ जाना स्वीकार कर लिया था।' [2]

इस शक्तिशाली समाज ने जो मर्यादा स्त्री के लिए निर्धारित की है, वह परंपरागत नारी से निभाने की अपेक्षा की गई। नारी को परंपरा व सुरक्षा का नाम देकर उसकी आज़ादी पर लगाम लगा रखी है। परंपरा में हमें बताया गया है कि वंश लड़के से ही चलता है। परंपरा के अनुरूप स्त्री अपने तरीक़े से नहीं जी सकती। वह अपने मन को अच्छे लगने वाले वस्त्र नहीं पहन सकती। उसे अपने यौवन की आकांक्षा को स्वतंत्र तरीक़े से जीने व व्यक्त करने का मौक़ा नहीं है। वह अपनी पसंद का जीवनसाथी चुनने के लिए स्वतंत्र नहीं है। उन्से तो बस वही करना होगा, जो पुरुष-प्रधान समाज उसे इज़ाजत देगा। इन सबके ख़िलाफ़ जाना अपनी परंपरा व मर्यादा को ताड़ना व संस्कृति को ख़राब करना माना जाएगा। अपने मन से जीना पाप समझा गया है। एक तरफ़ तुलसी जैसे महान पुरुष ने नारी को ताड़ने का अधिकारी माना है, वहीं कबीर ने तो यहाँ तक कह दिया–

नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिनकी कौन गति, जो नित नारी के संग।

नारी को कभी बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा तो कभी अविद्या का अभिशाप मिला। नारी को हीनदृष्टि से देखा जाने लगा। उनको सती-प्रथा का शिकार होना पड़ा। पति की मृत्यु में उसका क्या दोष? फिर भी उसे जीवित चिता पर बिठाया जाता था। उसे सती के नाम पर ज़िंदा जलाया जाता था। धीरे-धीरे नारी को केवल भोग की वस्तु समझा जाने लगा। कवि अपने राजा को प्रसन्न करने के लिए नारी की अश्लीलता पर काव्य लिखने लगे। हालाँकि नारी समय-समय पर अपने अत्याचारों से दुखी होकर विरोध करना चाहती थी, लेकिन उन्हें वह वातावरण मिला ही नहीं। उन्हें चारदीवारी के अँधेरे में रखा जाने लगा। नारी चारों तरफ़ से शोषण का शिकार होने लगी। समय के साथ-साथ दहेज़-प्रथा, बलात्कार आदि बुराइयाँ भी नारी के साथ जोड़कर देखी जाने लगीं। देवी समझी जाने वाली स्त्री की इतनी बुरी हालत हुई कि वह स्वयं व पूरा समाज भी नहीं समझ पाया।

नारी का आधुनिक स्वरूप :

हमारी भारतीय संस्कृति में नारी को दुर्गा का रूप माना है, वहीं सदियों से इसे शोषित व पीड़ित भी रखा है। बहुत लंबे समय से नारी अपनी पीड़ा को अपने हृदय में दबाए हुए थी। आज शायद समय आ गया है कि वह अपने-आपको स्वतंत्र पाने लगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज उसके समक्ष अपने लक्ष्य, विचार व सपनों का क्षेत्र विस्तृत है। इन सबके बावजूद वह अन्याय व उपेक्षा की और अधिक शिकार हो रही है। उसके सामने अलग-अलग तरह की चुनौतियाँ आ रही हैं, साथ ही वह अपने ढंग से उनको हल भी कर रही है। आधुनिक जीवनशैली ने नारियों की आकांक्षाओं को न केवल बढ़ाया है, अपितु अपेक्षाएँ भी बढ़ा दी हैं। हम उसके माध्यम से भौतिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त करना चाहते हैं। यह स्थिति वास्तव में असमंजस की है। आज सामाजिक मूल्य, संस्कृति आदि किस ओर जा रहे हैं? नारी का

आधुनिक स्वरूप बाह्य रूप से थोड़ा अच्छा लग सकता है, लेकिन इस आधुनिकता की अंधी दौड़ में वह मानवीय मूल्यों को भुलाती जा रही है। वह विद्रोही हो गई है, अहंकारी हो गई है। वह आदमी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है। वह अपने स्वप्नों को पूरा करने हेतु सब-कुछ करने को तैयार है। आज बाज़ार ने औरतों पर जितने फ़ैसले सौंपे हैं, उतने शायद किसी ने नहीं। आज स्त्री आधुनिकता की आड़ में बाज़ारों के इशारों पर नाचने को मजबूर है। यथा—सौंदर्य-स्पर्धाओं के प्रति युवाओं का बढ़ता आकर्षण व उसके साथ ही छिड़ती है एक बहस। हम आधुनिकता को प्रगति का पर्याय मानने लगते हैं। आधुनिकता के संदर्भ में अमेरिका के व्हाइट हाउस की घटना का उदाहरण प्रस्तुत है—'तत्कालीन राष्ट्रपति बिल क्लिंटन और उसकी मातहत अंशकालीन कर्मचारी मोनिसा लेविंस्की के बीच यौन-संबंध बनाने और फिर एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने और स्वयं झूठ बोल-बोलकर एक-दूसरे को झूठा ठहराने की घटना की ओर मेरा इशारा है। ठीक है, चूँकि मोनिका भी बहुत दीन-हीन पृष्ठभूमि से नहीं आती है, इसलिए शायद पूरी तरह यह नहीं कह सकते कि वह मज़बूर थी। पर इतना तो स्पष्ट है ही कि अगर राष्ट्रपति भवन में नौकरी करनी है तो अपने से 'बड़ों' की हर माँग पूरा करे। हर तरह की सेवाएँ मुहैया करे। यौन सेवाएँ भी। औरत पहले भी सिर्फ़ शरीर थी, आज के आधुनिक दौर में भी वह शरीर ही है। पहले शरीर, बाद में कुछ और।' [3] आधुनिकता में बाहरी आडंबर जितने बनावटी हैं, उतनी ही बे-बुनियाद हैं। आधुनिक युग में भी औरत को संपूर्ण तब तक नहीं माना जाता, जब तक वह माँ न बन जाए। आज भी पुरुष-प्रधान समाज माँ न बनने पर औरत को ही ज़िम्मेवार मानते हैं। जबकि वे हक़ीक़त को जानते हुए भी अनजान बन जाते हैं। ऐसे में वैज्ञानिक क्रांति ने तो औरतों की मुश्किलें और भी बढ़ा दीं। 'कन्या भ्रूणहत्या' का ज्वलंत उदाहरण आपके समक्ष है। बड़े-से-बड़ा आदमी भी इस कुप्रथा में अपने-आपको बराबर का हक़दार पाता है। इस आधुनिकता के दौर में भी अधिकतर परिवार बेटी के जन्म पर ग़म ही मनाते हैं या फिर उसे पैदा ही नहीं होने देते। आधुनिक नारी इस आधुनिकता की चकाचौंध में अपने रिश्ते-नातों को उतना सम्मान व समय नहीं दे पाती। यदि वह नौकरी करती है तो वह चाहकर भी अपने बच्चों को वह उतना समय नहीं दे पाती, जो उसे देना चाहिए। अधिकतर पुरुष यही चाहते हैं कि आधुनिकता के इस दौर में नारी बाहर काम-काज यानी नौकरी भी करे तथा घर में परंपरावादी नारी भी बनी रहे। आज एक परंपरा चल पड़ी है कि नारी-उत्थान के लिए साहित्य लिखा जाए, रैलियाँ निकाली जाएँ। कहीं आज के दौर में वह अपने-आपको सबसे ऊपर पाती है तो कभी वह अपने-आपको पीड़ित, शोषित व असहाय पाती है। ध्यान से देखा जाए तो नारी की दुखों की कहानी समाप्त नहीं हुई है। महात्मा गांधी जी नारी के उत्थान व शिक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे। 'गांधी जी का पूरा विश्वास था कि पुरुष पाश्विक बल में भले ही स्त्री से अधिक बलवान हो किंतु आत्मिक बल में तो स्त्री ही पुरुष की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। मगर शर्त तो एक है कि स्थिति सुधारने के लिए उसे अपने अंदर छिपे हीन-भावों को दूर करना होगा। शारीरिक सौंदर्य नहीं आत्मिक सौंदर्य का विकास करना होगा। उसे अपनी स्थिति पहचाननी होगी।' [4] भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में अनेक स्त्रियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। उन्होंने उच्चकोटि की देशभक्ति, त्याग आदि का परिचय दिया। आधुनिककाल में भारतीय नारियों ने अपने सामाजिक व राजनीति अधिकारों के लिए जिस तरह संघर्ष किया, वह

मानवीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है।' भारतीय नारियों की जागृति की दिशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना भारतीय राजनीति में डॉ॰ ऐनी बेसेंट का प्रवेश था। सन् 1914 में उन्होंने मद्रास में 'भारत जागो' शीर्षक से एक भाषण दिया था, जिसमें भारतीय नारियों से अपनी दासता समाप्त करने, अपने अशिक्षा को समाप्त करने, बाल-विवाह न करने और निम्न जातियों को सम्मानित स्थान प्रदान करने की अपील की थी। इससे समस्त देश में उत्साह की नई लहर दौड़ गई' 5 मई 1917 में प्रथम महिला संघ की स्थापना हुई। गांधी जी ने पर्दा-प्रथा का बहुत विरोध किया और कहा–'परदा बहम ही नहीं है, उसमें मुझे पाप की बू आती है। परदा किससे रखें? क्या पुरुष-मात्र विषयासक्त रहते हैं? क्या स्त्री अपनी पवित्रता, बग़ैर पर्दा नहीं रख सकती है? पवित्रता मानसिक बात है, सभी पुरुषों में सहज होनी चाहिए। यदि इस बुद्धि-प्रधान युग में स्त्री धर्म की रक्षा करना चाहती है तो उसे दरिद्रनारायण की सेवा करनी होगी, शिक्षण लेना होगा। विद्या पाने का कार्य परदा रखने के साथ कभी नहीं चल सकता है। परदा रखकर सीता राम जी के साथ जंगलों में भटकी होंगी। सीता से बड़ी पवित्र स्त्री जगत में कभी हुई है? बहनों से कहो, परदा तोड़ो, धर्म रखो।' [6] राजा राममोहन राय ने सती-प्रथा व स्त्रियों के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही साथ स्वामी दयानंद जैसे महापुरुषों ने समय-समय पर स्त्रियों की दशा सुधारने में महती भूमिका निभाई। विभिन्न रैलियों व आक्रोश प्रदर्शन के माध्यम से स्त्रियों में जागृति आई। धीरे-धीरे वे अपनी स्वतंत्रता, अधिकारों के प्रति सचेत होने लगीं। निश्चय ही आधुनिक युग में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हो रहे हैं, लेकिन ये परिवर्तन पर्याप्त नहीं माने जा सकते हैं।

नारी का पारिवारिक स्वरूप :

निश्चय ही नारी अर्थात् मातृशक्ति किसी भी समाज का आधार है। उसके बिना जीवन संभव नहीं। माँ हमें केवल पालित-पोषित ही नहीं, वरन् हमें आगे बढ़ने के लिए भी प्रेरित करती है। परिवार में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी युग में नारी देवी का रूप रही है तो किसी युग में इसे मात्र भोग की वस्तु माना गया तो किसी युग में इसे धन को कमाने की मशीन। आज के युग में नारी औद्योगीकीकरण की वजह से नौकरी के पेशे में आ गई है। इससे उसकी स्वयं की स्थिति असमंजस में है। वह नौकरी करके अपने-आपको आत्मनिर्भर बनाना चाहती है। वह पुरुष का हाथ बँटाना चाहती है। ऐसे में पारिवारिक रिश्तों में खटास आना स्वाभाविक है। परिवार का प्रत्येक सदस्य उससे परंपरावादी महिला के सभी गुणों की अपेक्षा करता है। वह इन सभी कसौटियों पर अपने-आपको खरा नहीं पाती। कभी वह चाहकर भी बच्चों को समय व प्रेम नहीं दे पाती तो कभी जाने-अनजाने अपने पति को पर्याप्त समय नहीं दे पाती। कई बार तो वह जहाँ नौकरी कर रही है, वहाँ का तनाव घर में भी उसके चेहरे पर साफ़ देखा जा सकता है और कभी उसे अपने दफ़्तर में शोषण का शिकार होना पड़ता है। ऐसे में वह पशोपेश में रहती है कि कौनसा रास्ता चुना जाए। एक तरफ़ तो स्वतंत्रता, जीने का अपना ढंग आदि दूसरी तरफ़ वही परिवार और घर की चारदीवारी। अधिकतर नारियाँ अपने मूल्यों, आदर्शों से समझौता करके इसे आधुनिक जीवन-यापन का ढंग मानकर अपने कार्य में लगी रहती हैं। स्त्री का परिवार व नौकरी में समायोजन तो अपवादस्वरूप ही देखने को मिलता है। साथ ही जब नारी दफ़्तर आदि में काम करती है तो प्राय: वहाँ कोई-न-कोई एक साथी ढूँढ़ने की कोशिश रहती है। उससे

परिवार आदि के मामलों में भी बातचीत होनी प्रारंभ हो जाती है। संभवत: परिवार में नारी की स्थिति थोड़ी-सी विकट होगी, वह उस साथी के साथ अपना दुख बाँटने का प्रयास करती है। फिर परिवार में और भी अशांति पैदा हो जाती है। इस तरफ़ परिवार में अपने-अपने अहं टकराने प्रारंभ हो जाते हैं। प्राय: परिवार टूटने के कगार पर आ जाता है। दूसरी तरफ़ उस साथी का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण लगता है। ऐसे में फिर नारी के लिए विकट परिस्थिति होती है और ऐसे में ग़लत क़दम उठाने के लिए अधिक संभावना रहती है। शायद इसीलिए हमारी संस्कृति में औरत की नौकरी को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। परिवार के बाक़ी सदस्यों को ऐसा लगता है कि शायद हमें उतना समय, सम्मान व स्नेह नहीं मिल रहा, जितना मिलना चाहिए। ऐसे में अधिकतर देखने को मिलता है कि नारी में अहंकार की भावना भी आ जाती है। वह बात-बात में सोचने लगती है कि वह किसी से किस बात में कम है, वह सभी की क्यों सुने? वह सभी की मर्ज़ी के अनुसार क्यों चले? उसका स्वयं का भी कोई वजूद है कि नहीं? ऐसे में ग़लत फ़ैसला लिया जाता है। वह जो शांति, स्नेह व उन्नति चाहती है, उसे वास्तव में वह मिलता ही नहीं। मोहन राकेश जी के प्रसिद्ध नाटक 'आधे-अधूरे' में आधुनिक नारी का सही चित्रण किया गया है। नाटक की प्रमुख पात्रा सावित्री अपनी इच्छाओं व लालसाओं को पूर्ण करने हेतु नौकरी के दौरान अनेक पुरुषों से संबंध बनाती है, परंतु हर बार उसे आधा-अधूरा ही लगता है। यह स्वाभाविक ही है कि जब नारी अपने दफ़्तर के किसी पुरुष मित्र का वर्णन करती है तो पति के मन में संशय व संदेह तो अवश्य ही पैदा होगा। भले ही वह नारी साधारण-सी बात बता रही हो तो भी वह बात असाधारण ही लगेगी। क्योंकि यह मनुष्य की मनोवृत्ति होती है कि वह अपनी पत्नी के मुख से किसी पराए पुरुष की बातें सुनना पसंद नहीं करता। ऐसे में पति-पत्नी के संबंध में खटास आ जाती है। वे अपनी-अपनी मंज़िल अलग समझने लगते हैं। नारी इसी संशय और संदेह में पिसती रहती है। पुरुष भी उससे ज़्यादा अपेक्षाएँ रखता है, जिससे असंतुलन की स्थिति बन जाती है। जीवनरूपी गाड़ी को चलाने के लिए दो पहियों (स्त्री व पुरुष) के तालमेल की आवश्यकता होती है। कई बार नारी नौकरी की आड़ में नैतिकता से गिरती चली जाती है। इस प्रकार वह पारिवारिक दायित्व को निभाने में अपने-आपको असमर्थ पाती है। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई व अन्य कार्यों में माँ को जो समय देना चाहिए, वह नहीं दे पाती। उसे यह ग़लतफ़हमी हो जाती है कि पैसे से सब-कुछ ख़रीदा जा सकता है, यहाँ तक कि सुख भी। माता-पिता के उचित मार्गदर्शन के बिना उनके बच्चे भी कुमार्ग पर चलने लगते हैं। बच्चों के साथ-साथ वृद्ध माता-पिता को भी हीन दृष्टि से देखा जाता है। नौकरीपेशा अधिकतर महिलाएँ अपने वृद्ध माता-पिता को कोई सम्मान नहीं देतीं। वे उन्हें घर में अनावश्यक वस्तु समझती हैं। वे शायद भूल जाती हैं कि तुम्हें इस लायक़ बनाने में माता-पिता का कितना योगदान है। वैसे भी माता-पिता से बनाकर रखना आज सबसे बड़ी समस्या बन गई है। एक तो वैचारिक मतभेद, ऊपर से उम्र का फ़ासला आदि बिंदु उन्हें ऐसा होने ही नहीं देते। बूढ़े माँ-बाप को जिस सेवा की आवश्यकता है, क्या वह उन्हें मिल सकती है? निश्चय ही नहीं ...। भारत जैसे देश में वृद्ध आश्रम। आश्चर्य की बात है। इससे भी अधिक विश्वगुरु के लिए लज्जा की बात है कि बच्चे अपने माँ-बाप का ध्यान नहीं रख पाते। इसी कारण माँ-बाप वृद्धाश्रम में सहारा लेते हैं। जहाँ सारे विश्व को भारत नैतिकता का पाठ पढ़ाता

था, आज वही भारत नैतिकता निभाना भूल गया। एक बाप तो पाँच-पाँच बच्चों का पेट भर रहा है तथा ये इतने बेटे अपने माँ-बाप का पेट नहीं भर सकते। इससे और अधिक विडंबना और क्या हो सकती है? भारतीय संस्कृति में माँ-बाप को भगवान का दर्ज़ा दिया गया है। आज हम अपने भगवान को ही दो वक़्त की रोटी सम्मान से नहीं खिला सकते। फिर हम उन्नति व विकास के नाम पर क्या कर रहे हैं? अतः तत्कालीन स्थिति तो भयावह हो चुकी है। वह नारी पारिवारिक सामंजस्य बिठाने में अपने-आपको असमर्थ पा रही है।

संदर्भ

1. स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, राजकिशोर, पृ॰ 156-157
2. स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, राजकिशोर, पृ॰ 159
3. स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, राजकिशोर, पृ॰ 161-162
4. भारतीय नारी-अस्मिता की पहचान, उमा शुक्ल, पृ॰ 16-17

पंजाब के आधुनिक उपन्यासकार मोहन चोपड़ा के 'सुबह से पहले' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन

नवनीत कौर
हिंदी विभाग
गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)

उपन्यास साहित्य की लोकप्रिय विधा है। हिंदी में उपन्यास-साहित्य का इतिहास एक शताब्दी का इतिहास है। 'क्लेरा रीव' उपन्यास के बारे में लिखते हैं–

' The novel is a picture of a real life and manner of time in which it is written.'

स्पष्ट है कि उपन्यास वास्तविक जीवन का चित्र है। हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में पंजाब की देन हमेशा ही महत्त्वपूर्ण रही है। हिंदी-साहित्य की सभी विधाओं का आरंभ पंजाब की पवित्र भूमि में ही हुआ है और हिंदी-साहित्य के महत्त्वपूर्ण रचनाकारों का संबंध पंजाब की धरती से ही है। इसी तरह पंजाब के आधुनिक उपन्यासकारों में मोहन चोपड़ा का नाम आता है। पंजाब की धरती पर जन्म लेने वाले मोहन चोपड़ा के उपन्यासों का धरातल भी पंजाब की सरज़मी से संबंधित है। उपन्यासों का धरातल, कथानक, पात्र, घटनाएँ कहीं-न-कहीं पाठक को पंजाब की धरती से जोड़ ही देती हैं। मोहन चोपड़ा का जन्म गुरदासपुर (पंजाब) में 10 सितंबर 1921 को हुआ। शैशवकाल यहीं बीता, डलहौजी से आरंभिक शिक्षा प्राप्त की और बाद में हिसार से शिक्षा प्राप्त की और वहीं नौकरी भी की। अँग्रेज़ी में एम०ए० करने के साथ हिंदी-लेखन में रुचि थी, इसीलिए इतना साहित्य हमें प्रदान कर पाए।

'सुबह से पहले' उपन्यास 1969 में प्रकाशित हुआ। यह आज़ादी के संग्राम से जुड़ी कथा है, जिसके मुख्य पात्र रमेश्वर और सरसो हैं। रमेश्वर क्रांतिकारी युवक है तो सरसो काँग्रेस का समर्थन करनेवाली और अहिंसा में विश्वास करनेवाली स्त्री पात्र है। धार्मिक मान्यताओं, अंधविश्वासों, सामाजिक और आर्थिक असमानता की कुरीतियों से गुज़रते हुए रमेश्वर अंत में आज़ादी के लिए जेल जाता है और माता-पिता उसकी इस बहादुरी को तिलक लगाकर सम्मान देते हैं।

सुबह से पहले उपन्यास की कथ्य चेतना :

उपन्यास में कहानी और कथानक भोगी हुई सामग्री का अत्यंत बाह्य और स्थूल स्वरूप है। उपन्यास की कथ्य चेतना का निर्णय उपन्यासकार की स्वयं इच्छा पर निर्भर करता है। मोहन चोपड़ा मुख्यत: पंजाब से संबंधित हैं, इसीलिए उनके कथानक का क्षेत्र भी पंजाब

के प्रदेश ही हैं। उपन्यास की कथ्य चेतना को निम्नलिखित संदर्भों में देख सकते हैं–

दूसरे विश्व युद्ध का धरातल :

सुबह से पहले उपन्यास का धरातल दूसरे विश्व युद्ध का है। जर्मन फौजों के पैर उखड़ रहे थे। पूरा विश्वयुद्ध के प्रकोप से नीचे था। जिस समय विश्वयुद्ध चल रहा था, तब भारत पर अँग्रेज़ी हुकूमत का झंडा झूल रहा था और लोग आज़ादी की जद्दोजहद में व्यस्त थे। मोहन चोपड़ा के उपन्यास के पात्र भी आज़ादी के संग्राम में व्यस्त हैं।

अँग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीय संघर्ष और महंतो का सामाजिक प्रभाव :

इस उपन्यास में आज़ादी के प्रति भारतीय संघर्ष की भावनाओं को व्यक्त किया गया है। लेखक ने जनता के निकट की भावनाओं को लेकर घटनाएँ तैयार की हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र आज़ादी का कोई चर्चित नेता नहीं है बल्कि समाज के उस वर्ग का हिस्सा है, जिसे हम आम आदमी कहते हैं। मोहन चोपड़ा के उपन्यास की विशेष बात यह है कि उन्होंने भारत के आम नागरिक को आज़ादी के प्रति जागरूक दिखाया है। जहाँ मोहन चोपड़ा ने देश-प्रेमियों की बात की वहीं अपने निजी स्वार्थ के लिए अँग्रेज़ों के प्रति वफ़ादार बने महंतो का भी वर्णन किया है। उनके सामाजिक प्रभाव की बात भी की गई है। धार्मिक स्तर से वह ऊँचा स्थान रखते हैं। लोग अपने धार्मिक कर्मकांड उनसे पूछकर करते हैं।

धार्मिकता का भाव :

उपन्यास के कथानक में धर्म भी कहीं-न-कहीं विशेष स्थान रखता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक प्रवृत्ति का होने के साथ-साथ धर्म के अनुरूप ही समस्त सामाजिक और धार्मिक कार्य करने को महत्त्व भी देता है। रमेश्वर की माता सत्संग आदि में जाती है। दिनों, त्योहारों को मानती है। कहानी में मुख्य पात्र रमेश्वर और उसकी प्रेमिका सरसो धर्म में अंधविश्वासी होने की प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं करते। महंतो को समाज में धर्म की ठेकेदारी दी गई है। वहीं रमेश्वर और सरसो धर्म की पौराणिकता को त्यागकर विवाह करते हैं। रमेश्वर को स्कूल में नौकरी तो मिलती है, पर उसके अधार्मिक होने की प्रवृत्ति रास्ते में आ रही है। वह कहता है–

'स्कूल का हैडमास्टर क्या और मैनेजिंग कमेटी के मैंबर क्या, धर्म का पाखंड करने वाले आदमी हैं, वे चाहते हैं कि स्कूल का मास्टर चरित्रवान हो, यह ठीक है उन्हें ऐसा ही होना चाहिए, लेकिन उनकी नज़र में चरित्रवान होने का मतलब है सुबह-शाम मंदिर में जाकर घंटी बजाना, संस्कृत के दो-चार घिसे-पिटे श्लोक याद कर लेना और ऊँचे-ऊँचे शब्दों में धर्म और नैतिकता की बातें करना।' [2]

पारिवारिक सौहार्द :

उपन्यासकार ने अपने कथानक को प्रस्तुत करने के लिए एक पारिवारिक वातावरण का चुनाव किया है। परिवार का मुखिया किसी वकील के साथ मुंशीगिरी करता है और माता गृहस्थी सँभालती है। रमेश्वर पढ़ रहा है। परिवार के सभी सदस्य आपस में स्नेहपूर्ण रहते हैं। पिता को रमेश्वर की आज़ाद सोच से डर लगता है, जिसके कारण बाप-बेटे में खींचतान रहती है, लेकिन अंत में समाप्त हो जाती है। रमेश्वर और किशोरी का रिश्ता भी स्नेह और विश्वास

की कसौटी पर खरा उतरता है। रमेश्वर किशोरी से कहता है–

'तेरा चेहरा ऐसा है, जिस पर भरोसा किया जा सकता है और मैं कह सकता हूँ कि तू मेरे प्रति कभी विश्वासघात नहीं करेगा।' [3]

सुबह से पहले उपन्यास का सामाजिक यथार्थ :

'मनुष्य जीवन जीता है, अकेला नहीं दूसरों के साथ, कभी वह, दूसरों से सहयोग करता है तो कभी असहयोग।' [4]

उपन्यास का कथानक समाज से संबंधित होता है। उपन्यास जितना अधिक यथार्थ के निकट हो, उतना ही वह अपनी सफलता के निकट हो जाता है। उपन्यास का कथानक, घटनाएँ, पात्र सभी समाज से ही लिए जाते हैं। सुबह से पहले उपन्यास में भी मोहन चोपड़ा ने उस समय की सामाजिक स्थिति को बख़ूबी प्रस्तुत किया है।

महंतो की अँग्रेज़ों के प्रति वफ़ादारी :

यथार्थ का संबंध हमेशा सच्चाई के साथ जुड़ा रहता है। समाज में जो घटित होता है, जो समाज का वास्तविक चित्र है, उसे उपन्यासकार जनता के समक्ष लेकर आता है। प्रस्तुत उपन्यास में यहाँ एक वर्ग ऐसा है, जो देश के लिए अपनी जान तक क़ुर्बान करने के लिए तैयार रहता है तो दूसरा वर्ग वह है, जो अपने देश के प्रति वफ़ादारी नहीं करता और यह वर्ग महंतो का है। महंतो की उस समय अँग्रेज़ों के प्रति वफ़ादारी मोहन चोपड़ा के उपन्यास के कथानक को गुरुदासपुर के महंतो के धरातल के साथ जोड़ती है, जो किसी समय वहाँ अपना विशेष दबाव रखते थे।

धार्मिक अंधविश्वास :

धार्मिकता व्यक्ति के जीवन में कूट-कूटकर भरी है और धार्मिकता में, व्यक्ति अंधविश्वास की और जाने लगे, यह स्वाभाविक है। रमेश्वर की माता धार्मिक प्रवृत्ति की और अंधविश्वासी है। वह अपनी मन्नत के लिए रेशमा माई की मजार पर दिया जलाती है और जब वह मन्नत माँगने लगती है तो उल्लू के बोलने की आवाज़ को अपशकुन मानती है।

अहिंसा की पराकाष्ठा :

आज़ादी की प्राप्ति के लिए प्रत्येक प्रकार के संघर्ष को अपनाया गया, युवकों ने जहाँ आज़ादी के लिए क्रांतिकारी पथ स्वीकार किया, वहीं गांधी के प्रभाव के अधीन लोगों ने अहिंसक मार्ग अपनाकर आज़ादी की लड़ाई लड़ी। रमेश्वर क्रांति में विश्वास रखता है, वहीं सरसो अहिंसा में। वह कहती है–

'गांधी बाबा ने हमारे अंदर इतना आत्मबल भर दिया है कि इसके आगे हुकूमत ही बिल्कुल पेश नहीं जाती। मैंने खुद पुलिस के सिपाहियों को निहत्थे लोगों के सामने काँपते हुए देखा है। जबकि उन सिपाहियों के पास संगीन लगी बंदूकें थीं।' [5]

इस प्रकार गांधी जी के अहिंसा-आंदोलन का प्रभाव उस समय के समाज में स्पष्ट दिखाई देता है।

व्यक्ति स्तर पर सामाजिक परिवर्तन :

उपन्यास में जहाँ राजनीतिक क्रांति की बात की गई है, वहीं सामाजिक स्तर पर क्रांति

को भी उजागर किया गया है। सरसो विधवा है विधवा को समाज में उच्च स्थान प्राप्त नहीं था, फिर भी रमेश्वर समाज को एक तरफ़ कर उससे शादी करता है और उसके माता-पिता समाज की परवाह किए बिना उसे अपनी बहू स्वीकार करते हैं। यह सामाजिक स्तर पर आ रहे परिवर्तन की उदाहरण है कि लोग धर्म की आढ़ में छिपी हुई कुरीतियों को त्यागकर उसके सही अर्थों के अनुरूप अपना जीवन व्यतीत करने की ओर क़दम बढ़ा रहे हैं। सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत मोहन चोपड़ा ने बेरोज़गारी की समस्या को भी उठाया है। रमेश्वर पढ़ी-लिखी पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह पढ़ा-लिखा युवक बेरोज़गार है। युवा पीढ़ी की बेरोज़गारी के माध्यम से लेखक ने अँग्रेज़ी हुकूमत को भी नंगा किया है, जो दावा करती है कि वह भारत में एक अच्छे शासन को चला रही है। मोहन चोपड़ा के उपन्यास के सामाजिक यथार्थ को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने में पात्रों की विशेष भूमिका रही है। उपन्यासकार द्वारा रमेश्वर को क्रांतिकारी सोचवाला युवक प्रस्तुत किया है और सरसो जो रमेश्वर से प्रेम करती है, काँग्रेस की समर्थक है।

सुबह से पहले उपन्यास की गद्य भाषा की गुणवत्ता :

'किसी विशिष्ट स्थान और समय के व्यक्ति के यथार्थ अनुभवों और कार्यों का विश्वसनीय लेखा प्रस्तुत करना उपन्यास का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह ऐसी गद्य शैली का सहारा लेता है, जो पूर्ण प्रामाणिकता का भ्रम उत्पन्न करने में समर्थ होती है।' [6]

मोहन चोपड़ा पंजाब से संबंधित उपन्यासकार हैं। उनकी भाषा में पंजाब जैसी सरलता दिखाई देती है। सुबह से पहले में उपन्यासकार ने मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है। पंजाबी, अँग्रेज़ी, उर्दू के शब्दों का एक साथ प्रयोग करते हुए भी भाषा जनता के क़रीब की भाषा रही है। भाषा में जैलदार, दीदेखोर, मरजानिए, गिल्ली-डंडा, मैजिस्ट्रेट, हेयर कटर, साइंस, ईजन, खफगी, स्टेशन, तालीम याफ्ता आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

'उपन्यासकार ज्यों-ज्यों मन की गहराइयों में उतरता जाता है, त्यों-त्यों उसकी भाषा में व्यंजकता, काव्यात्मकता और प्रायः दुरूहता बढ़ती जाती है।' [7]

मोहन चोपड़ा की यह विशेषता रही है कि जैसे वह गइराइयों में उतरते गए, उनकी भाषा का संबंध जनता से निरंतर जुड़ा रहा है। उनकी भाषा मुहावरेदार है। इसके साथ शब्दों की पुनरावृत्ति भी दिखाई देती है।

निष्कर्ष :

मोहन चोपड़ा के उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह दिखाई देती है कि इनका कथानक जनता के क़रीब का है। उपन्यास की कहानी, पात्र, घटनाएँ, भाषा समाज के आम वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। कहानी मुख्यतः देश-प्रेम की भावना से प्रेरित है। क्रांति की भावना के साथ-साथ धार्मिक क्षेत्र में लोगों के अंधविश्वासों और मान्यताओं को भी प्रस्तुत किया गया है तथा समाज में पाई जाने वाली मान्यताओं पर व्यंग्य किया गया है। पारिवारिक प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम की भावना को भी लेखक द्वारा अंकित किया गया। अतः हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसा उपन्यास है, जो समाज में प्राप्त विभिन्न तथ्यों को व्यक्त करने में सफल रहा है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्यशास्त्र, कृष्णवल्लभ जोशी, पृ॰ 87
2. सुबह से पहले, मोहन चोपड़ा, पृ॰ 38
3. वही, पृ॰ 55
4. साहित्य विधाएँ, शशिभूषण सिंहल, पृ॰ 86
5. सुबह से पहले, मोहन चोपड़ा, पृ॰ 46
6. हिंदी कथासाहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव, गोपालराय, पृ॰ 208
7. हिंदी वाङ्मय, बीसवीं शती, डॉ॰ नगेंद्र, पृ॰ 228

❐ **पुत्री सरदार जगजीत सिंह**
मौ॰ नवा कटरा
पो॰ कलानौर (गुरदासपुर) 143512

सामाजिक क्रांति में हिंदी दलित उपन्यासों का योगदान

डॉ॰ भरत धोंडीराम सगरे

'परिवर्तन' प्रकृति का नियम रहा है। जड़ में परिवर्तन नहीं होता। समाज जड़ नहीं बल्कि उसमें प्रत्येक स्तर पर बदलाव होता है। यह बदलाव सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में दिखाई देता है। मानव-समाज विकासोन्मुखी रहा है। शोषण, अन्याय के ख़िलाफ़ विद्रोह करनेवाला मानव है। क्रांतिकारियों, समाजसुधारकों, दर्शनिकों के कारण क्रांतियाँ होती हैं। विश्व का इतिहास क्रांति का इतिहास है। रूसी क्रांति, फ्रेंच क्रांति, औद्योगिक क्रांति, हरित क्रांति, भारत का स्वतंत्रता-आंदोलन तथा समाज-व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए हो गई क्रांति सामाजिक क्रांति के प्रमाण हैं।

भारतीय समाज-व्यवस्था का एक अंग 'दलित' है। प्राचीनकाल से दलित-समाज शोषित और उपेक्षित रहा है। आज समाज-सुधारकों का कार्य, डॉ॰ बाबासाहब अंबेडकर जी के दर्शन, शिक्षा-प्रसार, दलित संघटना के कारण यह समाज सामाजिक क्रांति की ओर बढ़ रहा है। सामाजिक पुनरुत्थान और नई समाज-व्यवस्था निर्माण में योग देनेवाली यह क्रांति है। सामाजिक क्रांति में साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सामाजिक क्रांति में साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी-उपन्यासों में सामाजिक क्रांति के प्रचारक पात्रों का सृजन करके हिंदी-उपन्यासकारों ने अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं। लगता है, क़लम के रखवाले साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक क्रांति को बल दिया है। आज का दलित-साहित्य सामाजिक क्रांति का प्रेरणा-स्रोत है।

सामाजिक क्रांति में प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, दिवाकर, जयप्रकाश कर्दम, गिरिराजकिशोर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सुशीला टाकभौरे, गुरुदत्त, रांगेय राघव, महाश्वेता, शिवप्रसाद सिंह, हिमांशु जोशी आदि कई साहित्यकारों का एवं उनकी रचनाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक क्रांति में इनकी रचनाएँ अपना स्थान प्राप्त कर चुकी है। अत: स्पष्ट है कि सामाजिक क्रांति में हिंदी उपन्यासों एवं दलित उपन्यासों का विशेष योगदान रहा है।

सामाजिक क्रांति : स्वरूप :

'सामाजिक' शब्द मूलत: समाज से जुड़ा है, समाज से सामाजिक शब्द बना। समाज में होनेवाला बदलाव सामाजिकता एवं समाज-परिवर्तन का प्रमाण है। क़ानूनन परिवर्तन की माँग करनेवाली यह व्यवस्था है। वैचारिक धरातल पर समाज-हित एवं कल्याण के लिए किया गया संघर्ष ही क्रांति है। सामाजिक परिवर्तन अचानक होनेवाली प्रक्रिया नहीं है, बल्कि सैकड़ों वर्ष

तक व्यवस्था में होनेवाली हलचलें इसके मूल में होती हैं। यह सच है, 'क्रांति' सजीवता का प्रमाण और विकास का प्रतीक होती है। शोषण, अन्याय, अत्याचार, दमन, पीड़ा, दुख, दर्द जहाँ है, वहाँ क्रांति होती ही है।

विभिन्न कोशकारों ने गली, जाना, लाँघना, पूर्ण परिवर्तन, स्थिति में भारी उलट-फेर करना, राजव्यवस्था का उलट दिया जाना को क्रांति[1] कहा है। व्यवस्था में बहुत बड़े परिवर्तन को क्रांति[2] माना है। समाज-व्यवस्था में गति, पूर्ण परिवर्तन, सत्ता-परिवर्तन 'सामाजिक क्रांति' है। आज 'क्रांति' शब्द फ़ैशन बना है, उसकी मूल धारणा अस्पष्ट हो रही है।

अर्नोल्ड रोज़ के शब्दों में 'सामाजिक क्रांति से अभिप्राय किसी समाज में घटित होनेवाली आमूल-चूल तथा दूरगामी परिवर्तनों की शृंखला से है।'[3] बिल्वर्ट मूर कहते हैं–'सामाजिक ढाँचे में बड़े पैमाने पर होनेवाला परिवर्तन सामाजिक क्रांति है।'[4] संघटित रूप में समाज के कुछ सदस्यों द्वारा किया गया नया विचार या कार्य क्रांति है। क्रांति हिंसात्मक हो ऐसी धारणा नहीं है, बिना ख़ून बहाए होनेवाली वैचारिक क्रांति भी होती है।

किसी व्यवस्था में होनेवाला परिवर्तन 'क्रांति' है। समाज को नई दिशा देने का यह प्रसास होता है। ऐथोकेवैले का विचार है–यह जान-बूझकर संघटित रूप में किया गया प्रयास है, जो समाज के कुछ सदस्यों द्वारा किन्हीं नवीन विचारों के प्रतिमान को तेज़ी से ग्रहण करके ऐसी संस्कृति को स्थापित करने के रूप में किया जाता है, जो अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि प्रदान कर सके।'

सामाजिक क्रांति सामूहिक, संघटित, वैचारिक प्रक्रिया है। इसका लक्ष्य समाज-परिवर्तन, शोषण-व्यवस्था में आमूल-चूल बदलाव, समाजहित, शोषण-भयमुक्त समाज का निर्माण है। हिंसात्मक और अहिंसात्मक दोनों रूपों में क्रांति होती है, काफ़ी समय तक बिना रुके चलनेवाली यह प्रक्रिया है। विश्व का निर्माण, विकास ही 'क्रांति' का परिणाम है। सामाजिक क्रांति पुरोगामी, प्रगतिशील विचारों की वाहक होती है, जो सदा गतिशील रही है।

समाज के अनेक स्तरों, वर्णों में विभाजित होने से उनमें सदा संघर्ष होता रहा है, जिससे क्रांतियाँ जन्म लेती हैं। क्रांति विकास और प्रगति का प्रमाण है। सेल्जानिक मानते हैं 'सामाजिक क्रांति एक प्रकार से वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विद्यमान क़ानूनी व्यवस्था को पलट दिया जाता है।' यह परिवर्तन की सीधी माँग है, जो पूरी की जाती है। यह परिवर्तन लानेवाले 'कारक' क्रांतिकारक कहलाते हैं। सरकार, संचार-माध्यम, सुधारक, नेता, सामाजिक संघटन इसके प्रमाण हैं।

भारत देश की सामाजिक क्रांति में अँग्रेज़ी शासन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अँग्रेज़ी शिक्षा से नई ज्ञान क्रांति, उसमें औद्योगिक क्रांति, जिसमें वित्तीय, भौतिक क्रांति हो गई। मुद्रण क्रांति साम्यवादी-क्रांति की नींव रही। समाज-सुधारकों, दार्शनिकों ने जनक्रांति को बल दिया। मजदूर-क्रांति, नारी-क्रांति, धार्मिक क्रांति होती रही। परिणामत: सामाजिक क्रांति को बल मिला। सर्वहारा, शोषित, अपमानित, लांछित दलित, किसान, मजदूर, बंधुआ, नारी अपने अधिकार की रक्षा तथा माँग के लिए संघटित होने लगे। सामाजिक शोषण-व्यवस्था की नींव उखाड़ने लगे। झूठी धार्मिक मान्यता, शोषण, आर्थिक तत्त्व को ध्वस्त करके नई व्यवस्था का प्रारंभ इसी क्रांति ने किया। इसका प्रभाव दलित जीवन पर भी रहा। साहित्यकारों ने इस नई

व्यवस्था को चित्रित करके अपना समर्थन दे दिया।

रूसी-क्रांति, आज़ादी का आंदोलन, मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव, समाजवादी समाज-रचना का सपना, समाज-सुधारकों का कार्य, राजनीतिक परिस्थिति, प्रथम विश्वयुद्ध, नई एवं पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव एवं संघर्ष, नारी-शिक्षा, दलित संगठन, जातिविहिन समाज-व्यवस्था का निर्माण, समानता, सामाजिक न्याय आदि कई ऐसे कारण रहे, जिससे सामाजिक क्रांति को बल मिला। यह सच है आज़ादी के आंदोलन का एक अंग, तत्त्व यह 'क्रांति' रहा है। उस काल में प्रथम आज़ादी या समाज-सुधार यह विवाद का विषय था। नेताओं के दो दल भी थे। स्वतंत्रता-आंदोलन और सामाजिक क्रांति का परस्पर संबंध रहा है। दोनों परस्पर पूरक थे। दोनों की आवश्यकता अनिवार्यता थी। आज़ादी के पश्चात सामाजिक क्रांति ने जातीयता को मिटाना, सांप्रदायिकता को हटाना, भाई-भतीजावाद को निपटाना, दलितों में जागृति लाना, एकता बनाना आदि कार्य किया।

सामाजिक क्रांति में दलित-साहित्य की भूमिका :

क्रांति परिवर्तन का विकल्प, सामाजिक अंतराल-धरातल को हिलानेवाली चेतना है। मानव-समाज में विकास लाने के लिए क्रांति की अनिवार्यता है। रूढ़िबद्ध समाज को दिशा दिखाने का कार्य साहित्य करता है। भारतीय समाज-व्यवस्था जाति, धर्म पर टिकी है। गौतम बुद्ध, कबीर, नानक, रहीम, रैदास, भागवत संप्रदाय के संतों-भक्तों ने इस व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया। सामंतवाद, साम्राज्यवाद को ध्वस्त किया गया, परंतु सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करनेवाली जातिवादी व्यवस्था को नहीं। लगता है इसकी जड़ मजबूत रही है, इसलिए भारतीय समाज में एक व्यापक सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है। सामाजिक कुव्यवस्था को नकारने के लिए उच्चवर्णियों की विकृत, संकुचित मनोवृत्ति को फटकारने के लिए दलित क्रांति का होना ज़रूरी है।

दलित-साहित्य जातिविहीन समाज-व्यवस्था का निर्माण करना चाहता है। यह साहित्य मानवीय मूल्यों के प्रति सजग करता है। साथ-ही-साथ सजग, संपन्न, समाज-निर्माण में योग देता है। यह सच है छूआछूत, उच्चता और नीचता का भाव एकता में दरारें पैदा करता है। यह साहित्य वर्गभेद की जड़ मिटाने का प्रयास करता है। मानव के अधिकारों, हक़ों की रक्षा के लिए भरसक कोशिश करना चाहता है। दलित, शूद्र समाज-रचना का 'पैर' नहीं, मगर राष्ट्रनिर्माण की नींव एवं बुनियाद है। बाबा साहब के सपनों का समाज एवं राष्ट्र-निर्माण करने की ज़िम्मेदारी दलित साहित्यकारों पर है। यह साहित्य सामाजिक क्रांति की सीढ़ी है।

दलित-साहित्य सामाजिक विसंगतियों, विषमताओं को मिटाने का, बेज़ुबानों को ज़ुबान, घुटन से मुक्ति देने का कार्य करता है। यातना, शोषण, अन्याय से मुक्त समाज-व्यवस्था चाहनेवाला यह साहित्य है। डॉ॰ सोहनपाल सुमनाक्षर कहते हैं 'यह साहित्य व्यक्ति को भीरु, अकर्मण्य और धर्मांध के स्थान पर जुझारू, संघर्षशील और कर्त्तव्यशील बनाकर उनमें स्वाभिमान, आत्मगौरव जगाने का कार्य करता है।' [5] इसका केंद्र मानव है। दलित-साहित्यकार दया की भीख नहीं माँगता बल्कि अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है। मानव के समान जीने का अधिकार चाहता है। दलित-साहित्य उनकी आवाज़ रही है।

डॉ॰ बाबासाहब द्वारा किया गया कार्य सामाजिक क्रांति की मिसाल है। महाड

सत्याग्रह, कालाराम मंदिर प्रवेश, मनुस्मृति दहन, धर्मांतरण आदि के मूल में सामाजिक क्रांति का भाव है। अपने पैरों पर चलनेवाला, नए मूल्यों को स्वीकारनेवाला क्रांति का पथ प्रशस्त करनेवाला युवा दलित-साहित्य का केंद्र है। डॉ॰ बाबासाहब, महात्मा फुले, शाहू की मान्यताओं को चित्रित करनेवाला यह साहित्य सामाजिक क्रांति को बल देता है और दलित साहित्यकार इसी पथ का पथिक रहा है। साहित्य का प्रधान कार्य समाज में जागृति जगाना, नए विचारों और मूल्यों की स्थापना करना, अन्याय, अत्याचार, अपराध को मिटाना आदि है। दलित-साहित्य का भी यही 'प्राण' तत्त्व है। इसके लिए सामाजिक क्रांति का होना ज़रूरी है।

दलित-साहित्य में दलितों की स्थिति, उनका होनेवाला शोषण, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थिति, अज्ञान, अंधविश्वास का प्रभाव, नारी की दशा, उनकी समस्याएँ, युवा पीढ़ी की मानसिकता, सवर्णों की मनोवृत्ति, जमींदारों, अफ़सरों की शोषण-नीति, ग्रामीण दलितों की कमज़ोर मानसिकता, परंपरागत जीवनशैली आदि के साथ नए बदलते मूल्यों, उससे प्रभावित दलित, संघर्षरत दलित-समाज, अधिकार-संपन्न दलित युवा तथा नेता आदि का भी यथार्थ, वास्तविक अंकन हो रहा है। परंपरागत नए, ग्रामीण-नगरीय दोनों दलित वर्गों का चित्रण करके सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक क्रांति, होनेवाले बदलाव पर भी प्रकाश डाला है।

प्रेमचंद के 'रंगभूमि', 'गोदान', 'कायाकल्प', 'निराला का 'निरुपमा', 'कुल्लीभाट', जगदीशचंद्र का 'धरती धन न अपना', गिरिराज का 'यथा प्रस्थापित', 'परिशिष्ट', मदन का 'मोरी की ईंट', राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', 'जाने कितनी आँखें', आनंदप्रकाश का 'आठवीं भाँवर', भगवतीप्रसाद शुक्ल का 'खारे जल का गाँव', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', दिवाकर का 'आग पानी आकाश', ओमप्रकाश का 'अछूत', सत्यप्रकाश का 'जस तस भाई सवेर', नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी', राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास', जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', शिवप्रसाद का 'शैलूष', चंद्रमोहन का 'एकलव्य', नागार्जुन का 'दुखमोचन', हिमांशु जोशी का 'कगार की आग', भगवानदास का 'काला पादरी', 'काला पहाड़', गुरुदत्त का 'बनवासी', शिवशंकर शुक्ल का 'मोंगरा' आदि कई उपन्यास इसके प्रमाण हैं। सामाजिक क्रांति को बल देनेवाली ये रचनाएँ दलित-उपन्यास विधा के विकास में महत्त्वपूर्ण लगती हैं।

सामाजिक क्रांति और दलित-उपन्यासकार :

हिंदी दलित-साहित्यकार 'भोगा हुआ यथार्थ' को वाणी देने का प्रयास करता है। स्वानुभूति को अभिव्यक्ति देनेवाला यह साहित्य है। बाबासाहब के दर्शन से प्रभावित साहित्यकार अपने रचना एवं पात्रों के द्वारा नई समाज-व्यवस्था को चित्रित करना चाहता है। परंपरागत रूप से शोषित-दलित जीवन के साथ-साथ संघर्षरत, विद्रोही, क्रांतिकारी पात्रों के माध्यम से सामंतीवादी, धर्मांध एवं जातीयवादी मनोवृत्ति को ध्वस्त करता है। पढ़ा-लिखा दलित, दलित नेता, राजनीतिक आरक्षण से लाभान्वित दलित, संविधान का लाभ उठानेवाला दलित आदि का चित्रण करके सामाजिक क्रांति की पहल की है। दलित-समाज में चेतना, जागृति, स्वत्व-भाव, अधिकार की रक्षा का भाव जगाने का महत्त्व कार्य दलित-साहित्य कर रहा है।

धर्म-परिवर्तन, ईसाईकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण, भौतिकवादी प्रवृत्ति से प्रभावित दलित-जीवन का चित्रण उपन्यासों में हो रहा है। दलित के जीवन में इसका क्या स्थान? कितने

दलित संपन्न हैं? लाभान्वित हैं? राजनीति में क्या लाभ मिला? आरक्षण से कौन लाभान्वित हो रहे हैं? शोषण का पहिया क्यों नहीं रुका? आदि सवालों पर दलित उपन्यासकारों ने सोचा है। वे सामाजिक क्रांति और नई समाज व्यवस्था के पक्षधर लगते हैं। उनके पात्र प्रगतिवादी विचारों के वाहक हैं। शोषण की व्यवस्था को ध्वस्त करानेवाले पात्र सामाजिक क्रांतिकारक ही हैं।

प्रेमचंद के 'रंगभूमि' का चमार सूरदास औद्योगीकरण का विरोध करता है, 'कायाकल्प' का चमार युवा जमींदारों की मनमानी को नकारता है। 'कर्मभूमि' चमारों की कथा, 'गोदान' होरी की कहानी है। राहुल सांकृत्यायन के 'जय यौधेय' का अर्जुन जातीयता के टुकड़े करना चाहता है तो 'निरुपमा' का चमार कुमार पढ़ा-लिखा होकर भी मोची का काम करता है। जगदीशचंद्र के 'धरती धन न अपना' का काली संगठन के बल पर अन्याय का विरोध करके बायकॉट करता है। 'नरक कुंड में बास' का काली, किसना चमड़े के कारखानों में मजदूरों के लिए उचित मजदूरी की माँग के लिए हड़ताल करते हैं। 'नंदी यशस्वी है' के कहार लोग छूआछूत को मिथ्या मानते हैं, 'बनवासी' का बडौज पंडितों की मनमानी का विरोध करके ईसाई बनकर बिंदू से विवाह करता है, अध्यापक बनता है। 'शैलूष' की सब्बो नटों को ज़मीन दिलाने के लिए जमींदारों से संघर्ष करती है। 'महाभोज' में बिसू चमार की हत्या से खेली जा रही गंदी राजनीति का विरोध चमार करते हैं। 'छप्पर' की सुक्खा रहिमया अपने बेटे चंदन को पढ़ाई के लिए शहर भेजती है। 'जस तस भई सबेर' का शिवदास आरक्षण का समर्थन करता है।

'अपनी सलीबें' में ईटर का कलैक्टर बनना, 'खारे जल का गाँव' में चमार के हाथों सहकार भंडार का विमोचन होना, 'एकलव्य' में एकलव्य द्वारा हम हीन क्यों? यह सवाल पूछना, 'जंगल के आसपास' में श्यामा-सुचित्रा द्वारा पुलिस तथा जमींदारों की मनमानी को ठुकराना, महाश्वेता के 'जंगल के दावेदार' में बीरसा मुंडा द्वारा अँग्रेज़ों का विरोध करना, 'गोपुली गफूरन' में गोपुली द्वारा जात पंचायत का विरोध करना, 'मोंगरा' में चमार चरणदास द्वारा सरकारी क़र्ज़ा लेकर मुर्ग़ी-पालन का धंधा करना, 'खारे जल का गाँव' में अरविंद द्वारा चुनाव लड़ना, क्रांतिकारी मोर्चा बनाना [6] 'सुबह की तलाश' में फगुवा सोमेश्वर द्वारा चमारों के लिए मंदिर खोल देना, दलितों के मंदिर प्रवेश न देने का विरोध करना आदि घटनाएँ सामाजिक क्रांति का प्रमाण ही हैं।

गिरिराजकिशोर के 'यथा प्रस्थापित' का बालेसर छुआछूत का विरोध करके ठाकुर लोगों की आलोचना करता है, तो 'परिशिष्ट' का राम उजागर आई॰आई॰टी॰ संस्थान में शिक्षा प्राप्त करता है। जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' का चमार चंदन पढ़ाई करके, संगठन बनाकर दलितों के लिए स्कूल चलाता[7], कमल के साथ हुई जबरी का विरोध करता है। मदन दीक्षित की 'मोरी की ईंट' में मेहतर जाति की व्यथा है। मेहतरानी का शोषण, अवैध संतान, जाति पंचायत, धर्मांतरण पर विचार किया गया है। अधिकार की माँग के लिए 15 दिन की हड़ताल, मेहतर संघ की स्थापना[8], स्वाभिमानी मंगिया की कथा सामाजिक क्रांति का एक पहिया है। डॉ॰ कुँवरपाल कहते है 'पचास साल के बाद स्वाधीन भारत में दलितों को क्या मिला? शिक्षा, रोज़गार में कितनी भागीदारी मिली? इसका यथार्थबोध करनेवाली यह रचना है। [9]

रामधारी दिवाकर का 'आग पानी आकाश' परिवर्तित दलित-जीवन का प्रतीक है। सरकारी सुविधा, आरक्षण से लाभान्वित दलित है। चमार बस्ती में पाठशाला खुलना, युगेश्वर, भागवत को छात्रवृत्ति मिलना, युगेश्वर का सचिव बनना, भागवत का मंत्री होना, महाविद्यालय

तथा शिव मंदिर बनवाना साथ-ही-साथ दलित मंगुला का गंगाराम होना, मंत्री द्वारा भ्रष्टाचार करना[10], जात को भूलना आदि पर भी यहाँ प्रकाश डालकर बदलती दलित-संस्कृति पर भी सोचा गया है। लगता है, सामाजिक क्रांति में दलित नेताओं की बदलती मनोवृत्ति प्रभावी बनेगी, जिसमें बाबासाहब का सपना साकार हो सकेगा।

दलित उपन्यासों में संस्कृति का चित्रण :

संस्कृति समाज और समाज जीवन का अंग है। संस्कृति में लोकजीवन, लोकतत्त्व, आचार-विचार, परंपरा, उसमें आनेवाले बदलाव पर भी सोचा जाता है। लोकसंस्कृति का चित्रण करके सामाजिक क्रांति को प्रस्तुत करने का कार्य दलित-साहित्यकारों ने किया है। 'जंगल के फूल', 'सूरज की किरण की छाँव में' गोंड संस्कृति, 'कब तक पुकारूँ' में करनट संस्कृति, 'आँठवी भाँवर' में गुसाई संस्कृति, 'सुबह की तलाश' में मरार संस्कृति, 'जंगल के आसपास' में हरिजन संस्कृति, 'जंगल के दावेदार' में मुंडा संस्कृति, 'शैलूष' में नट संस्कृति, 'बनवासी' में नागा संस्कृति, 'धरती धन न अपना' में चमार संस्कृति का चित्रण हुआ है। दलित उपन्यासों में दलित-जीवन का दस्तावेज़, समाज-जीवन का प्रतीक है। सामाजिक क्रांति का प्रमाण है। सामाजिक संघर्ष, आंदोलन, जागृति, चेतना, बदलाव का चित्रण करके सामाजिक क्रांति को अंकित किया गया है।

सामाजिक क्रांतिकारक पात्र :

दलित-साहित्य तथा उपन्यासों के पात्र सामाजिक चेतना, नई विचारधारा के प्रमाण हैं। अर्थ की अपेक्षा मानव-प्रेम को श्रेष्ठ मानना, विवाह में जात नहीं इच्छा को स्वीकारना, श्रम के आधार पर मजदूरी माँगना, शिक्षा को अनिवार्य मानना, उसका प्रसार करना, अंधश्रद्धा को ठुकराना आदि उनके विचार सामाजिक क्रांति के प्रमाण हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास, 'धरती धन न अपना' का काली, ज्ञानो, 'खारे जल का गाँव' का अरविंद, चनकी, 'शैलूष' की सावित्री, 'बनवासी' का बिंदु-बडौज', 'कगार की आग' की गोमती, 'कब तक पुकारूँ' का सुखराम, प्यारी 'छप्पर' का चंदन, 'जंगल के आसपास' की श्यामा, दिनेश, 'जस तस भाई सबेर' का शिवदास, सरवन, 'अपनी सलीबें' का ईशु, 'आग पानी आकाश' का युगेश्वर, भागवत, रामसजीवन, 'वन के दावेदार' का बिरसा, 'एकलव्य' का एकलव्य, 'जंगल के फूल' का महुआ आदि अनेक पात्र सामाजिक क्रांति में कार्यरत हैं। प्रगतिशील चेतना, सामाजिक पुनरुत्थान के उन्नायक हैं। शोषण, अन्याय, अत्याचार के ख़िलाफ़ विद्रोह करनेवाले, संगठन बनाकर ताक़त दिखानेवाले, अपने दलित्व को नकारने वाले ये आंबेडकरी दर्शन के प्रतीक पात्र हैं।

जाति पंचायत, जाति-व्यवस्था, पंडित, जमींदारों की मनमानी, भ्रष्ट राजनीति, दलित नेताओं की मनोवृत्ति, ईसाइयों की धर्मांतरण की प्रवृत्ति, लालच दिखाकर फँसाने की प्रवृत्ति, दलितों में स्थित जातीयता, उच्चता-नीचता का भाव, अलग पनघट, मंदिर में प्रवेश न होना, पाठशाला में अलग व्यवस्था आदि का चित्रण करके समाज-व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। परंतु प्रगतिशील, क्रांतिकारी पात्र इसका विरोध करके 'मानव' को केंद्र में रखकर समाजहित, कल्याण चाहते हैं। परंपरागत समाज-व्यवस्था में बदलाव लाकर नई सामाजिक क्रांति की नींव रखना चाहते हैं। ये प्रतिनिधि पात्र, रचना, रचनाकार हैं। दलित-साहित्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, काव्य में कोटि का चित्रण हुआ है। शंबूक, कर्ण, एकलव्य इस व्यवस्था को

ध्वस्त करना तथा धर्म नहीं गुण, क्षमता पर श्रेष्ठत्व प्राप्त करना चाहते हैं। सामाजिक क्रांति को बल देने के लिए वे तैयार हैं।

यहाँ स्पष्ट है कि हिंदी-उपन्यासों में दलित-जीवन के चित्रण के साथ-साथ दलित-चेतना, सामाजिक चेतना एवं क्रांति का भी अंकन किया गया है। हिंदी-उपन्यासकार, दलित-साहित्यकार प्रगतिवादी विचार, आंबेडकरी दर्शन और समाजवादी तत्त्वों से प्रभावित हैं। जहाँ अन्याय और शोषण होता है, वहाँ दलित-साहित्यकार की निगाहें जाती हैं। वे स्वानुभूति या परानुभूति को अभिव्यक्त करके सामाजिकता का निर्वहन करते हैं। जातीय व्यवस्था, समता, सामाजिक न्याय की स्थापना, धर्मांध तत्त्वों का पर्दाफ़ाश, जमींदारों, सवर्णों, धार्मिक व्यक्तियों, सरकारी अफ़सरों की मनमानी के ख़िलाफ़ संघर्ष, शिक्षा-प्रसार, दलित संगठन, राजनीति में प्रवेश, मंदिर, पनघट, पाठशाला में प्रवेश, विजातीय विवाह, उचित मजदूरी की माँग, हीनकार्य का त्याग आदि का चित्रण भी हुआ है।

सामाजिक क्रांति तब होगी जब सभी की मानसिकता बदलेगी, समता की स्थापना होगी। इसके लिए वैचारिक परिवर्तन की आवश्यकता है। आज धीरे-धीरे सभी वर्गों में शिक्षा-प्रसार होने से वैचारिक क्रांति हो रही है। समाज का मूलाधार मानव है। नव समाज का निर्माण होना समाजिक क्रांति की नींव है। इसमें समाज-सुधारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, उनके साथ-साथ साहित्यकारों, लोककलाकारों, लोकसाहित्य रचयिताओं ने भी सहयोग दिया है।

सामाजिक क्रांति में भी भ्रष्टाचार, भ्रष्ट राजनीति, राजनीति और धर्म का संबंध, जातीयता, सरकार की अंधी नीति, दलित नेताओं की कमज़ोरी, उदासीनता, एकता का अभाव, राष्ट्रीय हित की कमी आदि कई रुकावटें दिखाई देती हैं। मानव अधिकार, अस्मिता, स्वत्व की रक्षा के लिए सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है। साहित्यकार रचनाएँ लिखते हैं, परंतु दलित समाज तथा सवर्णों को भी पूरे मन से सहयोग देना चाहिए। मजहब, मतलब को त्यागकर सच्ची लगन से राष्ट्रहित को सर्वप्रथम मानकर, सामाजिक क्रांति में योग देना ही राष्ट्रसेवा, राष्ट्रीय कर्म है– ऐसा लगता है।

संदर्भ

1. श्री नवल जी, नालंदा विशाल शब्दसागर, पृ॰ 210
2. संपा॰ ब्रजमोहन, हिंदी अँग्रेज़ी कोश, पृ॰ 162
3. आर्नोल्ड दोज, सोशियोलॉजी, पृ॰ 730
4. बिल्वई मूर, ऑर्डर एंड चेंज, पृ॰ 264
5. दयानंद बटोली, साहित्य और सामाजिक क्रांति, पृ॰ 33
6. भगवतीप्रसाद शुक्ल, खारे जल का गाँव, पृ॰ 136
7. जयप्रकाश कर्दम, छप्पर, पृ॰ 49
8. मदन दीक्षित, मोरी की ईंट, पृ॰ 12
9. हंस, फरवरी 1999, पृ॰ 87
10. रामधारीसिंह दिवाकर, आग पानी आकाश, पृ॰ 75

❐ 146, **ब, प्रतापगंज पेठ**
राधिका रोड, सतारा (महा॰)
फ़ोन : 09860146352

पद्मावत में भारतीय लोककथाएँ

शाहिना

सामान्य अर्थ में कथा शब्द कहानी का पर्यायवाची प्रतीत है। यदि इसे यथा तथ्य रूप में स्वीकार कर लिया जाए तो लोककथा और लोक कहानी में कोई अंतर होना चाहिए, किंतु ऐसा वास्तव में नहीं है। वैसे इस शब्द का प्रयोग एक विशेष प्रकार की कहानी के लिए होता है जैसे रामायण की कथा, सत्यनारायण की कथा, गणेश चौथ की कथा इत्यादि। इन प्रयोगों से प्रकट होता है कि कथा कोई ऐसी वार्ता है, जो किसी के द्वारा कहकर सुनाई जाती है और उसे सुनाने का धार्मिक अभिप्राय: होता है उसे सुनने वाले को धार्मिक संतोष प्राप्त होना, धर्मालाभ होना अन्य कोई मान्यता पूरी होने या पूरी करने के लिए वह सुनी जाती है। अत: जो कहानी धार्मिक अभिप्राय से अनुष्ठान के साथ सुनाने के लिए हो, वह कथा कही जाएगी, जिसके साथ परंपरा जुड़ी हुई है और लोकमानस का तत्त्व जिसमें विशेष रूप से निहित है, वह लोककथा कही जाएगी। ऐसी लोककथा का बंधुआ किसी-न-किसी रूप में धर्मगाथा या पुराणकथा से संबंधित होता है।' [1] एक पूजा कहानी होती है उसमें भी धार्मिक तात्पर्य रहता है, पर यह कहानी पूरी तरह लोक कहानी होती है, जिसमें देवी-देवता भी अपने वैचित्र्यपूर्ण रूप में आते हैं। ऐसे ही किसी-किसी कहानी में कोई भी देवी-देवता नहीं होता, ये पूजा कहानियाँ केवल स्त्रियों के लिए होती हैं और इनके अंतर्गत करवाचौथ अहोई आठे, भैयादूज, अनंत चौदस आदि अवसरों पर कही-सुनी जाने वाली कहानियाँ आती हैं। लोककथाओं का विषय भी धार्मिक होता है, जो किसी-न-किसी रूप में किसी देवी-देवता के अवतार से संबंधित होता है। जायसी भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में व्याप्त ऐसी लोककथाओं से भली-भाँति परिचित थे और उनके सांस्कृतिक रहस्य को भी जानते थे, इसीलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर भारतीय लोककथाओं के उदाहरण पद्मावत में दिए हैं इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

रामायण की कथा :

रामायण की कथा का संबंध राम से है सूर्यवंशी कुल में दशरथ तथा कौशल्या के पुत्र के रूप में इनका जन्म हुआ था। ये विष्णु के सातवें अवतार थे। इनका समय त्रेता का अंतिम चरण था। राम के लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीन भाई थे, जिनमें लक्ष्मण से ही इनका विशेष प्रेम था। बाल्यावस्था में ही विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को यज्ञ रक्षार्थ अपने आश्रम में ले गए वहाँ राम ने बहुत से राक्षसों और राक्षसियों का वध किया, जिनमें ताड़का का नाम अधिक प्रसिद्ध है। वहाँ से विश्वामित्र के साथ ये लोग जनकपुर चले, रास्ते में राम ने अहिल्या का उद्धार किया जनकपुर में राम ने शिव के धनुष को तोड़कर सीता का वरण किया। वहाँ से अयोध्या आने पर दशरथ इन्हें राजा बनाना चाहते थे, पर मंथरा और कैकेयी के षड्यंत्र से 14 वर्ष के लिए वन भेज दिए गए। वन में सीता और लक्षण भी इनके साथ गए बाद में भरत इन्हें लौटाने

गए, पर ये नहीं लौटे। उसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता के साथ ये दक्षिण की ओर बढ़े अगस्थ ने इन लोगों को पंचवटी जाने की सलाह दी। यह स्थान राक्षसों से भरा था। यहाँ रावण की बहन शूर्पणखा राम से प्रेम करने लगी। वह एक दिन विवाह का प्रस्ताव लेकर आई, पर राम ने उसे लक्ष्मण के पास भेजा और लक्ष्मण ने उसकी नाक काटकर उसे विरूप कर दिया। उसके कहने पर खर और दूषण अपनी सेना के साथ राम से युद्ध करने आए, पर वे सभी मारे गए। इसके बाद शूर्पणखा अपने भाई रावण के पास गई, उसने उसे बहकाया। रावण ने मारीच की सहायता से सीता-हरण किया और उन्हें लंका ले गया। राम और लक्ष्मण सीता के लिए इधर-उधर भटकने लगे। उन्होंने कबंध का वध किया, जिसने मरते समय सुग्रीव से सहायता लेने की सलाह दी। आगे बढ़कर ये लोग सुग्रीव तथा हनुमान आदि के संपर्क में आए। राम ने सुग्रीव के भाई बाली को मारकर सुग्रीव को राज्य दिलाया। हनुमान ने सीता का पता लगाया और फिर राम ने बंदरों और नल-नील की सहायता से पुल बाँध कर समुद्र पार किया और लंका में रावण को उसकी सेना सहित मारकर सीता का उद्धार किया। उन्हें धनुक राधौ कर गहा उन्हें धनुक रावन सहारा[2] कहकर कवि ने सीता स्वयंवर के समय रघुवंशी राम के धनुष धारण करने एवं उसी धनुष से रावण का संहार करने की कथा का उल्लेख किया है–

जुरी राम रावण कै सेना। बीच समुंद भार दुई नैना। [3]

कहकर कवि ने राम के द्वारा समुद्र पार करके रावण की सेना के साथ युद्ध करने की कथा की ओर संकेत किया है–

नहि सो राम निवत बड़ि दूरी। को लै आव संजीवनि मूरी। [4]

कहकर जायसी ने लक्ष्मण के शक्तिवाण लगने पर हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी लाने की कथा का उल्लेख किया है–

जहवाँ राम तहाँ संग सीता। [5]

अर्थात् जहाँ राम वहीं सीता रहती हैं ऐसा कहकर कवि ने राम और सीता के वन-गमन की कथा का उल्लेख किया है–

रावण चहा साह होइ हेरा उतरि गए दस माथ। [6]

कहकर कवि ने रावण के दस सिर कटने की कथा का उल्लेख किया है–

जनहुँ लंक सब लूसी हनू विध्यासी वारि। [7]

कहकर कवि ने संपूर्ण लंका के लूटने और हनुमान जी द्वारा अशोक वाटिका के उजाड़ने की कथा की ओर संकेत किया है 'रावण लंका में द्रही कहकर कवि ने हनुमान द्वारा लंका-दहन की कथा का उल्लेख किया है–

महादेव देवन्ह के पिता। तुम्हारी सरन राम रम जिता। [8]

कहकर कवि ने महादेव की भक्ति एवं सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना की कथा की ओर संकेत किया है– 'तेहि रावन अस को बरिबंद्रा रावन हार न पकौ रहा।' कहकर कवि ने रावन के प्रचंड पराक्रम की कथा का वर्णन करते हुए लिखा है कि दस सिर और बीस भुजाओं वाला रावण बड़ा प्रचंड बलशाली था, उसके यहाँ सूर्य रसोई बनाता था, अग्नि नित्य धोती धोता था, उसके यहाँ शुक्र सोंटा बरदार और चंद्रमा मशालची था, पवन नित्य द्वार बुहारता था। उसने मृत्यु को पतंग से बाँध दिया था। उसके दस करोड़ नाती और बेटे थे, पर उसे रोने वाला एक

न बचा। 'राघौ सरिस समुद्र हठ बाँधा।' [9] कहकर कवि ने राम के द्वारा सेतुबंध की कथा का उल्लेख किया है 'तुम अंगद हनुमत सम दोऊ' [10] कहकर कवि ने अंगद और हनुमान की वीरता की कथा की ओर संकेत किया है 'जस हनिवत राधौ बदि छोरी' [11] कहकर कवि ने हनुमान द्वारा राम को अहि रावण के बंधन से मुक्त कराने की कथा की ओर संकेत किया है। 'भए अलोप राम औ' सीता' [12] कहकर कवि ने राम और सीता के लुप्त होने की कथा का उल्लेख किया है तथा 'तुम्ह सखन होई कावरि सजी' [13] कहकर कवि ने श्रवणकुमार एवं उसके अंधे माता-पिता की कथा की ओर संकेत किया है। इस प्रकार जायसी ने रामायण की विविध कथाओं का संकेत देकर उनके सांस्कृतिक महत्त्व की चर्चा की है।

2. **महाभारत :**

जायसी महाभारत की कथा से परिचित थे, इसलिए उन्होंने पद्मावत में स्थान-स्थान पर महाभारत के प्रसंगों का उपयोग किया है, जैसे–जायसी ने 'हेतिम करन तिआगी कहे। [14] तथा 'दान कर पै दुई जग तरा' [15] कहकर कर्ण के त्याग एवं दान की कथा की ओर संकेत किया है। 'राहु वेधि अरजुन जीति द्रोपदी ब्याहु' [16] कहकर कवि ने अर्जुन द्वारा मत्स्यवेध करने के पश्चात् द्रौपदी के साथ विवाह करने की कथा का उल्लेख किया है। धरती पाय सरग सिर जानहु सहसराबाहु' [17] कहकर सहसबाहु अर्जुन की कथा की ओर संकेत किया है। 'तुम अरजुन और भीम भुआरा' [18] कहकर कवि ने भीम और अर्जुन के बल की ओर संकेत किया है, जैसे जरत लखाग्रिह साहस कीन्हेउ भीव' [19] कहकर कवि ने लीक्षासृ है अर्जुने पर भीम के साहस द्वारा पांडवों एवं कुंती के प्राण बचाने की कथा का उल्लेख किया है। 'कौरव बिस जो पंडवन्ह दीन्हा', अंतहुँ दाँव पंडवन्ह लीन्हा कहकर कवि ने कौरवों द्वारा पांडवों को विष देने तथा अंत में पांडवों की विजय होने की कथा की ओर संकेत किया है। साथ ही 'जस दुखत कह साकुंतला, कहकर कवि ने शकुंतला और दुष्यंत की कथा की ओर भी संकेत किया है। इस प्रकार जायसी ने महाभारत की कथाओं का उल्लेख भी पद्मावत में किया है।

3. **भागवत की कथा :**

जायसी लोक प्रचलित भागवत की कथाओं से परिचित थे, इसीलिए उन्होंने पद्मावत में यत्र-तत्र भागवत की कथाओं का उल्लेख किया है। जैसे– जायसी ने 'उहै धनुक किरसुन यह अहा' [19] तथा 'उहै धनुक कंसासुर मारा' [20] कहकर कृष्ण के धनुष द्वारा कंस-वध होने की कथा की ओर संकेत किया है। 'किरन कै करा चढ़ा ओहि माथे' [21] कहकर कवि ने कृष्ण के काली नाग के माथे पर चढ़ने की कथा का उल्लेख किया है। 'हरहिं काज किरसुन कर छाजा, राजा छरहि रिसाइ' कहकर कृष्ण के छल-बल की कथा की ओर संकेत किया है 'लेई कान्हहि भा अकरूर अलोपी, कठिन विछोह जिअहि किमी गोपी [22] कहकर कवि ने अक्रूर के द्वारा श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने तथा कृष्ण के वियोग में गोपियों के संतप्त होने की कथा की ओर संकेत किया है। 'किरसुन डरै सेस जेई नाथा' [23] कहकर कवि ने काली नाग नाथने की कथा की ओर संकेत किया है 'चढै अंत लै किरन मुरारी' [24] कहकहर कवि ने श्रीकृष्ण के बलशाली होकर शस्त्र-ग्रहण करने की कथा की ओर संकेत किया है। 'आजु परान कंससेन ढीला' [25] कहकर कवि ने श्रीकृष्ण के द्वारा कंस के वध की कथा की ओर संकेत किया है।

'आजु मीन संखासुर ढीला' [26] कहकर कवि ने मत्स्यावतार धारी विष्णु के द्वारा शरवासुर के मारने की कथा की ओर संकेत किया है। 'आजु धरा बलि राजा मेला बाँधि पतार' [27] कहकर वामनावतार में राजा बलि को छलने की कथा की ओर संकेत किया गया है। 'अनिरुद्ध कह जो लिखि जै मारा, को मेटे बानासुर द्वारा, आजु मिले अनिरुद्ध को ऊखा' कहकर कवि ने वाणासुर के मारने तथा ऊषा एवं अनिरुद्ध के विवाह होने की कथा का उल्लेख किया है। इस प्रकार जायसी ने भारत की सांस्कृतिक परंपरा एवं महत्त्व के द्योतक भागवत पुराण में वर्णित अनेक कथाओं का उल्लेख अपने काव्य पद्मावत में किया है।

4. **अन्य लोक कथाएँ :**

जायसी ने पद्मावत में भारतीय जनजीवन से संबंधित तथा भारत की सांस्कृतिक परंपरा की परिचायक अन्य भारतीय लोककथाओं की ओर भी संकेत किए हैं, जिनसे भारतीय जीवन में व्याप्त सत्य, त्याग बलिदान, वीरता, सेवा, संतोष, श्रद्धा-भक्ति, दान, दांपत्य-प्रेम, दया-वैराग्य, जादू-टोना, चमत्कार, पराक्रम, बुद्धिमत्ता, कला-प्रेम आदि का ज्ञान होता है। इनमें से कुछ कथाएँ निम्न हैं–

1. **राजा भोज की कथा :**

जायसी ने 'भोग भोज जए मानै [28] 'तुमसो कोइ न जीता हारे वररुचि भोज'[29] 'राजा भोज चतुर्दस विधा भा चेतन सौ हेत एहि छंद ठग विधा डहका राजा भोज' [30] 'हौ सो भोज विक्रम उपराही' आदि कहर उज्जयिनी के सुविख्यात राजा भोज की कथा की ओर संकेत किया है, जो बड़े बुद्धिमान गुणवान, शीलवान, कलाप्रेमी, न्यायप्रिय, विद्यानुरागी और प्रेमी राजा थे। भोज ने अपने जीवन में अत्यंत भोग भोगा। राजा भोज चौदह विद्याओं के ज्ञाता थे। उनको ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान था और उनके यहाँ पर रुचि नाम के विद्वान् ज्योतिषी रहते थे, जिनकी गणना उनके नवरत्नों में की जाती थी। वे बड़े ही त्यागी थे और उन्होंने भानुवती के प्रेम में अपने राजपाट को भी न्यौछावर करने की चेष्टा की। वे एक बार छल द्वारा जादूगर से भी ठगे गए थे। इस प्रकार राजा भोज के बारे में प्रसिद्ध अनेक लोककथाओं की ओर 'पद्मावत' में संकेत किए गए हैं।

2. **राजा विक्रमाजीत की कथा :**

जायसी ने 'विक्रम दानि बड़ अहे।' [31] 'विक्रम साका कीन्ह' [32] 'जैसे हिए विक्रम पछिताना' [30] 'तू राजा जस विक्रम' आदि [34] 'जस विक्रम औ' राजा भोजा'[35] 'विक्रम धँसा प्रेम के बारा' [36] 'होइ न विक्रम राजा भोजा' [37] 'कयापीत अस ता ते सँवरौ विक्रम बात' [38] 'विक्रम सरिस कीन्ह जेह साका' [39] आदि कहकर राजा विक्रमादित्य के दान, पराक्रम, छल-कपट, शौर्य, प्रेम आदि की कथाओं की ओर संकेत किए हैं। राजा विक्रमाजीत भी उज्जयिनी के राजा थे उनके पास भी एक हीरामन तोता था। उसे एक ऐसे फल का ज्ञान था, जिसे यदि वृद्ध खा लेता था तो जवान हो जाता था। राजा ने उसे अपने बगीचे में बोया, किंतु उसके फल को खाकर कुत्ता तो मर गया, परंतु मालिन वृद्धा से जवान हो गई। ऐसे राजा विक्रमाजीत की न्यायप्रियता, पराक्रम शौर्य की भी अनेक कथाएँ भारत में प्रचलित हैं।

3. **राजा हरिश्चंद्र की कथा :**

जायसी ने 'पद्मावत' में तू हरिश्चंद वैन सतवादी' [40] 'अबहूँ बसी सो हरिचंद पूरी'

[41] आदि कहकर अयोध्या के राजा हरिश्चंद्र की कथा की ओर संकेत किए हैं, इनसे पता लगता है कि राजा हरिश्चंद्र इक्ष्वाकु वंश के बड़े सत्यवादी राजा थे उन्होंने सत्य की रक्षा के लिए अपनी पत्नी शैव्या, पुत्र रोहिताश्व और स्वयं को क्रमशः एक ब्राह्मण सेठ तथा चांडाल को बेचकर विश्वामित्र को दक्षिणा दी और मरघट में अपनी रानी शैव्या से भी कर के रूप में आधी साड़ी लेकर सत्य की रक्षा की थी। इसी सत्य के बल पर उन्हें फिर राजपाट मिल गया और अंत में अपनी संपूर्ण प्रजा के साथ स्वर्ग में चले गए, जहाँ उनकी पुरी अभी तक बसी हुई है।

4. **राजा गोपीचंद की कथा :**

जायसी ने पद्मावत में 'गोपीचंद कस साधत जोगू' [42] 'गोपीचंद तू जीता जोगा' [43] 'जानहुँ आदि गोपिचंद जोगी' [44] 'मानत भोग गोपिचंद भोगी' [45] 'लै उपसवा जलंधर जोगी' [46] 'गोपिचंद जस मैनावती' [47] आदि कहकर राजा गोपीचंद की कथा की ओर संकेत किया है। राजा गोपीचंद मिहर कुल की रानी मैनावती के पुत्र थे और गुरु जालंधरनाथ के आदेशानुसार योगी हुए थे। वे योगी होकर कजरी वन चले गए। इनकी कथाएँ बंगाल, पंजाब और सिंध में बड़ी प्रसिद्ध हैं। कुछ विद्वान इन्हें बंगाल राज्य के पालवंश के राजा बतलाते है, परंतु यह अवश्य सत्य है कि ये अपना राजपाट छोड़कर नाथपंथी सिद्धों के यहाँ योग-साधना में लीन हो गए थे और अपने समय के प्रसिद्ध योगी हुए।

5. **राजा भर्तृहरि की कथा :**

'राजा भरपरि सुनि रे अमानी जेहि के घर सो रह सै रानी कुचन्ह लिहे तरवा सहराई, भा जोगी कोई साथ न लाई' [48] और 'भरभरी न पूजा वियोगा' [49] 'कैसो भरथरि आहि वियोगी, वै पिगला गए कजरी आरन' [50] आदि कहकर जायसी ने पद्मावत में उज्जैन के राजा भर्तृहरि की कथा की ओर संकेत किया है। राजा भर्तृहरि के राजमहल में सोलह सौ रानियाँ अपने कुचों से उसके तलवे सहलाती थीं। राजा जोगी हो गए और उन्हें किसी को साथ न लिया। पिंगला रानी के कारण वे कजरी वन में चले गए। राजा भर्तृहरि के संबंध में एक कथा प्रचलित है। राजा भर्तृहरि गोरखनाथ के शिष्य थे। वे बड़े न्यायप्रिय एवं लोकप्रिय राजा थे। एक साधु ने राजा भर्तृहरि को एक अमृत फल लाकर दिया। ये अपनी पटरानी से बड़ा प्रेम करते थे। रानी का प्रेम एक सेनापति से था अतः रानी ने वह फल सेनापति को दे दिया। उस सेनापति का प्रेम एक वेश्या से था। अतः सेनापति ने वह फल वेश्या को जाकर दे दिया। वेश्या ने सोचा कि मैं इस नारकीय जीवन में इस अमृत फल को खाकर क्या करूँगी। इसे तो अपने लोकप्रिय राजा भर्तृहरि को ही दे देना चाहिए। इस प्रकार अमृतफल लौटकर फिर राजा के पास ही आ गया राजा उसे देखकर एकदम संसार से विरक्त हो गए और जोगी होकर कजरी वन में तपस्या करने चले गए कुछ लोगों का कहना है कि राजा ने मृग का शिकार किया था और जब उसे लेकर घर लौट रहे थे, तब उन्होंने मृगियों का दारुण विलाप सुना। उसे सुनते ही वे वैरागी हो गए।

6. **सिंह और ब्राह्मण की कथा :**

'जो हर कर ओहि हर बाजा, जैसे सिंध मजूंसा साजा।' [51] कहकर जायसी ने पद्मावत में सिंह और ब्राह्मण की लोक कथा की ओर संकेत दिया है। जो छल करता है उसे छल ही मिलता है, जैसे–शेर फिर पिंजरे में बंद हो गया था। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण ने दया करके

एक शेर को पिंजड़े से निकाल दिया। शेर पिंजड़े से निकलते ही भूखा होने के कारण ब्राह्मण पर झपटा। ब्राह्मण ने पूछा, क्या भलाई का बदला बुराई है? शेर बोला अपना भोजन पाकर उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए। अंत में फ़ैसला करने के लिए उन्होंने पंच नियुक्त किया और एक गीदड़ को पंच बना लिया। गीदड़ बोला पहले तुम दोनों जिस दशा में थे उसी पूर्व दशा में हो जाओ तब मैं फ़ैसला करूँगा। शेर उसकी बात मानकर पिजड़े में घुस गया। गीदड़ के इशारे पर ब्राह्मण ने झट उस पिजड़े का द्वार बंद कर दिया। इस प्रकार शेर को छल के बदले छल मिला और दोबारा पिंजड़े में बंद होना पड़ा।

7. **लोना चमारी की कथा :**

' तू कावरु पराबस लोना, भूला जोग हराजनू टोना।'[52] 'एहि कर गुरु चमारिनि लोना, सिखा काँवरू पाठित टोना' [53] जस काँवरू चमारी लोना को न हरा पाठित औ' टोना [54] आदि कहकर जायसी ने पद्मावत में काँवरू देश की सुप्रसिद्ध जादुगरनी लोना चमारी की कथा की ओर संकेत दिया है। मध्यकाल में लोनी चमारी के तंत्र-मंत्र की कथाएँ बहुत प्रचलित थीं। यह लोना चमारी कामरूप की रहनेवाली थी और अपने तंत्र-मंत्र के छल से आदमी को तोता या मक्खी बनाकर अपने वश में कर लेती थी।

8. **गोरख और महंदर की कथा :**

'सिद्धि होई कह कहा' [55] 'गोरख सिद्धि दीन्हि तोहि हाथू तारे गुरु मछिंदर नाथू' [56] 'गोरख मिला, मिला उपदेसू' [57] 'परा भाँति गोरख का चेला' [58] 'जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सौ भेट' [59] 'गोरख आई ठाढ़ भा उठु रे चेतना नाथ, गुरु महिंदरनाथ सभारे' [60] आदि कहकर जायसी ने पद्मावत में गुरु गोरखनाथ और मत्स्येंद्रनाथ की ओर संकेत किए हैं। मध्ययुग के नाथ पंथी आचार्यों में से गुरु गोरखनाथ और गुरु मत्स्येंद्र की कथाओं की ओर संकेत किए हैं। मध्य युग के नाथ पंथी आचार्यों में से गुरु गोरखनाथ और गुरु मत्स्येंद्रनाथ के नाम अति प्रसिद्ध हैं। गुरु मत्स्येंद्र नाथ के शिष्य गुरु गोरखनाथ थे। ऐसा कहा जाता है कि मत्स्येंद्रनाथ एक बार सिंघल की पद्मनियों में अपनी साधना की परीक्षा देने गए, किंतु वहाँ जाकर वे भोग विलास में लीन हो गए। तब उनके शिष्य गोरखनाथ ने जाकर उन्हें जगाया कि ओ नाथ! उठ गोरख खड़े हैं। तभी से यह कहावत प्रसिद्ध है–'जाग महंदर गोरख आया।' गुरु गोरखनाथ के बारे में यह प्रसिद्ध है कि पहले ये बौद्ध थे, परंतु मत्स्येंद्रनाथ के संपर्क में आते ही शैव हो गए और एक प्रसिद्ध योगी माने जाने लगे। ऐसे ही मत्स्येंद्रनाथ के बारे में भी यह प्रचलित है कि ये मूलत: बंगाल के निवासी ब्राह्मण थे, परंतु किसी कारण वश जाति च्युत हो गए। फिर ये तंत्र-मंत्र की साधना करने लगे और एक प्रसिद्ध योगी बन गए। तभी पद्मावत में कहा गया है कि योगी तभी सिद्ध बनता है, जब गुरु गोरखनाथ से भेंट हो गई हो और मत्स्येंद्रनाथ ने सबको तार दिया था।

9. **जाज और जगदेव की कथा :**

'तुम्ह बलवीर जाज जगदेऊ' [62] तथा 'मुए पुनि जुझि जाल जगदेऊ' [63] कहकर जायसी ने पद्मावत में दो बार जाज और जागदेव की कथा की ओर संकेत किया है, इनमें से जाज रणथंभौर के राजा हमीर का अत्यंत विश्वासपात्र वीर था, जिसने राजा के मरने पर वीरतापूर्वक दो दिन तक लड़ते हुए दुर्ग की रक्षा की थी। साथ ही जगदेव धार के राजा उदयादित्य की बड़ी रानी का पुत्र

था, जिसने सिद्धराज की रक्षा के लिए अपना मस्तक दे दिया था।

इस प्रकार जायसी ने विभिन्न लोककथाओं के उद्धहरण अपने काव्य पद्मावत में देकर भारतीय जन-जीवन में व्याप्त सांस्कृतिक मान्यताओं को बड़ी तत्परता और तल्लीनता के साथ उद्घाटित किया है।

सूफ़ी काव्य हिंदू और मुसलमान संस्कृतियों के प्रेमपूर्ण मिलन का प्रयास था, इसमें प्रेमकथाओं का प्रतिपादन सूफ़ीमत के आधार पर किया गया है, लेकिन कहीं भी हिंदू देवताओं की उपेक्षा नहीं हुई है, मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत इस काव्य-परंपरा का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। पद्मावत में जायसी ने लोकजीवन की कथा को लेकर एक विशिष्ट प्रेमगाथा को अपनी कल्पना के माध्यम से साकार किया है। इसमें सूफ़ी प्रेमगाथाओं की परंपरा का चरमोत्कर्ष और भारतीय सांस्कृतिक जीवन का व्यापक चित्र विद्यमान है।

संदर्भ

1. डॉ॰ सत्येंद्र, हिंदी साहित्य कोश भाग 1, पृ॰ 591-592; सं॰ डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा, ज्ञान मंडल लिमिटेड वाराणसी द्वितीय संस्करण।
2. वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावत साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी 52/8-9
3. वही, 102/3-4
4. वही, 104/2
5. वही, 120/5
6. वही, 132/4
7. वही, 161/8
8. वही, 197/8
9. वही, 206/8
10. वही, 211/6
11. वही, 266/1-9
12. वही, 491/5
13. वही, 611/2
14. वही, 611/6
15. वही, 651/2
16. वही, 362/6-9
17. वही, 17/2
18. वही, 387/6
19. वही, 234/9
20. वही, 390/8
21. वही, 417/7
22. वही, 611/4
23. वही, 611/8
24. वही, 559/6
25. वही, 200/6
26. वही, 102/3

27. वही, 102/4
28. वही, 114/5
29. वही, 341/7
30. वही, 264/7
31. वही, 576/6
32. वही, 576/8
33. वही, 240/8
34. वही, 265/3
35. वही, 576/6
36. वही, 274/3–4
37. वही, 73/8
38. वही, 91/8
39. वही, 446/8
40. वही, 448/9
41. वही, 535/2
42. वही, 17/2
43. वही, 73/8
44. वही, 88/1
45. वही, 160/1
46. वही, 212/6
47. वही, 233/3
48. वही, 231/4
49. वही, 272/9
50. वही, 491/6
51. वही, 160/1
52. वही, 506/6
53. वही, 130/6
54. वही, 160/2
55. वही, 193/6
56. वही, 341/6
57. वही, 362/1
58. वही, 132/4–5
59. वही, 160/2
60. वही, 193/6–7
61. वही, 193/6–7
62. वही, 559/7
63. वही, 369/3

❐ **श्री सादिक हुसैन**
163, **निकट प्राथमिक पाठशाला, स्वालेनगर, रामपुर रोड, बरेली**

डॉ॰ रश्मि मल्होत्रा के काव्य में नारी-पीड़ा की अभिव्यक्ति

संतोषकुमारी

अनेक समाज-सेवकों, समाज-सुधारकों ने कहा है कि नारी के बिना पुरुष अधूरा है, नारी एक शक्ति है, नारी का सम्मान समाज व देश का सम्मान है। यदि नारी नहीं होती तो पुरुष का जीवन भी व्यर्थ था। नारी से ही पुरुष की आशा, निराशा, सफलता, विफलता, व्यथा व सुख-दु:ख जुड़े हैं। नारी को पुरुष की अर्धांगिनी कहा जाता है। यदि नारी नहीं होती तो पुरुष का जीवन पूर्णतया रसहीन एवं निस्तेज होता। 'यह नारी ही है, जिसने पुरुष के जीवन को अर्थ दिया, पुरुषार्थ को बल दिया व जीने का उद्देश्य दिया।'[1] सारा ऐश्वर्य, यश, धन व बल पुरुष नारी को जीतने के लिए ही कमाता है। नारी के संदर्भ में पुरुष की मानसिकता दंभ से भरी है, वह नारी को स्वयं से वरीय समझता है।

यह नारी-जीवन की विडंबना है कि नारी ने पुरुष का साथ एक मित्र के रूप में न देकर एक दासी भाव के साथ जीकर दिया है। उसकी कोमलता हमेशा पुरुष-कठोरता के हाथों मर्दित की गई है। पुरुष का विश्वास है कि उसका जन्म ही नारी को भोगने के लिए हुआ है। 'नारी का स्वभाव ही ऐसा है कि पुरुष से शासित होकर जीने में नारी को आनंद आता है।'[2] नारी अपना सारा जीवन पुरुष को ही समर्पित कर देती है। पुरुष के अधीन जीवन जीने में ही उसे अपनी सुरक्षा का आभास होता है। वह समझती है कि पुरुष के बिना नारी का जीवन हर पग पर असुरक्षित है। पुरुष के आश्रम से रहित विधवा या अविवाहित या अकेली रहने वाली नारी समाज का वह अंग है, जो स्वयं की अस्मिता को बिना पुरुष के असुरक्षित पाती है। नारी समझती है कि पुरुष नारी का सरंक्षक है व सुरक्षा-कवच है। यही नारी की पीड़ा तथा त्रासदी है। इसी मानवीय संबंध में नारी की सारी पीड़ा छिपी है। नारी की संवेदनशीलता व भावात्मकता ही नारी को हर स्तर पर कमज़ोर बनाती है। प्रेम के कारण नारी अपना संपूर्ण अस्तित्व पुरुष को समर्पित कर देती है। नर और नारी का संबंध चिरंतन है। नारी में ही पुरुष का सारा आकर्षण केंद्रित है। नारी हमेशा से पुरुष की चाह व दुर्बलता रही है।

नारी सदा पुरुष को प्यार करती है और पुरुष नारी को देखकर रीझता है। प्रेम, स्नेह जैसे रागात्मक संबंध प्राणी-मात्र के सहज-स्वाभाविक गुण हैं। इन्हीं गुणों व एक-दूसरे के व्यवहार पर रीझकर वे सदा पास या साथ रहना तथा एक-दूसरे को संतुष्ट रखना चाहते हैं। प्रेम के बिना मनुष्य-मात्र का जीवन मरुस्थल की तरह है।

प्रेम में सात्विकता की प्रधानता रहती है। सात्विकता से ही मानवता का विकास होता है। यह सात्विक स्नेह-धारा ही हृदय में प्रवाहित होकर प्रेम का रूप धारण करती है। सात्विक

स्नेह की पवित्रता से ही मनुष्य का जीवन सफल होता है।

'पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है और नारी का आत्मसमर्पण से।' [3] नर-नारी का आकर्षण एक प्राकृतिक सत्य है और यही सहज आकर्षण सृष्टि के विकास का कारण है। 'नारी और पुरुष का आकर्षण जिस भावना को जन्म देता है, वह प्रेम है।' [4] प्राचीनकाल से हमारे समाज में यही मान्यता रही है कि नारी जिससे एक बार प्रेम करती है, जीवन-भर उसी की होकर रहती है। पुरुष के प्रति यही एकनिष्ठ प्रेम श्रद्धा एवं भक्ति का परिचायक है।

जीवन-साथी के प्रेम के लिए नारी बड़े से बड़ा त्याग कर सकती है। प्रेम के बल पर वह पति पर अखंड विश्वास रखती है। डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन जी ने आदर्श प्रेम पर प्रकाश डालते हुए कहा है–

त्याग-अंक में पले प्रेम-शिशु
उनमें स्वार्थ बताना क्या।
देकर हृदय, हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या। [5]

प्रेम को रोग की उस मनोवृत्ति का पर्याय कहा जा सकता है, जिसमें एक व्यक्ति अन्य किसी विशिष्ट व्यक्ति के रूप, गुण, स्वभाव, शील, सामीप्य आदि के प्रति आकर्षित होता है, प्रवृत्ति, अप्रतिहत और अबाधित होकर प्रेमी को अपने प्रेमास्वाद के लिए चेष्टारत बनाए रखती है। प्रेम एक संजीवन रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन-पथ को रमणीय और सुंदर कर देता है। हृदय में प्रवाहित उस शीतल स्नेहधारा को प्रेम कहते हैं, जिसमें सात्विकता का प्राधान्य रहता है, जो अत्यंत पवित्र होती है।

प्रेम करना प्राणी-मात्र का चिरंतन अधिकार है। 'प्रेम ब्रह्मा के अखिल आनंद का रहस्य है, प्रेम सृष्टि का नवनीत है, प्रेम कालीदास, सूरदास, जयदेव की काव्य-सरिता की अंतवर्तिनी शक्ति है, जिसके अंतर में प्रेम का प्रकाश नहीं हुआ, वह हतभाग्य मनुष्य सृष्टि के अंधकार में छटपटाता हुआ अपदार्थ वस्तु ही तो है, प्रेम हृदय का आलोक है।' [6]

नारी अपने जीवन-साथी के सुख-दु:ख की सहभागिनी होती है। विवाह के पश्चात् नारी-जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आता है। उसे अपने पिता के घर का जीवन और वातावरण त्यागकर अपने पति की जीवन-प्रणाली और ससुराल का वातावरण अपनाना पड़ा। नारी और पुरुष का जीवन अभिन्न होता है। दोनों एक-दूसरे के दु:ख में सहभागी होते हैं। दोनों के अनन्य प्रेम को अभिन्नता की कसौटी पर कसा जाता है। इसी अभिन्नता के कारण नारी अपने पति से आजीवन कोई दुराव नहीं रखती।

महादेवी वर्मा ने कहा है– 'दु:ख को वह जीवन की शक्ति-परीक्षा के रूप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है।' [7] पीड़क प्रेम की कवयित्री रश्मि मल्होत्रा जी की 'राग-विराग' रचना प्रेम को ही समर्पित है। इस काव्य-संग्रह में उन्होंने प्रेम की अनेकानेक छवियों, विविध रूपों एवं मन:स्थितियों को वाणी दी है, जो मानव-हृदय की गहराई को स्पर्श करती हैं। इनके काव्य में चित्रित प्रेम व प्रेमी का स्वरूप कल्पित न होकर जीवन-साथी वाला है तथा प्रेम जीवन का एक अनिवार्य अंतरंग हिस्सा बनकर प्रस्तुत होता है। राग-विराग काव्य में रश्मि जी ने एक विवाहित नारी की विरह-भावना व पीड़ा

को, सशक्त वाणी दी है, जो अपने जीवन-साथी से सदा के लिए बिछुड़कर एक मरुस्थल-सा जीवन-यापन करती है। 'राग-विराग' विषय-वस्तु के स्तर पर अपनी एक अलग पहचान बनाता है। इसकी समस्त कविताएँ पीड़क प्रेम के विषय पर ही केंद्रित हैं।

वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों का पतन होने के कारण समाज में चारों तरफ़ नफ़रत, हिंसा, दंगा-फ़साद आदि इतने बढ़ गए हैं कि तनावों, अभावों, कुंठाओं के बीच 'प्रेम' जैसी कोमल भावनाओं का पनपना या पल्लवित होना अत्यंत दुश्कर हो गया है। अत: यह स्वाभाविक है कि जब जीवन से ही प्रेम लुप्त होता जा रहा है तो कविता में कैसे आ पाएगा। 'ग़ज़ल' विधा, जिसका अर्थ ही प्रेमी से वार्तालाप करना माना जाता था, वर्तमान समय में अपना पूरा रूप बदल चुकी है। कविता-संग्रहों में भी छुटपुट रूप से कुछ प्रेम कविताओं को अवश्य देखा जा सकता है। परंतु प्रेम-विषय पर केंद्रित कविता-संग्रह भूले-भटके ही सामने आ पाते हैं, जिसमें से रश्मि जी का 'राग-विराग' कविता-संग्रह भी है। इस काव्य में चित्रित 'त्रिवलियों' के माध्यम से उन्होंने नारी की प्रेमविषयक भावनाओं का सजीव चित्रण किया है।

रश्मि जी के काव्य में चित्रित 'प्रेम' वर्तमान समय का नक़ली फ़िल्मी 'प्यार' नहीं है, जिसमें वासना, उच्छृंखलता व दिखावा हो। उनके कविता-संग्रह का प्रेम एक पवित्र भावना है, जिसमें आस्था है, विश्वास है, समर्पण है, त्याग है, रूहानियत है और साथ-साथ जीवन-मरण की कामना है।

इन कविताओं में यूँ तो विरह-वियोग की ही कविताएँ अधिक हैं, किंतु कहीं-कहीं मिलन के बिंब भी मिल जाते हैं–

सिमटी है अपने चाँद के साथ चाँदनी
ख़ामोश गहरी रातों में रूह भी जाने दो
भीतर फूलों की तरह महको। [8]

इन कविताओं में विरह में जलती हुई नारी का चित्रण किया गया है। वास्तव में संबंधों में ही सारी पीड़ा होती है। असंबंधी होकर मनुष्य का जीना असंभव है। हर किसी के जीवन में किसी-न-किसी प्रिय-संबंधी के बिछुड़ने की पीड़ा छिपी होती है। सदा-सदा के लिए बिछुड़ना तो और भी भयावना होता है, जिसके लौट आने की सारी संभवानाएँ ख़त्म हो चुकी हैं। मात्र हृदय की हूक, आँखों का ख़ालीपन तथा जीवन का खोखलापन शेष रह जाता है। दर्द का, ख़ून के आँसुओं का दरिया बहता रहता है। जो ज़ख़्मी हृदय पर अपने निशान कभी बनाता है तो कभी मिटाता है। वियोग की इन्हीं कोमल संवेदनाओं को रश्मि जी ने क्षणिकाओं के रूप में उभारा है। प्रेम में मिले वियोग की तड़फ की चरम सीमा इनकी कविताओं में सर्वत्र नज़र आती है–

हवा रुके, न मौसम रुके
चाँद सूरज रुके, न धूप-छाँव रुकी
फिर ज़िंदगी क्यों रुकी तुम बिन। [9]

मृत्यु या बिछुड़ने के वैराग्य में लिखी गई ये कविताएँ प्रेम के वैराग्य में मिली गहन पीड़ा का अहसास करवाती हैं। इनका केंद्रिय भाव एकाकीपन की गहन पीड़ा है, जो संवेदनशीलता की चरम स्थिति का बोध करवाती है–

तुम-बिन जिया जाए कैसे?
गए तुम, जान भी साथ ले गए
प्राण-बिन देह है जैसे ...। [10]

रश्मि जी के द्वारा लिखी त्रिवलियों की सहजता में एक गर्भवती महिला की गहन-मंथन-चाल का सा अहसास होता है। इन त्रिवलियों में गहन पीड़ा का अहसास ऐसे पिरा है, जैसे रश्मि जी की स्वयं की पीड़ा उजागर होती हो। इन कविताओं के माध्यम से रश्मि जी ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति की है। ऐसा लगता है जैसे इन त्रिवलियों में उन्हानें अपने वियोग की पीड़ा को ढाल दिया है। ये ऐसी पीड़ा है, जिससे सुखरुह होना मुश्किल ही नहीं, असंभव सा लगता है–

प्यार ने जहाँ ज़िंदगी को बोल दिए
वहीं दर्दीले ज़हर को अमृत बना गले से लगाया
वहीं प्यार के लिए बूँद-बूँद तरसाया। [11]

प्रेम की तीव्रता और उसमें उपजी व्याकुलता इनकी कविताओं में गूँजती है। प्रेम में मिली छटपटाहट के दर्द का सजीव चित्रण रश्मि जी ने अपने काव्य में किया है–

साँस-साँस पर घाव छिले
उठी लहर-लहर, सतरंगी पीड़ा ठहर-ठहर
फूल चुभे, तन-मन कहर-कहर। [12]

अश्रुपुरित नयनों व भरे गले से भी न सँभली पीड़ा व दर्द को रश्मि जी ने 'राग-विराग' के माध्यम से बाँटा है। इन त्रिवलियों के माध्यम से उन्होंने दर्द के रिश्ते को जज़्बाती शक्ल देने का प्रयत्न किया है। जिन-जिन तरल हृदय के क्षणों ने उनकी अंतस्तली को स्पर्श किया व प्रतिध्वनित हृदय को आंदोलित व उद्वेलित किया है, उन्हीं भावनाओं की एक टीस, एक कसक बार-बार इन कविताओं के माध्यम से ध्वनित होती है–

अभी-अभी तो यहीं था
समुद्र-सा उमड़ता, बादलों-सा झूमता बढ़ता हुआ हाथ
अब कहाँ खो गया अचानक। [13]

मनुष्य के जीवन में सुख-दु:ख दोनों के आने-जाने का चक्र चलता रहता है। कवयित्री ने अपने जीवन में व्याप्त पीड़ा व दर्द को 'राग-विराग' काव्य-संग्रह के माध्यम से अभिव्यक्त करके उनसे मुक्त होने का प्रयत्न किया है। दर्द का दरिया इतना गहरा है कि बहने से नहीं रुकता, बहता ही चलता है। यही आँहों का दर्द, एक अजीब-सी तड़प, कुलबुलाहट व छटपटाहट उनकी कविताओं के माध्यम से रुदन के रुप में फूट पड़ी है–

ज़िंदगी सैलाब बनी उमड़ती रही
इसे अश्क नहीं आँहों का समंदर ही समझो
हँसी खिलने को सिसकती रही। [14]

जीवन में प्रियतम के वियोग की पीड़ा मिलने पर जीवन चलाना पड़ता है। दु:खावेग में भी मनुष्य जीवन जीना नहीं छोड़ सकता। उसे चलते ही रहना पड़ता है। महज़ पीड़ा व दर्द को वह साथ लेकर ही जीना चाहता है। 'राग-विराग' काव्य में वियोग में ही मिलन की तलाश

एक अनूठा रूपक बुनती है–

धीरे-धीरे हो जाएगा यक़ीन तेरे न होने का
वैसे कहीं नहीं गए, साथ ही हो दिन-रात
अनकहे सब जानते हैं। [15]

रश्मि जी के काव्य में प्रेम के साथ-साथ जीवन की विशेषताओं, अनिश्चिताओं के बिंब भी मिल जाते हैं–

कोरों तक आ आँसू थम जाते
मन मसोस रह जाते बरस न पाते, बेबस
गोधूलि-बेला में जीवन थमा। [16]

राग-विराग की लघु कविताओं में प्रकृति के बिंबों का भरपूर सहारा लिया गया है। प्रकृति के बिंबों के माध्यम से प्रेम में मिले संयोग व वियोग को बड़े सुंदर ढंग से चित्रित किया है। ये दृश्य कई स्थानों पर बहुत ही सुंदर बन पड़े हैं। वियोग की गहन पीड़ा को प्रकृति बिंब के माध्यम से अभिव्यक्त करती हुई रश्मि जी कहती हैं–

दर्द बन आँसुओं में ढला
पर्वत-सी ऊँची, नदियों से गहरी पीड़ा
मौन रह-रह कर रिसा हो जैसे। [17]

एक खुशबू उड़ी, फिज़ा महकी
क्या तुमने कुछ कहा या मैंने सुना
हवा में बिखरा भीना अहसास। [18]

रश्मि जी की कुछ कविताओं में समर्पण की भावना मंज़िल का पर्याय बन जाती है। प्रेमिका का सारा जीवन अपने प्रेमी के प्रेम के लिए समर्पित दिखाई पड़ता है–

चाहते हैं तोड़ दें ये बंधन
उड़ जाएँ, विचरें, उन्मुक्त आकाश में बन पखेरू
शायद वहीं कहीं मिल जाओ तुम। [19]

इनकी कुछ कविताएँ नारी-पुरुष के प्रेम से परे प्रेम के अलग स्वरूप को भी चित्रित करती हैं–

जिस-जिसने हाथ पकड़ चलाया
खो गए राहों में बारी-बारी तलाश कहाँ करें
रोशनी दे खुद खो गए अँधेरों में? [20]

'प्रेम' जब अपनी उदारता में एक ऐसी ऊँचाई तक पहुँच जाता है, वह भक्ति के समकक्ष खड़ा होकर रूहानियत का स्पर्श देने लगता है। ऐसी ही रूहानियत का स्पर्श रश्मि जी के काव्य 'राग-विराग' की कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है–

ढूँढ़ने की वजह भी न रही
तू हवा, गगन, बदरी, चाँद, आग में
तू अब हर कहीं है, आह! [21]

इस तरह रश्मि जी के 'राग-विराग' का विषय पूर्ण रूप से प्रेम में व्याप्त नारी-पीड़ा पर केंद्रित है। सहज, सरल शिल्प में लिखी कविताओं में नारी की पीड़ा रची-बसी है। 'राग-विराग' की कविताएँ केवल कवयित्री की ही व्यथा नहीं, अपितु असंख्यों का दर्द गीत है, पीड़ा राग है, जिन्हें कभी-न-कभी किसी अंतरंग के विछोह का दु:ख झेलना पड़ा है। यही पीड़ा इनके काव्य में कहीं प्रणय के दर्द के रूप में, कही नारीत्व की विवशता के रूप में उभरकर सामने आती है। यही पीड़ा-राग मात्र व्यष्टि का गान न होकर, समष्टि का विरहगान बन गया है। 'राग-विराग' में लिखी 'त्रिवलियाँ' अंतर्मन से निकलकर बाहरी परिवेश से होती हुई पाठकों के अंतर्मन को झकझोरती हैं तथा पाठकों के साथ एक रागात्मक संबंध स्थापित करती हैं।

संदर्भ

1. एम॰ए॰ अंसारी, नारी तुम क्या, पृ॰ 59; ज्योति प्रकाशन जयपुर
2. एम॰ए॰ अंसारी, महिला और मानवाधिकार, पृ॰ 302; ज्योति प्रकाशन जयपुर
3. प्रो॰ मनहर के॰ गोस्वामी, रामदरश मिश्र के उपन्यासों में नारी, पृ॰ 241; भारत पुस्तक भंडार, सोनिया विहार, दिल्ली
4. डॉ॰ हरिदास राम जी शेण्डे, सुदर्शन, नारी-उत्पीड़न : समस्या एवं समाधान, पृ॰ 52-53; ग्रंथ विकास, सी-37, बर्फ़खाना, राजा पार्क, जयपुर
5. डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन, मेरी कविताई की आधी सदी, पृ॰ 13; राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली
6. रामदरश मिश्र, जल टूटता हुआ, पृ॰ 187; वाणी प्रकाशन, दिल्ली
7. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, पृ॰ 26; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
8. रश्मि मल्होत्रा, राग-विराग, पृ॰ 48; मंजुली प्रकाशन, पी-4, पिलंजी सरोजनी नगर, नई दिल्ली
9. वही, पृ॰ 18
10. वही, पृ॰ 18
11. वही, पृ॰ 21
12. वही, पृ॰ 25
13. वही, पृ॰ 31
14. वही, पृ॰ 28
15. वही, पृ॰ 49
16. वही, पृ॰ 20
17. वही, पृ॰ 20
18. वही, पृ॰ 23
19. वही, पृ॰ 19
20. वही, पृ॰ 49
21. वही, पृ॰ 25

❒ पुत्री श्री पूरनचंद
अनाज मंडी, प्लाट नं॰ 9
पूंडरी (कैथल) हरियाणा 136026
फ़ोन : 09466422903

प्रगतिवादी चेतना के संदर्भ में भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास साहित्य

श्रीमती कविता त्यागी

जो विचारधारा राजनीति के क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन के क्षेत्र में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है, साहित्यिक क्षेत्र में उसको प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रगतिवादी साहित्य सामाजिक वैषम्य के निवारण हेतु मार्क्सवादी विचारधारा को माध्यम के रूप में अपनाता है। 'वस्तुत: प्रगतिवाद का संबंध मार्क्सवादी आंदोलन से है। इसका प्रवर्तन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पाश्चात्य देशों में हुआ था। सन् 1935 में पेरिस में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई थी, जिसने साहित्य के माध्यम से समाजवादी विचारों के प्रचार को साहित्यकार का लक्ष्य घोषित किया। इसकी एक शाखा भारत में भी स्थापित हुई। सन् 1936 में लखनऊ में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का पहला अधिवेशन हुआ, जिसका सभापतित्व उपन्यासकार प्रेमचंद ने किया था । मुंशी प्रेमचंद ने सभापति पद से दिए गए भाषण में घोषित किया कि साहित्य केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं है, उसका लक्ष्य समाज-हित होना चाहिए।'[1] इससे स्पष्ट होता है कि 'प्रगतिवादी साहित्य का उद्देश्य सामाजिक यथार्थ का इस प्रकार चित्रण करना है कि कुरूप, शोषक, सड़ी-गली विसंगतिग्रस्त शक्तियों का पर्दाफ़ाश हो और नई सामजिक शक्तियों के संघर्षों, युयुत्सा और आस्था को बल मिले।'[2] प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करना है। साम्यवादी विचारधारा के अनुसार संसार में केवल दो ही जातियाँ हैं– शोषक और शोषित। प्रगतिवादी साहित्य शोषित वर्ग को शोषक वर्ग के विरुद्ध क्रांति के लिए प्रेरित करता है। यह शोषक वर्ग के वांछनीय ध्वंस के लिए समझौते या हृदय-परिवर्तन की नीति पर विश्वास न करके उसका जड़ से उन्मूलन करने हेतु हिंसात्मक क्रांति का भी समर्थन करता है। 'इसके अनुसार जब तक एक मजदूर ईश्वरवादी, धर्मपरायण, परलोक में विश्वास करने वाला तथा भाग्यवादी रहेगा, तब तक वह हिंसात्मक क्रांति के लिए तैयार नहीं होगा । शोषक वर्ग इन्हीं अध्यात्मवादी मान्यताओं के बल पर शोषित वर्ग पर अत्याचार करता है।'[3] अत: प्रगतिवादी कलाकार धर्म को अफीम का नशा बताता है तथा अपनी रचनाओं में पूँजीपति को घोर स्वार्थी, क्रूर एवं निर्दय के रूप में चित्रित करके किसानों-मजदूरों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने के निमित्त उसकी दयनीय दशा का चित्रण करता हुआ दोनों वर्गों के जीवन की विषमता का उद्घाटन करता है। प्रगतिवादी कलाकार स्त्री को भी शोषितों की श्रेणी में रखता है, जिसका शोषण सदियों से पुरुषों द्वारा किया जाता रहा है। इसलिए यह नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते हुए नारी को पुरुष की ही भाँति स्थूल सृष्टि का एक अंश मानता है। भारत में प्रगतिवादी आंदोलन में प्रेमचंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, पंत, निराला, दिनकर और

नवीन आदि ने तो सक्रिय योगदान दिया ही था, इनके साथ ही अनेक दूसरे साहित्यकारों ने भी इसमें महती भूमिका निभाई, जिनमें से भगवतीचरण वर्मा का योगदान प्रशंसनीय रहा है। वर्मा जी की 'मधुकण', 'भैंसागाड़ी' आदि कविताओं में तथा अनेक उपन्यासों में प्रगतिवादी आदर्शों के अनुरूप किसान-मजदूर के जीवन की विपन्नता, पूँजीपतियों द्वारा शोषण, वर्ग-संघर्ष की चेतना एवं धर्म, ईश्वर के विरोध का चित्रण अत्यंत सरल तथा प्रवाहपूर्ण भाषा में किया गया है, जो वर्मा जी रचित उपन्यासों के अनुशीलन में अनुसंधेय है–

ईश्वर, धर्म, आत्मा आदि का विरोध :

प्रगतिवादी साहित्यकार धर्म-निरपेक्ष राज्य में विश्वास करता है, क्योंकि 'इस धर्म में सामाजिकता वर्णों और जातियों में बिखर गई। मनुष्य ऊँची-नीची जातियों का बन गया और वह सामाजिक विषमताओं का प्रतीक-भर रह गया।'[4] अत: 'कम्यूनिज़्म मज़हब पर विश्वास नहीं करता, कम्यूनिज़्म स्वयं एक मज़हब है। चीन के पास कम्यूनिज़्म के नाम पर केवल एक मजहब है, चीन के निर्माताओं को ईश्वर पर कोई विश्वास नहीं है'[5] बल्कि 'उसके पास बुद्ध अथवा गांधी से कहीं अधिक जबर्दस्त देवता हैं- कार्ल मार्क्स और उसका शिष्य लेनिन।'[6] वर्मा जी के लगभग सभी उपन्यासों में ऐसे चरित्र सृजित किए गए हैं, जिन्हें 'न वेदों पर विश्वास है, न धर्म पर विश्वास है, न ईश्वर पर विश्वास है,'[7] क्योंकि 'आध्यात्मिकता संशयात्मक हो सकती है, भौतिकता नि:संशय सत्य है। इसीलिए चार्वाक नास्तिक है, क्योंकि उसकी कुरूपता नग्न और कुरूप प्रकृति को ही सत्य मानती है। वह आरोपित सत्य का उपहास करती है। वह शुद्ध रूप से भौतिक है। समाज आरोपित और कृत्रिम सात्त्विकता पर स्थित है, इसलिए चार्वाक को मान्यता नहीं मिलती।'[8]

वर्मा जी के औपन्यासिक पात्र मानते हैं कि 'ईश्वर, जिसकी हम पूजा करते हैं, कल्पनाजनित चीज़ है और समाज द्वारा निर्मित है। अब बात आती है अंतरात्मा की, यह भी ईश्वर-प्रदत्त नहीं है वरन समाज द्वारा निर्मित है।'[9] 'जितने धर्म हैं, जितने नियम हैं, जितने देवी-देवता हैं, जितने परमेश्वर हैं, उन सबका निर्माण हमने किया है, यानि मनुष्य ने। ... हम सबमें एक तरह का ख़ून बह रहा है, फिर मनुष्य-मुनष्य में भेदभाव क्यों?'[10] किंतु 'जहाँ मज़हब है, वहाँ मज़हबी भेदभाव होगा ही, मजहबी भेदभाव के साथ मजहबी कट्टरता का होना लाजिमी है और मजहबी कट्टरता के माने हैं ख़ून-ख़राबे; हमें इस मजहब को ही नेस्तनाबूद करना होगा।'[11] ये मजहब, यक़ीनों और अकीदों से लदे हुए हैं ये इंसान के सबसे बड़े दुश्मन हैं। इस मजहब को मिटा दो दुनिया की काफ़ी मुसीबतें हल हो जाएँगी।'[12] क्योंकि 'ये सारी भावनाएँ, यह धर्म-कर्म, यह दया, यह प्रेम, यह त्याग! यह सबका सब ढकोसला है, जिसे समर्थों ने असमर्थों को बहकाने के लिए बनाया है।.... समाज के नियमों का निर्माण शासक वर्ग के व्यक्तियों द्वारा हुआ है और यही शासक वर्ग समाज का शोषक वर्ग है, जिसने अपनी सुविधाओं के लिए अनंतकाल तक शोषतों को अपना शिकार बनाए रखने के लिए यह सब धर्म-कर्म, दया करुणा का जाल बिछाया है।[13]

शोषितों के प्रति सहानुभूति एवं शोषकों की भर्त्सना :

धर्म के समान ही 'यह नैतिकता भी उतना ही बड़ा धोखा है। भावना को स्वार्थ के

साँचे में ढालकर समर्थ असमर्थों पर शासन करता है।'[14] 'जो समर्थ है, सक्षम है, शासक है, उसमें नैतिकता नहीं होती है। ... इतिहास इस बात का साक्षी है कि सदैव से राजा अपनी शक्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए लोगों की हत्याएँ कर देते थे, भयानक युद्धों में अपनी सेनाओं को कटवा देते थे।'[15] नैतिकता के समान ही अहिंसा को भी 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का चरित्र रामनाथ आत्मछलना से भरा सिद्धांत बताता है। 'अनादिकाल से समर्थ असमर्थ पर शासन करता आया है। ... निर्बल सबल का आहार रहा है, और यह अहिंसा निर्बल को अपने को को धोखा देने की प्रवृत्ति है। तुम हिंसा इसलिए नहीं करते, क्योंकि तुम हिंसा करने के काबिल नहीं, तुम स्वयं हिंसा के शिकार हो और कमज़ोर हो, पर तुम सबल को अहिंसा पर विश्वास नहीं दिला सकते। यह अहिंसा आत्मछलना से भरा सिद्धांत है।'[16] इसी प्रकार 'कानून बनता है कायरों के लिए, असमर्थों के लिए, निर्बलों के लिए। क़ानून हमने बनाए हैं, हम समर्थों ने अपनी सुविधा के लिए। हमीं उन्हें बदल सकते हैं, तोड़-मरोड़ सकते हैं, उन्हें दूसरा अर्थ पहना सकते हैं। मैं सबल हूँ, मैं कानून हूँ।'[17] ये शक्तिशाली 'पूँजीपति सबके सब निहायत बेइमान हैं। ये हर तरफ़ चंदा देते हैं। ग़रीबों से जो कुछ लूटते हैं, उसका एक छोटा सा हिस्सा विभिन्न राजनीतिक पार्टियों को चंदे में देकर अपनी बेइमानी और लूट पर वैधानिकता की मुहर लगा देते हैं ।'[18] 'ग़रीबों का ख़ून चूसकर ये लंबा मुनाफ़ा उठाते हैं,'[19] किंतु जो मजदूर ख़ून-पसीना बहाकर इन लोगों की दौलत बढ़ा रहे हैं, क्या उन्हें ज़िंदा रहने का भी हक़ नहीं है?'[20] अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए ये समर्थ लोग ग़रीबों के प्रति झूठी दया व दान का प्रदर्शन करते हैं, किंतु सत्य तो यह है कि 'ग़रीबी और बेबसी वहीं होती है, जहाँ शोषण है, जुल्म है।... अगर यह जुल्म और शोषण बंद कर दिया जाए तो इस दान-दया की ज़रूरत ही नहीं होगी।'[21] 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में चित्रित शोषण व जुल्म का एक उदाहरण देखिए, जिसमें 'बकाया लगान की चुकौती में ज़िलेदार साहिब रामदीन के बैल छीने लिए जा रहे थे। रामदीन द्वारा विरोध किये जाने पर मैनेजर साहिब ने रामदीन को बुरी तरह पिटवाया, बेचारे को अधमरा करके छोड़ा।'[22] इस प्रकार 'मनुष्य का ख़ून चूसकर ही पूँजीपति पनपता है। उसके ही शोषण के कारण लाखों आदमी भूखे तड़पकर मर जाते हैं। अपने स्वार्थ के लिए वह झूठ बोलता है और साथ ही लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए वह खुले हाथों दान करता है।'[23] 'ब्राह्मण तथा बनिये की यह अहिंसा ऐसी भयानक सामाजिक हिंसा में बदल गई है, जिसकी मिसाल दुनिया में नहीं मिलेगी। ब्राह्मण सामाजिक शोषण का प्रतिनिधि है, बनिया आर्थिक शोषण का प्रतिनिधि है। इस धार्मिक ढोंग-आडंबर, जातिवाद-छुआछूत ने जहाँ मनुष्यों को पशुओं से भी गया-बीता बना दिया है– कितनी भयानक हिंसा है इस सबमें। तुम गाय की पूजा कर सकते हो, उसके गोबर से अपनी रसोई लीप सकते हो, तुम कुत्ता-बिल्ली अपने घरों में पाल सकते हो, लेकिन मनुष्य को तुमने अछूत बना दिया है, उसके स्पर्श-मात्र से तुम्हें नहाना पड़ता है, तुम्हें अपने को शुद्ध करना पड़ता है– यह तो है ब्राह्मण की अहिंसा। पूँजीपति के रूप में तुम मंदिर बनवा सकते हो, धर्मशालाएँ बनवा सकते हो, तुम सदा व्रत बाँट सकते हो, लेकिन तुम सूद दर सूद में मनुष्य का रक्त चूस सकते हो, लंबे मुनाफे के लिए तुम समाज में अभाव और दुर्भिक्ष की स्थिति पैदा कर सकते हो– यह है बनिये की अहिंसा।'[24] इस प्रकार इनके खान` व दिखाने के दाँतों में अंतर होने के कारण देश में भूखे मरने वाले किसानों-मजदूरों की कमी नहीं है। 'दिल्ली में जामा मस्जिद

के पीछे नरकतुल्य बस्तियाँ हैं, जहाँ लोग कीड़ों-मकोड़ों की भाँति रहते हैं। वहीं दिल्ली-भर में झुग्गियाँ फैली हुई हैं, जो जानवरों के बाड़ों से भी गयी-बीती हैं। हज़ारों आदमियों के ऊपर केवल आसमान की छाया है। फुटपाथों, ख़ाली बरामदों और खुले पार्कों में लोग सो जाते हैं।'[25] 'ऊँचे तबके के लोग इस सड़ांध और गंदगी को देखना नहीं चाहते हैं, उसके अंदर जो इन्होंने जीवित मृत्यु भर दी है, वही सबसे ज़्यादा भयानक है।'[26] 'रोज़ सुबह कंगालों का झुंड उस दिन जीवित रहने की चिंता को लेकर निकलता है; दर-दर की ठोकरें खाते हुए आशीर्वाद बाँटते हुए वह उस नगर के चक्कर लगाता है। उसके सामने संपन्न आदमी हँसते हुए और अठखेलियाँ करते हुए निकलते हैं, और वह कंगालों का झुंड उन लोगों को देखता है, पर उनसे ईर्ष्या नहीं करता; वह उनकी जय मनाता है, उनके सामने नाक रगड़ता है। उसे अपने जीवित रहने का अधिकार पता नहीं-वह लुटेरों की कृपा पर ही अपने जीवन को निर्भर समझता है, और रात के समय मैदानों में, सड़कों पर, नालियों पर, जहाँ भी जगह मिल जाए, पड़ रहता है, सुबह जीवित उठकर कुत्तों की ज़िंदगी बिताने के लिए, या रात में ही भूख और ठंड से मर जाने के लिए।'[27] वर्मा जी के उपन्यासों में इस प्रकार के वेदनापूर्ण बिंबग्राही वर्णनों के चित्र बहुलता से प्राप्त हैं, जिनमें किसानों, मजदूरों, भिखारियों आदि के जीवन-यथार्थ की नग्न अभिव्यक्ति के साथ स्त्री के प्रति भी यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया है, तथा उसकी दयनीय दशा का चित्रण करते हुए उसको पुरुषों के समकक्ष खड़ा करने का प्रयास किया है, जिसमें उन्हें पूर्णतः सफलता प्राप्त हुई है।

नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण :

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर इस प्रकार की घटना-संयोजना एवं चरित्र-सर्जना की है, जिनसे पता चलता है कि स्त्री युगों-युगों से पुरुषों द्वारा शोषित-पीड़ित रही है, संबंधों के संदर्भ में वह पुरुष चाहे पिता हो, पति हो, भाई हो, मित्र हो अथवा समाज का कोई अन्य पुरुष। स्त्री-जाति का प्रथम बार जब पुरुष के रूप में किसी से परिचय होता है, तब वह पुरुष पिता होता है, जिसके प्रति वह पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धायुक्त होती है, किंतु पिता तथा भाई के रूप में भी पुरुष द्वारा स्त्री का शोषण निंदनीय है। केसरबाई के शब्दों में– 'वह यशवंत हमारा सगा भाई पशु है, पूरा पशु। जब पी लेता है तब गाली बकता है, मारपीट करता है। वो हमारा बाप, वो भी पापी है, तभी अपनी लड़की से धंधा कराया।'[28] 'वे लोग नहीं चाहते कि केसरबाई शादी करे। उसकी कमाई पर वे लोग मोज करना चाहते हैं।'[29] विवाह के पश्चात पुरुष के रूप में पति से स्त्री का परिचय होता है, जहाँ उसके साथ पशुओं से भी निकृष्ट व्यवहार होता है। 'प्रश्न और मरीचिका' में उदय बताता है कि 'पंद्रह साल पहले की उस रात की एक धुँधली-सी याद अब भी मेरे अंदर है जब बंबई में मेरे पिता ने हण्टर मार-मारकर मेरी माँ को अधमरी कर दिया था। वह कमरे के अंदर बेतरह चीख़ रही थी।'[30] ससुराल में इसी प्रकार के अत्याचार चमेली पर होते हैं। 'चमेली की पचपनवर्षीय सास ने अपने हाथ का बेलन भरपूर ज़ोर से चमेली की पीठ पर मारा और पति दमड़ी की छड़ी उसके सिर पर पड़ी। वह नीचे झुकी थी कि उसकी पीठ पर गद्द से दमड़ीलाल के पिता छदम्मीदाल की एक लाठी पड़ी। इस बीच में दमड़ी के छोटे-छोटे भाई चमेली पर टूट पड़े। सबने चमेली को ज़मीन पर पटककर बेतहाशा पीटा। पड़ोस वालों ने जब चमेली पर से ख़ानदान वालों को हटाया तो पता

चला कि चमेली की कोहनी फूट गई है, सिर पर दो गुलमें पड़ गए हैं और हाथ छिल गया है।'[31] अनेक अवसर ऐसे भी आते हैं जब ससुराल वाले स्त्रियों को घर से निकाल देते हैं। 'जगतप्रकाश की बड़ी बहन अट्ठारह वर्षीय अनुराधा विवाह के छः महीने पश्चात विधवा हो गई तो उसकी ससुराल वालों ने उसे अपने घर से निकाल दिया। अब उसकी ममता का एकमात्र केंद्र जगतप्रकाश ही था।'[32] 'भूले-बिसरे चित्र' में विद्या को तो पति की उपस्थिति में ही घर से निकाल दिया गया है। 'विद्या की देह जगह-जगह से फूट गई है। विंदेश्वरी प्रसाद ने कहा– नवल, इस हरामज़ादी को अंदर ले जाकर इसका असबाब बँधवाओ। .... यह दौड़कर अपने कमरे में घुस गई, नहीं तो मैं इस हरामज़ादी की जान ले लेता। आप लोग इसे अपने साथ ले जाइए, नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा।'[33] इतना उत्पीड़न होने के पश्चात भी स्त्री पुरुष के प्रति श्रद्धानत रहती है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में उमानाथ कहता है कि 'मेरे प्रति उसका प्रेम ठीक वैसा ही है जैसा एक कुत्ते का प्रेम अपने स्वामी के प्रति होता है'[34] किंतु फिर भी 'लगातार उमानाथ की सेवा केवल एक दासी की भाँति करना महालक्ष्मी ने अपना धर्म बना रखा था।'[35] पुरुष को एक से अधिक विवाह करने की स्वतंत्रता होना भी स्त्रियों की दशा को दयनीय बनाता है, जिसका चित्रण वर्मा जी ने अपने कई उपन्यासों में किया है। स्त्रियाँ न तो पुरुष को कई विवाह करने से रोक सकती हैं और न स्वयं ही एक से अधिक विवाह कर सकती हैं। इसलिए पुरुष कहता है कि 'मैं दूसरा विवाह करूँगा और तुम मुझे रोक नहीं सकोगी। हिंदू लॉ के अनुसार मैं जितने विवाह करना चाहूँ, कर सकता हूँ।'[36] ऐसी अवस्था में स्त्री निस्सहाय होकर सब-कुछ सहन करने के लिए विवश होती है और कहती है कि 'हम स्त्रियों के लिए सौत कोई नई चीज़ तो नहीं। अपना दुर्भाग्य मुझे वहन करना होगा।'[37] यह दुर्भाग्य स्त्रियों को केवल घर के अंदर ही वहन नहीं करना पड़ता, बल्कि घर के बाहर भी शिकारी भेड़िये के समान पुरुष उन पर दृष्टि गड़ाए रहते हैं। 'हमारे समाज में ग़ुलामी के बंधनों में जकड़ी हुई स्त्री, उसके लिए यही बहुत है कि वह साहित्य के क्षेत्र में आने का साहस करे। इसी में उसे समाज की कटु आलोचना सहन करनी पड़ती है, और इस हालत में कि जब पुरुष लोग उसकी कविताओं पर ऊटपटाँग जोड़े, तब कवयित्री किस लांछना की भागी बन सकती है– इसको आप समझ सकते है।[38] इसी लांछन के भय से वह समाज के किसी कार्यक्रम में स्वतंत्रतापूर्वक प्रतिभागी नहीं बन पाती है। 'अस्थाना साहब के लड़के चंद्रप्रकाश ने माया की बदनामी इसीलिए करनी चाही, क्योंकि माया कॉलिज के कार्यक्रमों में बिना किसी हिचक के भाग लेती थी, वह अच्छा गाती थी, अच्छा अभिनय करती थी।'[39] इस प्रकार वर्मा जी ने स्त्री की दयनीय स्थिति का सफलतापूर्वक चित्रण किया है तो साथ ही ऐसे पुरुष-पात्रों की भी सर्जना की है, जो स्त्री को अपने समकक्ष खड़ा करके उन्हें समान अधिकार देने-दिलाने की वकालत करते हैं। उनके सभी उपन्यासों में पुरुषों द्वारा एवं समाज द्वारा उत्पीड़ित स्त्रियों को अंत में शक्ति से संपन्न चित्रित किया गया है। यह शक्ति कहीं भी ऊपर से आरोपित प्रतीत नहीं होती है, अपितु परिस्थितियों से संघर्ष करते-करते आत्मप्रेरणा से वे अपने अंदर की शक्ति का विकास करती है।

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि वर्मा जी एक प्रगतिवादी साहित्यकार हैं। उनके उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतनायुक्त साहित्यानुरूप ईश्वर, धर्म, आध्यात्मिकता आदि का खंडन करते हुए शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि रखी गई है। शोषितों की समस्याओं को

आवाज़ प्रदान करने हेतु उनके यथार्थ जीवन को चित्रत हुए शोषकों की भर्त्सना की गई है एवं शोषकों के क्रूर आचरण का अनावरण किया गया है। स्त्री के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण रखते हुए एक ओर उसके उत्पीड़न का चित्रण है तो दूसरी ओर उसे पुरुषों से अधिक शक्तिशाली, पुरुषों से अधिक लब्धप्रतिष्ठ, पुरुषों की दिग्दर्शिका, रक्षिका आदि के रूप में चित्रित करके पीड़ितों की आस्था एवं युयुत्सा को बल प्रदान किया है।

संदर्भ

1. डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त : 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' संस्करण 2007 ई॰, लोकभारती प्रकाशन, पृ॰ 124
2. डॉ॰ नगेन्द्र : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संस्करण 2007 ई॰, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, पृ॰ 624
3. डॉ॰ गणपतिचंद्र गुप्त : 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' संस्करण 2007 ई॰, लोकभारती प्रकाशन, पृ॰ 124
4. भगवतीचरण वर्मा : 'प्रश्न और मरीचिका' संस्करण 2003 ई॰, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 75
5. वही, पृ॰ 218
6. वही, पृ॰ 228
7. भगवतीचरण वर्मा : 'सीधी-सच्ची बातें' संस्करण 2005 ई॰, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 107
8. वही, पृ॰ 197
9. भगवतीचरण वर्मा : 'चित्रलेखा' संस्करण 2006 ई॰, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 32
10. भगवतीचरण वर्मा : 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' संस्करण 2005 ई॰, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 121
11. भगवतीचरण वर्मा : 'सीधी-सच्ची बातें', पृ॰ 119
12. वही, पृ॰ 171
13. भगवतीचरण वर्मा : 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', पृ॰ 363
14. भगवतीचरण वर्मा : 'वह फिर नहीं आई' संस्करण 2001 ई॰, पृ॰ 37
15. भगवतीचरण वर्मा : 'सामर्थ्य और सीमा' संस्करण 2004 ई॰, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 185
16. भगवतीचरण वर्मा : 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' पृ॰ 116
17. वही, पृ॰ 282
18. भगवतीचरण वर्मा : 'प्रश्न और मरीचिका', पृ॰ 154
19. वही, पृ॰ 35
20. भगवतीचरण वर्मा : 'सीधी-सच्ची बातें', पृ॰ 56
21. वही, पृ॰ 168-169
22. भगवतीचरण वर्मा : 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', पृ॰ 257
23. वही, पृ॰ 363
24. भगवतीचरण वर्मा : 'सीधी-सच्ची बातें', पृ॰ 29
25. भगवतीचरण वर्मा : 'प्रश्न और मरीचिका', पृ॰ 302
26. भगवतीचरण वर्मा : 'सीधी-सच्ची बातें', पृ॰ 61
27. भगवतीचरण वर्मा : 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', पृ॰ 54
28. भगवतीचरण वर्मा : 'प्रश्न और मरीचिका', पृ॰ 136

29. वही, पृ॰ 357
30. वही, पृ॰ 22
31. भगवतीचरण वर्मा : 'आख़िरी दाँव' संस्करण 1994 ई॰, राजपाल एंड संस, पृ॰ 10
32. भगवतीचरण वर्मा : 'सीधी-सच्ची बातें', पृ॰ 8
33. भगवतीचरण वर्मा : 'भूल-बिसरे चित्र' संस्करण 2006 ई॰, राजकमल प्रकाशन, पृ॰ 298
34. भगवतीचरण वर्मा : 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', पृ॰ 158
35. वही, पृ॰ 377
36. भगवतीचरण वर्मा : 'सीधी-सच्ची बातें', पृ॰ 394
37. भगवतीचरण वर्मा : 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', पृ॰ 163
38. वही, पृ॰ 188
39. भगवतीचरण वर्मा : 'थके पाँव'

❐ **एच**-7, 9/207, **सैक्टर**-3, **राजेंद्र नगर**
साहिबाबाद, ग़ाज़ियाबाद
मो॰ 9999752457, 9899897459

लोक और शास्त्र : अन्योन्याश्रित परंपरा

गोविंदप्रसाद वर्मा, शोध-छात्र
साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

लोक और शास्त्र के निर्मिति की आधारभूमि तत्त्वत: अभिन्न है। दोनों मानव-जीवन की अनुभूतियों, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति समान रूप से करती हैं। लोक और शास्त्र दोनों मनुष्य-सापेक्ष धारा हैं; लेकिन दोनों के माध्यम अलग-अलग हैं। साहित्य के स्तर पर लोक की भाषा, शैली, विषयवस्तु सामान्य जनता के निकट होती है, इसलिए उसकी संस्कृति को सरल, सहज और स्वच्छंद भाव से अभिव्यक्त करती है, जबकि शास्त्र में अनुबंधों तथा प्रतिबंधों आदि के कारण लोकजीवन की सहजता और स्वच्छंदता बाधित होती है।

भारतीय परंपरा में लोक और शास्त्र की धारा समानांतर रूप में निरंतर प्रवाहित रही है। शास्त्र में लोक की और लोक में शास्त्र की अनुगूँज बराबर सुनाई देती है। जब-जब शास्त्र में रूढ़िबद्धता और जड़ता का प्रवेश हुआ, तब-तब लोक ने उसे संजीवनी प्रदान की और निरंतर अपनी उपस्थिति का एहसास कराया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है– 'पंडितों की बँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्यधारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छंद और प्राकृतिक भावधारा भी 'गीतों' के रूप में चलती रहती है, ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत काल से स्थिर चली आती हुई पंडितों की साहित्य-भाषा के साथ-साथ लोकभाषा की स्वाभाविक धारा भी बराबर चलती रहती है। जब पंडितों की काव्यभाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है, तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य-परंपरा में नया जीवन डालता है। प्राकृत के पुराने रूपों से लदी अपभ्रंश जब लद्धड़ होने लगी, तब शिष्ट काव्य प्रचलित देशी भाषाओं से शक्ति प्राप्त करके ही आगे बढ़ सका। यही प्राकृतिक नियम काव्य के स्वरूप के संबंध में भी अटल समझना चाहिए। जब-जब शिष्टों का काव्य-पंडितों द्वारा बँधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा, तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छंद बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन-तत्त्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।'[1] शुक्ल जी ने सूरदास पर लिखते हुए भी बताया है कि गीतों की परंपरा सभ्य और असभ्य सभी जातियों में प्राचीनकाल से चली आ रही है और ये किसी भी देश की काव्यधारा के मूल प्राकृतिक स्वरूप का परिचय देती है, इसलिए इसके संग्रह की बात भी

शुक्ल जी उठाते हैं- 'देश की अंतर्वर्तिनी मूलधारा के स्वरूप के ठीक-ठीक परिचय के लिए ऐसे गीतों का पूर्ण संग्रह बहुत आवश्यक है।'[2]

अज्ञेय ने भी अपने एक व्याख्यान– 'भारतीय साहित्य तुलनात्मक दृष्टि' में इस बात की तरफ़ संकेत किया है कि वाचिक परंपरा की एक भारतीय जीवन दृष्टि रही है, जो संस्कृत काव्य-परंपरा से भी प्राचीन है तथा उसके समानांतर प्रवाहित होती रही है, लेकिन हम लोग उसकी लगातार उपेक्षा किए हैं। अज्ञेय का मानना है कि लोकसाहित्य का संग्रह तुलनात्मक भारतीय साहित्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है– 'मैं तो मानता हूँ कि एक भारतीय जीवन-दृष्टि थी और है, सदैव रही, कि वह संस्कृत से भी पहले से चली आई है, संस्कृति में भी बनी रही। पश्चिम से टकराहट होने तक पुनः संपुंजित हो गई कि वह कभी नष्ट नहीं हुई, बिखरी और संचित हुई लेकिन निरंतर बनी रही। यह तो यह है कि इस मत के समर्थन के लिए पूरी सामग्री प्रस्तुत करना आज कठिन है, क्योंकि वह सामग्री अधिकांशतः वाचिक परंपरा में रही और वाचिक परंपरा की हम लगातार उपेक्षा करते रहे, उसमें भी अपने पश्चिम के नक़लचीपन के कारण। लेकिन मेरा विश्वास है कि उस साक्ष्य का संग्रह अभी संभव है और मैं यह भी मानता हूँ कि तुलनात्मक भारतीय साहित्य के लिए भी और एक-एक भाषा के अनुशीलन में भी इस वाचिक साक्ष्य का संग्रह करके उसकी रक्षा का समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।'[3] अगर हम वैदिक और लौकिक साहित्य की बात करें तो वहाँ का भी अधिकांश साहित्य लोक का हिस्सा रहा है। अथर्ववेद का कुंताप सूक्त और यजुर्वेद के अश्वमेध कांड में 18 मंत्र तथा महाभारत का यक्ष-प्रश्न भी इसी शैली में रहा है। डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस संबंध में लिखा है- 'निश्चय ही इनमें साहित्यकार ने लोकसाहित्य का संकलन किया है। संग्रह करने वाले वेदव्यास स्वयं कुरू जनपद के थे और वहाँ के लोकसाहित्य से भली-भांति परिचित थे। जब वे ऋषि परिवारों में प्रणीत विशिष्ट साहित्य का संग्रह कर चुके तो उनका ध्यान लोक में फैले हुए गानों पर भी गया जान पड़ता है। वे ही कुंताप सूक्त हैं।'[4] वे आगे लिखते हैं– 'महाभारत के यक्ष प्रश्नोत्तरी और यजुर्वेद के ब्रह्मेद्य दोनों एक ही लोकसाहित्य के अंग थे, जहाँ से संहिताकार और महाभारतकार ने उनका संग्रह किया।'[5]

नंदकिशोर आचार्य भी अग्रवाल जी के इस मत से सहमत हैं- 'अथर्व परंपरा को वेद की हैसियत मिल जाना भारतीय परंपरा में लोक की स्वीकृति का सबसे ज्वलंत उदाहरण है।'[6] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तो पूरे मध्यकालीन साहित्य को ही लोकसाहित्य मानने की वकालत करते हैं- 'सच पूछा जाए तो कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर मध्ययुग के संपूर्ण देशीभाषा के साहित्य को लोकसाहित्य के अंतर्गत घसीटकर लाया जा सकता है।'[7] अर्थात् लोक की परंपरा परिष्कृत और परिमार्जित होकर शास्त्र के रूप में मान्य हुई और प्रतिष्ठित भी।

ऐसा नहीं है कि, यह प्रक्रिया एक तरफ़ा रही। शास्त्र ने भी जिन सिद्धांतों और मूल्यों का निर्माण किया, उसका लोक ने पूरी आत्मीयता से स्वीकार और संवहन किया। शास्त्र के सिद्धांत को लोक ने व्यवहार में उतारकर रक्षा की, वहीं लोकचार का भी आग्रह है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने इस संबंध में एक उदाहरण दिया है– 'एक व्रत होता है 'पिड़िया' मार्गशीर्ष की अमावस्या के बाद आने वाली प्रतिपदा के दिन किया जाता है। यह व्रत पंक्ति पावन ब्राह्मणों की सुहागिनें रखती हैं। इस दिन भित्ति पर सोलह कलाएँ पिंड रूप में अंकित होती हैं। चावल

की पीठी के सात पिंड बनाए जाते हैं। ये सात पिंड पकाए जाते हैं, अर्पित किए जाते हैं, पुनः खाए जाते हैं। पर खाते समय इसका ध्यान रहता है कि कहीं से भी किसी प्राणी की आवाज़-मनुष्य पशु या पक्षी की आवाज न सुनाई पड़े। बाहर की ऐसी आवाज़ रोकने के लिए झाँझ, मजीरा, ढोल बजाए जाते हैं। इस व्रत का शास्त्रीय विधान कोई नहीं है या लुप्त हो गया है; पर इस व्रत के अर्थ की तह में जाएँ तो मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा वैदिक वर्ष का आरंभणीय अहन् (दिन) है। वह प्रजापति के सृष्टि-चक्र के नवावर्तन का दिन है। इस सृष्टि-यज्ञ की सात आहुतियाँ हैं। सात आहुतियों के बाद पूर्ण एकात्मता होती है। सोम या चंद्र की कला सूर्य में समाकर अमृता बनती है। उस स्थिति में वाक् का भीतर जाना ही उचित है। इस प्रतीकार्थ को एक लोकानुष्ठान बहुत गंभीरता और पवित्रता से सँजोए हुए है।'[8] विद्यानिवास जी की व्याख्या से तो मैं सहमत हूँ; लेकिन इस बात से असहमत हूँ कि यह व्रत या त्यौहार किसी एक जाति-विशेष का रहा है। उत्तर भारत की अधिकांश जातियों में यह व्रत या त्यौहार मनाया जाता है; इसके स्वरूप में भिन्नता हो सकती है।

लोक ने शास्त्र के सैकड़ों शब्दों को किस प्रकार उत्स के समय के मूल अर्थ को सुरक्षित रखा इसकी सटीक और गंभीर व्याख्या डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल करते हैं जब वे 1944 ई॰ में ग़ाज़ियाबाद के दौलतपुर और रामपुर गाँव के खचेड़ू और चिम्मन के मुख से क्रमशः बर्तन की रेखाएँ आँकने के लिए 'लिखना' और भीत का 'चित्र' के लिए 'लिखने' शब्द प्रयोग सुना तो आश्चर्यचकित हो गए– 'यह बड़े हर्ष की बात थी कि ठेठ बोली में चित्रण के लिए 'लिखना' जैसी प्राचीन और सुंदर धातु आज भी ज्यों की त्यों जीवित है। केवल साहित्यिक हिंदी में हमने उसे खो दिया है।'[9]

लोक और शास्त्र एक-दूसरे के पूरक है। समयानुकूल एक-दूसरे में सजीवता और जीवंतता प्रवाहित करते रहे और परंपरा इनकी संवादी क्रियाशीलता को ग्रहण करके स्वयं संवादिनी होती रही। डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र का कथन इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है– 'रामायण और महाभारत की रचना भी आगम के रूप में ही हुई। नाराशंसी गाथाओं की आकलित स्मृति ने वाल्मीकि और व्यास जैसे तपस्वी वेद विद्यापारगों के भीतर एक स्रष्टा का आवाहन किया कि मुझे लो और पंचम वेद रचो। तब उनके भीतर स्रष्टा जगे, भारत का नया सावित्र रूप सामने आया। फिर सावित्र काव्य जनकंठ में बसकर महाभाव ग्रहण करते-करते इस देश की सनातन लीलागाथा बन गया, इसी देश की क्यों, सभी भाव-सहभागी देशों की सनातन लीलागाथा बन गया। उस लीलागाथा से फिर उद्भूत हुए 'गीतगोविंद' और 'रामचरितमानस' जैसे प्रबंध, जो अपने-आपमें संयोजन-कौशल के कारण और मूल प्रथम धर्मों की सही पहचान के कारण वेद का प्रमाण्य पा गए।'[10]

निश्चित रूप से लोक और शास्त्र की विनिमय और उभयमुखी प्रक्रिया ने एक-दूसरे को समृद्ध किया है। आधुनिक काल में भी यह अनवरत प्रवाह जारी है– 'उन्नीसवीं सदी के एक अनाम धार्मिक नेता स्व. 'श्रद्धानंद फुल्लौरी' का लिखा आरती गीत 'जय जगदीश हरे' गाया जाता है। इन्हें शास्त्र का गौरव प्राप्त है, क्योंकि इसमें शास्त्र विधि का अनुवर्तन है, इनमें शास्त्र लोक के साथ जुड़कर प्रखर हुआ है।'[11]

सामान्य जनता के लिए 'लोक', वेद और अध्यात्म के समकक्ष है, वह अपने

आचार-विचार का प्रमाण 'लोक' से ही प्रस्तुत करता है। नाट्यशास्त्रकार ने भी वेद और अध्यात्म के समकक्ष 'लोक' को प्रमाण माना– 'लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्।'[12]

शास्त्र और लोक के प्रवाह और प्रभाव के उपरांत, अब उसकी विशेषताओं या लक्षणों को जान लेना आवश्यक है। लोक का सर्वप्रमुख केंद्रीय लक्षण है– सामुदायिकता। लोक की रचनाओं– लोकगीत, कहावतें, गाथाएँ, पहेलियाँ आदि का निर्माता अज्ञात रहता है, अर्थात् अज्ञात-नामतत्त्व इसकी प्रमुख विशेषता हुई। यह प्रश्न उठाया जाता है कि रचनाकार का नाम ज्ञात हो जाने पर कोई लोकगीत, लोककथा या पहेली लोकसाहित्य नहीं रह जाता; लेकिन ऐसा नहीं है, ज्ञात रचयिता होने पर भी, लोकस्वीकृति और सामुदायिकता है तो वह रचना बार-बार वाचन या गायन के प्रस्तुतीकरण से पुनः सृजित हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है निरंतर परिवर्तनशीलता से रचनाकार गौण होकर समुदाय में रूपांतरित हो जाता है। दिनेश्वर प्रसाद का मत है– 'लोकसाहित्य, जो व्यक्तियों की रचना है, व्यक्ति-रचनाकार से अलग हो जाने पर अपने मूल रूप में नहीं रह जाता। यह पूरे समुदाय का हो जाता है और उसके सदस्यों द्वारा इस सीमा तक परिवर्तित हो जाता है कि इसमें किसी ख़ास व्यक्ति के व्यक्तित्व की छाप को नहीं ढूँढ़ा जा सकता।'[13] लोक में अमीर खुसरो, घाघ, भड्डरी, ईसुरी, सबलसिंह, लाल बुझक्कड़ आदि ऐसे नाम हैं, जिनके नाम से कहावतें और पहेलियाँ लोक में आज भी प्रयुक्त होती है; फिर भी सामुदायिक चेतना की अंग बन चुकी है।

शिष्ट, नागर या आभिजात्य जो भी नाम दें, इसका रचयिता व्यक्ति-विशेष होता है और नाम ज्ञात रहता है भले ही वह अपनी अनुभूति या संवेदना को रचना में व्यापक फलक प्रदान करते हुए सार्वभौम और सार्वकालिक बनाने की कोशिश करें। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी भी 'लोक' को सामूहिक और शिष्ट को व्यक्तिगत रचना मानते हैं– 'लोक' समूह-मानस के प्रवाह में सक्रिय रहता है- वहाँ अचेतन समष्टि मानस प्रवर्तक रहता है– नागर में भी वह नहीं रहता-ऐसा तो नहीं, पर व्यक्ति द्वारा अर्जित ज्ञान से आच्छन्न रहता है।'[14]

लोक का संबंध 'बोली' और शिष्ट या शास्त्र का संबंध 'भाषा' से होता है– हर भाषा किसी-न-किसी स्तर पर बोली का ही परिष्कृत रूप होती है। भाषा परिष्कृत और परिमार्जित होने के साथ-साथ व्यापक भी होती जाती है। भारतीय शिष्ट साहित्य की परंपरा में नागर व्यक्ति के लिए संस्कृत भाषा और सामान्य व्यक्ति और स्त्रियों के लिए प्राकृत भाषा का प्रयोग मिलता है। यह परंपरा वेद, रामायण, महाभारत से लेकर कालिदास, शूद्रक और राजशेखर के ग्रंथों में दृष्टिगोचर होता है। 'वाल्मीकि रामायण' का प्रसंग है– जब हनुमान सीता की खोज करते-करते लंका में अशोक वाटिका पहुँचे तो सोचने लगे कि यदि संस्कृत भाषा का प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जाएगी–

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्,
रावणं मान्यमानां मां सीता भीता भविष्यति। [15]

कालिदास ने 'कुमारसंभव' में पार्वती के विवाह के अवसर पर, सरस्वती द्वारा शिव की प्रशंसा संस्कृत भाषा में और पार्वती की स्तुति प्राकृत भाषा में कराया है–

द्विधा प्रयुक्तेन च वांगमयेन, सरस्वती तन्मिथुनं नु नाव,
संस्कारयूतेन वरं वरेण्यं, वधूं सुखग्राह्य-निबन्धनेन। [16]

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि शिष्ट या नागर के लिए 'भाषा' का प्रयोग और सामान्य जन के लिए 'बोली' का प्रयोग होता रहा है। इसके अलावा बोलियों में इनका साहित्य या अभिव्यक्ति समानांतर रूप से प्रवाहित होती रही है।

लोक का अर्थ, वाचिक परंपरा होता है। लोक का साहित्य या संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा से आगे बढ़ता है। इसका कोई लिखित साहित्य नहीं होता, जबकि शास्त्र परंपरा लिखित होती है। शास्त्र-परंपरा 'पुरुष-प्रधान' रही है, इसके संवहन और संरक्षण में स्त्रियों की भागीदारी कम रही है, जबकि लोक-परंपरा में स्त्रियों और पुरुषों की भागीदारी लगभग समान रही है, किसी-किसी पक्ष में स्त्रियों की प्रधानता रही है। अतः लोकसाहित्य को 'स्त्री-प्रधान' भी कह सकते हैं।

लोक में लोकजीवन की आंचलिक अभिव्यक्तियों की प्रमुखता रही है। इसका कारण 'कोस-कोस पर पानी बदले चार-कोस पर बानी' रहा है, क्योंकि अंचल-विशेष के परिवर्तन से 'बोली' और 'संस्कृति' में परिवर्तन होगा, तो निश्चित रूप से अभिव्यक्ति बदलेगी। शास्त्र की अभिव्यक्ति सार्वभौमिक होती है। ऐसा नहीं कि आंचलिकता शास्त्र में नहीं होती, वहाँ आंचलिकता सार्वभौम रूप में रूपांतरित हो जाती है।

लोक में तर्क का अभाव और निर्णय तात्कालिक होता है। वह अविश्वसनीय चीज़ों पर भी विश्वास कर लेता है। भूत-प्रेत, जादू-टोना, झाड़-फूँक, टोना-टोटका आदि के प्रति लोकमानस में अटूट विश्वास है। यही लोकविश्वास लोक के जीने का आधार और उल्लास भी है। डॉ॰ कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकविश्वास को आदिवासियों के जीवन की आधारशिला कहा– 'आदिमवासियों की आस्था इन विश्वासों के ऊपर इतनी अधिक है कि उनका जीवन ही इन्हीं के द्वारा परिचालित होता है। लोकविश्वास आदिवासियों के जीवन की आधारशिला हैं, जिन पर उनका समाज आश्रित है।'[17] लोकविश्वास आदिवासियों में मात्रात्मक रूप से अधिक है, जबकि सामान्य जन में कम। धैर्य के अभाव के कारण लोक का निर्णय तात्कालिक होता हैं। इसी तात्कालिकता के कारण लोकविश्वास बनने-बिगड़ते रहते हैं। तात्कालिक निर्णय जब दीर्घकाल तक न्यायसंगत बना रहता है तो वह दृढ़ विश्वास बन जाता है।

लोक का लोकविश्वास दीर्घकाल तक जब बना रहता है तो शास्त्र उसे ग्रहण कर लेता है और उसे अटल नियम के रूप में प्रस्तुत करता है। शास्त्र का निर्णय कहीं भी तात्कालिक नहीं होता, वह लंबे अनुभव का निचोड़ होता है। लोक और शास्त्र के विवेचन से जो विशेषताएँ उभरकर सामने आई है, उन्हें निम्नलिखित बिंदुओं के रूप में देख सकते हैं–

1. लोक का रचना-प्रर्वतक अज्ञात और सामुदायिक होता है, जबकि शिष्ट का ज्ञात और व्यक्तिगत होता है।
2. लोक पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा से संवर्धित और संरक्षित होता है; लेकिन शास्त्र लिखित होता है और गुरु-शिष्य परंपरा से आगे बढ़ता है।
3. लोक के संप्रेषण और अभिव्यक्ति का माध्यम 'बोली' है, जो सरल, सहज और स्वच्छंद होती है; परंतु शास्त्र की अभिव्यक्ति भाषा है, जो सुसंस्कृत, परिनिष्ठित एवं व्याकरण के नियमों से जकड़ी रहती है।
4. लोक के साहित्य में परंपरागत प्राप्त लोकानुभूतियों का संग्रह होता है, उसमें

लोकजीवन की अनुभूतियाँ, सुख-दुख, लोकविश्वासों, धार्मिक विश्वासों, रीति-रिवाजों आदि की अभिव्यक्ति होती है, जबकि शिष्ट साहित्य लोक-मानस की सुसंस्कृत, परिष्कृत अनुभूतियों को ग्रहण करता है तथा साहित्य शास्त्र के साँचे में ढालता है।

5. लोकसाहित्य में लोकजीवन की आंचलिक अभिव्यक्तियों की प्रमुखता रहती है जबकि नागर साहित्य में लोकजीवन की आंचलिकता को सार्वभौम रूप देने की कोशिश होती है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 326
2. वही, पृ॰ 90
3. सर्जना और संदर्भ, अज्ञेय, पृ॰ 334
4. पृथ्वीपुत्र, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ॰ 335
5. वही, पृ॰ 340
6. लोक, (सं॰) पीयूष दईया, फ़्लैप पर टिप्पणी
7. सम्मेलन-पत्रिका, लोकसंस्कृति अंक, (संपा॰) रामनाथ 'सुमन', पृ॰ 425
8. लोक और लोक का स्वर, डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र, पृ॰ 63
9. साखी, (संपा॰) सदानंद शाही, अंक-15-16, पृ॰ 168
10. लोक और लोक का स्वर : डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र, पृ॰ 72
11. हिंदूधर्म, जीवन में सनातन की खोज, डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र, पृ॰ 88
12. नाट्यशास्त्र (चौथा भाग), भरतमुनि, (संपा॰) पारसनाथ द्विवेदी, पृ॰ 520
13. लोकसाहित्य और संस्कृति, दिनेश्वरप्रसाद, पृ॰ 172-173
14. लोक, (सं॰) पीयूष दईया, पृ॰ 374
15. वाल्मीकि रामायण, महर्षि वाल्मीकि, सुंदरकांड, पृ॰ 1003
16. कालिदास ग्रंथावली, (संपा॰) रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदास अकादमी, उज्जैन
17. भारतीय लोकविश्वास, डॉ॰ कृष्णदेव उपाध्याय, पृ॰ 13

❐ प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल
हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राजस्थान)

मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य की मनोवैज्ञानिक उपलब्धियाँ

श्रीमती बबीता सिंह, शोध-छात्रा
एस॰डी॰ (पी॰जी॰) कालेज, मुज़फ़्फ़रनगर (उ॰प्र॰)

आजकल प्रत्येक विषय में विशेषत: कथासाहित्य के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकता के समावेश तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययनों की प्रथा-सी चल पड़ी है। प्रत्येक साहित्य-स्रष्टा और कलाकार में मानव-मन की रहस्यमय व्यापार-क्रिया तथा उसकी जटिलता के प्रति दिलचस्पी, मोह, आसक्ति और लगन अत्यधिक मात्रा में जाग्रत है। कथाकार मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपने कथासाहित्य में पात्रों का विवेचन करते समय उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट स्वरूप प्रदान करने के लिए प्राय: समस्त मानसिक भावों का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। लेखिका चरित्र एवं वातावरण के चित्रण तथा समस्या के प्रत्यक्षीकरण में सच्ची यथार्थवादी रही हैं। इनके कथासाहित्य की मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों को इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथासाहित्य के पात्रों में अहं-वृत्ति की प्रबलता परिलक्षित होती है। अधिकतर पात्र उसी की तुष्टि में संसार को भुला बैठते हैं। उनका 'मैं' ही उनका संसार होता है। मनोवैज्ञानिक भी इस बात का स्पष्टीकरण करते हैं कि अहं-भावना प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान होती है। यह भाव स्त्री एवं पुरुष दोनों ही पात्रों में अधिकाधिक रूप में मिलता है। जहाँ कथा-साहित्य में पुरुष-पात्र अपने अहं की प्रबलता के कारण स्त्री को प्रताड़ित करता है, वहीं कुछ स्त्री-पात्र भी इसी भाव के चलते अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं, जिसे लेखिका ने स्वाभाविकता के साथ वर्णित किया है।

इसके अतिरिक्त अहं के आवेश में आकर अधिकतर पुरुष-पात्र भी कई बार ग़लत निर्णय ले लेते हैं, जिसका नुकसान उन्हें जीवन-भर उठाना पड़ता है। चाहे वह 'विजन' का डॉ॰ अजय हो या 'बेतवा बहती रही' का अजीत या फिर 'इदन्नमम्' का प्रधान पंचमसिंह। लेखिका ने पात्रों की मानवोचित कमज़ोरियों का तटस्थता के साथ वर्णन तो किया है, किंतु नैतिक अहं की प्रबलता के कारण वे प्राय: टूट जाते हैं और कहीं-कहीं परिस्थितियों से समझौता भी करते दृष्टिगोचर होते हैं। पात्रों में मानसिक व्यग्रता विद्यमान होने पर भी द्वंद्व का न उठना कई बार उन्हें अस्वाभाविक बना देता है। पात्रों में अंतर्द्वंद्व के अभाव के कारण पाप-पुण्य, कर्त्तव्य आदि के संबंध में अपनी उलझी हुई मान्यताएँ हैं, जिसके कारण उन्हें किसी भी गंभीर परिस्थिति में अपना पथ-निश्चित करने में देर नहीं लगती है। स्त्री-पात्रों पर पुरुष-पात्रों की अपेक्षा सामाजिक मान्यताओं का गहरा प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। शोषितवर्ग में

चेतना न के बराबर है। लेखिका ने शोषितवर्ग की आवश्यकताओं से परिचित कराते हुए उसके अहं-भाव को भी जाग्रत करने का प्रयास किया है, परंतु भाव इतना प्रबल नहीं हो पाया है कि वे सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का खुलकर विरोध कर सकें।

लेखिका के कथासाहित्य में पुरुष-पात्रों की बौद्धिकता ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों उसका अहं-भाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चला जाता है। अपने इस कभी तृप्त न होने वाले अहं-भाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब उसे पग-पग पर अस्वाभाविक असफलता मिलती है, तो वह बौखला उठता है। उसकी इस विनाशात्मक क्रिया का सबसे प्रथम और सबसे घातक शिकार बनना पड़ा है स्त्री-पात्र को। उसे और अधिक शोषित और प्रपीड़ित करने में लेखिका का अहम्वादी पुरुष-पात्र बुद्धिजीवी भी है। इसलिए अपनी मनोवृत्ति के यथार्थ से बहुत अधिक परिचित भी रहता है और इसी कारण उसके अंदर विस्फोटक संघर्ष चलते रहते हैं। चाहे वह 'चाक' की 'सारंग' हो, या फिर 'झूलानट' की 'शीलो', 'अल्मा कबूतरी' की 'अल्मा' या 'चिन्हार' की 'सरजू' इत्यादि ऐसे ही स्त्री-पात्र हमें कथासाहित्य में सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं, जो पुरुष की अहम्वादी सोच के चलते शोषण का शिकार होते हैं।

कहीं पुरुष स्वेच्छा से, कहीं दबाव से, कहीं स्वार्थवश और कहीं अपना दबाव डालने के लिए स्त्री-पात्र की सुरक्षा करना चाहता है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं को स्त्री से श्रेष्ठ समझता है। बल-प्रधान पुरुषत्व अथवा पुरुषोचित अहंकार केवल पशुबल का ही द्योतक है। 'फ़ैसला' कहानी में वसुमति ग्राम-प्रधान तो बन जाती है, परंतु अपनी इच्छा से कोई फ़ैसला लेने के लिए स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि संपूर्ण निर्णय पति रणवीर ही लेता है। उसका मानना है कि 'पंचायती चबूतरे पर बैठती तुम शोभा देती हो? लाज-लिहाज मत उतारो। कुल-परंपरा का ख़याल भी नहीं रहा तुम्हें? औरत की गरिमा आड़-मर्यादा में ही है। फिर तुम क्या जानों गाँवों में कैसे-कैसे धूर्त हैं?' [1] इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारतीय समाज का पुरुष अपने संस्कारों में इस बात को अच्छी तरह मिला चुका है कि बाहरी क्षेत्रों पर उसका एकाधिकार है। बस इसीलिए पंचायतों में होनेवाला दिमाग़ी ख़र्च भी स्त्री के वश का नहीं मानता। पुरुष-वर्ग कैसे बताए कि पुरुषों ने बेगार रूपी श्रम स्त्री के हवाले इसलिए ही किया था कि वह उम्र-भर वंशवृद्धि करे और सेवा को अपना धर्म समझे। उसके हाथ में किसी तरह का आर्थिक बल देने में गुरेज इसीलिए ही किया जाता है कि वह ऐसे फ़ैसले न ले बैठे, जो पुरुष पर भारी पड़ें। अत: बेगार करनेवाली पत्नी प्रधान और सरपंच बन भी जाए तो वह पुरुष की महिमा में ही बढ़ोत्तरी करती है, क्योंकि राजकाज का अभी तक वही हथियार रहा है, इसलिए फ़ैसले अब भी वही लेता है। [2]

जब पुरुष-पात्र के अहं पर आघात होता है, तो वह तिलमिला उठता है। कथासाहित्य में पात्रों के अहं पर आघात होने के कई कारण दिखाई देते हैं। यथा–नैतिकमूल्यों को विवश होकर मानना, सामाजिक संबंधों का ज़बरन प्रतिपालन, चाहे वह पिता-पुत्र के हों, चाहे माँ-बेटे के हों, चाहे पति-पत्नी के हों या किसी अन्य संबंध के। मैत्रेयी पुष्पा के कथा-पात्रों का अहम् अत्यधिक विकसित है। उनके अधिकांश पात्र अपना निजी व्यक्तित्व रखते हैं। अहं के कारण उनमें निर्भीकता, साहस एवं महत्त्वाकांक्षा का भी पर्याप्त विकास मिलता है। इसके साथ ही साथ

यह भावना पात्रों में आत्मश्रेष्ठता की अनुभूति भी उद्दीप्त करती है। नारी-पात्रों में डॉ॰ आभा, नेहा, मंदा, कुसुमा, लल्लन, गोमती आदि एवं पुरुष-पात्रों में सुरजनसिंह, सुमेर, पीतमसिंह इत्यादि पात्र अपने विकसित अहम् के कारण प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी भी हैं। कथासाहित्य में इस तत्त्व का विस्तार अधिक मिलता है, जिसमें लेखिका को पूर्ण सफलता भी मिली है। अहं-वृत्ति का चित्रण आत्मसर्वोपरिता की उद्दंडता, अन्यों की भर्त्सना, परदोष-दर्शन, धन व वंश का मिथ्या भाव आदि में मिलता है, जो अत्यधिक मनोवैज्ञानिक बन पड़ा है।

लेखिका के कथा-साहित्य में हमें 'भय' तत्त्व के भी कुछ उदाहरण उपलब्ध होते हैं। 'भय' का भाव मनुष्य के प्रमुख मनोभावों में से एक है। कथा-पात्रों में भय का जो भाव मिलता है, वह मनोविज्ञान-सम्मत है। भयतत्त्व का वर्णन संक्षिप्त भले ही हो, है सर्वथा पूर्ण एवं जीवंत। लेखिका ने इस भाव को मानसिक एवं शारीरिक दोनों रूपों में यथास्थिति वर्णित किया है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पात्र स्वप्न में भी भयोत्पादक स्मृतियों की ही अनुभूति करता है। कथासाहित्य में भय को उद्दीप्त करनेवाले कारण परिचित एवं अपरिचित दोनों प्रकार के प्राप्त होते हैं तथा उनका प्रत्यक्षीकरण एवं स्मृति भी पात्रों में भय की अनुभूति कराती है। लेखिका ने भय के अल्परूप त्रास एवं शंका का चित्रण भी अधिकांश स्थलों पर किया है। कथासाहित्य में भय के जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें पात्रों की शरीर-शक्ति का भी अधिकाधिक उपयोग मिलता है। साथ-ही-साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसका परिणाम गंभीर एवं स्थाई होता है और इसका प्रभाव दीर्घकाल तक पात्रों पर बना रहता है।

अनिष्ट की संभावना, रात्रि, अंधकार, अपरिचित एवं आकस्मिक ध्वनि इत्यादि भय-उत्पादक कारण कथा-साहित्य में परिस्थिति के अनुसार सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं तथा उसकी प्रतिक्रियाएँ विभिन्न पात्रों के माध्यम से भिन्न-भिन्न रूपों में हुई हैं। यथा—हाथ, पाँव, शरीर व हृदय का कंपन, मुँह सूखना, स्वर का गद्गद् होना, इधर-उधर देखना, तीव्र श्वास-प्रश्वास आदि। मैत्रेयी पुष्पा ने भय को जीवन-रक्षा की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण मनोभाव मानते हुए इसकी विविध रूपों में अभिव्यक्ति की है। भय का वर्णन कथा-पात्रों के अनुकूल तो है ही, साथ-ही-साथ वह कथा को गतिशीलता एवं सजीवता प्रदान कर पात्रों एवं कथा को एक नई दिशा भी प्रदान करता है। भय का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—'चाक' उपन्यास में जब नायिका सारंग को पता चलता है कि बिसुनदेवा व गुलकंदी के भाग जाने पर उनकी खोज चल रही है और मिलने पर सजा भी दी जाएगी, तो सारंग भयभीत हो जाती है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने उसकी भयग्रस्त मनोदशा को इस प्रकार वर्णित किया है। सारंग सोचती है—'गुलकंदी को बाँधकर लाए बिना यह कसाई मानेगा नहीं, श्रीधर को भी बेइज़्ज़त करेगा। अब मेरे सामने कोई उपाय नहीं। कैसे बचाऊँ? रंजीत? नहीं-नहीं, वे सहमत नहीं होंगे। ... लेकिन! इस लेकिन के आधार पर ही खड़ी हूँ मैं।' [3]

इसके अतिरिक्त 'काम' संबंधी भाव का भी वर्णन हुआ है। 'काम' का संबंध शरीर से होता है तथा उसमें किसी भी आलंबन को ग्रहण करने की तत्परता विद्यमान रहती है। कथासाहित्य में कामपूर्ति की प्रक्रिया में स्त्री-पात्र का व्यवहार अपेक्षाकृत निष्क्रिय एवं पुरुष को आकर्षित करने का रहा है, यद्यपि पुरुष-पात्रों की तुलना में इस वृत्ति की सघनता एवं तीव्रता उसमें कम दृष्टिगोचर नहीं होती। जो प्रवृत्तियाँ वंश-परंपरा से संस्कार के रूप में मनुष्य को प्राप्त

होती हैं, उसमें काम-भावना का अपना महत्त्व होता है। कथा-साहित्य में इस भावना को उत्पन्न करनेवाली प्रेरणाएँ अनंत हैं, जो इस भाव को और अधिक प्रबल करने में अहम् भूमिका निभाते हैं।

वरिष्ठ लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथासाहित्य में कई ऐसे पात्रों के चरित्र को भी चित्रित किया है, जो अपनी अतृप्त काम-भावना के कारण स्त्री-पात्रों का दैहिक शोषण करते हैं। इसका कारण बढ़ी हुई कामेच्छा ही नहीं होती है, बल्कि समाज में नैतिक नियमों की ढील, उत्तेजक वातावरण तथा समय-विशेष की सामाजिक परिस्थितियाँ भी इसके लिए उत्तरदायी रही हैं। उच्च वर्गों द्वारा दलित वर्गों की स्त्रियों का दैहिक शोषण हर युग का ऐतिहासिक सत्य है। ग़रीब स्त्रियों की विवशता का फ़ायदा उठाकर उनका यौन-शोषण होता है। इसके अतिरिक्त आयाचित काम-भावना भी इसे अधिक प्रेरित करती है। यथा–'बहेलिये' का 'सुमेर', 'केतकी' का 'गंधर्वसिंह', 'अल्मा कबूतरी' का 'मंशाराम' व 'इदन्नमम्' का 'कैलाश' इत्यादि पात्र अपनी अतृप्त काम-भावना के चलते स्त्रीत्व को खंडित करने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं।

'इदन्नमम्' उपन्यास की कुसुमा भाभी की बात करें तो वह 'बहू के चचिया' ससुर से शारीरिक संसर्ग और फिर बेटा पैदा करने की घटना से गुज़रती है। ऐसा क्यों होता है? इस 'क्यों' का उत्तर ही सर्जनात्मक प्रक्रिया में रचना का सरोकार बनता है। जब कोई वर्चस्व इतना प्रभावशाली एवं शक्तिशाली हो जाता है कि व्यक्ति की आकांक्षाएँ, सपने और ज़िंदगी पिसने लगती है, तो फिर रीति-नीति के बंधन अपना अर्थ खोने लगते हैं। [4] लेकिन हर पात्र का पैमाना श्लीलता और अश्लीलता को लेकर भिन्न-भिन्न रहा है। यथा किसी कथा-पात्र के लिए स्त्री-पुरुष का परस्पर नज़र-भर देखना ही अश्लीलता की निशानी है और किसी के लिए आपसी दैहिक स्पर्श भी अश्लीलता की श्रेणी में नहीं आता। यही बात विभिन्न समाजों को लेकर कही जा सकती है, वर्ग और वर्ण भी श्लीलता-अश्लीलता की एक परिभाषा नहीं कर सकते हैं।

बिना नारी के कोई भी कथा पूर्ण नहीं होती है। अब तक ऐसा ही होता रहा है कि जिन सत्यों, मूल्यों एवं आदर्शों को उभारा गया है, वे स्त्री के अनुभवों से मेल नहीं खाते। इस बेईमानी पर भी औरतों का मन बना कि उनको अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। इस प्रसंग में 'बतासो सिक्किन' को लिया जा सकता है, जिसने गाँव के उस व्यक्ति का गला काट दिया, जो आए-दिन अपनी मर्दानगी का शिकार औरतों को बनाता था। लेखिका की 'चाक' की नायिका सारंग मन से ही नहीं, तन से भी गतिशील रहना चाहती है। उसका वजूद घर की शोभा नहीं, घर के बाहर भी है। अपनी सक्रियता में वह श्रम और काम-भाव को सकारात्मक रूप देती है।

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा पर हमेशा यह आरोप लगता रहा है कि वे स्त्री की मुक्ति उसकी देहमुक्ति में देखती है, मगर वे इनका खंडन करते हुए सवाल करती है कि स्त्री के शरीर से पुरुष दृष्टि कब मुक्त होगी? मैत्रेयी पुष्पा के साथ आधी दुनिया इस सवाल का इंतज़ार कर रही है।

'मातृत्व-भावना' की वृत्ति की अभिव्यक्ति भी लेखिका ने अपने साहित्य में की है,

परंतु इस भावना का विस्तृत विवेचन न होकर प्रसंगानुसार सीमित अर्थ में हुआ है, जिसमें पूर्णरूपेण स्वाभाविकता का योग रहा है। संतान के प्रति वात्सल्य का भाव वस्तुतः निसर्ग की ऐसी आंतरिक प्रेरणा है, जो कथापात्रों में स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'वात्सल्य' के व्यापक अर्थ में संतान के प्रति माता-पिता एवं अन्य आत्मीयजनों के साथ-साथ छोटों के प्रति परिचित-अपरिचित का स्नेहभाव भी आ जाता है। जो नैसर्गिक होता ही है, परंतु कथा-पात्रों का दूसरों की संतानों के प्रति वैसा ही स्नेहपूर्ण भाव भी कभी-कभी दृष्टिगत होता है। इस संदर्भ में 'पगला गई है भागवती!' की 'भागो' एवं 'बहेलिये' की 'गिरजा' के चरित्र को लिया जा सकता है, क्योंकि दोनों ही अपनी बहन के बेटों का पालन-पोषण अपना बेटा मानकर करती हैं।

लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने कथासाहित्य में वात्सल्य-भावना का चित्रण मुख्यतः स्त्री-पात्रों के पक्ष में ही किया है यथा– सरस्वती, सारंग, कदमबाई, शांति इत्यादि। परंतु कुछ स्थलों पर पुरुष-पात्रों में भी इस भावना के संबंधित उद्धरण मिलते हैं। जैसे–सुरजनसिंह, रंजीत, अनुपम, पंचमसिंह आदि ऐसे ही पात्र हैं, जो जीवन की हर परिस्थिति में सच्चे मित्र एवं मार्गदर्शक की भाँति अपने संतानों का साथ देते हैं। इनके अतिरिक्त लेखिका ने वात्सल्य-भाव के संयोग एवं वियोग दोनों ही रूपों को कथा-साहित्य में यथास्थिति वर्णित किया है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मातृत्व पूर्वाभास में उपस्थित शक्ति माँ को अपनी संतान की अनकही पीड़ाओं एवं तकलीफ़ों का यथोचित आभास कराती है। लेखिका ने इस वृत्ति का स्वाभाविक वर्णन करते हुए मातृत्व को ही नारीत्व की चरम परिणति माना है।

लेखिका ने कथासाहित्य में 'क्रोध' जनित भावों को भी प्रसंगानुसार व्यंजित किया है। कथा-पात्रों में क्रोध दुख के चेतन कारण के साक्षात्कार से उद्दीप्त होता है, तो कहीं-कहीं इसकी उत्पत्ति किसी विफलता के कारण उपस्थित होती है। क्रोध की भावना लगभग सभी व्यक्तियों में विद्यमान रहती है। मैत्रेयी पुष्पा के पुरुष-पात्रों में यह वृत्ति अधिक एवं स्त्री-पात्रों में अल्पमात्रा में परिलक्षित होती है। क्रोध-भाव का वर्णन मनोविज्ञान के अनुसार उचित ढंग से हुआ। कटु उक्तियों का प्रहार होना आदि मानसिक चेष्टाएँ भी मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। क्रोधित पात्रों का प्रथम प्रयास विपक्षी को अपमानित करने, उसको नीचा दिखाने एवं मार्ग से हटाने का रहा है। परंतु जब उसमें असफलता मिलती है, तो तब उसमें नष्ट कर डालने की प्रेरणा जाग्रत होती है। क्रोध पात्रों के मानसिक संतुलन को ख़राब कर देता है, जिसके कारण वे ज़्यादातर ग़लतियाँ कर जाते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री-पात्र इसी भाव से अत्यधिक पीड़ित रहते हैं और आगे चलकर यह कलह ही क्रोध का रूप धारण कर लेती है। कुछ पात्र ऐसे भी हैं, जो क्रोध के आवेश में आकर ग़लत कार्य करने का निर्णय भी ले लेते हैं, जिसके कारण उसे जीवन में भी हानि उठानी पड़ती है। इस संदर्भ में यह उदाहरण द्रष्टव्य है– 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में जब अजीत उर्वशी के विवाह के लिए दो रिश्ते देखता है, परंतु दोनों ही माता-पिता व मीरा के नाना को पसंद नहीं आते, क्योंकि एक तो चार बच्चों का पिता था, जबकि दूसरा हिस्ट्री-सीटरों का परिवार, जिनके अक्षम्य अपराध थे। वह मीरा के नाना पर क्रोधित होते हुए कहता है कि–'फिर आप ही बन जाओ मुनि वशिष्ठ। हमारे पिता को बरगला रहे तौ खोज लाऔ राजकुमार नल और रचा लो स्वयंवर। फिर इत्ती समझै रहियों कि सब इंतज़ाम तुम ही करियो। काहे से कि हमें तो अपनी बहन की दर्द पीर है ही नहीं ... तुम उतरे

हौ मसीहा, सौ करौ उद्धार ...।' [5]

कथासाहित्य में क्रोध की उत्पत्ति काम, संपत्ति, इच्छपूर्ति में बाधा पड़ने, दूसरों द्वारा उत्पीड़न, कलह, विपक्षी के कटु वचन इत्यादि कारणों से हुई है तथा इसकी अभिव्यक्ति आँख व मुख का लाल होना, होठ काटना, हाथ मलना, ताल ठोकना आदि चेष्टाओं के रूप में हुई है। क्रोध का चित्रण कथा-पात्रों की बाह्य चेष्टाओं की अपेक्षा उसकी मानसिक अनुभूति के रूप में अधिक आया है।

इसके भाव के अतिरिक्त 'ग्लानि' भाव की अभिव्यक्ति भी कुछ स्थलों पर दृष्टिगत होती है। इसकी उत्पत्ति का कारण विभिन्न पात्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार का रहा है। अपनी बुराई, मूर्खता, अपने अतीत के कार्य-दोष, कार्यों में असफलता, अपनी अपराध-वृत्ति इत्यादि कारण इसकी उत्पत्ति के कथा-साहित्य में प्राप्त हुए हैं। इसकी अभिव्यक्ति पश्चात्ताप एवं आत्मपीड़न आदि रूपों में परिलक्षित होती है। यह अभिव्यक्ति कथा-पात्रों में कभी एकांत में, तो कहीं सर्व सम्मुख हुई है। 'अपना-अपना आकाश' की 'कैलाशो', 'झूलानट' का 'बालकिशन', 'बेतवा बहती रही' की 'उर्वशी' व 'कहीं ईसुरी फाग' की 'रज्जो' आदि ऐसे ही पात्र है, जो यथास्थिति ग्लानि की भावना से ग्रस्त मिलते हैं। यथा–'झूलानट' उपन्यास में जब शीलो व अम्माँ आपस में लड़ती-झगड़ती रहती है तब बालकिशन अंदर-ही-अंदर कराह उठता है। वह अम्माँ को कहता है कि हाय डुकरो, तू कब मरेगी।' परंतु कुछ क्षण पश्चात् उसका मन ग्लानि से भर जाता है वह पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि–औरत के कारण देवी जैसे माँ के लिए कुभाखा। नरक में ठौर न मिलेगा उसे, पापी।' [6]

'ईर्ष्या' भाव का विवेचन अन्य मनोभावों की अपेक्षा अल्परूप में ही प्रसंगानुसार वर्णित है। लेखिका ने कथासाहित्य में इस भाव का काम, संपदा, समृद्धि, सम्मान, बुद्धि, पद, गर्व आदि विभिन्न रूपों में वर्णन प्रस्तुत किया है तथा इसकी व्यक्ति अन्यों के दोष-दर्शन, दोष कथन, तिरस्कार, अवहेलना एवं क्रोध-भरी चेष्टाओं के रूप में हुई है।

कथासाहित्य में अहं, भय, काम, वात्सल्य, क्रोध, ग्लानि एवं ईर्ष्या-जनित मनोभावों के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ की विरूपता को प्रत्यक्ष कर, मानवीय दुख, वेदना एवं आचरण की असंगति के कारणों का अन्वेषण करने की प्रवृत्ति भी प्रबल हुई है। दुख-दग्ध नारी के प्रति अपार-संवेदना से प्रेरित होकर कथाकार ने अपने कथासाहित्य का केंद्र नारी को बनाया है। रूढ़ सामाजिक मान्यताओं एवं वर्जनाओं की विषमता तथा वास्तविकता को अनावृत्त कर, नारी-वेदना के प्रति सहानुभूति उभारने का प्रयत्न किया है। उपर्युक्त प्रवृत्ति के कारण कथासाहित्य की प्रवृत्ति अधिकाधिक मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक हो गई है। लेखिका के कथापात्र अधिकतर परिवार एवं समाज के हित के लिए पीड़ित होते हैं। नारी-पात्रों में जो समर्पण परिवार एवं समाज की मान्यताओं के लिए है, वैसा पुरुष-पात्रों में कम देखने को मिलता है। कथासाहित्य में ऐसे पात्रों की भी अवतारणा की गई है, जो सूक्ष्म मनोविश्लेषण और गंभीर चिंतन की क्षमता रखते हैं। ये पात्र पग-पग पर अपनी और अन्य पात्रों की अंतरानुभूतियों तथा मन:स्थितियों को समझने का प्रयत्न करते हैं और अपनी आत्मा को भी खंगालते रहते हैं। कथासाहित्य में कभी पात्र स्वयं आत्मविश्लेषण करते हैं, कहीं यह कार्य लेखिका के द्वारा किया गया है, तो कहीं एक पात्र दूसरे पात्र की मानसिक प्रवृत्ति का विश्लेषण करता है। इसके

अतिरिक्त अंतर्द्वंद्व का प्रगटीकरण शब्दों में हुआ है, तो कहीं अस्फुट ध्वनियों का प्रयोग मिलता है, कहीं अंतर्द्वंद्व की तीव्रता सिसकियों का रूप धारण करती है, तो कहीं पात्र आशा-निराशा के मध्य हिचकोले खाने लगता है।

लेखिका के कथा-साहित्य का अनुशीलन करने के पश्चात् यह भी भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथासाहित्य में अनेक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी उजागर किया है। दहेज़ भारतीय समाज की बर्बर और विकराल समस्या है। सभी को इस चलन से घृणा है। परंतु यहाँ यह प्रश्न है कि वे कौन हैं, किस समाज से आए हैं, जो उस पिता को चमत्कृत दृष्टि से देखते हैं, वाहवाही के भाव एवं गर्व की दृष्टि से देखते हैं, जो अपनी बेटी के विवाह में बढ़-चढ़कर दहेज़ देता है। साधन-संपन्न या निर्धन पिता अपनी औक़ात लाँघता हुआ लड़की के लिए आराम एवं सुखदायक वस्तुएँ जुटाता है, तो उस पर प्रशंसा की बारिश होने लगती है। किसान है तो अपने पसीने की कमाई, नौकरीपेशा है तो अपनी भविष्य निधि और बीमा ऋण को पानी की तरह उलीचता है, जैसे उसका यही उपक्रम हो।

मैत्रेयी पुष्पा ने अभी तक दहेज़ को निखालिस तौर पर उपन्यास या कहानी का विषय नहीं बनाया है, परंतु 'बारहवीं रात' कहानी में इस बात को उजागर किया है, जिसमें दहेज़ के कम लाने के कारण सीता तानों-व्यंग्यों से परेशान होकर फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेती है। इसके अतिरिक्त 'प्रेम भाई एंड पार्टी' कहानी में भी दहेज़ प्रसंग उपलब्ध होता है। यथा जब नरेंद्र की पत्नी तारा कहती है कि अकेली मुन्नी के विवाह के लिए इतना क़र्ज़ जबकि पप्पी और फिर गुड्डी है। तब नरेंद्र अपनी मन:स्थिति व्यक्त करता हुआ कहता है– 'जानती हो तुम यह भी सुन लो कि इस संबंध को करते समय हमारे आगे कोई उपाय न बचा था। लड़के का बाप इक्यावन हज़ार का ब्रह्मवाक्य मुख से निकालकर उसी से चिपक गया। बारात की ख़ातिरदारी के निर्देश अलग। तमाम दलीलें कि लड़का तो आपके घर हर-हमेशा आएगा, बाराती कब-कब जाएँगे आपके द्वार। याद रखने लायक़ स्वागत-सत्कार होना चाहिए।' [7] मेरा मानना है कि दहेज़ नामक बुराई को क़ानून नहीं मिटा सकता। माँ-सास के रूप में स्त्रियाँ और दहेज़ पाने वाली लड़कियाँ ही मिलकर इस विकराल समस्या का समाधान कर सकती हैं। दहेज़ के सामाजिक कारकों का अध्ययन कर, उन स्थितियों में सुधार के प्रयत्न ही शनैः-शनैः इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करेंगे।

अनमेल विवाह की समस्या को भी लेखिका ने कथासाहित्य में वर्णित किया है। 'बहेलिये' कहानी में गिरजा का विवाह पिता की उम्र वाले व्यक्ति से कर दिया जाता है, परंतु असमय ही उसकी मृत्यु हो जाती है। उसके सामने रह जाता है एक संघर्षमय जीवन व उसकी त्रासदी। 'पर ईश्वर की मार कैसे सचेत करती! बारिश का मौसम था, आँधी-पानी के दिन। एक दिन राह में आते समय पेशकार के ऊपर तेज़ हवा से उखड़कर पुराना पेड़ गिर पड़ा। सुनते ही वह बदहवाद-सी दौड़ी थी। जो लुटना था सो लुट गया। विवाह-योग्य आयु थी, पर मिला वैधव्य का अथाह दुख।' [8] जेठ कुछ दिनों आत्मीयता से पेश आते रहे, परंतु कुछ ही दिनों में पुराना ईर्ष्या-द्वेष खुलकर होंठों पर आ गया। इसी प्रकार 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने उर्वशी की कथा का वर्णन किया है, जिसका पति सर्वदमन एक दुर्घटना में मारा जाता है और उसका विवाह भी उसकी सहेली के पिता से कर दिया जाता है। बेटियों की मानसिकता

बेज़ुबान विनम्रता के हवाले रहती हुई 'अपने फ़ैसले' को अपराध मानती है।

इसके अतिरिक्त पारंपरिक भारतीय विधवा सदैव से अपेक्षिता एवं पीड़िता रही है। उसे सामान्य जीवन-यापन के लिए उपर्युक्त सुख-सुविधाएँ भी परिवार व समाज देने से गुरेज करता है, फिर यौन-तुष्टि का तो सवाल ही उत्पन्न नहीं होता। विधवा-विवाह की कल्पना भी उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व भयावह थी और आज भी यह अपवाद-स्वरूप ही है। पुत्रवती विधवाओं के दुर्दिन तब दूर हो जाते हैं, जब उनके पुत्र कमाऊ हो जाएँ और विवाहोपरांत उनकी पत्नी दुष्ट स्वभाव वाली न हो। यदि नौकरी व विवाह के उपरांत पुत्र व बहू दोनों का उसके प्रति दुर्व्यवहार होता है तो उसका जीवन नारकीय हो जाता है। उपर्युक्त बातें लेखिका की 'अपना-अपना भाग्य' कहानी की कैलाशो की स्थिति से व्यक्त हो जाती हैं, जिसके तीन काबिल बेटे हैं, पर उसे उपेक्षा, अपमान एवं तिरस्कार ही मिलता है। यहाँ तक कि गाँव की सारी ज़मीन भी धोखे से अपने नाम करा लेते हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए तीनों बेटे उसे बंगलौर में आश्रम में भेजने की योजना बनाते हैं। भेजने को तो वे उन्हें वृंदावन भी भेज सकते थे, लेकिन वृंदावन पास है, वह लौटकर आ सकती थी। इसी कारण सबने मिलकर बंगलौर का चुनाव किया था। कोई पूछेगा तो कह सकेंगे–'उनका मन भगवद्भक्ति में रम गया था, सो गृहस्थ का मोह त्याग गई। कितना आसान तरीक़ा ... मुक्ति का, उनकी और परिवार की ... दोनों की।'[9]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथासाहित्य में इस समस्या को विविध पात्रों के माध्यम से विविध रूपों में अंकित करने का प्रयास किया है। चाहे वह 'पगला गई है भागवती' की बाल विधवा 'भागो' हो, 'उज्रदारी' की 'शांति', 'बहेलियो' की 'गिरजा', 'अल्मा कबूतरी की 'कदमबाई' या फिर 'अगनपाखी' की 'भुवन' इत्यादि को अपने वैधव्य के कारण समाज एवं परिवार की ओर से अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पुत्र-विहीना विधवाओं पर तो लांछन अभियोग लगाना ही समाज का धर्म है। भारतीय विधवा अपने-आपमें ही एक विराट प्रश्न-चिह्न है। लेखिका के उपर्युक्त स्त्री-पात्र अपनी गहन वेदनाओं के साथ पाठक-वर्ग के हृदय में एक अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

जिस क्षण से भारतीय लड़की धरती पर साँस लेती है, उसकी भावी ज़िंदगी का रूप तैयार होने लगता है। 'हाय लड़की आ गई' की तर्ज पर शोकसभा प्रारंभ हो जाती है। आगंतुक बधाई देने और ख़ुशी देने के बजाय कन्या शिशु के माता-पिता से सहानुभूति जताने लगते हैं। लड़की के मनोविज्ञान की नींव यहीं से पड़ती है। आगे उसके पालन-पोषण में भी क़दम-दर-क़दम उसे यह अहसास कराया जाता है कि वह लड़की है। इसलिए अपने भाई (लड़के) से कुछ नीचे दर्जे पर है, हीन है। उसे लड़कों से समानता नहीं रखनी चाहिए। यदि वह ऐसा करेगी, तो आगे चलकर उसका जीवन दुखी होगा। मैत्रेयी पुष्पा जी ने 'बेटी' कहानी के माध्यम से इन सब बातों को स्पष्ट किया है। मुन्नी जब अपनी माँ से कहती है कि 'अम्माँ, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रहीं। तुम पाँच-पाँच लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है। तब अम्माँ कहती है– 'चुप होती है कि नहीं? बहुत ज़ुबान चल गई है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है। बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराए घर का दलिद्दर, तेरी कमाई नहीं खानी हमें ... कह दिया कान

खोलकर सुन ले।' [10]

इस प्रकार जब शैशवकाल से लेकर युवावस्था तक नारी में हीनता-ग्रंथि और पुरुषों में श्रेष्ठता-ग्रंथि का विकास किया जाएगा और इस विकास में परिवार की स्त्रियाँ ही अधिक भागीदार होंगी, तो पुरुष को दोषी मानना व्यर्थ है। दोष तो बेटा-बेटी के पालन-पोषण की पद्धति में बुनियादी रूप में विद्यमान है। इस प्रकार के भेदभाव से लड़की के समाजीकरण की प्रक्रिया ग़लत हो जाती है। इस प्रक्रिया में शुरू से ही जब मानव-मनोविज्ञान के स्थान पर नारी-मनोविज्ञान और पुरुष-मनोविज्ञान की अलग-अलग सृष्टि होने लगती है, तब नारी मानवी कैसे बनेगी? वह स्वयं को उसी रूप में ढालने व समझने लगती है, जैसा कि समाज उससे अपेक्षा रखता है।

फिर यह हीनता की कुंठा उसे निरुपाय के हथियार-रूप में या समय-समय पर होने वाले कुंठा के विस्फोट रूप में कहीं अधिक वाचाल, रोने-धोने वाली, कलह करनेवाली, 'त्रिया-चरित्र' जैसे छल-छद्म करनेवाली आदि ओछी मानसिकता से भर दे, तो क्या ग़लत विकास या अपरिपक्वता से उत्पन्न इन प्रवृत्तियों को भी नारी-मनोविज्ञान का नाम दिया जाएगा। इस संदर्भ में 'तुम किसकी हो बिन्नी?' कहानी को लिया जा सकता है, जिसमें आरती बेटे की चाहत में कई कन्या-भ्रूण हत्या करा चुकी है। तीन बेटियों में सबसे छोटी बेटी बिन्नी के साथ जन्म से ही दुर्व्यवहार करती है।

आज की नारी बहुत से अर्थों में प्राचीन नारी से आगे है। वह पढ़ सकती है, नौकरी कर सकती है, राजनीतिक दल में कार्य कर सकती है, किंतु मूल में उसके असुरक्षा की भावना आज भी उसके अंदर विद्यमान है। यह भावना रूढ़िगत भी कहीं जा सकती है और प्रकृतिप्रदत्त भी। यह असुरक्षा का भाव ही स्त्रियों की समस्त समस्याओं का मूल है। चाहे वह 'चिन्हार' की 'डोरोथी डिसूजा' हो या फिर 'रिजक' की 'लल्लन' असुरक्षा की भावना के कारण ही इन्हें अपने जीवन में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अशिक्षा के चलते उसकी दुनिया घर-परिवार नाते-रिश्तेदारों की सेवा तक ही सीमित रहती है और वे मानकर चलती है कि यही उनके जीवन का लक्ष्य है। मेरा मानना है कि भय और असुरक्षा की भावना लिए जब तक नारी पुरुष से सहारा माँगती रहेगी इस श्रेष्ठत्व और हीनत्व भावना से मुक्ति असंभव है।

निष्कर्ष :

कथासाहित्य की मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों के विवेचन के पश्चात् यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि लेखिका ने अहं, भय, काम, मातृत्व, प्रेम, क्रोध, ग्लानि एवं ईर्ष्या-जनित मनोभावों का यथास्थिति वर्णन किया है। मनोभावों का यह वर्णन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध बन पड़ा है, जिसमें लेखिका को पूर्णतया सफलता भी मिली है। यह लेखिका के गहरे चरित्र-बोध को ही दर्शाता है। इसके अतिरिक्त यौनशुचिता की अवधारणा, नारी-शोषण, बालविवाह, बेमेल विवाह, वैधव्य जीवन की त्रासदी, स्वार्थसिद्धि के लिए हत्याओं के अनुष्ठान, हिंसा इत्यादि अलग-अलग मनावैज्ञानिक एवं सामाजिक मुद्दों को अपने कथासाहित्य में उजागर किया है। लेखिका ने पाठक-वर्ग के समक्ष उपर्युक्त समस्याओं को उपस्थित तो किया है, परंतु उसका कोई उचित मनोवैज्ञानिक निराकरण साहित्य में उपलब्ध नहीं होता है।

संदर्भ

1. मैत्रेयी पुष्पा, ललमनिया (कहानी-संग्रह), फ़ैसला (कहानी), पृ॰ 11, प्रथम संस्करण, 1996; क़िताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
2. मैत्रेयी पुष्पा, खुली खिड़कियाँ (नारी-विमर्श), तीसरा बच्चा : पहला बेटा, पृ॰ 227, प्रथम संस्करण, 2005; सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
3. मैत्रेयी पुष्पा, चाक (उपन्यास), पृ॰ 24, प्रथम संस्करण, 1997; राजकमल प्रकाशन प्रा॰लि॰, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
4. मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो (नारी-विमर्श), पृ॰ 3, प्रथम संस्करण, 2006; वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
5. मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही (उपन्यास), पृ॰ 27, प्रथम संस्करण, 2007; क़िताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
6. मैत्रेयी पुष्पा, झूलानट (उपन्यास), पृ॰ 8, प्रथम संस्करण, 1999; राजकमल प्रकाशन प्रा॰लि॰, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
7. मैत्रेयी पुष्पा, गोमा हँसती है (कहानी-संग्रह), प्रेम भाई एवं पार्टी (कहानी), पृ॰ 58, प्रथम संस्करण, 1998; क़िताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
8. मैत्रेयी पुष्पा, चिन्हार (कहानी-संग्रह), बहेलिये (कहानी), पृ॰ 37, प्रथम संस्करण, 1991; आर्य प्रकाशन मंडल, 1X/221, सरस्वती भंडार, गांधी नगर, दिल्ली 110031
9. मैत्रेयी पुष्पा, चिन्हार (कहानी-संग्रह), अपना-अपना आकाश (कहानी), पृ॰ 19, तृतीय संस्करण, 2004; आर्य प्रकाशन मंडल, 1X/221, सरस्वती भंडार, गांधी नगर, दिल्ली 110031
10. मैत्रेयी पुष्पा, चिन्हार (कहानी-संग्रह), बेटी (कहानी), पृ॰ 21, तृतीय संस्करण, 2004; आर्य प्रकाशन मंडल, 1X/221, सरस्वती भंडार, गांधी नगर, दिल्ली 110031

❐ 230/4, **भरतिया कालोनी**
जानसठ रोड
मुज़फ़्फ़रनगर (उ॰प्र॰)

दांपत्य संबंधों में विघटन
प्रताप सहगल के नाटक 'नहीं कोई अंत' के संदर्भ में

सुनयना, शोध-छात्रा
हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

नाटककार आज इस सत्यता को बड़ी ईमानदारी से स्वीकार करने लगे हैं कि सामान्य जन की दयनीय स्थिति और त्रासद नियति के लिए ज़िम्मेदार ताक़तों के बहुरूपी चेहरों को बेनकाब करना और जनता में आत्मविश्वास और आक्रोश पैदा करके अन्याय और शोषण की शक्तियों के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार करना आज के सही, प्रासंगिक, सार्थक नाटक का ऐतिहासिक उत्तरदायित्व है। हमारा आज का नाटक और रंगमंच अपनी इस महत्त्वपूर्ण भूमिका और बुनियादी ज़िम्मेदारी से कतरा कर आगे नहीं बढ़ सकता।

भारत की परिवर्तित स्थितियों का जो व्यापक और प्रभावकारी रूप हमारे सामने आया है, वह हमें भारतीय परिवारों में विघटन के रूप में परिलक्षित होता है। आधुनिक युग विशृंखलता और बिखराहट का युग है। 'परिवार में अनेक सदस्य साथ रहते हैं। इन सबके बीच विचारों, आयु, जीवनमूल्यों और शिक्षा आदि अनेकानेक कारणों से संघर्ष उत्पन्न होता है। यह संघर्ष कभी-कभी यहाँ तक बढ़ जाता है कि इससे पारिवारिक विघटन हो जाता है। यह संघर्ष अनेक स्तरों पर होता है चाहे उच्चवर्ग हो या मध्य वर्ग या निम्न वर्ग, प्रत्येक वर्ग में संघर्ष दिखाई देता है।' [1] वैवाहिक जीवन की रूढ़ मान्यताएँ तथा परंपरागत बंधन अब शिथिल हो चुके हैं। नई सभ्यता से रंगे जनजीवन में पारिवारिक सदस्यों में अधिकार-बोध की भावना बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि परिवार टूटकर सीमित होते जा रहे हैं। अगर दंपती तलाक भी न ले तो वह साथ रहकर भी कोसों मील दूर है। इसी वैयक्तिक चेतना के धरातल पर ज़िंदगी की तलाश में आदमी भटक रहा है।

शंभूरत्न त्रिपाठी : पारिवारिक विघटन उस समय होता है, जब परिवार में पति-पत्नी अपने पारस्परिक उत्तरदायित्वों को संपन्न नहीं करते तथा बच्चों के पालन-पोषण का कार्य नहीं किया जाता है। [2]

आज के परिवेश में जहाँ पति-पत्नी के संबंध खोखले हो गए हैं, पुरुष स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को अपनी मानसिकता के स्तर पर नहीं स्वीकार कर सका है, पति-पत्नी के बीच उत्पन्न मानसिक द्वंद्वों एवं गुत्थियों के कारण स्त्री के मानस में 'पति' और पुरुष के मानस में 'पत्नी' के संबंध जर्जर हो गए हैं–'दोनों के व्यक्तित्व पूर्वत्व की खोज में खंडित होते जा रहे

हैं।' [3]

'नहीं कोई अंत' नाटक में पारिवारिक विघटन का कारण कामतुष्टि के अभाव में दांपत्य जीवन की अस्वस्थता टूटन के माध्यम से कामतुष्टिपरक मूल्यों की ममता और अनिवार्यता का अंकन किया है। दंपती की अनबन का कारण पुरुष-स्त्री की असमानता और शारीरिक अक्षमताजन्य यौन-प्रवृत्ति का अभाव भी है, जो पति का अपनी आत्महीनता की प्रतिक्रिया-स्वरूप पत्नी के प्रति शंकालु बनाकर पति-पत्नी के बीच गाली-गलौच और मारपीट की अशोभनीय एवं निंदनीय दुखद स्थिति को जन्म देती है। स्त्री और पुरुष समाज के अनिवार्य अंग हैं। प्रेम और यौन की भावना उनमें युगों से चली आ रही है। वे दोनों स्वतंत्र तथा अपनी इच्छा के अनुसार चलते हैं। नाटक का नायक अजय कांता के साथ सिर्फ़ इसी कारण रहता है, क्योंकि वह केवल अपनी कामपूर्ति करना चाहता है। उसके मन में कांता के प्रति व कांता की अजय के प्रति कोई प्रेम-भावना नहीं है। उदाहरणार्थ–

कांता : तुम्हारे लिए न कोई मूल्य है, न मान्यता, न परंपरा, न कोई ज़िम्मेदारी। तुम सिर्फ़ सुविधा से जीना चाहते हों। सुविधा से औरत, सुविधा से शराब। यही है तुम्हारे जीने का असली मकसद, तुम्हारा विश्वास।

अजय : तुम्हें भी तो एक पुरुष चाहिए। वो पुरुष चाहे कोई भी हो। [4]

इससे पता चलता है आज प्रेम की परिभाषा ही बदल गई है। आज प्रेम दो आत्माओं का भावनात्मक संबंध नहीं, अपितु दो शरीरों का संबंध हो गया है, जिसके कारण पति पत्नी से दूर प्यार तलाशने की कोशिश करता है और आपसी दूरियाँ बढ़ती जाती हैं।

डॉ॰ नीलम गोयल–'प्रेम का परंपरागत आदर्शवादी और एकनिष्ठ स्वरूप विलुप्त होता जा रहा है, क्योंकि आज प्रेम भावनात्मक और रागात्मक वृत्ति नहीं रहा है। प्रेमी लोग हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क से प्रेम करने लगे हैं, क्योंकि आधुनिक युग में सोच-समझकर 'वैयक्तिक हित' को दृष्टि में रखकर प्रेम किया जाता है। जीवन के संघर्षों में उलझनों में प्रेम की स्थिरता और गंभीरता व परिपक्वता ख़त्म होती जा रही है। प्रेमी लोग अर्थ और काम की आवश्यकता से प्रेरित होकर प्रेम-संबंध स्थापित करते हैं। स्वार्थ पूरा होने पर या पूरा न होने की संभावना में प्रेम से आँखें चुरा लेते हैं।' [5]

पति और पत्नी का संबंध कोमल होता है। यह संबंध टिका होता है, पारस्परिक विश्वास की नींव पर। पति-पत्नी में परस्पर अधिकार एवं कर्त्तव्य की भावना इसमें संतुलन बनाए रखने का कार्य करती है, तो वैवाहिक जीवन सुखी एवं समृद्ध बना रह सकता है अन्यथा नहीं। दांपत्य-संबंधों में तनाव और विघटन आज के युग की प्रमुख समस्या है। आज पति-पत्नी का परंपरागत व आदर्शवादी रूप देखने को नहीं मिलता। आज पति-पत्नी दो विभिन्न इकाइयाँ बनकर अपने-अपने हित में खोकर अपनी व्यक्तिगत खुशियों को पूरा करने की कोशिश में एक-दूसरे को कुंठित करते हैं। [6]

अजय : दरअसल, यह दिक़्क़त औरत की इस माँग से शुरू होती है कि वह बराबरी चाहती है। भला बताओ, औरत और आदमी कभी बराबर हो सकते हैं? [7]

आदमी कभी यह नहीं चाहता कि औरत उसकी बराबरी करे, अगर वह अपना हक़ माँगती है तो उसे यह अपनी शान के ख़िलाफ़ लगता है। उसकी यह अहं की भावना ही है,

जो एक छत के नीचे रहते हुए भी अलग-अलग जीवन जीते हैं और इसका बुरा प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है, बच्चे भी माँ-बाप से दूर होते जाते हैं।

डॉ॰ ज्ञानवती अरोड़ा पारिवारिक विघटन के परिणामों को स्पष्ट करती हुई लिखती हैं कि 'पति-पत्नी संबंधों में तनाव, संतान के प्रति व्यवहार में स्नेह का अभाव, जिससे बालकों का स्वस्थ विकास रुक जाता है, वैयक्तिक स्वार्थों में वृद्धि और परिवार से ऊबकर सदस्य अलग जा सकते हैं, निकटतम संबंधों को भी तिलांजलि दे दी जाती है।' [8]

यौन-संबंधों की असंतुष्टि भी पति-पत्नी के बीच दूरी का कारण बन जाती है। चारित्रिक दृढ़ता के अभाव के कारण पति-पत्नी के संबंधों में संघर्ष उत्पन्न होता है। कभी-कभी शारीरिक या मानसिक कारणों से जब वे एक-दूसरे की यौन-इच्छा की संतुष्टि नहीं कर पाते, तब भी तनाव उत्पन्न होते हैं।

कांता : अजय, औरत तो मैं हूँ, बनूँ कैसे? तुम्हें औरत के नाम पर ख़ूबसूरत शरीर चाहिए, वो इसके पास है, मैं तुम्हें वो बीस साल पहले दे चुकी हूँ। मैं बीस साल पहले की दुनिया में कैसे लौट सकती हूँ?

पति या पत्नी के मन में किसी भी बात को लेकर जब अस्थिरता आ जाती है तो वे एक-दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते। पति-पत्नी के बीच मानसिक अंतराल, रुचियों का अंतर ही अलगाव का कारण है।

महेंद्र जैन ने लिखा है कि 'अनमेल विवाह, पति-पत्नी में वैचारिकता का अभाव, अवैध प्रेम-संबंध, निष्ठा का अभाव, पारस्परिक अविश्वास, पुराने और नए विचारों का संघर्ष आदि कुछ ऐसे कारण हैं, जिनसे दांपत्य जीवन में असंगति उत्पन्न होती है। अंततः दांपत्य संबंधों में कटुता एवं दुख उत्पन्न होता है।' [10]

साथ रहते हुए भी आज आदमी अपने-आपको अकेला महसूस करता है, उसे लगता है कि कोई उसे समझने वाला नहीं है, वह ज़िंदगी के प्रति उदासीन हो जाता है, यही स्थिति अजय की है–

अजय : 'मैं क्या करूँ? किससे कहूँ अपने मन की पीड़ा? कोई भी तो नहीं जानता। जानने की कोशिश भी नहीं करता। मैं जानवर नहीं हूँ। मुझे अपनापन चाहिए।' [11]

'पति-पत्नी एक घर में रहते हुए भी क्यों एक-दूसरे से अजनबी बन जाते हैं? पत्नी घर में सुख-सुविधा की समग्र सामग्री, धन, संतान, प्रतिष्ठा आदि से भरपूर होकर भी उदास, दुख, परेशान क्यों रहती है? पुरुष नौकरी, घर, संपत्ति, पत्नी से भरे घर छोड़कर क्यों सुरा और वेश्याओं से अपने-आपको तृप्त करने दौड़ता है। मित्र संबंधी क्यों इतने चरित्रहीन हो गए हैं कि घर में किशोरियों का जीवन दूभर हो गया है।' [12]

आज पति-पत्नी के संबंध एक अजीब कशमकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या और कलह के दौर से गुज़र रहे हैं। आज का दांपत्य जीवन सुखद मालूम नहीं पड़ता। आज के दांपत्य जीवन में संतुलन की अपेक्षा असंतुलन अधिक है।

प्रमुख समाजशास्त्री मोतीलाल मानते हैं कि 'संगठित परिवार में पति-पत्नी अपनी यौन-इच्छाओं की पूर्ति एक-दूसरे से ही करते हैं, जब परिवार के दायरे में यौन इच्छाओं की

पूर्ति नहीं होती तो संदेह, तनाव व संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और पारिवारक विघटन शुरू हो जाता है। स्पष्टत: यौन-इच्छाओं की पूर्ति परिवार के बाहर करना पारिवारिक विघटन को निमंत्रण देना है।' [13]

पति-पत्नी आत्मसुख को अधिक महत्त्व देने लगे हैं। परिवार के टूटने का यही मुख्य कारण है। प्रेम, त्याग और उत्सर्ग जो परिवार को टूटने से बचाते थे वे अब केवल शब्दमात्र ही रह गए हैं।

दांपत्यगत दूरियों, अपूर्णता, रिक्तताबोध और एकाकीपन के दंश ने अनेक वैवाहिक संबंधों को खोखला सिद्ध कर दिया है और दंपती चुपचाप इस विष को जीने के लिए पी रहे हैं और पीए जा रहे हैं।

संदर्भ

1. रामदरश मिश्र के उपन्यासों में गृहपरिवार, यशवंत के॰ गोस्वामी, नया साहित्य केंद्र, सोनिया विहार, दिल्ली 110024, प्रथम संस्करण 2005
2. शंभूरत्न त्रिपाठी, समाजशास्त्र के मूलाधार, क़िताब घर परेड, कानपुर, 1971
3. डॉ॰ भगवानदास वर्मा, कहानी की संवेदनशीलता सिद्धांत और प्रयोग, 1972
4. प्रताप सहगल, नहीं कोई अंत, क़िताब घर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998
5. डॉ॰ नीलम, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी लेखिकाओं के उपन्यासों में अलगाव, गुरुनानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर, प्रथम संस्करण 1987
6. प्रोमिला कपूर, भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1976
7. प्रताप सहगल, नहीं कोई अंत, क़िताब घर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998
8. डॉ॰ ज्ञानावती अरोड़ा, समसामयिक हिंदी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984
9. प्रताप सहगल, नहीं कोई अंत, क़िताब घर प्रकाशन, 24 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998
10. महेंद्र जैन, हिंदी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण, पृ॰ 106
11. प्रताप सहगल, नहीं कोई अंत, क़िताब घर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998
12. डॉ॰ दशरथ ओझा, आज का हिंदी नाटक : प्रगति और प्रभाव, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 1984
13. डॉ॰ मोतीलाल गुप्ता, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ॰ 401

आचार्य शंकर का मायावाद

डॉ॰ अशोक उपाध्याय
एसो॰ प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, बरेली कालेज
बरेली (उ॰प्र॰)

आचार्य शंकर भारतीय दर्शन के दिव्य आकाशदीप हैं। उनके द्वारा प्रवर्तित ज्ञान-राशि आज भी भौतिकता की गलियों में भटकने वाले मानवों का पथ प्रदर्शित करने की अलौकिक शक्ति रखती है। उनकी निर्मल एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली वाग्धारा के पावन आलोक में भारत ही नहीं, अपितु विश्व की अनेक प्रतिभाओं ने जीवन के मूल रहस्यों का साक्षात्कार करके दूसरों को भी इस दिशा में प्रोत्साहित किया है। वे एक कर्मठ संन्यासी, सुधारक, कवि दार्शनिक तत्त्ववेत्ता एवं वेदांत धर्म के उदारक लोकशिक्षक थे। डॉ॰ राधाकृष्णन के शब्दों में–'हम जैसे साधारण मनुष्यों को, जिनका जीवन भावुकतामय है, शंकर के जीवन में एक प्रकार का सूनापन प्रतीत होता है, जो प्रसन्नतादायक साहचर्य के रंगीले सुख से वंचित था और सामाजिक मनोरंजन का भी जिसमें अभाव था, किंतु सामान्य रूप से यही अवस्था उन सब महापुरुषों की होती है, जो उच्चतर कोटि के जीवन का अवलंबन करते हैं। यह अनुभव करते है कि उनकी पुकार ईश्वर की न्यायपरायणता का प्रचार करने तथा आत्मा के दावों को पूरा करने के लिए हुई है। वे एक ऐसे देवदूत की तरह थे, जो मनुष्य के समाज को धर्म के मार्ग का पथ-प्रदर्शन करने के लिए अवतरित हुआ था। [1]

जिस समय आचार्य शंकर ने होश सँभाला, उस समय भारत में बौद्धधर्म का पतन प्रारंभ हो गया था। सम्राट अशोक की मृत्यु के उपरांत उसके द्वारा प्रवर्तित 'अहिंसा परमोधर्म:' के सिद्धांत की ध्वजा फहराने वाला यह राजधर्म यवनों के आक्रमणों के कारण जनता की दृष्टि में अश्रद्धा का पात्र बनने लगा था। जैनधर्म की प्रतिष्ठा थी। वैदिक क्रिया-कलापों के प्रति लोगों में न कोई उत्साह दिखाई देता था और न ही समाज में उन्हें यथेष्ट सम्मान मिल रहा था। दक्षिण में शैव वैष्णव मतों की उपासना का प्रचार करनेवाले 'आदियार' तथा 'आलवार' भक्त यत्र-तत्र भ्रमण कर रहे थे। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप लोगों में पौराणिक हिंदूधर्म के प्रति निष्ठा जाग्रत हो रही थी। पल्लव वंश के राजाओं की छत्रछाया में विकसित ब्राह्मण धर्म धीरे-धीरे हिंदूधर्म के रूप में पुष्पित और पल्लवित होने का प्रयास कर रहा था। इस वंश के प्रारंभिक शासक बौद्ध-धर्मानुयायी थे। उसके बाद के शासकों ने वैष्णव धर्म स्वीकार किया और अंतिम शासकों की शैवधर्म के प्रति अगाध निष्ठा थी। यद्यपि हिंदू विचारधारा बौद्धमत के ऊपर क्रियात्मक रूप में विजयी होती चली जा रही थी, फिर भी जनसाधारण के हृदय में इस बात की जड़ें

काफ़ी गहराई तक पहुँची हुई थीं, जिन्हें आसानी से उखाड़ फेंकना संभव नहीं था। बौद्धों की त्यागपरक प्रवृत्ति तथा ईश्वरवाद की भक्तिपरक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मीमांसा दर्शन में आस्था रखने वाले विद्वान संन्यास के महत्त्व का खंडन कर रहे थे। वे कर्म एवं गृहस्थाश्रम की उपादेयता का विविध प्रकार से मंडन करते थे और वैदिक कर्मकांडों के महत्त्व को अत्यंत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना उनका प्रमुख कर्त्तव्य बन गया था। लेकिन ये लोग भी सभी मनुष्यों के हृदय में वैदिक क्रियाकलापों के तार्किक महत्त्व को स्थापित करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे। यही नहीं, अन्य आस्तिक संप्रदायों के प्रचारक भी किसी-न-किसी प्रकार श्रुति वाक्यों का आश्रय लेकर अपने मत को प्रतिष्ठित करने का प्रयास कर रहे थे। भारतीय धर्म एवं दर्शन के इतिहास में यह एक ऐसा युग था, जबकि पारस्परिक वाद-विवादों में फँसे हुए संप्रदायों के कारण जनता धर्म एवं दर्शन के प्रति उदासीनता का भाव प्रदर्शित करने लगी थी। उस युग को एक ऐसे अद्वितीय प्रतिभासंपन्न लोकनायक की तलाश थी, जो कि भूत और वर्तमान दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए पारस्परिक कलह में उलझे हुए पंडितों के सम्मुख एक भव्य एवं उदात्त विचार-दर्शन प्रस्तुत कर सके। आचार्य शंकर ने युग की माँग को स्वीकार किया और अपनी लोकसमन्वयकारी प्रतिभा के बल पर अद्वैत वेदांत की मधुर शब्दावली का उपदेश दिया, जिसे सुनकर लोकजीवन आनंदित हो उठा, उसने इस अद्वितीय महापुरुष के चरणों में अपना मस्तक नवा दिया। वंगीय विद्वान प्रज्ञानंद सरस्वती ने ठीक कहा है– 'शंकर दार्शनिक क्षेत्र में सम्राट हैं। वे चिंता राज्य के चक्रवर्ती और मनीषा के महाराजाधिराज हैं।' [2]

आचार्य शंकर सूर्य के समान तेजस्वी एवं हंस के समान नीर-क्षीर विवेककारी युगपुरुष थे। उन्होंने ज्ञान और संन्यास के महत्त्व को दूषित ठहराने वाले प्रसिद्ध मीमांसक मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित करके उन्हें अपना शिष्य बना लिया। वे 'एक साथ और एक ही समय में कट्टर सनातन धर्म के उत्साही रक्षक एवं धार्मिक सुधारक के रूप में भी प्रकट हुए। उन्होंने पुराणों के उज्जवल विलासमय युग के स्थान में उपनिषदों के रहस्यमय सत्य के युग को फिर से लाने का प्रयत्न किया। आत्मा को उच्चतर जीवन की ओर मोड़ने की जो शक्ति धर्म में है, उसे उसके बल को परखने की कसौटी माना। उन्होंने अपने युग को धार्मिक दिशा में मोड़ने के लिए प्रयत्न करने में अपने को विवश पाया और इसकी सिद्धि उन्होंने एक ऐसे दर्शन व धर्म की व्यवस्था के द्वारा संपन्न की, जो बौद्ध, मीमांसा तथा भक्ति धर्म की अपेक्षा जनता की आवश्यकताओं को कहीं अधिक संतोषप्रद हो सकती थी। अस्तित्ववादी सत्य को भावावेश के कुहरे से आच्छादित करनेवाले विद्वान जीवन की क्रियात्मक समस्याओं के प्रति उदासीन थे। मीमांसकों द्वारा कर्म के ऊपर दिए गए बल से एक आत्मविहीन क्रियाकलाप का विकास हुआ। धर्म जीवन के अंधकारमय संकटों का सामना करके केवल उसी अवस्था में जीवित रह सकता है, जबकि यह विचार का उत्तम परिणाम हो। शंकर की सम्मति में अद्वैत दर्शन ही एकमात्र परस्पर विरोधी संप्रदायों के अंदर निहित सत्य है तथा उसकी न्यायोचितता का प्रतिपादन कर सकता है और इस प्रकार उन्होंने अपने सब ग्रंथों का निर्माण एक ही उद्देश्य को लेकर किया, अर्थात् जीवात्मा को ब्रह्म के साथ अपने एकत्व को पहचानने में सहायक सिद्ध होना और यही संसार से मोक्ष-प्राप्ति का उपाय है।' [3] प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान थिवौट ने इस संदर्भ में टिप्पणी की है कि 'शंकर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत जो विशुद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण से,

सब प्रकार के धर्म-संबंधी विचारों के अतिरिक्त अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है, भारत की भूमि में उपजा है। वेदांत के उन रूपों में से, जो शंकर के मत से भिन्न दशा में जाते हैं अथवा वेदांत के विपरीत दर्शनों में से कोई भी, जहाँ तक साहस, गांभीर्य तथा कल्पना की सूक्ष्मता का संबंध है, शास्त्रीय वेदांत की तुलना में नहीं ठहर सकते।' [4] स्पष्ट है कि आचार्य शंकर विश्व के उन महान दार्शनिकों की श्रेणी में आते हैं, जिन्होंने अमोघ मेधाशक्ति के बल पर ज्ञान के क्षेत्र में एक नई दिशा का अन्वेषण किया। प्रस्थानत्रयी जैसे कठिन एवं दुरूह ग्रंथों पर लिखे गए भाष्यों के द्वारा उनकी विद्वत्ता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इनकी भाषा में रोचकता, सहजता एवं बोधगम्यता के साथ-साथ प्रौढ़ता का गुण भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। 'इन्हें हम वीणा के सदृश मान सकते हैं। वीणा के तार की एक विशिष्टता रहती है। उससे एक ध्वनि तो ऐसी निकलती है, जिसे सर्वसाधारण सुनते हैं और पहचानते हैं, परंतु उसकी मधुर झंकार के भीतर एक सूक्ष्म, कोमल ध्वनि भी निकलती है, जिसे कलाविदों के ही कान सुनते और पहचानते हैं। भाष्यों की भी ठीक ऐसी ही दशा है। उनके ऊपरी अर्थ का बोध तो सर्वसाधारण करते ही हैं, परंतु इनके भीतर से एक सूक्ष्म, गंभीर अर्थ की भी ध्वनि निकलती है, जिसे विज्ञ पंडित ही समझते-बूझते हैं।' [5] वे महान तत्त्वचिंत्तक ही नहीं, अपितु अध्ययनशील महात्मा भी थे। उन्होंने वैदिक धर्म-दर्शन के मूल ग्रंथों के अतिरिक्त बौद्ध, जैन, सांख्ययोग, मीमांसा, न्याय-वैशेषिक आदि दर्शनों पर लिखे ग्रंथों का भी यथेष्ट अध्ययन किया था। यही कारण है कि जहाँ भी खंडन-खंडन की आवश्यकता पड़ी, वहाँ उन्होंने अधिकारपूर्वक तर्क देकर अपना मंतव्य सिद्ध कर लिया है। आचार्य जी ने छोटे-छोटे प्रकरण ग्रंथों की भी रचना की है, जो कि विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी एवं रुचिकर प्रतीत होते हैं। इनमें उनके द्वारा प्रवर्तित सिद्धांतों को बड़ी ही सरल एवं सुबोध भाषा में निरूपित किया गया है। सामान्य-से दृष्टांतों की सहायता से, छोटे-छोटे छंदों के कलेवर में ग्रंथित, गंभीर एवं पांडित्यपूर्ण विषयों की व्याख्या अत्यंत सहज एवं बोधगम्य प्रतीत होती है। 'शंकराचार्य के दर्शन में तर्क का महत्त्व केवल यही है कि यह हमें शास्त्रों के अध्ययन और उनके यथातथ्य अर्थों को समझने में सहायक होता है। वास्तविक सत्य केवल तर्क से नहीं ज्ञात हो सकता। जो अधिक कुशल तार्किक है, वह सहज ही एक तथ्य को सत्य के रूप में प्रमाणित कर देता है। अत: सत्य केवल तर्क से नहीं जाना जा सकता। शाश्वत मूल्यों और एक सत्य ज्ञान के लिए वेद उपनिषद् का अध्ययन आवश्यक है। शंकर ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि उनकी उपनिषदों की व्याख्या युक्तिसंगत और बौद्धिक अनुभव के अनुकूल है, जो ज्ञान अनुभव से युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता, उसे मान्य नहीं कहा जा सकता। उपनिषद् सत्य का भंडार है, पर उनका मनन करने के लिए जिस सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है, वह दृष्टि श्री शंकराचार्य ने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, ऐसा उनका अभिमत है। वह किसी स्वतंत्र दर्शन की स्थापना करने का आग्रह नहीं रखते। उनका ध्येय केवल इतना ही है कि उपनिषदों की बौद्धिक और यौक्तिक व्याख्या प्रस्तुत की जाए, जिससे उपनिषदों के सत्य को अनुभव के आधार पर सर्वसाधारण और विद्वज्जन स्पष्ट रूप से ग्रहण कर सकें। शास्त्र और उपनिषद् ही अंततोगत्वा प्रामाणिक और मान्य है, किसी भी प्रामाणिकता का आधार तर्क नहीं हो सकता, वह तो केवल साधन-मात्र है।' [6] उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित परमतत्त्व ब्रह्म तर्क द्वारा नहीं अपरोक्षानुभूति द्वारा

जाना जा सकता है। पहले श्रद्धा, फिर तर्क और अंत में अनुभूति होती है।

भारतीय दर्शन में ही नहीं अपितु, विश्वदर्शन के क्षेत्र में भी आचार्य शंकर की प्रतिष्ठा का कारण उनके द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद और मायावाद है। यह हिंदू-दर्शन की अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।[7] इसकी अनुपस्थिति में हिंदूधर्म के प्रमुख प्रतिपाद्य ग्रंथ उपनिषदों के दर्शन का सम्यक् ज्ञान संभव नहीं है। उपनिषदों में जिन सिद्धांतों का वर्णन किया गया है, वे एक समान नहीं हैं। इनमें परस्पर इतना अधिक विरोधाभास दृष्टिगत होता है कि उनके माध्यम से किसी एक निश्चित मत अथवा सिद्धांत का सहज ज्ञान संभव नहीं है। यदि कठोपनिषद[8] में ब्रह्म के निर्गुण-निराकार रूप का प्रतिपादन हुआ है तो मुंडकोपनिषद्[9] में उसके सगुणरूप को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। वृहदारण्यकोपनिषद्[10] में जिस जगत् के असत रूप का वर्णन है तैत्तिरीययोपनिषद्[11] में उसी जगत के सत स्वरूप से संबंधित धारणा दृष्टिगत होती है, क्योंकि इसमें उसकी उत्पत्ति ब्रह्म के माध्यम से बताई गई है। जो ब्रह्म कठ्[12], केन[13] और वृहदाण्यकोपनिषद्[14] में ज्ञेय स्वरूप प्रतीत होता है, वही तैत्तिरीयोपनिषद् में ज्ञेय के रूप में स्वीकृत किया गया है। छांदोग्यउपनिषद्[16] में यदि ब्रह्म और जीवन के ऐक्य-भाव का प्रतिपादन है तो कठोपनिषद्[17] में इन दोनों के भेद का उल्लेख हुआ है। इन पारस्परिक विरोधी सिद्धांतों के कारण उपनिषदों के दर्शन में अस्पष्टता आ गई। विश्व के इस महान विचारक ने मायावाद के सिद्धांत द्वारा इस अस्पष्टता का निराकरण किया और औपनिषदिक सिद्धांतों में पारस्परिक समन्वय स्थापित करके भारतीय धर्म एवं दर्शन को एक नया आयाम प्रदान किया। विश्व का मूल आधार निर्गुण ब्रह्म है, जो कि शंकर की दृष्टि में अद्वैतरूप और परमसत है। द्वैत और नानात्व मिथ्या है—आभास है। जब ब्रह्म मायामय होकर सगुण रूप में क्रियाशील होता है, तब उसे ईश्वर की अभिधा प्रदान की जाती है। माया असत् एवं मिथ्याभूत होने के साथ-साथ परमसत की अनिर्वचनीय शक्ति है। इसे अविद्या भी कहा जाता है। जिस प्रकार अग्नि की दाहकता अग्नि से अलग नहीं की जा सकती, उसी प्रकार माया को भी ईश्वर से अलग कर पाना संभव नहीं है। इसी माया के द्वारा ब्रह्म ईश्वर के रूप में मायावी बनकर वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि की अद्‌भुत लीला प्रदर्शित करता है। अज्ञानी लोग इसे सत समझते हैं, परंतु जो तत्त्वदर्शी हैं, वे इसकी वास्तविकता को भली-भाँति समझ लेते हैं। उन्हें इस मायामय जगत में ब्रह्म-मात्र ही सत्य दिखाई देता है। माया जगत् का उपादान कारण है। जगत् असत है, क्योंकि इसका प्रादुर्भाव असत् रूप माया से हुआ है, लेकिन अध्यारोप न्याय के अनुसार जिस प्रकार रज्जु सर्प प्रतीत होती है, उसी प्रकार शुद्ध चैतन्य ब्रह्म भी अविद्यावश जगत् प्रतीत होता है। जब अविद्या अथवा माया का निवारण होने पर ज्ञान का प्रकाश होता है, तब सर्प एवं जगत स्वयं ही लुप्त हो जाते हैं। यह ठीक है कि जगत् असत है परंतु वह सत ब्रह्म में आरोपित होता है इसीलिए सद् जैसा आभास देता है। 'ब्रह्म जगत् के साथ तदात्मक है भी और नहीं भी है। यह इसलिए कि जगत ब्रह्म से पृथक् नहीं है और तादात्म्य इसलिए नहीं भी है, क्योंकि ब्रह्म जगत् के परिवर्तनों के अधीन नहीं है। ब्रह्म जगत की वस्तुओं का पुंज-मात्र नहीं है। यदि हम ब्रह्म और जगत् को पृथक् करें तो भी उनका बंधन शिथिल ही रहेगा और वह कृत्रिम तथा बाह्यरूप में ही होगा। ब्रह्म और जगत् एक हैं तथा यथार्थता और आभास के रूप में अपना अस्तित्व रखते हैं। जगत ब्रह्म है, क्योंकि यदि ब्रह्म का ज्ञान हो जाए तो जगत् के संबंध में सब प्रकार के प्रश्न स्वत: विलुप्त हो जाते हैं।

वे समस्त प्रश्न उठते ही इसलिए हैं कि शांत मन आनुभविक जगत् को अपने-आपमें यथार्थ के रूप में चिंतन करता है। यदि हम निरपेक्ष परब्रह्म के स्वरूप को जान लें तो समस्त सीमित आकृतियाँ तथा सीमाएँ अपने-आप विलुप्त हो जाती हैं। [18] मायावाद के द्वारा ब्रह्म की ज्ञेयता और अज्ञेयता भी स्पष्ट हो जाती है। अविद्या आवरणरूपा है तथा ब्रह्मज्ञान में बाधक है। वृत्तिगत ज्ञान के द्वारा इसका आवरण छिन्न-भिन्न हो जाता है। अतः ब्रह्म ज्ञेयस्वरूप है। परंतु जिस प्रकार दीपक सूर्य के दर्शन में समर्थ सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार वृत्तिगत ज्ञान के द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। इसलिए ब्रह्म को अज्ञेय भी कहा जा सकता है। अविद्या के नष्ट होने पर ब्रह्मज्ञान की स्थिति उत्पन्न होती है, इसमें ज्ञाता और ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है। मायावाद के कारण ही तत्त्वमसि महावाक्य की प्रतिष्ठा संभव हुई है। जीव और ब्रह्म पारमार्थिक दृष्टि से अभिन्न हैं। दोनों में जो भेद प्रतिभासित होता है, उसका कारण अविद्या कल्पित शरीर इंद्रियाँ मनस तथा बुद्धि की उपाधियाँ हैं। जीव के सुख-दुख इत्यादि भी अविद्या-कल्पित और आकस्मिक होते हैं, ब्रह्मज्ञान होते ही इन सबका लोप हो जाता है।

आचार्य शंकर भारतीय दर्शन के अद्वितीय विद्वान हैं। इनका मायावाद भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों में से एक है। इसको स्वीकार किए बिना अद्वैतवाद का प्रतिपादन करना असंभव प्रतीत होता है। यदि ध्यान से देखा जाए तो अद्वैतवाद और मायावाद दो अलग-अलग सिद्धांत नहीं हैं। 'अद्वैतात्मवाद एवं मायावाद इति लोके गीयते' की मान्यता से स्पष्ट हो जाता है कि मायावाद अद्वैतवाद का उपांगभूत सिद्धांत है। शंकराचार्य ने इसकी स्थापना करके उपनिषदों के दर्शन एवं वेदांत सूत्रवर्ती दर्शन की परस्पर विरोधी समस्याओं का बड़ा ही सहज समाधान किया है। मायावाद के व्यावहारिक रूप ने वेदांत दर्शन को आचार एवं नैतिकता से परिपूर्ण जीवनमूल्यों की अवधारणा प्रदान की है, जिसके कारण वह व्यावहारिक होने के साथ-साथ लोकोपकारक एवं लोकोपयोगी भी बन गया है। आध्यात्मिक स्तर पर वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का दार्शनिक स्वर यदि कहीं सहज एवं सारगर्भित रूप में अभिव्यंजित हुआ है तो वह मायावाद में।

वैदिक साहित्य में माया शब्द का प्रयोग विशेष रूप से शक्ति, प्रवंचना, चालाकी अथवा छल के अर्थ में हुआ है। ब्रह्म के अद्वैतात्मक रूप एवं सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म के संबंध पर विचार करते समय भी हमें इस तत्त्व के विषय में सोचने की आवश्यकता महसूस होती है। यही वह आदि सामग्री है, जिसको ग्रहण करके उपनिषदों के विचारक अद्वैत तत्त्व एवं माया के स्वरूप का आख्यान करने के लिए प्रस्तुत हुए। उन्होंने इस आदि चिंतन-सामग्री के माध्यम से भारतीय आध्यात्मिक एवं दर्शन को नया दिशा-बोध प्रदान किया। आचार्य शंकर का मायावाद औपनिषदिक मत का बुद्धिपूर्वक विकास है। प्रो॰ रानाडे की मान्यता है कि यद्यपि उपनिषदों में माया का सिद्धांत अपने पूर्ण दार्शनिक संभागों के रूप में वैसा नहीं दिखाई देता जैसा कि गौड़पाद आदि परवर्ती दार्शनिकों में, फिर भी इनमें हमें वे सब तथ्य स्पष्टतया मिल जाते हैं, जिनको आधार बनाकर शंकराचार्य ने अपने मायावाद का विकास किया। उपनिषदों का मायातत्त्व ही गीता में विकसित हुआ है। गीता की माया परमेश्वर की शक्ति होने के साथ-साथ बंधनरूप भी है। इसके कारण ही सृष्टि का सृजन होता है। मानव आत्मा के भीतर भ्रांति एवं अज्ञान का प्रादुर्भाव भी इसी से होता है, लेकिन आभास के रूप में इसका प्रयोग वहाँ नहीं हुआ है। फिर

भी शंकराचार्य ने अपने मायावाद की स्थापना के लिए गीता की माया-शक्ति का भरपूर उपयोग किया है। बौद्धदर्शन में भी अविद्या अथवा मायातत्त्व पर काफ़ी विस्तार से विचार हुआ है। इसके आचार्यों का स्वतंत्र दृष्टिकोण उपनिषदों के प्रभाव से विकसित हुआ है, जिसके द्वारा वे भविष्य के दार्शनिकों को एक नया चिंतन-स्रोत प्रदान करने में समर्थ हुए हैं। प्रो॰ दास गुप्ता आदि विद्वानों का मत है कि शंकराचार्य का मायावाद बौद्धदर्शन की देन है, लेकिन उपनिषदों में माया के स्वरूप या सम्यक् दृष्टिपात करने के उपरांत यह मत निर्मूल सिद्ध हो जाता है, और यह कहना ही उचित प्रतीत होता है कि बौद्धदर्शन में माया का प्रत्यय उपनिषदों से ग्रहण किया गया है, जिसका प्रमाण हमें आचार्य गौड़पाद के दर्शन में अनायास मिल जाता है। मायावाद एवं बौद्धदर्शन के शून्यवाद तथा विज्ञानवाद में पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है। उन्होंने बौद्ध विज्ञानवाद और शून्यवाद के प्रत्ययों का मंथन करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ये दोनों सिद्धांत मूलत: औपनिषदिक् तत्त्वज्ञान को ग्रहण करके ही विकसित हुए हैं। गौड़पाद का प्रमुख उद्देश्य उपर्युक्त सिद्धांतों का समर्थन नहीं, उनमें निहित तथा पूर्ववर्ती तमसाच्छन्न वेदांतिक विचारधारा का स्पष्टीकरण करना था, जो कि सर्वथा प्रशंसनीय एवं उपादेय प्रतीत होता है। आचार्य शंकर पर गौड़पाद के माया-संबंधी विचारों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है, जिसके कारण उनके मायावाद में भी बौद्धदर्शन के कुछ प्रत्यय स्वाभाविक रूप से अनायास समाविष्ट हो गए हैं।

शंकराचार्य ने माया को ईश्वर की उत्पादिका शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया है। ईश्वरीय शक्तिरूपता, अनादिता, अनिर्वचनीयता, त्रिगुणात्मकता, सांतता, भावरूपता, उत्पादकता, अध्यासता एवं व्यावहारिकता इत्यादि इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। सामान्यतया माया और अविद्या एक ही प्रतीत होती हैं। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब हम इनका विश्लेषण करते हैं, तब इनमें कुछ स्तरों पर सूक्ष्म भेद भी परिलक्षित होता है। अध्यास इनका मूल स्रोत है। इसके अंतर्गत आनेवाली भारतीय दर्शन की विविध ख्यातियों में अद्वैत वेदांत की माया का निर्वचन शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अनिर्वचनीय ख्यातिवाद के द्वारा ही संभव है। माया और माया का कार्य प्रपंच सत्-असत् एवं सद् उभय रूप से विलक्षण अनिर्वचनीय है।

माया ब्रह्म की शक्ति है, वह ब्रह्म से उसी प्रकार अभिन्न है, जिस प्रकार शक्तिमान से शक्ति। माया के कारण ही निर्गुण और निराकार ब्रह्म ईश्वर और जीव रूप में प्रतिभासित होता है। समष्टि रूप अज्ञान सत्व गुण (माया) की प्रधानता से ईश्वर कहा जाता है और व्यष्टि रूप अज्ञान मलिन सत्व (अविद्या) की प्रधानता से 'जीव' का अभिद्यान प्राप्त करता है। लेकिन जिस माया की महिमा से ईश्वर का ईश्वरत्व संपादित होता है, उसी माया की अवस्तुरूपता के कारण ईश्वर उससे सर्वथा अस्पष्ट एवं असंबद्ध रहता है। जगत ईश्वर की लीला तथा अविद्या अथवा माया के अव्याकृत नाम रूप का व्याकरण है। वास्तव में ब्रह्म के अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब माया है।

शंकराचार्य पर प्रच्छन्न बौद्धता आक्षेप लगाना सर्वथा अनुचित है। उनके मायावाद और बौद्ध सिद्धांतों में दृष्टिगत होने वाली समानताओं का आधार उपनिषद् हैं। उपनिषदों के जो विचार बौद्धदर्शन में फलीभूत हुए, वे ही शंकर वेदांत में अनायास ही प्रविष्ट होते चले गए। इनकी सुदृढ़ नींव पर ही अद्वैत वेदांत के सबसे अधिक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण स्तंभ मायावाद की स्थापना हुई, जो कि अपने पुरातन रूप से जुड़े रहने के बावजूद पूर्णरूपेण नवीन प्रतीत होता है।

रामानुजाचार्य की अनुपत्तियाँ और श्री अरविंद के आक्षेप भी इस संदर्भ में पूर्णरूपेण तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते हैं। वैसे मायावाद के पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ कहा जाता रहा है और इसके सार्वकालिक महत्त्व को देखते हुए संभावना है कि आगे भी कहा जाएगा, परंतु यह बात अत्यंत स्पष्ट है कि आचार्य शंकर का यह सिद्धांत भारतीय दर्शन के महिमामंडित आकाश में अटल ध्रुव नक्षत्र की तरह प्रतिष्ठित है, इसको अपदस्थ करने का प्रयास सदैव निष्फल रहेगा। आचार्य शंकर की सफलता की महत्ता का आधार विचार की विशिष्ट घनता और उज्ज्वलता है, जिसे लेकर वे यथार्थ सत्ता की खोज का कार्य संपादित करते हैं और इसके लिए आत्मा के उस उच्च आदर्श का आश्रय लेते हैं, जो जीवन की कठिन समस्याओं से भी जूझ सकता है, भले ही इसका आध्यात्मिक परिणाम कुछ भी हो। इसके अतिरिक्त शंकर सिद्धि के ऐसे दर्शन का आश्रय लेते हैं, जो मानवीय जीवन में एक दैवीय ऐश्वर्य का आधान करती है।' [19]

संदर्भ

1. डॉ॰ राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग 2, पृ॰ 442
2. स्वामी प्रज्ञानंद सरस्वती, वेदांत दर्शनेरइतिहास, प्रथम भाग, पृ॰ 83
3. डॉ॰ राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग 2, पृ॰ 443
4. थिवौट, इंट्रोडक्शन टू ब्रह्मसूत्र, पृ॰ 14
5. बलदेव उपाध्याय, श्री शंकराचार्य, पृ॰ 330
6. एस॰एन॰ दास गुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1, पृ॰ 438-39
7. अनिलकुमार राय चौधरी, द डाक्ट्रिन आफ़ माया, पृ॰ 171
8. कठोपनिषद् 3/8, 3/12
9. मुंडकोपनिषद् 1/1/9
10. वृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/10
11. तैत्तिरीयोपनिषद्, भगुवल्ली 1
12. कठोपनिषद् 3/12
13. केनोपनिषद्, 1/5
14. वृहदारण्यकोपनिषद् 4/5/15
15. तैत्तिरीयोपनिषद् 6/16/3
16. छांदोग्योपनिषद् 6/16/3
17. कठोपनिषद् 3/1
18. डॉ॰ राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग 2, पृ॰ 564-65
19. डॉ॰ राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग 2, पृ॰ 577

❐ 6/7, **खन्ना भवन**

सुभाषनगर, बरेली (उ॰प्र॰)

छायावादी काव्य में सत्य की अभिव्यक्ति

डॉ॰ साधना तोमर
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
जनता वैदिक महाविद्यालय, बड़ौत (बागपत) उ॰प्र॰

सत्य वह सामान्य विचार है, जोकि सार्वकालिक या सार्वदेशिक होता है, जिसकी सत्ता सतत् या नित्य रहती है। इसी सत्य की शोध बुद्धि की प्रक्रिया से ज्ञानी एवं दार्शनिक करते हैं।[1] सत्य जगत् और जीवन दोनों का सनातन तत्त्व है। जगत् के यथार्थ और जीवन के साध्य दोनों ही इसमें सम्मिलित हैं।

सत्य की अभिव्यक्ति से तात्पर्य काव्य में उस सत्य के प्रस्तुतीकरण से है, जो अंत: और बाह्य जगत् में नए-नए रूपों में उद्‌भासित होता रहता है। कवि इस सत्य को स्वानुभूति के द्वारा ग्रहण करता है। प्रसाद जी ने तो 'श्रेय सत्य के मूल चारुत्व' की अभिव्यक्ति को काव्य का लक्ष्य माना है। उनका मत है– 'आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है।' [2] इस मूल चारुत्व का कवि अपनी विशिष्ट चिंतनावस्था में साक्षात्कार करता है।

सत्य की सहज रूप में अभिव्यक्ति करने के लिए काव्य का जन्म होता है। काव्य तथा कलाओं के मूल में सत्य की इसी सहज अभिव्यक्ति की इच्छा को निहित मानते हुए महादेवी वर्मा का कथन है– 'बहिर्जगत् से अंतर्जगत् तक फैले हुए ज्ञान तथा भावक्षेत्र में समान रूप से व्याप्त, सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते हुए मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार किया होगा। ...जो सत्य केवल स्थूल जगत् तक सीमित न रहकर अंतर्जगत् के अनुभूति-क्षेत्र तक व्याप्त है, उसके अनंत रूपों की विविध अभिव्यक्ति के लिए ही काव्य की रचना होती है और यह अभिव्यक्ति रसमयी होती है।'[3] महादेवी वर्मा केवल विचार और तर्क पर आधारित ज्ञानमूलक सत्य को ही सत्य नहीं मानती, अपितु भावानुभूति से उपलब्ध निष्कर्ष को भी सत्य का एक रूप मानती हैं। काव्य के क्षेत्र में जिस सत्य की प्रतिष्ठा की जाती है, वह बुद्धि या ज्ञान पर आधारित सत्य नहीं, अपितु भावानुभूति पर आधारित सत्य है। 'कला सत्य को ज्ञान के सिकता-विस्तार में नहीं खोजती, अनुभूति की सरिता के तट से एक विशेष बिंदु पर ग्रहण करती है।'[4]

जब जीवन के सत्य अपनी ऋजुता और पारदर्शिता में अभिव्यक्ति की भंगिमाओं को प्रकाश-किरणों के समान अंतर्निहित कर लेते हैं तो सत्य-काव्य की सृष्टि होती है। 'बाल्मीकि

रामायण' और 'रामचरितमानस' काव्य में यही सत्य-रूप मिलता है। 'सत्य काव्य वही है, जिसमें व्यंजना की भंगिमा प्रकाश किरण के परमाणुओं की बंकिमा की भाँति सत्य की ऋजुता में अंतर्निहित हो जाती है। काव्य के प्रसाद गुण में व्यंजना की इस भंगिमा का ऋजुता में समाहार होता है। इसीलिए प्रसाद की उज्ज्वलता 'सत्य-काव्य' की सनातन विशेषता है।'[5]

काव्यगत सत्य शाश्वत् सत्य होता है। 'वैज्ञानिक एवं दार्शनिक सत्य सिद्धांत यदि आगामी युग में असत्य सिद्ध हो गए तो फिर उनका कोई मूल्य नहीं, परंतु हंस का नीर-क्षीर विवेक, चंद्रमा का अमृत, आकाश की दुग्ध-गंगा, यश का श्वेत एवं अनुराग का लाल रंग, स्वर्ग-नरक आदि काव्यगत सत्य अब भी समादृत हैं।'[6] छायावादी कवियों ने जीवन और जगत् के विविध सत्यों की अभिव्यक्ति को अपने काव्य की आधार-भूमि बनाया है। इन्होंने अपनी अंत: एवं बहिर्मुखी प्रवृत्ति द्वारा जीवन और प्रकृति के विविध क्रियाकलापों में प्रतिफलित होने वाले जिन आधारभूत तत्त्वों एवं शाश्वत् सत्यों की उपलब्धि की तथा भेद, विरोध एवं अनेकता में खोए हुए अभेद, अविरोध एवं एकता का अन्वेषण किया, वह इनके गंभीर चिंतनस्वरूप ज्ञान का परिचायक है।

प्रेम जिस प्रकार दृष्टिकोण को उदार बनाता है, उसी प्रकार वेदना, पीड़ा भी जीव-मात्र के दुख-दर्द के प्रति संवेदनशील बनाकर, हमें सच्चे अर्थों में मानव बनाती है। जन-जन के दुख-दर्द का स्पर्श ही हमारे क्षुद्र मन को कंचन कर देता है। इसी सत्य को पंत जी ने अभिव्यक्ति प्रदान की है–

वेदना में तपकर प्राण,
दमक दिखलाते स्वर्ण हुलास।[7]

घोर विपत्ति का सामना करने के लिए व्यक्तित्व को वज्र-सा कठोर बनाने की प्रेरणा के साथ-साथ, उसमें कुसुम जैसी कोमलता का विधान करने वाले मधुर, प्रेरणादायक तत्त्व भी छायावादी काव्य में प्राप्त होते हैं। विश्व के अशिव और कलुष को भस्म कर डालने वाली अग्नि के अभाव में आँसू दुर्बल हृदय के विकार-मात्र बनकर रह जाते हैं। परिस्थिति के अनुकूल व्यक्तित्व में अभीष्ट वज्र-कठोरता और कुसुम-कोमलता दोनों ही आवश्यक हैं। जीवन के इसी सत्य को 'हिमालय' के माध्यम से महादेवी वर्मा ने अभिव्यक्त किया है–

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिए है दीन क्षार,
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश भार।[8]

यह मूर्त विश्व उस सत्य और मंगलमय चेतना का ही सुंदर शरीर है। स्वाध्याय द्वारा इसका अन्वेषण किया जा सकता है। 'स्वाध्याय द्वारा मनुष्य सत् को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में जो हमारे सब बौद्धिक व्यापारों का सत्य की प्राप्ति के लिए सतत् उपयोग रहता है, वह सत्य प्राकृतिक विभूतियों में जो परिवर्तनशील होने के कारण अमृत नाम से पुकारी जाती है, ओत-प्रोत है।'[9] इस सत्य का स्वरूप विराट है, जिसका सहृदयता के द्वारा साक्षात्कार किया जा सकता है। छायावादी कवियों ने जीवन और प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में निहित तत्त्वों के अन्वेषण द्वारा सत्य की अभिव्यक्ति की है। सूक्ष्म संवेदना-शक्ति एवं गंभीर तथ्यों के आर-पार देखने वाली

मेधा से छायावादी कवियों ने सहज रूप से अखंड सर्वव्यापी सत्य का साक्षात्कार व्यष्टि एवं समष्टि जीवन में किया है। कविवर पंत ने जीवन की उत्पत्ति, गति और संगम के शाश्वत् सत्य को नौका-विहार के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम,
शाश्वत् है गति शाश्वत् संगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत् लघु लहरों का विलास।
हे जग जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर-पार,
शाश्वत् जीवन नौका-विहार।[10]

छायावादी कवियों ने बुद्धि द्वारा गम्य सत्य को अनुभूति के सागर में रससिक्त कर और जीवन के स्पर्श से स्पंदित कर आकर्षक और संवेदनीय बनाने की चेष्टा की है। इस रसमय और संवेदनीय रूप के साथ-साथ सत्य इतिवृत्तात्मक रूप में भी अभिव्यक्त हुआ है। अनुभूति ज्ञान की इस सहज अभिव्यक्ति में छायावादी कवि का उपदेशक रूप मुखर हो उठा है। परिस्थितियों और समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हुए कहीं तो छायावादी कवि ने प्रत्यक्ष रूप में तो कहीं परोक्ष रूप में पात्रों के सहज वार्तालाप के माध्यम से जीवन-सत्य के अनेक पक्षों को प्रकट किया है। इड़ा मनु के जीवन-निर्वाह के स्पृहणीय स्वरूप की ओर संकेत करती है–

यह जीवन उपयोग, यही है बुद्धि साधना,
अपना जिसमें श्रेय, यही सुख की आराधना।
लोक सुखी हो, आश्रय ले यदि उस छाया में,
प्राण-सदृश तो रमो, राष्ट्र की इस काया में।
ताल-ताल पर चलो, नहीं लय छूटे जिसमें,
तुम न विवादी स्वर छेड़ो, अनजाने इसमें।[11]

एकता का भाव प्रेम के अभाव में संभव नहीं। जीवमात्र के प्रति प्रेम की अनुभूति ही जीवन को स्पृहणीय बनाती है। सीमाओं और संकीर्णताओं से अपने व्यक्तित्व को उबारकर विश्व-बंधुत्व के लोक में मनुष्य पहुँच सकता है। 'परिमल' के 'पचंवटी प्रसंग' में राम के माध्यम से कवि निराला ने इसी सत्य को प्रतिपादित किया है–

छोटे से घर की लघु सीमा में
बँधे हैं क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिय।
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही नि:सीम भू पर
प्रेम की महोर्मिमाला तोड़ देती है क्षुद्र ठाठ
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
तृण-सम बह जाते हैं।[12]

प्रकृति के अटल सत्य चिरपरिवर्तन के कारण नवीनता का उद्‌भव और प्राचीनता का तिरोभाव होता रहता है। 'कामायनी' में श्रद्धा के उद्‌बोधन में प्रसाद जी ने इसी सत्य को

उद्‌घाटित किया है–

प्रकृति के यौवन का शृंगार,
करेंगे कभी न बासी फूल।
पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का आनंद,
किए है परिवर्तन में टेक।[13]

छायावादी कवियों ने अनेक विरोधी भावनाओं और तत्त्व की सामंजस्य पूर्ण अभिव्यक्ति भी अपने काव्य में की है। इनके काव्य में ऐसे अनेक प्रसंग है, जहाँ विरोधी दिखायी देने वाली भावनाओं और विचारों में निहित अभेद को उद्‌घाटित किया गया है। सुख-दुख, पतझड़-बसंत, तर्क-श्रद्धा एवं व्यष्टि-समष्टि आदि को परस्पर पूरक और जीवन की क्रिया-प्रतिक्रिया चक्र के सहज उत्थान-पतन के रूप में देखा गया है। सुख के कारण दुख और दुख के कारण सुख जीवन से रूठ जाता है। अतः दोनों जीवन के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इसी सुख-दुख के ताने-बाने से जग-जीवन संचालित होता है। इसी सत्य को पंत जी ने अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी है–

जग जीवन में है सुख-दुख, सुख-दुख में है जग जीवन।
हैं बँधे बिछोह-मिलन दो, देकर चिर स्नेहालिंगन।[14]

सुख-दुख की लहरों के घात-प्रतिघात से जीवनधारा गतिशील रहती है। प्रसाद जी ने भी सुख-दुख के परिवर्तन-चक्र को जीवन के विकास का सत्य स्वीकार किया-

विषमता की पीड़ा से व्यस्त,
हो रहा स्पंदित विश्व महान,
यही सुख-दुख विकास का सत्य,
यही भूमा का मधुमय दान।[15]

आस्तिकता लोककल्याण एवं शांतिपूर्ण मानव-जीवन का मूल है। ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति, उसकी न्यायकारिणी शक्ति में अटूट विश्वास, उसके उचित दंड-विधान में आस्था, मानव-जीवन को व्यवस्थित, नैतिकता समर्पित और धर्मानुमोदित रूप प्रदान करती है। इस अज्ञात सर्वनियामक सत्ता के भय के अभाव में मानव-जीवन में स्वेच्छाचारिणी प्रवृत्ति एवं एक उद्‌दंड उच्छृंखलता पनपने लगती है, जिससे मानव तथा समाज दोनों का अहित होता है। मानव-प्रकृति का परिष्कार ईश्वर के न्याय में प्रबल आस्था रखने में संभव हो सकता है। सृष्टि के विविध कणों में व्याप्त सौंदर्य, प्रणय और शिवं में एक ही तत्त्व प्रकट हो रहा है। यह अभेद दृष्टि समाज को समझने के लिए अनिवार्य है। भेद में निहित सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभेद खोजने में निपुण पंत जी की दृष्टि भी इन पंक्तियों में एक केंद्रीभूत सत्य को व्यक्त करती है–

एक ही तो असीम उल्लास, विश्व में पाता विविधाभास।
तरल जलनिधि में हरित विलास, शांत अंबर में नील विकास।
वही उर में प्रेमोच्छ्‌वास, काव्य में रस, कुसुमों में वास।
अचल तारक पलकों में हास।

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप, लोकसेवा में शिव अविकार।
स्वरों में ध्वनित सुकुमार, सत्य ही प्रेमोद्‌गार,
दिव्य सौंदर्य स्नेह साकार, भावनामय संसार।[16]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य में सत्य के विविध रूप परिलक्षित होते हैं। एक ओर प्राकृतिक सत्य को अभिव्यक्ति मिली है तो दूसरी ओर सामाजिक सत्य के यथार्थ स्वरूप के दर्शन होते हैं। एक ओर छायावादी कवि ने मनोजगत् के भावों को प्रतिबिंबित करके मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्‌घाटित किया है तो दूसरी ओर परम सत्ता के प्रति अपने अटूट विश्वास को अभिव्यक्त करते हुए आध्यात्मिक सत्य को वाणी प्रदान की। उदात्त मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हुए छायावादी कवियों ने धर्म तथा संस्कृति के माध्यम से भारतीय संस्कृति के उज्जवल रूप को समस्त संसार के लिए उपादेय माना। समता, विश्व-प्रेम, जन-कल्याण, वृत्तियों का उदात्तीकरण, मानवतावादी भावना आदि को आवश्यक मानते हुए, समाज को मर्यादित रखने के लिए नैतिकता को मानव-संस्कृति का महत्त्वपूर्ण पक्ष माना। जीवन में उदात्त मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन ही छायावादी कवियों का मुख्य उद्‌देश्य रहा है। शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में–'जो अपनी उपयोगिता समाप्त करके मिट रहा है, वह असत्य है और जो उभर रहा है, वही सत्य है। सत्य की भी यहीं सरलतम व्याख्या और कसौटी है, नैतिकता की भी यही कसौटी है, क्योंकि नैतिकता के मानदंड सत्य से ही बनते हैं।'[17]

संदर्भ

1. डॉ॰ गणपतिचंद्र गुप्त, महादेवी : नया मूल्यांकन, पृ॰ 30
2. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ॰ 11
3. महादेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था, पृ॰ 32
4. गंगाप्रसाद पांडेय, महादेवी वर्मा का विवेचनात्मक गद्य, पृ॰ 5
5. डॉ॰ रामानंद तिवारी, सत्य शिवं सुंदरम्, भाग-1, पृ॰ 288
6. डॉ॰ भगीरथ मिश्र, अध्ययन, पृ॰ 3
7. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, पृ॰ 107
8. महादेवी वर्मा, यामा, पृ॰ 253
9. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ॰ 36
10. सुमित्रानंदन पंत, गुंजन, पृ॰ 96
11. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ॰ 193
12. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', परिमल, पृ॰ 238
13. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ॰ 55
14. सुमित्रानंदन पंत, गुंजन, पृ॰ 10
15. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ॰ 54
16. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, पृ॰ 107
17. शिवदानसिंह चौहान, आलोचना (त्रैमासिक) अप्रैल 1952, पृ॰ 4

डॉ॰ चंद्रशेखरन नायर जी के नाटकों में अभिनेयता एवं रंगमंचीयता

रेनू तोमर, शोध-छात्रा
डॉ॰ साधना तोमर, शोध निदेशिका
एसो॰प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
जनता वैदिक महाविद्यालय, बड़ौत (बागपत) उ॰प्र॰

नाटक साहित्य की वह विधा है, जिसकी सफलता का परीक्षण रंगमंच पर होता है और रंगमंच युग-विशेष की जनरुचि और तत्कालीन व्यवस्था के आधार पर निर्मित होता है। नाटक और रंगमंच का अन्योन्याश्रित संबंध है और नाटक की परख रंगमंच एवं अभिनेयता की दृष्टि से ही होती है। नाटककार अधिकांशत: अपने नाटकों को रंगमंचीयता की दृष्टि से लिखता है। हिंदी साहित्य कोश में– 'मन के क्रोधादि को प्रकट करने वाली आंगिक चेष्टाओं को किसी विषम अथवा व्यक्ति का प्राकृत अनुकरण करके प्रदर्शित करने को अभिनय कहा है।'[1]

अभिनय के चार प्रकार माने गए हैं–

1. आंगिक–देह और मुख-संबंधी।
2. वाचिक–वचन-संबंधी।
3. आहार्य मंच–सज्जा एवं वेश-विन्यास-संबंधी।
4. सात्विक–अंत:स्थ भावों का प्रकाशक।

इनमें सात्विक अभिनय महत्त्वशील है।

अभिनयशीलता नाटक का प्राणभूत तत्त्व है। दृश्य के रूप में नाटक का पूर्ण वैभव प्रत्यक्ष होता है। नाटकीय एवं मर्मस्पर्शी कथोपकथन के द्वारा अभिनय प्रभावोत्पादक बनता है। अभिनय की सफलता की अनिवार्य शर्त है– स्वाभाविकता एवं सहजता। रंग-निर्देश अभिनय-कौशल के मार्गदर्शक एवं साधक है। नाटक और रंगमंच का गहरा संबंध है। हिंदी क्षेत्र में संस्कृत जैसी रंगमंचीय परंपरा न होने के कारण हिंदी नाट्य लेखकों ने पाश्चात्य प्रभावानुसार रंग-निर्देश प्रस्तुत किए हैं। हिंदी साहित्य कोश में रंग-संकेत के विषय में लिखा है- 'रंग-संकेत कथा के परिपार्श्व से संबंध रखते हैं। ये वे प्रतिन्यासया सूचनाएँ हैं, जिनका प्रयोग नाटककार कथा, चरित्र, संवाद का संयुक्त प्रभाव बढ़ाने के लिए करता है। हिंदी में रंग-संकेत का प्रयोग-बाहुल्य पश्चिमी प्रभाव है। रंग-संकेतों के कार्यों की विविध दिशाएँ हो जाती हैं।'[2] रंग-संकेत पाठ्य रूप में आनंदप्रद हो सकते हैं।

'कुरुक्षेत्र जागता है' संकलन का प्रथम एकांकी 'द्विवेणी' के रंग-संकेत उसे

अभिनेयता की दृष्टि से सक्षम बनाने वाले हैं। रंग-संकेत ध्वन्यात्मक हैं तथा एकांकी के अभिप्रेत वातावरण को सजीव करते हैं। एकांकी के प्रारंभ में और अंत के रंग-निर्देश इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अंधकार, काले-काले बादलों का घिरना, बिजलियाँ, जेल की कोठरियों की झलक और उनके बीच हाथ में दीप लिए ऋषि का स्वस्थ चाल से प्रवेश करते हुए अदृश्य हो जाना एकांकी के उद्देश्य को सजीवता प्रदान करता है। 'प्रकाश, संगीत, नेपथ्य प्रयोग आदि प्रस्तुतिपरक तत्त्वों के प्रति नाटककार की रुचि और इन तत्त्वों का ज्ञान नाटक में आद्यंत मिलता है।'[3]

इस संकलन का दूसरा एकांकी 'बदला' है। रंगमंचीयता संकेत तथा संवादों के भाव संकेत लिखे होने के कारण अभिनय करते समय चेहरे पर वही भाव लाया जा सकता है, जिसकी अपेक्षा लेखक करता है। जिस प्रकार 'उत्सुकता से देखना' लिखा होने से अभिनय कर रहे पात्र को उस क्षण अपने चेहरे पर उत्सुकता का भाव लाना पड़ेगा, जिससे नाटक स्वाभाविक लगे।

इस संकलन का अंतिम एकांकी 'कुरुक्षेत्र जागता है' कथ्य और शिल्प की दृष्टि से प्रसाद की नाट्यकला की परंपरा में है। इस एकांकी की मंच-व्यवस्था और अभिनेयता सुलभ है। जिस कारण डॉ॰ नायर जी की कला एक विशिष्ट स्थान रखती है– 'डॉ॰ नायर जी के 'बदला' और 'कुरुक्षेत्र जागता है' नाटकों का अभिनय हो चुका है, जो पूर्णरूपेण सफल भी रहा है।'[4]

'युगसंगम' रंग-शिल्प की दृष्टि से सक्षम है। नाटककार ने तीन युगों की कथा को कुशलता से सँजोया है तथा मंच पर प्रस्तुत किए जाने हेतु आवश्यक रंग-संकेत दिए हैं। इस नाटक में 'थोड़ा सोचकर' जैसे रंग-संकेत देकर संवादों में स्वाभाविकता का गुण विद्यमान है। इन संकेतों के माध्यम से संवाद स्वाभाविक बने हैं, पूरा नाटक मंचन को दृष्टि में रखकर लिखा गया है।

'सेवाश्रम' नाटक 'कुरुक्षेत्र जागता है' का ही विस्तृत रूप है। इसके रंगमंचीय संकेत नाटक को मंचीयता प्रदान करने वाले हैं। भाव-संकेतों द्वारा अभिनय करते समय पात्रों को चेहरे के भावों को व्यक्त करने में सहायता मिलती है। यथा– 'बिंदु राजा को ससंदेह देखकर और गप्पूराम को घूरते हुए जाता है'[5] आदि भाव-संकेतों द्वारा अभिनय सहज हो जाता है तथा नाटककार की मंचीयता के प्रति जागरूकता का आभास मिलता है। मंच के निर्देश द्वारा परिवर्तन में सहायता मिलती है।

'देवयानी' लघु नाटक की रंगमंचीयता भी असंदिग्ध है। संपूर्ण घटनाक्रम एक ही समय पर घटित होता है। अतः एक बार की गई मंच-व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। इसमें कोई ऐसा कार्य-व्यापार नहीं है, जिसे मंच पर न दिखाया जा सके। रंगमंचीयता संकेत आवश्यकतानुसार हैं। भावों को व्यक्त करने वालो पात्रों की क्रियाओं को प्रदर्शित करते हुए दृश्य चित्रण को भी नाटककार ने संकेतों द्वारा दर्शाया है। 'देवयानी' में कुल पाँच पात्र हैं। नाटककार सभी पात्रों के चरित्र की रेखाओं को उभारने और उनमें आवश्यकतानुसार रंग भरने में सफल रहा है।

'धर्म और अधर्म' तीन एकांकियों का संकलन है। प्रथम 'सृष्टि का रहस्य' मंचीयता

की दृष्टि से यह संकलन अन्य दो एकांकियों की तुलना में अधिक सफल है। भाव-संकेत और मंच-निर्देश इसकी अभिनेयता को पुष्ट करने में सक्षम हैं। तीन बार के पट-परिवर्तन में ही यह एकांकी पूर्ण हो जाता है।

इस संकलन का दूसरा एकांकी 'महाभारत का वीर पुरुष' कार्य या घटना-प्रधान न होकर संवाद-प्रधान है। इसे रंगमचीय दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता, परंतु एक उदात्त चरित्र को कार्यान्वित करने की लक्ष्यपूर्ति अवश्य नाटककार ने की है।

'धर्म और अधर्म' एकांकी क्रिया-प्रधान न होकर चिंतन-प्रधान है। धर्माधर्म की मीमांसा संवादों द्वारा प्रस्तुत की गई है, जिससे एकांकी की रंगमंचीयता प्रभावित हुई है। 'मंचन के लिए उपयुक्त न होने पर भी महाभारत की आंतरिक मानसिकता, उसकी द्वंद्वमयता तथा उसकी पाप-पुण्य की चित्रित स्थिति के विश्लेषणात्मक चित्रण की दृष्टि से यह नाटक अच्छा बन पड़ा है।'[6]

डॉ॰ नायर जी ने अपने सभी नाटकों में रंगमंचीय संकेतों की योजना की है। ये संकेत तीन प्रकार के होते हैं, जिनके द्वारा शारीरिक, मानसिक और सात्विक अनुभवों की अभिव्यक्ति की गई है। जैसे– 'देवयानी भावमुग्ध होकर अपने विस्मित नेत्रों से कुमार को जाते हुए देखती है। इसी समय देवकुमार वहाँ प्रवेश करते हैं। कच सुंदरता की मूर्ति है। अपनी भावतन्मयता के कारण देवयानी कुमार कच को नहीं देखती। कच उस दशा में देवयानी को देखता रहता है। उसके चेहरे पर जिज्ञासा और आश्रय और परितृप्ति के भाव प्रकट होते रहते हैं। उसके अधर रह-रहकर फड़फड़ा रहे हैं। इसी बीच देवयानी की भाव-तंद्रा टूट जाती है और वह एकदम कच कुमार को देखकर सहम जाती है।[7]

रंग-संकेत के द्वितीय रूप में पात्रों की क्रियाओं की ओर संकेत किया गया है। यथा– 'नीरादेवी-(नरेंद्र के पैरों में पड़ती हुई)' 'क्षमा कीजिए दादा।' [8]

तृतीय रूप में बाह्य प्रकृति तथा दृश्यों आदि की सजावट के संबंध में रंग-संकेत हैं, जो अभिनेयता को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत किए जाते हैं, यथा– 'प्रथम दृश्य की-सी लाल रोशनी व्याप्त होती है। हिमालय की तुषार-धवल चोटियाँ दिखाई पड़ती हैं। एक स्वच्छ शिला पर धर्मकन्या आसीन है और माता भक्ति उसकी सेवा में संलग्न है।'[9]

इस प्रकार डॉ॰ नायर जी ने मंचन की अपेक्षाओं का अपने नाटकों में ध्यान रखा है। उनके दृश्य ऐसे हैं, जिनके लिए अधिक व्यवस्था अपेक्षित है, जो घटनाएँ मंच पर नहीं दिखाई जा सकती हैं, उन्हें पूर्व स्मृति शैली के माध्यम से सूचित किया है। पात्रों के भाव-निर्देश और मंचीय-निर्देश नाटक की रंगमंचीयता को पुष्ट करने में सक्षम हैं। अतः कहा जा सकता है कि इनके नाटक रंगमंचीयता तथा अभिनेयता की दृष्टि से पूर्णरूपेण सफल हैं।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश, संपादक, डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा
2. हिंदी साहित्य कोश, संपादक, डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा
3. डॉ॰ चंद्रशेखरन नायर का नाट्य-साहित्य, प्रो॰ एम॰एस॰ विश्वंभरन, पृ॰ 73
4. डॉ॰ चंद्रशेखरन नायर का नाट्य-साहित्य, इंद्र सेंगर, पृ॰ 43

5. सेवाश्रम, डॉ॰ चंद्रशेखरन नायर, पृ॰ 30
6. धर्म और अधर्म, भूमिका, डॉ॰ भोलानाथ तिवारी
7. देवयानी, डॉ॰ चंद्रशेखरन नायर, पृ॰ 75
8. बदला, डॉ॰ चंद्रशेखरन नायर, पृ॰ 49
9. द्विवेणी, डॉ॰ चंद्रशेखरन नायर, पृ॰ 25

❐ द्वारा श्री प्रमोद दहिया
पो॰ अबूपुर (ग़ाज़ियाबाद) उ॰प्र॰

भारत में मुस्लिम जनसंख्या वृद्धि–सत्य एवं मिथक एक भौगोलिक विश्लेषण

डॉ॰ सियानंदसिंह त्यागी
रीडर भूगोल विभाग
सी॰आर॰ए॰ कालेज, सोनीपत (हरियाणा)

मौहम्मद साहब की मृत्यु के 75 वर्ष उपरांत ही अरब विजेताओं ने भारत के सिंध प्रदेश को विजित कर लिया था। 712 ई॰ में मौहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में अरबों ने सिंध प्रदेश के शासक दाहिर को हरा दिया था। इस्लाम भारत में इससे पूर्व भी व्यापारियों द्वारा भारत के पश्चिमी समुद्री तट तक आ चुका था।

मालाबार तट (केरल) पर रहने वाले व्यापारी 6 माह भारत में रहते थे और 6 माह अरब में। हिंदी महासागर में भारतीय धारा छह माह पूर्व से पश्चिम तथा 6 माह पश्चिम से पूर्व चलती है। अरब के व्यापारी इस धारा से समुद्री जहाज़ों से भारत आते थे तथा इस धारा से ही वापस लौटते थे। मालाबार तट पर उनकी स्थाई बस्तियाँ थीं। अरब व्यापारियों ने ही इन मौसमी हवाओं को 'मौसिम' नाम से पुकारा, जो बाद में 'मानसून' बन गया। इन व्यापारियों ने ही वास्कोडिगामाा (1492 ई॰) को भारत का रास्ता बताया था। इस प्रकार इस्लाम की जड़ें भारत में 1300 वर्षों से भी ज़्यादा पुरानी हैं। इस्लाम के अंतिम पैग़ंबर मौहम्मद साहब स्वयं भी आर्रंभिक दिनों में एक व्यापारी थे।

तराईन के दूसरे युद्ध के उपरांत भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना हुई। इस प्रकार 1192 से लेकर 1857 तक भारत पर विशेष रूप से उत्तरी भारत पर मुसलमानों का शासन रहा। इस प्रकार सात शताब्दियों तक मुस्लिम उत्तरी भारत के शासक रहे।

विदेशी मुसलमान (मंगोल, तुर्क, उज्बेक, ईरानी, अरबी) इस मुल्क में हज़ारों में आए थे। यहाँ की जनसंख्या ही धर्म परिवर्तन करके (बलात/स्वेच्छा) मुसलमान बन गई।

भारत की घोर जातिप्रथा तथा ऊँच-नीच के प्रभाव ने धर्म-परिवर्तन को प्रेरणा दी। धार्मिक रूप से इस्लाम समानता एवं भाईचारा को मानता है। आर्थिक प्रलोभन भी महत्त्वपूर्ण कारण रहा होगा। मुस्लिम समाज आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ा माना जाता रहा है। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट भी इस बात की पुष्टि करती है। निम्न तालिका में सभी धर्मों की जनसंख्या वृद्धि (1961-2001) दिखाई गई है–

तालिका 1

मुख्य धर्मावलंबियों की जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियाँ (1961-2001)

वर्ष	कुल जनसंख्या	हिंदू	मुस्लिम	ईसाई	सिख	बौद्ध	जैन	अन्य
				जनसंख्या (हज़ार में)				
1961	439235	366528	46941	10728	7846	3256	2027	1909
1971	547950	453292	61418	14223	10379	3912	2605	2221
1981	683330	562389	80286	16696	13093	4758	3222	2885
1991	846388	690060	106715	19654	16426	6476	3355	3701
2001	1028610	827579	138188	24080	19216	7955	4225	7367
				धार्मिक संरचना में दशकीय अंतर (प्रतिशत में)				
1961	100	83.45	10.69	2.44	1.79	0.74	0.46	0.43
1971	100	82.73	11.21	2.60	1.89	0.70	0.48	0.41
1981	100	82.30	11.75	2.44	1.92	0.70	0.47	0.42
1991	100	81.53	12.61	2.32	1.94	0.77	0.40	0.44
2001	100	80.46	13.43	2.34	1.87	0.77	0.41	0.72
				दशकीय वृद्धि (प्रतिशत में)				
1961-71	24.75	23.67	30.84	32.58	32.28	17.08	28.48	45.74
1971-81	24.71	24.07	30.72	17.38	26.15	24.80	23.71	29.19
1981-91	23.68	22.70	32.92	17.72	25.40	36.13	4.11	15.84
1991-01	21.53	19.90	29.49	22.52	16.98	22.83	25.95	103.09
1961-01	134.18	125.79	194.39	124.68	144.91	144.32	108.41	286.01
				वार्षिक वृद्धि दर (प्रतिशत में)				
1961-71	2.21	2.12	2.69	2.82	2.80	1.58	2.51	3.77
1971-81	2.21	2.16	2.68	1.60	2.32	2.22	2.13	2.56
1981-91	2.14	2.05	2.85	1.63	2.27	3.08	0.40	1.47
1991-01	1.95	1.82	2.58	2.03	1.57	2.06	2.31	7.08
1961-01	2.13	2.04	2.70	2.02	2.24	2.23	1.84	3.38

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि चार दशकों में हिंदू-जनसंख्या 36.65 करोड़ से बढ़कर 82.75 करोड़ हो गई, लेकिन उसकी प्रतिशत मात्रा 83.45 से घटकर 80.46 रह गई। इस प्रकार 40 वर्षों में हिंदुओं की जनसंख्या 2.99 प्रतिशत घटी। इसके विपरीत मुस्लिम आबादी 4.69 करोड़ से बढ़कर 13.61 करोड़ हो गई और उसकी प्रतिशत 10.69 प्रतिशत से बढ़कर 13.43 प्रतिशत हो गई। चार दशकों में मुस्लिम जनसंख्या की प्रतिशत में वृद्धि 2.74 प्रतिशत रही। ईसाई मतावलंबियों की संख्या तो चार दशकों में दूनी से ज़्यादा हो गई, लेकिन जनसंख्या प्रतिशत मात्रा 2.44 प्रतिशत से घटकर 2.34 रह गई। इस प्रकार सिख जनसंख्या तथा बौद्ध

जनसंख्या भी चार दशकों में प्रतिशत मात्रा में बढ़ी। जैन मतावलंबियों की प्रतिशत मात्रा चार दशकों में घटी, जबकि अन्य धर्मो को माननेवालो की प्रतिशत मात्रा बढ़ी।

संचयी प्रतिशत वृद्धि में हिंदू-मतावलंबियों की चार दशकों में प्रतिशत 125.79 रही इसके विपरीत मुस्लिम जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि दर 194.39 रही। ईसाई और जैन जनसंख्या चार दशकों की औसत प्रतिशत वृद्धि दर 134.18 से कम रही जबकि सिख जनसंख्या और बौद्ध जनसंख्या की वृद्धि दर क्रमशः 144.91 तथा 144.32 प्रतिशत रही। सबसे ज़्यादा वृद्धि दर अन्य मतावलंबियों की रही, जो संयुक्त रूप से 286.01 प्रतिशत थी। यदि वार्षिक वृद्धि दर को आधार बनाया जाए तो भी मुस्लिम मतावलंबियों की वृद्धि सर्वाधिक थी। 1961-71 के दशक में वार्षिक वृद्धि दर औसत रूप से 2.21 थी। इसमें सबसे अधिक वृद्धि दर ईसाई समुदाय (2.82) तत्पश्चात सिख समुदाय (2.80) तथा तीसरे स्थान पर मुस्लिम समुदाय (2.69) की था। जैन धर्म और हिंदू धर्म चौथे और पाँचवे स्थान पर रहे। 1971-1981 के दशक में वार्षिक औसत वृद्धि 2.21 थी। मुस्लिम समुदाय की वार्षिक वृद्धि पर (2.68) सबसे अधिक थी। सिख समुदाय पुनः दूसरे स्थान पर था। बौद्ध समुदाय 2.22 वार्षिक वृद्धि दर के साथ तीसरे स्थान पर था तथा हिंदू समुदाय 2.16 वृद्धि दर के साथ चौथे स्थान पर था।

1981-1991 के दशक में प्रतिवर्ष औसत वृद्धि दर 2.14 प्रतिशत रहीं इस दशक में सबसे ज़्यादा वृद्धि बौद्ध धर्म के मतावलंबियों में रही, जो 3.08 थी। मुस्लिमों की वृद्धि 2.85 प्रतिशत प्रतिवर्ष के साथ दूसरे स्थान पर रही, सिख समुदाय 2.27 वार्षिक वृद्धि के साथ तीसरे स्थान पर था। हिंदु समुदाय 2.04 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के साथ चतुर्थ स्थान पर रहा। ईसाई पाँचवें स्थान पर 1.63 प्रतिशत वृद्धि के साथ रहे। पिछले दशक 1991-2001 में औसत वार्षिक जनसंख्या वृद्धि पहली बार घटकर 1.95 तक आ गई। लेकिन सबसे ज़्यादा मुस्लिम वर्ग में 2.31 प्रतिशत रही। जैन समुदाय पहली बार 2-3 प्रतिशत वृद्धि के साथ दूसरे स्थान पर रहा। बौद्ध समुदाय (2.06) तथा ईसाई समुदाय (2.03) तीसरे और चौथे स्थान पर थे। हिंदू समुदाय में वार्षिक वृद्धि 1.82 प्रतिशत रह गई। सिख लोगों में वृद्धि सबसे कम 1.57 प्रतिशत रही।

चार दशकों की वृद्धि का प्रतिवर्ष औसत वृद्धि का आकलन किया जाए तो यह औसत 2.13 प्रतिशत प्रति वर्ष आता है। सबसे ज़्यादा वृद्धि बड़े संप्रदायों को छोड़कर अन्य धार्मिक संप्रदायों का रहा, जिनका प्रतिशत 3.38 रहा। लेकिन पूरे देश की जनसंख्या में इनकी हिस्सेदारी एक प्रतिशत से भी कम है। दूसरे स्थान पर मुस्लिम जनसंख्या रही, जिनकी चार दशकों की औसत वार्षिक वृद्धि 2.70 प्रशित रही। मुस्लिम जनसंख्या चार दशकों में 10.69 प्रतिशत से बढ़कर 13.43 प्रतिशत हो गई। लगातार ऊँची वृद्धि के अनेक सामाजिक सांस्कृतिक कारण हो सकते हैं, लेकिन साधारण इंसान को यह बात आसानी से समझाई जा सकती है मुस्लिम ही ज़्यादा आबादी बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो परिवार-नियोजन के प्रति उनका दृष्टिकोण ज़्यादा सकारात्मक नहीं है। सिख और बौद्ध समुदाय चालीस वर्षों की वृद्धि में तीसरे और चौथे स्थान पर रहे हैं।

हिंदुओं की जनसंख्या चार दशकों में 36.65 करोड़ से बढ़कर 82.75 करोड़ हो गई, लेकिन कुल जनसंख्या में उनका प्रतिशत 83.45 से घटकर 80.46 रह गया। अर्थात् प्रति दशक

उनकी कुल जनसंख्या में प्रतिशत मात्रा घटती जा रही है। अतिवादी संगठन इसी बात को प्रचारित करते रहते हैं। कि हिंदू बाहुल्य देश में हिंदुओं की प्रतिशत मात्रा घटती जा रही है। अतिवादी संगठन इसी बात को प्रचारित करते रहते हैं कि हिंदू बाहुल्य देश में हिंदुओं की प्रतिशत मात्रा घटती जा रही है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से हिंदुओं में साक्षरता बढ़ी, जिससे परिवार-नियोजन का प्रचार व प्रसार इनमें ज़्यादा हुआ। एक आँकड़े के अनुसार साक्षर और नौकरी करनेवाले परिवारों का आकार निरंतर छोटा होता जा रहा है। जनसंख्या की दृष्टि से हिंदुओं का सबसे ज़्यादा हिस्सा नौकरी करने वालों में है, अत: सबने ज़्यादा परिवार सीमित रखने का रुझान इसी संप्रदाय अथवा धर्म के लोगों में दृष्टिगोचर होता है।

भारत में मुस्लिम जनसंख्या का भौगोलिक वितरण :

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में मुस्लिम जनसंख्या 13 करोड़ 82 लाख (138188240) थी, जो कुछ जनसंख्या का 13.4 प्रतिशत थी। भारत के 12 राज्य ऐसे थे, जहाँ मुस्लिम जनसंख्या 10 प्रतिशत से ज़्यादा थी। इन राज्यों में 254 प्रशासनिक इकाइयाँ (ज़िले) हैं, जिनमें 49 इकाइयाँ अथवा ज़िले ऐसे हैं जहाँ मुस्लिम लोगों की जनसंख्या 30 प्रतिशत से ज़्यादा है। निम्न तालिका में इन राज्यों में मुस्लिम जनसंख्या को दिखाया गया है।

तालिका 2

राज्यों के अनुसार पर्याप्त मुस्लिम जनसंख्या वाले ज़िले

राज्य का नाम	जनपदों की संख्या	मुस्लिम जनसंख्या	प॰मु॰ज॰ वाले जिलों की सं॰	प॰मु॰ज॰ वाले जिलों की कुल जनसं॰	प॰मु॰ज॰ वाले जिलों की मुस्लिम जनसं॰	प॰मु॰ज॰ वाले जिलों में मुसलमानों का प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	70	30740158	10	27485006	10708980	39.0
पं॰ बंगाल	18	20240543	5	21520942	9881882	45.9
बिहार	37	13722048	4	8391536	3716811	44.3
असम	23	8240611	10	12602389	6430924	51.0
केरल	14	7863842	3	7708680	3976389	51.6
आंध्र प्रदेश	23	6986856	1	3829753	1576583	41.2
जम्मू कश्मीर	14	6793240	10	7144103	6451907	90.3
झारखंड	18	3731308	2	1629434	517129	31.7
हरियाणा	19	1222916	1	1660289	617918	37.2
उत्तरांचल	13	1012141	1	1447187	478274	33.0
पांडेचेरी	4	59358	1	36828	11411	31.0
लक्षद्वीप	1	57903	1	60650	57903	95.5
योग	254	100670924	49	93516797	44426111	47.5

नोट–प॰मु॰ज॰=पर्याप्त मुस्लिम जनसंख्या

स्रोत–जनगणना, रजिस्ट्रार जनरल द्वारा प्रदत्त आँकड़ें, पृ॰ 28

मुस्लिम जनसंख्या का 85 प्रतिशत भाग उत्तर प्रदेश (22.50), पं॰ बंगाल (14.65), बिहार (9.93), असम (6.00), केरल (5.70), महाराष्ट्र (7.40), आंध्र प्रदेश (5.06), जम्मू कश्मीर (4.92), कर्नाटक (4.70), झारखंड (2.70) तथा दिल्ली (1.20) में निवास करता है। यदि भौगोलिक दृष्टि से देखें तो लगभग 50 प्रतिशत मुस्लिम आबादी गंगा घाटी में निवास करती है। दिल्ली हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल इस घाटी की प्रशासनिक इकाई है। ये सभी राज्य बीमारू राज्यों के हिस्से भी बन जाते हैं। सबसे ज़्यादा जनसंख्या-वृद्धि इन राज्यों में हुई है। इन राज्यों में मुस्लिम जनसंख्या-वृद्धि के विभिन्न पक्ष देखे जा सकते हैं।

संपूर्ण भारत में और बीमारू राज्यों में हिंदू-मुस्लिम जनसंख्या की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में काफ़ी अंतर है। ग़रीबी का स्तर मुस्लिमों में हिंदुओं की अपेक्षा अधिक है। एन॰एस॰एस॰ के 50 वें राउंड के आँकड़ों के अनुसार ग़रीबी के स्तर से नीचे नगरों और शहरों में मुस्लिम लोगों का प्रतिशत 48.5 तथा 41.5 है। जबकि हिंदुओं में यह नगरीय और ग्रामीण प्रतिशत 29.9 तथा 37.5 है। इस प्रकार नगरों में ग़रीब मुस्लिमों का प्रतिशत हिंदुओं से 20 प्रतिशत अधिक है। ग़रीबी और प्रजननता दर का धनात्मक सह-संबंध है। 2001 के आँकड़ों के आधार पर हिंदु-मुस्लिम समुदाय की प्रजननता-दर का आकलन किया गया तो वह हिंदुओं के लिए 3.1 तथा मुसलमानों के लिए 4.1 आँकी गई। इस प्रकार प्रत्येक विवाहित मुस्लिम महिला औसत रूप से एक बच्चा अधिक रखती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण साक्षरता के स्तर का है। 2001 के आँकड़ों के अनुसार हिंदू-मुस्लिम-साक्षरता में मुसलमानों की स्थिति कमज़ोर है। 2001 में ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदुओं की कुल साक्षरता 59.1 प्रतिशत, पुरुषों की साक्षरता 71. 7 प्रतिशत तथा महिलाओं की साक्षरता 45.7 प्रतिशत थी। इसके विपरीत मुसलमानों में कुछ साक्षरता, पुरुष साक्षरता तथा महिला-साक्षरता का प्रतिशत 52.7, 62.3 तथा 42.3 प्रतिशत था। इस प्रकार पुरुष-साक्षरता में 9.4 प्रतिशत का अंतर था। परिवार आकार के चिंतन और नियंत्रण में आज भी पुरुषों का एकाधिकार है। इसलिए भी मुस्लिम परिवार का आकार बड़ा है। नगरीय क्षेत्रों में यह अंतर और भी ज़्यादा है। नगरीय क्षेत्रों में हिंदुओं में कुल साक्षरता, पुरुष-साक्षरता एवं महिला-साक्षरता क्रमशः 81.3, 87.9, तथा 73.9 प्रतिशत थी। इसके विपरीत मुसलमानों में यह प्रतिशत 70.1, 76.3 तथा 63.2 प्रतिशत था। इस प्रकार नगरों में भी मुसलमानों में हिंदुओं की अपेक्षा साक्षरता काफ़ी कम थी। एक बड़ा कारण साक्षरता का स्तर था, जिसने परिवार वृद्धि में सहयोग किया। बिजनौर नगर के 100 मुस्लिम नौकरीपेशा परिवारों का सर्वेक्षण किया गया, जिसमें पाया गया कि नौकरीपेशा परिवारों में परिवार का आकार हिंदुओं की भाँति छोटा था। तीसरा महत्त्वपूर्ण कारण मुस्लिम-जगत में महिलाओं की स्वायत्ता एवं सशक्तीकरण से संबंधित है। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति हिंदू महिलाओं की तुलना में कम स्वायत्तपूर्ण रही है। सामाजिक-सांस्कृतिक कारण जो भी रहे हों, परिवार-संबंधी निर्णयों में पुरुषों का वर्चस्व दोनों समुदायों में एक सा है। लेकिन कम शिक्षा, कम रोज़गार, पर्दानशीनी तथा अन्य प्रतिबंधों ने मुस्लिम महिला को ज़्यादा आश्रित बनाया है। जहाँ महिलाएँ आगे बढ़ी हैं, वहाँ इसके बेहतर परिणाम आ रहे हैं। परिवार सीमित रखने के उपायों में महिला की भागीदारी महत्त्वपूर्ण है। लेकिन उसकी अनदेखी की जाती रही है। मुस्लिम तौर-तरीक़ों ने परिवार को बड़ा करने में सहायता की है।

मुसलमान परिवारों में पुत्र की चाह हिंदू परिवारों से कम नहीं है। लेकिन वहाँ पर लड़की एक बोझ के रूप में नहीं देखी जाती है। यदि लड़की का जन्म हुआ है तो उसकी जीवन प्रत्याशा लड़कों के समकक्ष है। मुसलमानों में लड़की का प्रस्ताव लड़के पक्ष वाले लेकर आते हैं तथा दहेज़ रूपी दानव का विकराल रूप वहाँ पर अनुपस्थित है। इसलिए मुसलमानों में ग़रीबी के रहते, जीवन-स्तर नीचा रहते भी शिशु मृत्यु-दर हिंदुओं की अपेक्षा कम है। इसलिए भी परिवार का आकार बड़ा मिलता है।

चौथा महत्त्वपूर्ण कारण परिवार-नियोजन के उपायों, विशेष रूप से गर्भ-निरोधक उपायों का प्रचलन मुसलमानों में हिंदुओं की अपेक्षा कम है। उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में गर्भ-निरोध के उपायों को इस वर्ग ने कम अपनाया है। एन॰एफ॰एच॰एस॰ 2 के आँकड़ों के अनुसार केवल 37 परिवार ही गर्भ-निरोध के तरीक़ों का उपयोग कर रहे थे। यह प्रतिशत बढ़ना चाहिए। और इसके बढ़ने का सीधा उपाय लड़कियों की शिक्षा, रोज़गार, स्वायत्ता से जुड़ा है। जैसे महिला जागृति इस वर्ग में बढ़ेगी, परिवारों का आकार घटेगा तथा देश संतुलित जनसंख्या-वृद्धि की ओर अग्रसर होगा।

परिणामस्वरूप कहा जा सकता है कि मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि एक जटिल समस्या है, जिसमें हिंदू-मुस्लिम तथा सरकार तीनों अपना-अपना कार्य कर सकते हैं। सरकार मुस्लिम-प्रधान क्षेत्रों में परिवार-नियोजन के तरीक़ों का प्रचार-प्रसार करें। उनमें शिक्षा स्वास्थ्य, स्वच्छ आवासीय सुविधाओं के साथ महिला रोज़गार को प्रोत्साहन दें। हिंदू अतिवादियों को भी चाहिए कि वो मुस्लिम बाहुल्य का हौवा न खड़ा करे तथा मुस्लिमों को समझना चाहिए कि छोटा परिवार उनके हित में हैं। परिवार बढ़ाने का तात्पर्य ग़रीबी को आमंत्रण देना तथा जीवन गुणता को कम करना। एक अनुमान के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक हिंदू प्रजननता दर (3.6) तथा मुस्लिम प्रजननता दर घटकर 2.1 तक आ जाएगी तथा देश की पॉपुलेशन स्थिरता प्राप्त कर लेगी। तथा देश की पापुलेशन स्थिरता प्राप्त कर लेगी।

संदर्भ

1. पी॰एस॰ भाटिया (1990), पॉपुलेशन ग्रोथ आफ़ वेरियस कम्युनिटीज़ इन इंडिया, मिथ एंड रियल्टी, डेमोग्राफ़ी इंडिया
2. रजिस्ट्रार जनरल, इंडिया, (2004) : सेंसस आफ़ इंडिया, इंडिया, फ़र्स्ट रिपोर्ट ऑन रिलीज़न डाटा, आफ़िस आफ़ दि रजिस्ट्रार जनरल एंड कमिश्नर, नई दिल्ली
3. ए॰पी॰ जोशी (2003), रिलीज़ियस डेमोग्राफ़ी आफ़ इंडिया, सेंटर फार पॉलिसी स्टडी, चेन्नई
4. एम॰ई॰ खान (1979), फ़ैमिली प्लानिंग अमंग मुस्लिम्स इन इंडिया : ए स्टडी आफ़ दि रिप्रोडक्टिव बिहेवियर आफ़ मुस्लिम्स इन एन अरबन सेटिंग, मनोहर पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
5. पी॰एम॰ कुलकर्णी (1996) : डिफरेंशल्स इन दि पापुलेशन ग्रोथ आफ़ हिंदूज़ एंड मुस्लिम्स इन इंडिया 1981-1991, मोनोग्राफ़ सीरीज नं॰ 1, पापुलेशन फाउंडेशन आफ़ इंडिया, नई दिल्ली
6. विनोद मिश्र (2004), मुस्लिम/ नान मुस्लिम डिफरेंशल्स इन फरटीलिटी एंड फ़ैमिली प्लानिंग इन इंडिया, अनपब्लिश्ड पेपर, ईस्ट-वेस्ट सेंटर होनोलूलू (यू॰एस॰ए॰)
7. एम॰के॰ प्रेमी (2001), दि मिसिंग गर्ल चाइल्ड, इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली वोल्यूम 36, नंबर 21

8. एम॰के॰ प्रेमी (2004), रिलीज़न इन इंडिया : ए डेमोग्राफ़िक पर्सपेक्टिव, इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली, वोल्यूम 39, नं. 39
9. सरकार एस॰ (1983), माडर्न इंडिया 1885-1947, मैकमिलन इंडिया लि॰, नई दिल्ली
10. अबुसालेह शरीफ़ (2004), आन दि मार्जनस : मुस्लिम्स इन ए स्टेट आफ़ सोसिओ-इकोनॉमिक डिक्लाइन, दि टाइम्स आफ़ इंडिया, अक्टूबर 22
11. एम॰एस॰ तत्तावाई (1988), बर्थ प्लानिंग एंड रिलीज़ियस पाइंट आफ़ व्यू पापुलेशन साइंस, वोल्यूम 8
12. आशीष बोस (2005), बियोंड हिंदू-मुस्लिम ग्रोथ रेट्स : अंडरस्टेडिंग सोसिओ-इकोनॉमिक रियल्टी, इकोनॉमिक एंड पालीटिकल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
13. साजिनी बी॰ नायर तथा के॰एस॰ जेम्स (2005), एक्सलेरेटिड डिक्लाइन इन फर्टिलिटी इन इंडिया सिंस दि 1980 : ट्रेंड अमंग हिंदूज़ एंड मुस्लिम्स, इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
14. फ्रांसिस जेवियर तथा पी॰एन॰ भट्ट (2005), रोल आफ़ रिलीज़न डिक्लाइन : दि केस आफ़ इंडियन मुस्लिम, इकोनॉमिक एंड पॉलीटिक्ल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
15. पी॰एम॰ कुलकर्णी (2005), पापुलेशन ग्रोथ, फर्टिलिटी एंड रिलीज़न इन इंडिया, इकोनॉमिक एंड पालीटिकल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
16. आर॰बी॰ भगत (2005), हिंदू मुस्लिम फर्टिलिटी डिफरेंशल्स : इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
17. वनी के॰ बरुआ (2005), रिलीज़न, लिटरेसी एंड दि फ़ीमेल टू मेल रेशो : इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
18. ए॰ धर्मालिंगम, मुस्लिम हिंदू फर्टिलिटी डिफरेंसिस, ऐवीडेंस फ्राम नेशनल फ़ैमिली हेल्थ सर्वे II, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
19. एस॰ इरु दियाराजन, डिस्ट्रिक्ट लेवल फर्टिलिटी एस्टीमेट्स फ़ार हिंदूज़ एंड मुस्लिम्स : इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली, वोल्यूम 60 नं॰ 5
20. एन॰ कृष्णा जी, रिलीज़न एंड फर्टिलिटी : ए कमेंट : इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वोल्यूम वोल्यूम 60 नं॰ 5

भारतीय महिलाओं के राजनीतिक उत्थान में गांधी जी का योगदान

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
अध्यक्ष इतिहास विभाग
लाजपतराय पी॰जी॰ कालेज, साहिबाबाद (ग़ाज़ियाबाद)

किसी राष्ट्र का परिचायक उसके समाज में महिलाओं की स्थिति तथा प्रतिष्ठा होती है। भारतीय संस्कृति में नारी को पुरुष की अर्धांगिनी व सहधर्मिणी माना गया है। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहीं देवता निवास करते हैं। शास्त्रों में भी नारी-पुरुष को परस्पर एक-दूसरे का पूरक माना गया है, लेकिन मध्यकाल में आते-आते उनकी स्थिति बहुत ख़राब हो गई तथा 18वीं 19वीं शताब्दी में तो नारी को समस्त पापों व दुखों का मूल माना जाने लगा। महिलाओं से संबंधित विभिन्न कुरीतियाँ जैसे–बालहत्या, बालविवाह, बहुविवाह, सतीप्रथा, विधवा-जीवन, नारी-शिक्षा पर प्रतिबंध इत्यादि भारतीय समाज के अभिन्न अंग बन गए। इन विभिन कुरीतियों के साथ-साथ आर्थिक व राजनीतिक अधिकार न होने के कारण महिलाओं की स्थिति और अधिक उपेक्षित व दयनीय होती गई। [1]

19वीं सदी का भारतीय समाज कठिन दौर से गुज़र रहा था। भारत में ब्रिटिश शासन स्थापित हो चुका था। भारतीय समाज के सम्मुख एक ओर ब्रिटिश नौकरशाही के बढ़ते प्रभाव को सीमित करने व दूसरी ओर ईसाई धर्म के प्रभाव से भारतीय संस्कृति की रक्षा, ऐसे कठिन समय में महिलाओं के रूप में भारतीय समाज का 1/2 भाग अनेक कुरीतियों के चक्रव्यूह में फँसा हुआ था। महिलाएँ अशिक्षित, अयोग्य होने के कारण समाज की प्रगति में कोई भागीदारी नहीं कर सकती थी। प्रारंभिक दौर में स्वाधीनता-आंदोलन की गति धीमी होने का संभवतया यह भी एक कारण था, क्योंकि प्रारंभ में महिलाओं का इसमें विशेष योगदान नहीं रहा था। [2]

महिला उत्थान-संबंधी गतिविधियों को आंदोलन का रूप यद्यपि 19वीं सदी में ही मिल गया था, परंतु व्यक्तिगत स्तर पर व छुट-पुट रूप में महिला-उत्थान के प्रयास किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक काल में होते रहे हैं। यद्यपि 19वीं सदी में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, वीर सांलिगम इत्यादि सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जिस प्रकार प्रथम स्वाधीनता-संग्राम (1857 ई॰) में रानी लक्ष्मीबाई, बेग़म हज़रत महल आदि ने अपनी वीरता का परिचय दिया, उसकी प्रकार भारतीय पुनर्जागरण काल में भारतीय महिलाओं ने अपनी सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना से प्रेरित होकर समाज-सुधार एवं राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिया। इस प्रकार प्रारंभिक प्रयासों से

19वीं सदी के नारी उत्थान-संबंधी आंदोलन के लिए एक पृष्ठभूमि का कार्य किया।

गांधी जी महिला-जाति के सबसे प्रबल हित-चिंतक, उपकारकर्ता एवं उद्धारक थे। गांधी जी ने न केवल महिलाओं को पिछड़ेपन की चारदीवारी से बाहर निकाला, बल्कि उन्हें पुरुषों की बराबरी की सबसे अधिक शक्तिशाली शक्ति कहा, जिस पर समाज पूर्ण रूप से निर्भर करता है।

महिला-जाति के प्रति श्रद्धा की भावना का प्रथम अंकुर उनके हृदय में उनकी माता पुतलीबाई ने प्रस्फुटित किया, इसलिए उन्होंने महिला-जाति को सदैव ही श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखा। गांधी जी ने महिलाओं की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं पर विस्तारपूर्वक विचार किया और अपने जीवनदर्शन के अनुरूप इन समस्याओं के संतोषजनक समाधान के लिए अनेक प्रयास किए तथा गांधी जी के द्वारा संचालित राष्ट्रीय आंदोलन ने भारतीय महिलाओं में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न की। कस्तूरबा गांधी, कमला नेहरू, विजयलक्ष्मी पंडित, मणिबेन पटेल, सरोजनी नायडू, अरुणा आसफ़ अली, बासंतीदेवी, सरलादेवी साराभाई, मृदुला बेन साराभाई, नलिनी सेन गुप्त, लाडोरानी जुत्शी, खुर्शीद नौरोजी, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सुचेता कृपलानी, जानकीदेवी बजाज, दुर्गाबाई देशमुख, मनमोहिनी सहगल, उषा मेहता, सुभद्रा जोशी, डॉ॰ सुशीला नैय्यर, रघुनाथकुमारी अमन, इंदिरा गांधी, सत्यवती, राजकुमारी अमृत कौर, मीरा बेन, अनुसूइया बाई, रामेश्वरी नेहरू, सुभद्राकुमारी चौहान, राष्ट्रीय आंदोलन की कुछ प्रमुख महिला विभूतियाँ हैं, जिन्होंने गांधी जी की प्रेरणा से स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिया।

काँग्रेस के प्रारंभिक काल से ही इसकी सदस्यता स्त्रियों के लिए खुली रही है। काँग्रेस के प्रथम अधिवेशन में ऐ॰ओ॰ ह्यूम जी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि जब तक राष्ट्र के उत्थान व आंदोलनों में स्त्रियों की भागीदारी नहीं होगी, तब तक कोई राष्ट्रीय आंदोलन सफल नहीं होगा, वह स्त्रियों को पुरुषों के बराबर की भागीदारी देने के पक्ष में थे।[3] इसी बात से प्रोत्साहित होकर काँग्रेस के चौथे अधिवेशन में बंबई 1889 ई॰ में जिसकी अध्यक्षता सर विलियम बैडनबर्ग ने की थी, दस स्त्रियाँ इसमें शामिल हुईं, इनमें ठाकुर रवींद्रनाथ टैगोर जी की बहन स्वर्णकुमारी भी थी। इन्होंने पर्दे का त्याग कर एक शिक्षित महिला होने के कारण अपने पति के साथ 'भारती' नामक एक बंगला पत्रिका भी निकाली थी और 1886 ई॰ में 'सखी समिति' के नाम से स्त्रियों की एक संस्था की नींव भी डाली, जिसका उद्देश्य स्त्रियों में देश की भलाई के लिए सक्रिय व प्रबुद्ध चेतना उत्पन्न करना था।[4] इसकी दूसरी सदस्या कादंबिनी गांगुली थी, जिन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि प्राप्त की थी। इनके साथ अधिवेशन में सम्मिलित होने वाली अन्य सदस्या थीं रामाबाई, श्रीमती शैवंतीबाई निकांबे, श्रीमती काशीबाई कनितकर और कु॰ मानके जी करसट जी, जो बाद में एक शिक्षाविद् के रूप में प्रसिद्ध हुईं। ये सभी महिलाएँ समाज-सुधार के कार्यक्रमों से संबद्ध रहीं। इन महिलाओं में हिंदू, पारसी व ईसाई मतावलंबी थी। पंडित रामाबाई का संबंध पूना के आर्य महिला समाज से था, स्वर्णकुमारी देवी बंगाल स्त्री संघ का प्रतिनिधित्व कर रही थी। स्वर्णकुमारी देवी और कादंबिनी गांगुली ने सन् 1890 में काँग्रेस के अधिवेशन में एक कविता द्वारा विभिन्न राज्यों के लोगों का राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आंदोलन में शामिल होने के लिए आह्वान किया। सन् 1902 ई॰ के अहमदाबाद काँग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता एस॰एन॰ बनर्जी ने की। इसका प्रारंभ

विद्यागौरी नीलकांत और उनकी बहन शारदा मेहता द्वारा गाए राष्ट्रीय गान से हुआ। [5] इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि जिस रूप में पुरुष राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए, उसी रूप में स्त्रियों ने इसमें अपनी भागीदारी निभाई।

भारत में गांधी जी के आगमन के पश्चात् अनेक स्त्रियाँ राजनीति में सक्रिय हो गईं। दक्षिण अफ्रीका में भी उन्होंने अपने सत्याग्रह के दौरान स्त्रियों का सक्रिय सहयोग लिया था। विवाह क़ानून के विरोध में उन्होंने अपने फोनेक्स फ़ार्म से कस्तूरबा व अन्य स्त्रियों के दल को ट्रांसवाल इसका विरोध करने के लिए भेजा। इसके बाद अनेक स्त्रियों को उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के विभिन्न क़ानूनों के विरुद्ध संगठित रूप से भेजा, जिनको सरकार ने गिरफ़्तार कर जेल भेज दिया और उनके साथ कठोर व्यवहार किया।[6] गांधी जी इस दिशा में भारत आने से पहले काफ़ी प्रयोग कर चुके थे।

गांधी जी ने सत्याग्रह के लिए स्त्रियों को उनके धैर्य, सहनशीलता व अहिंसक स्वभाव के कारण बहुत उपर्युक्त पाया। अहमदाबाद में मिल मजदूरों के आंदोलनों के दिनों में गांधी जी की प्रमुख सहयोगी अनुसूइयाँ बहन थीं। गांधी जी के सादा जीवन और महात्मा जैसे व्यवहार ने स्त्रियों को उनकी तरफ़ खींचा। भारत-भ्रमण के समय उन्होंने स्त्रियों से आभूषण देने को तथा तिलक स्वराज्य फंड में दान देने की अपील की। उन्होंने स्त्रियों को यह कहकर प्रेरित किया कि सीता जी ने रावण से सहयोग नहीं किया था। इसी प्रकार भारत की स्त्रियाँ राक्षसी सरकार से सहयोग नहीं करेंगी। [7] गांधी जी ने भारत की स्त्रियों को उनके बलिदान के स्वभाव की याद दिलाई। रोहतक की एक सभा में, जहाँ गांधी जी को देखने भारी संख्या में स्त्रियाँ आई थीं, गांधी जी ने तिलक फंड के लिए जेवर व धन की माँग की और उन्हें आशा से अधिक दान की प्राप्ति हुई।

सितंबर 1920 ई॰ में कलकत्ता में असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव पास हो गया और नागपुर में इसका समर्थन कर दिया गया। असहयोग आंदोलन की प्रथम अवधि के समय ही देश के विभिन्न भागों में महिलाएँ इससे जुड़ गईं। वे जुलूस निकालतीं, खादी का प्रचार करतीं और विदेशी सरकार के साथ असहयोग करने की प्रार्थना करतीं। [8] उन महिला-आंदोलनकारियों में कुछ तो राजकीय स्कूल छोड़कर इस आंदोलन में सम्मिलित हुई थीं। रेणुका रे व अन्य महिलाएँ गांधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर 1920 ई॰ में इस आंदोलन में शामिल हो गईं। इन लड़कियों ने अपना अध्ययन बीच में ही छोड़ दिया। यह गांधी जी के व्यक्तित्व का ही करिश्मा था। महिलाओं व लड़कियों के शामिल होने की ख़बर अमृत बाज़ार पत्रिका ने प्रशंसात्मक ढंग से छापी थी। [9] इसी प्रकार के एक अनुभव का विजयलक्ष्मी पंडित ने भी वर्णन किया है। वह गांधी जी के संपर्क में इलाहाबाद आईं। गांधी जी टूटी-फूटी हिंदी बोल रहे थे, परंतु उनकी बातें सुनने को उनके पास बैठे लोग बाध्य थे। उनकी बात का जादुई प्रभाव हो रहा था। अंत में उन्होंने महिलाओं से इस आंदोलन के लिए कुछ-न-कुछ देने की अपील की। [10]

बंगाल में बसंतीदेवी अपने पति देशबंधु चितरंजनदास के साथ विदेशी माल के बहिष्कार-आंदोलन में उनके साथ रहीं और अपनी गिरफ़्तारी दी। चितरंजनदास के परिवार की महिलाओं ने कलकत्ते में स्थान-स्थान पर खादी बेचने का कार्यक्रम चलाया। इन महिलाओं को सूत कातने, खादी पहनने के लिए प्रेरित किया। 1922 ई॰ में लाहौर में कस्तूरबा गांधी ने एक

महिला सभा की, जिसकी अध्यक्षता स्वागत समिति के अध्यक्ष लाला लाजपत राय की पत्नी श्रीमती राधादेवी ने की, इलाहाबाद में रामेश्वरी देवी ने एक 'कुमारी-सभा' का आयोजन किया, जिसका उद्देश्य लड़कियों में वाद-विवाद और जन-परिचर्चा की क्षमता में वृद्धि करना था। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित इसमें प्रायः भाषण देकर लड़कियों को प्रोत्साहित करती थीं। अनेक स्त्रियों ने जुलूस निकालते समय पुलिस का साहस से मुक़ाबला किया। इस विषय में हेमप्रभा मजूमदार का नाम उल्लेखनीय है। उनको सी॰आर॰दास द्वारा द ओनली मैन आउट साइड जेल कहा गया था, परंतु इस समय तक (असहयोग आंदोलन) में वही महिलाएँ इसमें भाग ले रही थीं, जिनके परिवार के पुरुष इसमें सक्रिय थे। यह महिलाओं का जन-आंदोलन नहीं था। [11]

1923-24 ई॰ में इस आंदोलन में तेज़ी आने के कारण महिलाओं की संख्या में भारी वृद्धि हो गई थी। बेरसद सत्याग्रह के समय वहाँ इतनी महिलाएँ आईं कि गांधी जी ने कहा था कि उन्होंने महिलाओं को इतनी बड़ी संख्या में इससे पूर्व कभी नहीं देखा था। जहाँ भी गांधी जाते थे और किसी भी सभा को संबोधित करते थे, महिलाओं की संख्या हज़ारों में होती थी। जिन घरों के पुरुष जेल जाते उनकी महिलाओं ने उनकी अनुपस्थिति में अदम्य साहस का परिचय दिया। [12]

गांधी जी ने असहयोग आंदोलन और इसके बाद महिलाओं को राष्ट्रीय संघर्ष में आगे आने को कहा। उन्होंने महिलाओं को एक घंटा रोज़ाना सूत कातने की सलाह दी। गांधी जी का कहना था कि बिना स्वतंत्रता के धर्म की रक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए महिलाओं में पहला सुधार उन्होंने उन्हें स्वतंत्रता का अर्थ समझना बतलाया और कहा कि उन्हें इसको धर्म का मार्ग बना लेना चाहिए। [13]

26 जनवरी 1930 ई॰ को अनेक सभाओं में स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र पढ़ा गया। हज़ारों महिलाओं व पुरुषों ने ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने की प्रतिज्ञा की। अली ब्रादर्स और अन्य मुस्लिम नेताओं ने स्वतंत्रता-दिवस उत्सव से दूर रहने को कहा। इसीलिए मुसलमानों ने इससे दूरी रखी। उनकी महिलाएँ पर्दे के कारण पहले ही राष्ट्रीय आंदोलन से दूर थीं। [14]

12 मार्च 1930 ई॰ को प्रातः 6.30 बजे गांधी जी ने अपने 78 सहयोगियों के साथ डाँडी मार्च नमक क़ानून तोड़ने के लिए प्रारंभ किया। इस सत्याग्रह के प्रारंभ में महिलाओं को साथ नहीं लिया गया। क्योंकि गांधी जी का मानना था कि अँग्रेज़ महिलाओं को नहीं पकड़ेंगे और उन्हें साथ रखना गांधी जी को कायरतापूर्ण कार्य लगा। उनका मानना था कि महिलाओं को जेलों में बंद किया जा सकता है और उनको यातनाएँ दी जा सकती हैं। अभी यह समय महिलाओं को साथ रखने का नहीं है। [15] इससे महिलाओं को बड़ी निराशा हुई और साबरमती आश्रम की महिलाओं ने गांधी जी से कहा कि वह कम-से-कम चार महिलाओं को अपने मार्च में अवश्य शामिल कर लें। गांधी जी के इंकार करने पर महिलाओं में इसकी कड़ी प्रतिक्रिया हुई। दादा भाई नौरोजी की पौत्री खुर्शीद बहन ने एक कठोर पत्र गांधी जी को लिखा। [16] मृदुला साराभाई काका कालेलकर के मना करने पर भी इस आंदोलन में शामिल हो गईं। उस समय वह विद्यार्थी ही थीं। [17] इन दोनों लड़कियों को अहमदाबाद में गिरफ़्तार कर लिया गया। गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन में शामिल होने के लिए महिलाएँ अपने ऊपर कोई प्रतिबंध या सीमाएँ लगवाने को तैयार नहीं थीं, क्योंकि वे प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान कार्य करने को तैयार थीं।

गांधी जी को देखने का महिलाओं को इतना आकर्षण था कि हज़ारों की संख्या में डांडी मार्च के समय महिलाएँ उनके मार्ग में जमा हो गईं और जय-जयकार कर उनका स्वागत कर रही थीं। अनेक महिलाएँ उनकी राजनीति को नहीं समझती थीं। परंतु वे उन्हें कृष्ण का अवतार या दैवी शक्ति से पूर्ण व्यक्ति मानती थीं, इसलिए पुरुषों के साथ महिलाओं ने बड़ी संख्या में गांधी जी के मार्ग में दर्शन किए और मालाएँ पहनाईं। मार्ग में गांधी जी ने महिलाओं को शराब की दुकानों पर धरना देने और विदेशी माल बेचने वाली दुकानों का बहिष्कार करने की सलाह दी। गांधी जी ने उन्हें खादी पहनने और चरखे पर सूत कातने को कहा। उनके भाषण में नशाबंदी पर अधिक ज़ोर दिया गया, क्योंकि इसके कारण परिवारों का विनाश हो रहा था तथा इससे शराब पीने वालों का नैतिक तथा आर्थिक पतन हो रहा था। विदेशी माल प्रयोग करने से भी राष्ट्र की आर्थिक नींव कमज़ोर हो रही थी। उसके कारण लाखों व्यक्ति बेकारी का शिकार हो रहे थे। प्रत्येक अवस्था में इसका विनाशकारी प्रभाव महिलाओं को झेलना पड़ रहा था। [18]

गांधी जी की गिरफ़्तारी के पश्चात् सरोजनी नायडू ने गांधी जी के निर्देशन पर महिलाओं के समूह के साथ छापा मारा। चट्टोपाध्याय और अवंतिकाबाई गोखले नमक क़ानून तोड़ने में अग्रगामी थी। 16 अप्रैल 1930 ई॰ को हज़ारों महिलाएँ समुद्र पर गईं। उनके हाथों में घड़े, बर्तन थे और वे गांधी जी के निर्देशानुसार सादा कपड़े पहने थीं। तब तक वे पर्दे में रहने वाली महिलाएँ, जो घरों से बाहर नहीं निकलती थीं, यकायक राजनीतिक संघर्ष में कूद पड़ी थीं। उनके आगमन से राष्ट्र में एक चेतना उत्पन्न हुई और विदेशियों को यह मालूम होने लगा कि यह राष्ट्रीय आंदोलन केवल पुरुषों का ही नहीं, वरन समस्त समाज का है। इससे विदेशी महिलाएँ भी प्रभावित हुईं और यह आंदोलन भारत के घरों तक जा पहुँचा। [19] इसमें महिलाओं के पदार्पण से एक सुंदर महाकाव्य जैसा लगने लगा था। [20] उसी समय पुलिस ने जगह-जगह काँग्रेस के कार्यालयों पर छापे मारे। बंबई में छापे के समय महिलाओं ने पुलिस का विरोध किया। इस कार्य में श्रीमती पैरन कैमरीन, श्रीमती जमुना बहन, रत्ना बहन और स्वयंसेविकाओं ने भाग लिया। कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने पुलिस के अंदर घुसने का विरोध किया। [21]

विदेशी कपड़ा और शराब-बहिष्कार बहुत हद तक सफल रहा। इसमें महिलाओं की प्रमुख भूमिका थी। उन्होंने पुलिस की लाठियाँ खाईं और शहीदों की तरह कार्य किया। पुलिस से पिटने को प्रत्येक स्वयंसेविका राष्ट्रीय सम्मान समझती थी, न उन्हें जेल जाने से भय था और न मृत्यु से। काँग्रेस का झंडा लेकर घूमना, नारे लगाना और काँग्रेस के पर्चे बाँटना महिलाओं का दैनिक कार्य हो गया था। गांधी जी ने प्रभातफेरियों को प्रचार के आधार पर बहुत उत्तम और आत्मा के लिए बहुत सुंदर बतलाया था। [22]

साबरमती आश्रम में सत्याग्रह करने के लिए महिलाओं को विशेष रूप से ट्रेनिंग दी गई। इसका नेतृत्व मृदुला साराभाई ने किया। उन्हें पकड़कर बेलगाँव जेल में रखा गया। राष्ट्रीय महिला सभा स्वदेशी के प्रयोग के लिए भारी आंदोलन चलाती रही। कस्तूरबा गांधी, सरलादेवी, मृदुला साराभाई, इंदुमती सेठ, मिथुबहन पेरिट, नंदू बहन, कानूगा व खुर्शीद बहन नौरोजी प्रमुख महिलाएँ थीं, जिन्होंने अहमदाबाद में सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया। इनमें सभी महिलाएँ उच्च वर्ग की थीं और कुछ गांधी जी के आश्रम से, जो गांधी जी से 1920 ई॰ से संबंधित रही थीं। खुर्शीद बहन नौरोजी की पोती थीं और सदैव राष्ट्रीय आंदोलन के लिए

समर्पित रहीं। परंतु प्रभात फेरियों में अनेक अध्यापिकाएँ विद्यार्थी व साधारण घरों की महिलाएँ भाग लेती थीं। इस आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाएँ पढ़ी-लिखी भी नहीं थीं और न ही वे दुकानदारी की कोई जानकारी रखती थीं। गंगा बहन वैद्य एक विधवा महिला थीं, जो गांधी जी से प्रभावित होकर साबरमती आश्रम की एक कार्यकर्ता बन गईं। 21 जनवरी 1931 को उन्होंने 1200 महिलाओं के एक जुलूस का नेतृत्व किया। ऐसा करते समय पुलिस ने उन्हें भारी चोट पहुँचाई, परंतु वह तिरंगे झंडे को पकड़े रहीं। उन्हें कई बार सजा हुई। अंत में गांधी जी का रचनात्मक कार्य करने के लिए वह एक ग्रामीण क्षेत्र में चली गईं। [23]

मार्च 1946 में काँग्रेस को चुनावों में भारी बहुमत प्राप्त हुआ। इन चुनावों में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। अधिकांश महिलाएँ स्वतंत्रता-संग्राम में देशभक्ति की भावना से शामिल हुईं। वह भारत से विदेशी शासन का अंत देखना चाहती थीं। ये सभी महिलाएँ स्वतंत्र विचारों की विवेकशील महिलाएँ थीं, जो पुरुषों और महिलाओं को समान समझती थीं। इनमें से अनेक उच्चशिक्षा प्राप्त थीं। इनमें से अनेक अपने परिवार के पुरुषों के प्रभाव से इस स्वतंत्रता-आंदोलन में शामिल हुई थीं। नेहरू सी॰आर॰ दास, जमुनालाल बजाज और लाला लाजपत राय ऐसे परिवार से थे, जिनकी महिलाएँ अपने पुरुषों के साथ चलना चाहती थीं, जो अन्य महिलाएँ इस आंदोलन में आगे थीं वे अपने किसी नज़दीकी राजनीतिज्ञ से प्रभावित थीं स्वयं उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त थीं। बीनादास के पिता सुभाषचंद्र बोस के अध्यापक थे। इसी प्रकार सुचेता कृपलानी स्वदेशी आंदोलन से जुड़ी थीं। कुछ महिलाओं पर पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं के लेखों का प्रभाव था। कमलादेवी पर श्रीमती ऐनी बेसेंट की आत्मकथा पढ़ने का प्रभाव पड़ा। कुछ बंगाली क्रांतिकारियों पर बंकिमचंद्र चटर्जी, शरदचंद्र चटर्जी के उपन्यासों पर प्रभाव पड़ा, कुछ नवयुवतियाँ धीरेश मजूमदार के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजनीति में आईं। सूर्य सेन का प्रभाव चटगाँव में रहा। सुभाषचंद्र बोस बंगाल, सरदार पटेल गुजराज व जवाहरलाल नेहरू से प्रभावित होकर अनेक महिलाएँ इस स्वतंत्रता के आंदोलन में कूद पड़ीं।' [24]

महिलाओं को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाले व्यक्ति महात्मा गांधी थे। सुचेता कृपलानी उन्हीं से प्रभावित होकर राजनीति में आईं। यदि काँग्रेस को गांधी जी का नेतृत्व प्राप्त न होता तो इतनी बड़ी संख्या में महिलाएँ राष्ट्रीय आंदोलन में भाग नहीं लेतीं। उनका महात्माई व्यवहार सादा जीवन और उच्च आदर्शों से अनेक महिलाएँ प्रभावित हुईं और पर्दा तथा घरों की चारदीवारी छोड़कर निकल आईं। उनके लेखों से अनेक व्यक्तियों पर भारी प्रभाव पड़ा। मनी बहन पटेल, प्रभावती देवी, गंगा बहन और अन्य महिलाएँ उनके विचारों से प्रभावित हुईं, क्योंकि गांधी जी महिलाओं की आकांक्षाओं को अच्छी तरह से समझते थे। [25] गांधी जी ने उनके समक्ष विभिन्न उद्देश्य रखे और उनको चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रोत्साहित किया। महिलाओं को गांधी जी ने यह समझाया कि वे सच्चे अर्थों में सत्याग्रही हैं और उनके बिना उनका आंदोलन नहीं चल सकता। उन्होंने महिलाओं को महत्त्व दिया और उनको महत्त्वपूर्ण कार्यों की ज़िम्मेदारी सौंपी। उनके कार्यक्रम इस प्रकार के थे, जिनमें महिलाएँ आसानी से भाग ले रही थीं। महिलाओं में सहनशीलता थी और यही गुण सत्याग्रह के लिए मुख्य रूप से आवश्यक था। उनका विश्वास था कि भारत में महिलाएँ सर्वाधिक पीड़ित हो गया है और यदि इस गुण का सही प्रयोग किया जाए तो वे अहिंसक आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती

हैं। [26] गांधी जी के काल में जिन महिलाओं ने आंदोलन में भाग लिया, उनकी आत्मकथा गांधी जी के प्रभाव को भली प्रकार प्रकट करती है।

महिलाओं के राजनीति में प्रवेश का दूसरा कारण उन दिनों का वातावरण था। हंसा मेहता का कहना है कि 1930 ई॰ में वह राजनीति में इसलिए आईं, क्योंकि उस समय के प्रभाव से बचना कठिन था। [27] गलियों में तथा सड़कों पर निकालने वाली प्रभात फेरियाँ, राष्ट्रभक्ति के गीत और नारे अत्यंत प्रोत्साहन देनेवाले होते थे। अधिकांश महिला स्वतंत्रता-सेनानी इन्हीं गीतों से तथा राष्ट्रभक्ति के कारण इस आंदोलन में आई थीं। इनमें विभिन्न समुदायों की विभिन्न विचारधारा की महिलाएँ थीं। इनमें कोई भी हरिजन महिला नहीं थी। इन्हें साधारण हिंदी आती थी, इनमें से कोई भी उच्च शिक्षा-प्राप्त महिला नहीं थी। [28] प्रारंभ में महिलाओं में राजनीतिक चेतना नगरों तक उच्च तथा मध्यवर्ग के उन लोगों तक ही सीमित थी, जो शिक्षित थे। शिक्षा और किसी भी नई चेतना का सीधा संबंध है। जब तक व्यक्ति को अन्य बातों की जानकारी नहीं होगी तथा उनकी विवेचना तथा विश्लेषण करने की सामर्थ्य नहीं होगी, वह अपनी स्थिति का सही मूल्यांकन नहीं कर सकता। उसके असंतोष व नई चेतना का स्रोत उसका ज्ञान होता है, जिसे वह शिक्षा से प्राप्त करता है। इसके प्रसार के साथ आंदोलन में भाग लेनेवालों की संख्या और श्रेणियों में भी विस्तार होता गया। नगरों में जो श्रमिक मिलों में कार्य करते थे, उनमें राजनीतिक चेतना किसानों की अपेक्षा अधिक जल्दी आई। इसका कारण वहाँ की संचार- व्यवस्था और संगठनात्मक जीवन था। गाँव के लोग संचार-व्यवस्था से दूर होने के कारण तथा जीवन में स्थायित्व होने के कारण अपनी स्थिति से संतुष्ट थे। किसानों में चेतना तब आई, जब वहाँ बड़े-बड़े आंदोलन हुए। जैसे चंपारन और बारडोली में हुआ। सरदार पटेल के भाषणों से प्रभावित होकर अनेक किसान राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। [29] एक बार जहाँ कोई आंदोलन होता, उसका प्रभाव केवल उसी क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता, परंतु अन्य भागों में भी उसकी राजनीतिक प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। धीरे-धीरे इनका प्रभाव महिलाओं पर भी पड़ा और वे भी सक्रिय रूप से आंदोलनों में कूद पड़ीं। 1930 ई॰ में ऐसी अनेक महिलाएँ, जिन्हें आंदोलन और राजनीति का कोई ज्ञान नहीं था, आंदोलनों में भाग लेने लगीं। महिलाओं की संख्या 1920 ई॰ से 1942 तक कई गुना हो गई। इनमें कुछ क्रांतिकारी कार्यों में भी लगी रहीं, क्योंकि वह गांधी जी के अहिंसात्मक ढंग को निष्प्रभावी मानती थीं।

कुल मिलाकर महिलाओं का बलिदान पुरुषों से भी अधिक था, क्योंकि अनेक महिलाएँ अपने बच्चों को लेकर भी जेल गईं। कुछ लड़कियाँ जवान थीं, उनके लिए जेल का वातावरण बिल्कुल उपर्युक्त नहीं था। कुछ जेलखाने जहाँ महिलाओं को बंद रखा गया, अँधेरे और सीलन से भरे थे। कभी-कभी पुलिस के सिपाही इन महिलाओं का उपहास करते थे और अशोभनीय बातें कह देते थे। महिलाओं के लिए इन जेलों में अलग से शौचालय नहीं थे और इन्हें पुरुष प्रहरी की देखभाल में वहाँ भेज दिया जाता था। अनेक नवयुवतियों ने अपने जीवन का सर्वोत्तम समय जेलखाने में काटा। उन्हें घंटों तक पूछताछ के लिए अलग रखा जाता था, जिससे उनसे अन्य लोगों के नाम उगलवाए जा सकें। एक क्रांतिकारी लड़की वनलता को बिना खाना दिए तीन दिन तक एक स्टूल पर बैठाए रखा गया, उससे उस व्यक्ति का नाम जानना चाहते थे, जिसने उसे रिवाल्वर दिया था।

महिला सुधार-आंदोलन को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। इसका प्रथम काल राजा

राममोहन राय का काल था। राजा राममोहन राय ने महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों से दुखी होकर धर्म की तर्कसंगत व्याख्या की। वह शिक्षा और जनमत के द्वारा उनकी दशा सुधारना चाहते थे। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अनेक लेख लिखे और लोगों से तर्क किया। यह प्रथम व्यक्ति थे, जिसने हिंदू स्त्रियों के संपत्ति के अधिकार के लिए ज़ोर दिया, परंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति तक इस ओर कोई उन्नति नहीं हो सकी। वह अपने सुधारों के द्वारा महिलाओं का आधुनिकीकरण कर देना चाहते थे। सती, पर्दा, बाल-विवाह व विधवाओं के साथ किए जानेवाला व्यवहार उन्हें अधार्मिक प्रतीत होता था। वह पश्चिमी शिक्षा सभी लोगों के लिए आवश्यक समझते थे। वह उसी बात को सही व उचित समझते थे, जो मानवीय थी। इस सुधार कार्यक्रम का रूढ़िवादियों ने खूब विरोध किया और उनके ही कारण उनके आधुनिक और न्यायसंगत सुधार पूरी तरह से लागू नहीं किए जा सके। [30]

दूसरे भाग में, जो 19 वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है, शिक्षा पर अधिक बल दिया गया। पहले अधिकांश लड़कियों को घर से बाहर पढ़ने को नहीं भेजा जाता था। इससे अच्छे परिवार की महिलाएँ भी अशिक्षित रह जाती थीं। इससे उनका व्यक्तित्व अविकसित रह जाता था और वे पूरी तरह से पुरुष आश्रित रहती थीं, परंतु शिक्षा के प्रसार से उनमें आत्मविश्वास पैदा हुआ और उनका मानसिक क्षेत्र विकसित हुआ। कलकत्ता का बेथून स्कूल, जो 1849 ई॰ स्थापित किया गया था, वह महिला-शिक्षा के भारी आंदोलन का ही परिणाम था। प्रारंभ में जो लड़कियाँ स्कूलों में पढ़ने जाती थीं, उनको धमकाया जाता था। उनके माता-पिता का सामाजिक बहिष्कार किया जाता था। अनेक लोगों का विश्वास था कि शिक्षित पुत्री अपने पति को ग़ुलाम बनाकर रखेगी। [31] परंतु इसका विरोध होते हुए भी महिला-शिक्षा बहुत तेज़ी से बढ़ी।

महिलाओं के सुधार की तीसरी अवस्था वह जब उन्होंने राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया है, इससे पूर्व महिला-सुधार कुछ ही आदर्श व्यक्तियों का कार्य था। इसके पश्चात् उनका सुधार-आंदोलन एक बहुत विशाल राजनीतिक कार्यक्रम का एक भाग बन गया। अब तक महिलाओं पर लगे सामाजिक प्रतिबंध मानो उठा लिए गए या उनको नज़रअंदाज़ कर दिया गया। एक विशेष बात यह थी कि स्वयं स्त्रियों ने भी पक्षपातपूर्ण अधार्मिक रीति-रिवाज़ों की परवाह करनी छोड़ दी। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह रहा कि महिलाएँ सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र पर बराबरी पर आ गई। उनकी आकांक्षाएँ धीरे-धीरे बढ़ती गईं और इस कार्य में उन्हें पुरुषों का भी पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। उनके सहयोग के बिना शायद उनकी प्रगति इतनी सफल और तीव्र नहीं होती, जितना कार्य उनके लिए राष्ट्रीय आंदोलनों के कारण करना संभव हो सका उतना शांतिकाल में शायद वे शताब्दियों में भी संभव न होता। राजनीतिक चेतना ने सामाजिक कुरीतियों की धज्जियाँ उड़ाकर रख दीं। राष्ट्रीय आंदोलन में देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य कर रहे थे, परंतु महिलाओं के एक से बढ़कर दो उद्देश्य थे। देश की स्वतंत्रता और महिलाओं का अपना उद्धार इसमें पुरुष उनके पूरी तरह सहायक रहे। पश्चिमी देशों में महिला-उद्धार में पुरुष बाधक था और भारत में रूढ़िवादी परंपराएँ व धर्म। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को सहयोगी माना गया, उनके कार्यों पर गर्व किया गया। पश्चिम के विपरीत न उनसे ईर्ष्या की गई और न उन्हें अकेला छोड़ा गया।

महिलाओं से संबंधित गांधी जी के सबसे महत्त्वपूर्ण विचार, जो महिलाओं की

भागीदारी और उनकी स्थिति से संबंधित हैं–अंतर्राष्ट्रीय महिला स्वतंत्रता–आंदोलन के कार्यों व विचार के बिल्कुल अनुरूप हैं। पुरुषों के साथ समानता, सम्मान व स्वयं के विकास के लिए सभी क्षेत्रों को उनके लिए खोलना और महिलाओं को केवल रचनात्मकता का प्रतीक–मात्र न समझना ऐसी अंतर्राष्ट्रीय महिला–आंदोलन की माँगें हैं, जो गांधी के विचारों के अनुकूल हैं। गांधी जी ने महिला–पुरुष की समानता का स्वप्न देखा था, जो उनके प्रयत्नों के बावजूद अभी पूरा नहीं हो पाया है।

समाज सुधार–आंदोलनों, स्वतंत्रता–संग्राम, महिलाओं के अपने आंदोलनों और भारत के संविधान की धारा 14 व 15 के कारण भारतीय महिलाओं के उत्थान में बहुत सहायता मिली, परंतु स्वतंत्रता के पश्चात् भी पुरुषों के समान उनके अधिकार व्यवहार में नहीं है। अनेक प्रगतिशील क़ानून बन जाने के बावजूद अभी भारतीय महिलाएँ बुरी अवस्था में हैं। परंतु यह बात बड़े असंतोष की है कि स्वतंत्रता के पश्चात् वे देश के लिए मूल्यवान योगदान दे रही हैं। स्वतंत्र भारत में वे विधायक, प्रशासक, न्यायाधीश व वकील हैं। इस संबंध में विजयलक्ष्मी पंडित, सुचेत कृपलानी, सरोजिनी नायडू, पद्मजा नायडू के नाम उल्लेखनीय हैं। सरोजिनी नायडू उत्तर प्रदेश व पद्मजा नायडू पश्चिमी बंगाल की गर्वनर रहीं। पंडित विजयलक्ष्मी पंडित यू॰एस॰एस॰आर॰ में 1947–49 के बीच राजदूत के पद पर रहीं और इसके पश्चात् वह 1950–52 ई॰ तक यू॰एस॰ए॰ में भारत की राजदूत रहीं। 1952–54 के बीज वह यू॰एन॰ओ॰ की प्रथम महिला अध्यक्षा थीं। सुचेता कृपलानी संविधानीय असेंबली की 1946 ई॰ में सदस्या रहीं। 1958–60 ई॰ के बीच वह काँग्रेस की जनरल सैक्रेटरी रहीं और 1963–67 ई॰ के बीच उ॰प्र॰ की मुख्यमंत्री रहीं। इससे प्रशासन में अवश्य ही सुरुचि उत्पन्न हुई होगी।

इन क्षेत्रों में भारतीय महिलाओं की भूमिका अपनी समकालीन अन्य देशों की महिलाओं की अपेक्षा कहीं अधिक है। भारतीय महिलाओं की दशा में भारी परिवर्तन के बावजूद उनकी दशा पुरुष–प्रधान समाज में अब भी गौण बनी हुई है। अब भी धार्मिक व सामाजिक रीति–रिवाज़ पति को परमेश्वर बनाए हुए हैं। महिला का केवल एक धर्म है पतिव्रत धर्म, उसका कर्त्तव्य केवल पति की आज्ञा मानकर आँख बंद कर पालन करना है। शिक्षा और क़ानून इनकी स्थिति में थोड़ा अंतर कर पाए हैं। भारतीय महिलाओं की दशा में भारी परिवर्तन आया है, जिसका श्रेय गांधी जी को जाता है। क्योंकि संविधान–निर्माण से पहले गांधी जी ने महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन में आने के लिए कहा, जिसमें महिलाओं ने बहुत अधिक संख्या में भाग लिया और उनमें राजनीतिक सहभागिता का संचार किया, जिसका परिणाम यह निकला कि संविधान निर्माण समिति ने महिला–पुरुष को समान अधिकार दिए हैं, जिससे महिलाएँ हर क्षेत्र में भाग ले रही हैं। [32]

भारत के संविधान में महिला और पुरुष के बीच समानता स्वीकार की गई, जिससे दोनों में कोई भेदभाव न रखा जा सके। सभी प्रशासकीय पद पुरुषों की भाँति उनके लिए खोल दिए गए हैं और समान कार्य के लिए समान वेतन की बात स्वीकार कर ली गई है। प्रति महिला को मताधिकार दे दिया गया है। इस प्रकार गांधी जी के इस स्वप्न को साकार करने का प्रयत्न किया गया है कि प्रत्येक स्त्री स्वावलंबी बने। गांधी जी ने अपनी पत्रिका 'इंडियन लेडीज' में लिखा था कि–महिला व पुरुष दोनों का उद्धार उनके अपने हाथों में हैं। उन्हें उस प्रत्येक बुरे रिवाज़ का विरोध करना चाहिए, जो उन्हें दबाता है। पुराने ज़माने में महिलाओं के विरुद्ध अनेक

आज्ञाएँ पारित की गई थीं। स्वतंत्रता के पश्चात् कुछ क़ानूनी असंगितियों के अतिरिक्त जिन्हें हिंदू कोड बिल द्वारा दूर कर दिया गया था, महिलाओं को अपने भाग्य-निर्माण करने की पूरी स्वतंत्रता मिल गई। परंतु उन्हें अब भी यह बात याद दिलाई गई कि उनके लिए गृहकार्य पवित्र और प्रमुख है और व्यवहार में ऐसा ही रहा। पुरुषों की भाँति कार्य करनेवाली महिलाएँ दफ़्तर, कालेज, अस्पताल का कार्य करने के पश्चात् गृहकार्य से पूर्ण मुक्त नहीं है। नारीवाद को नारीत्व से समझौता करना ही पड़ेगा और तभी मानव-जाति का भविष्य सुरक्षित रहेगा। स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं पर लगे अनेक सामाजिक प्रतिबंध तथा निषेध, धीरे-धीरे लुप्त होते चले गए। यह स्वतंत्रता के वातावरण और राजनेताओं की चेतना का परिणाम था। अब सरकार स्वतंत्र रूप से असंभव रीति-रिवाज़ों पर प्रतिबंध लगा सकती थी। परंतु ऐसा हुआ नहीं। ऐलम्मा के सामने नाचने वाली और समर्पित लड़कियाँ दासियों व वेश्याओं का जीवन भोग रही है। [33] आज सरकार के पास उन कुरीतियों को न रोकने के लिए कोई बहाना नहीं है।

कुछ समय तक महिलाएँ केवल कलात्मक क्षेत्र तक ही सीमित रहीं, परंतु स्वतंत्रता के पश्चात् उनकी भागीदारी प्रशासकीय क्षेत्र में बढ़ती चली गई। पहले उन्होंने राजनीति में पदार्पण किया और फिर सैक्रेटरीज, टाइपिस्ट, दुकानों में सहायक के रूप में क्लर्क बन गईं। कुछ समय पूर्व तक उनका एकमात्र उद्देश्य विवाह होना था, परंतु अब उनमें आर्थिक निर्भरता आ जाने से वह सम्मान से सिर ऊँचा करके चल सकती हैं। उनके घरों में आर्थिक समृद्धि आई है। वास्तव में महिलाएँ कुछ कारणों से अपने ही घरों में हरिजन बनी रहती हैं। टैगोर का मानना था कि महिलाएँ सहनशीलता की सुंदर रचना हैं, जो इस जंगली दुनिया को उत्कृष्टता और सौजन्यता का पाठ पढ़ाकर रहने-योग्य बना सकती हैं। [34] कुछ लोगों को भय था कि इस स्वतंत्रता का महिलाएँ ग़लत लाभ उठा सकती हैं।

गांधी जी के प्रयासों से राजनीतिक आंदोलन में महिलाओं ने अच्छी सहभागिता की, फिर भी 1900 ई॰ में उनकी दशा राजनीति में बहुत अच्छी नहीं थी, परंतु 1940 ई॰ में विधानसभाओं में 80 महिला विधायक थीं। 1917 ई॰ में ऐनी बेसेंट प्रथम बार काँग्रेस की महिला अध्यक्षा बनीं। 1919 ई॰ तक दस लाख महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हो चुका था। परंतु 1926 ई॰ तक उन्हें विधानसभा की सदस्यता के लिए खड़ा होने का अधिकार नहीं था, परंतु उसके बाद इस दिशा में तीव्र वृद्धि हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् महिला विधायक हर जगह देखी जा सकती हैं। सर्वप्रथम महिला विधायक का डॉ॰ मुथुलक्षत्री रेड्डी थीं, जिन्होंने महिलाओं के उत्थान और स्वतंत्रता के लिए भारी कार्य किए। [35] इस प्रकार गांधी जी ने महिलाओं को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा और उनकी राजनीति में सहभागिता का प्रयास किया। परिणाम यह निकला कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस जन-जन की काँग्रेस बन गई, जिसमें महिलाएँ भी सम्मिलित हुईं और उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाई।

संदर्भ

1. मीरा देसाई, भारतीय समाज में नारी, 1975, पृ॰ 25-26
2. टी॰ थामस, इंडियन वुमन थ्रू द एजिज, 1964, पृ॰ 283-284
3. जे॰ मर्डोक, टुऐल्व ईथर्स आफ, इंडियाज प्रोग्रेस मद्रास, 1988, पृ॰ 36
4. ऊषा चक्रवर्ती, कंडीशंस आफ बंगा वीमेन अराउंड सेकेंड हॉफ ऑफ द नाइनटींथ सेंचुरी, कलकत्ता,

1963, पृ॰ 127-128
5. बी॰बी॰ मजुमदार, काँग्रेस एंड काँग्रेस मैन इन दी प्री गांधियन इरा, 1885-1917, कलकत्ता 1967, पृ॰ 128
6. एम॰के॰ गांधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, अहमदाबाद 1950, पृ॰ 282-285
7. नवजीवन, 28 नवंबर 1920
8. मतवाला, 15 फरवरी 1924
9. द अमृत बाज़ार पत्रिका, 8 सितंबर 1920
10. अपर्णा बसु, द रोल आफ वीमेन इन इंडियाज स्ट्रगिल फार फ्रीडम (नंदा बी॰आर॰, इंडियन वीमैन फ्राम पर्दा टू माडर्निटी, नई दिल्ली, 1976), पृ॰ 21
11. वही, पृ॰ 22
12. मतवाला, 15 फरवरी 1924
13. धनंजय कीर, महात्मा गांधी, बंबई 1973, पृ॰ 353
14. वही, पृ॰ 517
15. वही, पृ॰ 517
16. अपर्णा बसु, पूर्वाद्धृत, पृ॰ 23
17. सुमित्रा मेघ, ज्योति विकास यात्रा, अहमदाबाद, 1971, पृ॰ 290
18. यंग इंडिया, 10 अप्रैल 1930
19. द स्ट्रेट्समैन 20 अप्रैल 1930, लोकमत 24 अप्रैल 1930
20. ताराअली बेग, वीमेन आफ इंडिया, दिल्ली, 1985, पृ॰ 19
21. द इंडियन ऐनुअल रजिस्टर 1930, खंड 1, पृ॰ 36
22. धनंजय कीर, महात्मा गांधी, बंबई 1973, पृ॰ 528
23. काका कालेलकर, बापूना पत्रो गंगा नं॰ 6, अहमदाबाद, 1960
24. बसु, अपर्णा, पूर्वाद्धृत, पृ॰ 37
25. कालेलकर काका, बापू के पत्र आश्रम की बहिनों के नाम, अहमदाबाद, 1952
26. आज 25 सितंबर 1922
27. अपर्णा बसु, पूर्वाद्धृत, पृ॰ 37
28. अपर्णा बसु, पूर्वाद्धृत, पृ॰ 38
29. वी॰बी॰ कुलकर्णी, द इंडियन टूइंबीरेट, पृ॰ 315
30. अमृत बाज़ार पत्रिका, काँग्रेस स्पेशल नंबर 1948, पृ॰ 10 (सुधांशकुमार घोष का लेख)
31. वी॰ चंद्रा, माडर्न इंडिया, नेशनल काउंसिल आफ एजूकेशन रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नई दिल्ली 1991, पृ॰ 131
32. द टाइम्स आफ इंडिया, 8 अगस्त 1994
33. दुर्गा दास, द इंडिया फॉम कर्जन टू नेहरू एंड आफ़्टर लंदन, पृ॰ 207
34. अमृत बाज़ार पत्रिका, काँग्रेस स्पेशल नंबर 1948, पृ॰ 26
35. अमृत बाज़ार पत्रिका, काँग्रेस स्पेशल नंबर 1948, पृ॰ 26

इतिहासकार की भूमिका में पं॰ जवाहरलाल नेहरू (डिस्कवरी ऑफ इंडिया के संदर्भ में)

डॉ॰ जी॰एस॰ अरोरा
पूर्व रीडर, इतिहास विभाग
वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)

पं॰ नेहरू पेशेवर इतिहासकार नहीं :

विज्ञान के एक साधारण विद्यार्थी होने के बावजूद पं॰ नेहरू ने तीन ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना करके अपूर्व ख्याति अर्जित की। ये ग्रंथ हैं– विश्व इतिहास की झलक (1934-35), आत्मकथा (1936) तथा 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' अथवा 'भारत एक खोज', जो उनके अंतिम कारावास के समय अहमदनगर क़िले के कारागार में 1944 में लिखी गई। [1] औपचारिक छवि से पं॰ नेहरू एक पेशेवर इतिहासकार नहीं थे। निस्संदेह उन्होंने एक इतिहासकार की कला में प्रयुक्त होने वाले साधनों का प्रयोग नहीं किया। 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' में उन्होंने इस बात की स्पष्ट रूप से स्वीकारोक्ति भी की है, 'एक इतिहासकार अथवा विद्वान के ढंग से मैं विगत घटनाओं का वर्णन नहीं कर सकता। इसके लिए मेरे पास न तो ज्ञान है, न साधन और प्रशिक्षण और न ही इस प्रकार की रचना के लिए मेरी मनोवृत्ति है।' [2]

पं॰ नेहरू का ऐतिहासिक दृष्टिकोण :

इतिहास की इस प्रचलित धारणा को पं॰ नेहरू स्वीकार नहीं करते थे कि केवल तथ्य ही सर्वोच्च महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए वे स्वत: प्रमाणित हैं तथा इनको किसी प्रकार की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। उनका मानना है, 'उन्होंने इतिहास का अध्ययन विलंब से किया और वह भी सामान्य ढंग से नहीं, जिसके अनुसार तथ्यों व तिथियों के एकत्रित ढेर का अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला जाता है।' [3] पं॰ नेहरू को इतिहास का उपदेशात्मक स्वरूप भी पूर्णत: स्वीकार नहीं था, क्योंकि उनके लिए इतिहास भूतकाल से उपजने वाले वर्तमान व भविष्य की निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है। पूर्वकाल का अध्ययन इसलिए प्रासंगिक है ताकि वर्तमान का मूल्यांकन तथा भविष्य का निर्माण किया जा सके। [4]

पं॰ नेहरू पर प्रभाव :

पं॰ नेहरू को यूरोपीय ढंग से पाश्चात्य विषयों में शिक्षित किया गया था। कैंब्रिज विश्वविद्यालय से उन्होंने विज्ञान ने स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। विज्ञान के अध्ययन ने उनके ऊपर स्थायी प्रभाव डाला। पाश्चात्य लोगों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने उनको विशेष रूप से प्रभावित किया। इसी आधार पर मानवीय गतिविधियों की वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल की

आवश्यकता पर उनका ध्यान आकर्षित हुआ। नेहरू जी की सृजनात्मक अवधि में समाजवादी सिद्धांत ने भी उन पर गहरा असर डाला। लेकिन मार्क्सवाद को वह पूर्णत: स्वीकार नहीं करते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि किसी अपरिवर्तनीय एवं कठोर व्यवस्था व उनके नियमों द्वारा मानव-जीवन की जटिलता का स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। [5]

पं॰ नेहरू के ऐतिहासिक मूल्यांकन के अवगुण :

इतिहास के प्रति उनके पेशेवर दृष्टिकोण की कमी, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक समाजवाद से लगाव तथा भारतीय इतिहास के लिए ब्रिटिश इतिहासकारों पर आश्रय– इन सभी तथ्यों के प्रभाव में उन्होंने भारतीय इतिहास की कुछ ऐसी व्याख्या की, जो समय की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गज़नवी द्वारा किए गए आक्रमणों के स्वभाव के बारे में पं॰ नेहरू लिखते हैं–

'महमूद एक धर्मपुरुष की अपेक्षा योद्धा अधिक था तथा अन्य अनेक विजेताओं की भाँति उसने भी अपनी विजयों के लिए धर्म का लाभ उठाया। भारतवर्ष उसके लिए एक ऐसा स्थान-मात्र था, जहाँ से वह धन व सामग्री लूटकर स्वदेश ले जा सकता था।' [6] धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को प्रोत्साहित करने के लिए महमूद के धार्मिक उद्देश्य को हल्का करना पं॰ नेहरू पर मार्क्सवादी प्रभाव को दर्शाता है। [7] पं॰ नेहरू के इन विचारों को 'गजनी के सुल्तान महमूद' नामक पुस्तक के रचयिता प्रो॰ मोहम्मद हबीब से अनुमोदन मिलता है कि महमूद द्वारा हिंदू-मंदिरों का विध्वंस धार्मिक उत्साह की अपेक्षा लूटपाट की लालसा से अधिक प्रेरित था। [8] इसी प्रकार 1857 की महान क्रांति के स्वभाव पर टिप्पणी करते हुए पं॰ नेहरू ने लिखा–

'वस्तुत: यह एक सामंती विद्रोह था।' [9] यह कथन एक प्रकार से ब्रिटिश दृष्टिकोण का समर्थन था। यद्यपि नेहरू ने यह भी स्वीकार किया कि विद्रोह ने कालांतर में लोकप्रियता प्राप्त की। फिर भी वह इसको एक राष्ट्रीय युद्ध नहीं मानते थे।

भारतीय इतिहास के कुछ विशिष्ट व्यक्ति भी पं॰ नेहरू की प्रशंसा प्राप्त नहीं कर सके। महान मराठा वीर शिवाजी को उनके ग्रंथ में मात्र एक पृष्ठ दिया गया है तथा पृथ्वीराज चौहान की राजनीतिक तस्वीर महत्त्वहीन वर्णित की गई है, 'पृथ्वीराज एक लोकप्रिय योद्धा है, अभी तक गीतों एवं दंतकथाओं में प्रसिद्ध है, क्योंकि दु:साहसी प्रेमी सदैव लोकप्रिय होते हैं। इसलिए एक स्त्री के प्रेम में पृथ्वीराज ने अपना जीवन व सिंहासन खोया और साम्राज्य की राजधानी दिल्ली एक बाह्य आक्रमणकारी के हाथों में चली गई।' [10]

पं॰ नेहरू का ऐतिहासिक योगदान :

उपर्युक्त राजनीतिक विश्लेषण से पं॰ नेहरू के इतिहासकार के रूप में उनकी तस्वीर की केवल एक झलक-भर मिलती है, क्योंकि 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक युगों में विभाजित भारतवर्ष का केवल राजनीतिक इतिहास नहीं है। इतिहासकार डॉ॰ सर्वपल्ली गोपाल का कथन है, 'उनका ग्रंथ अँग्रेज़ों के आगमन से पूर्व भारतीय सभ्यता का एक विस्तृत सर्वेक्षण है। उन्होंने मार्क्सवाद का त्याग तो नहीं किया, हाँ अब उनके चिंतन में वेदांत के आदर्शवाद एवं नैतिकता का सम्मान स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।' [11] कुछ ऐतिहासिक मूल्यांकन की त्रुटियों के बावजूद, 'भारत एक खोज' (डिस्कवरी ऑफ इंडिया) नामक ग्रंथ

भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर एक सुंदर निबंध है। इतिहासबोध का प्रोत्साहन पं॰ नेहरू को बहुत प्रिय था। [12] इस ग्रंथ में पं॰ नेहरू ने 600 पृष्ठों में विभिन्नता में एकता का ताना-बाना बुनकर विदेशी हमलावरों की विभिन्न जातीय विशेषताओं का समावेश करके भारतभूमि के 5000 वर्षों का इतिहास सजाया है। इस ग्रंथ में सिंधु घाटी, यूनान, मेसोपोटामिया तथा सुमेरिया की सभ्यताओं का, आर्यों के आगमन का, वेद, वेदांत, उपनिषद, रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथों का तथा गौतम बुद्ध, महावीर, अशोक एवं अकबर जैसी विलक्षण प्रतिभाओं का अत्यंत सजीव चित्रण है। पं॰ नेहरू स्वयं लिखते हैं, 'यद्यपि बाह्य तौर पर यहाँ के लोगों में असीमित भिन्नता और विविधता थी लेकिन प्रत्येक स्थान पर एकता की विस्यमकारी छाप थी, जिसने हम सबको विगत अनेक शताब्दियों से अनेक राजनीतिक संकटों के बावजूद एक सूत्र में बाँधे रखा। भारत की एकता उनके लिए एक बौद्धिक परिकल्पना नहीं थी, यह तो एक भावनात्मक अनुभव था, जिसने मुझको अभिभूत कर दिया। यह मौलिक एकता इतनी शक्तिशाली थी कि किसी भी तरह की राजनीतिक विखंडता, आपदा अथवा विपत्ति इसको पराजित नहीं कर सकी।' [13]

भारतीय सभ्यता के इस स्वभाव की तारीफ़ में टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध विचारक सी॰ई॰एम॰ जोड ने लिखा है, 'कारण कुछ भी हो, यह एक वास्तविकता है कि भिन्न-भिन्न विचारों एवं संप्रदायों का संश्लेषण करके भिन्नता में एकता उत्पन्न करना मानवता के लिए भारत की महान देन थी।' [14]

शैली :

पं॰ नेहरू की शैली की गतिशीलता एवं मनोहारिता 'भारत एक खोज' की एक ख़ास विशेषता है। अँग्रेज़ी भाषा पर उनका ऐसा अधिकार था कि वह अत्यंत जटिल राजनीतिक विवादों का विश्लेषण कर सकते थे तथा अजंता-एलोरा के भित्ति-चित्रों का विवरण बहुत सुंदरता के साथ सुगमतापूर्वक उसी क्षण प्रस्तुत कर सकते थे। उनकी सुगम और गतिशील शैली उनको अत्यंत कुशल एवं निपुण निबंधकारों की श्रेणी में स्थान प्रदान करती है। उनकी आकर्षक शैली से किसी भी अँग्रेज़ को ईर्ष्या हो सकती है। सम्राट अशोक का सुंदर विवरण तथा सारनाथ में दिया गया भगवान बुद्ध के प्रथम धर्मोपदेश का चित्रण उनकी सुबोध शैली की सुंदर व्याख्या करता है, 'बनारस के समीप सारनाथ में गौतमबुद्ध को प्रथम धर्मोपदेश का प्रवचन करते देख सकता हूँ और ऐसा लगता है मानों 2500 वर्ष पूर्व रिकॉर्ड किए गए उनके शब्दों की गूँज दूर से आ रही हो। अशोक के शिला-स्तंभ, जिन पर अभिलेख अंकित हैं, जैसे अपनी भव्य वाणी में मुझे बता रहे हों एक ऐसे इंसान के बारे में, जो एक सम्राट होते हुए भी किसी भी राजा अथवा सम्राट् से अधिक महान था।' [15]

मूल्यांकन :

कुछ त्रुटियों के बावजूद, 'भारत एक खोज' अपने-आपमें एक असाधारण पुस्तक है। उसमें आत्मकथा, यात्रा-विवरण एवं इतिहास का अनोखा समन्वय हुआ है। इस गुणवत्ता ने डिस्कवरी ऑफ इंडिया को भारत का अत्यंत पठनीय इतिहास बना दिया है। कठोर व नीरस तथ्यों की बोझिलता से मुक्त 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' राजाओं व राज्यों, सुधारकों व सुधार-आंदोलनों, कलाकारों तथा शिलाओं में अपनी कलात्मक धरोहर तथा भारतीय संस्कृति

के विभिन्न रंगों को प्रदर्शित करते भजनों व गीतों का यह एक अत्यंत मनोहारी वृतांत है। 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' को भारत के राजनीतिक इतिहास से अधिक भारत के भव्य व्यक्तित्व को समझने के लिए पढ़ा जाएगा और आदर के साथ स्मरण किया जाएगा।

संदर्भ

1. अप्रैल से सितंबर 1944 में छः महीनों के मध्य डिस्कवरी ऑफ इंडिया (भारत एक खोज) लिखी गई।
2. पं॰ जवाहरलाल नेहरू : डिस्कवरी ऑफ इंडिया, पृ॰ 36
3. वही, पृ॰ 23
4. वही, पृ॰ 21
5. वही, पृ॰ 31
6. वही, पृ॰ 235
7. सीताराम गोयल : सम हिस्टौरिकल क्यूशचन्स, इंडियन एक्सप्रेस, 16 अप्रैल 1989
8. वही
9. डिस्कवरी ऑफ इंडिया, पूर्वो॰, पृ॰ 323
10. वही, पृ॰ 237
11. सर्वपल्ली गोपाल : जवाहरलाल नेहरू, ए बाइग्राफ़ी खंड-1, पृ॰ 299
12. प्रो॰ सतीश चंद्रा : ऐज़ नेहरू सॉ हिस्ट्री, द हिंदुस्तान टाइम्स, 14 नवंबर 1989
13. डिस्कवरी ऑफ इंडिया, पूर्वो॰, पृ॰ 59
14. प्रेमनाथ सहाय द्वारा उद्धृत : जवाहरलाल नेहरू, ए लिटरेरी आर्टिस्ट, पृ॰ 82
15. डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया, पूर्वो॰, पृ॰ 52

❐ 1213, **नई बस्ती**
बिजनौर (उ॰प्र॰)

आँकड़ों में जनपद जौनपुर के शिक्षा का इतिहास

नमिता श्रीवास्तव

माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठित:,
न शोभते सभामध्ये हंस मध्य वको यथा:।

महात्मा चाणक्य के ये शब्द शिक्षा के महत्त्व पर सम्यक् पर प्रकाश डालते हैं। अर्थात् अपने बालकों को शिक्षा न दिलाने वाले माता-पिता उसके शत्रु हैं। अशिक्षित व्यक्ति सभा के मध्य उसी प्रकार अशोभनीय है, जैसा हंसों के बीच बगुला। सचमुच मनुष्य-रूप में हमारा सस्कार शिक्षा ही करती है। शिक्षा के बिना हमारी समस्त शक्तियाँ बेकार हैं। शिक्षा से शक्तियों का विकास होता है। पत्थर को तराशकर हीरा बनाना शिक्षा का ही कार्य है।

शिक्षा का अर्थ– 'मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों को विकसित कर उसे अपने परिवेश से उचित समायोजन करने के अनुकूल बनाने वाली विद्या। पुस्तकीय ज्ञान अथवा साक्षरता शिक्षा नहीं है, क्योंकि 'साक्षरा विपरीतश्चते राक्षसा एवं केवलम्' अर्थात्– 'साक्षर' विपरीत होने पर राक्षस जैसा हो जाता है। शिक्षा ही हमें मनुष्य बनाती है।

महात्मा गांधी के शब्दों में 'शिक्षा वह है, जो बालक की बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का समुचित विकास करे। पेस्टोलार्जी के अनुसार 'शिक्षा हमारी अंत:शक्तियों का विकास है।' वास्तव में मनुष्य की छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत कर उसके सर्वांगीण विकास का प्रयत्न ही शिक्षा है।

प्राचीनकाल से ही जनपद जौनपुर का शिक्षा के क्षेत्र में विश्व में शीर्ष स्थान रहा है। प्राचीनकाल में जब शिक्षा देने के लिये विद्यालय नहीं थें, बच्चों की शिक्षा उनके घर-परिवार में ही घर के श्रेष्ठजनों व माता-पिता द्वारा पूरी की जाती थी। उस समय सभी वर्णानुसार कार्य करते थे। शिक्षा-व्यवस्था का भार गुरुकुलों पर आया। ये गुरुकुल वनों में या एकांत स्थानों में होते थे। जमैथा में यमदग्नि ऋषि का आश्रम था। इस आश्रम में दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा लेने के लिए आते थे। मड़ियाहूँ में भी एक आश्रम था, लेकिन यहाँ शिष्यों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी। मानेछ में बौद्ध शिक्षा का केंद्र था। यहाँ बौद्धधर्म की शिक्षा मठों में दी जाती थी। [1]

फ़िरोजशाह तुगलक विद्याप्रेमी था। उसने अपने अन्य राज्यों की भाँति जौनपुर में शिक्षा की अच्छी व्यवस्था की। स्थान-स्थान पर मकतब और मदरसे खुले। छोटे बच्चों की शिक्षा क़ुरान के स्मरण से प्रारंभ होती थी। हिंदुओं की पाठशालाएँ यथावत् बनी रहीं, जिनमें संस्कृत, व्याकरण और विशेष रूप से गणित की शिक्षा दी जाती थी। हिंदुओं को शिक्षा संस्कृत के माध्यम से तथा मुसलमानों को शिक्षा उर्दू के माध्यम से दी जाती थी। हिंदुओं की शिक्षा-संस्थाएँ

पूर्णतया व्यक्तिगत स्रोतों पर निर्भर थीं।

शर्कीकाल में 'जौनपुर विद्या का केंद्र था। विज्ञान और कला की शिक्षा के क्षेत्र में भी यह सर्वोपरि था। शर्कीकाल में शिक्षा की उत्तम व्यवस्था थी। इंजीनियरिंग की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। सुल्तानों ने शिक्षा-संस्थाओं का निर्माण करवाया तथा उच्च-कोटि की पुस्तकों की भी व्यवस्था की। शेरशाह शूरी ने यहाँ पर शिक्षा प्राप्त की।

प्रसिद्ध सूफ़ी संत नई पीढ़ी को शिक्षा देने में ही अपनी सार्थकता समझते थे। संतों के मकबरे प्रतिष्ठित शिक्षा-केंद्र थे। जौनपुरी शिक्षा की तुलना उन विश्वविद्यालयों की शिक्षा-प्रणाली से ही की जा सकती है, जहाँ विभिन्न देशों के विद्वान शिक्षा देते थे एवं विदेशों से शिक्षा के नवीनतम विकास के प्रति अपने को जागरूक रखते थे। इन विद्वानों में अधिकतर वे थे, जिन्होंने अपनी शिक्षा अरब, ईराक, ईरान में प्राप्त की थी।'[2]

शिक्षा के क्षेत्र में यह सबसे उन्नत स्थान था। मुग़लकाल तक इसकी शैक्षिक ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। इसलिए जौनपुर को शिराज-ए-हिंद के नाम से पुकारा गया। जफराबाद में उस समय अरबी और फ़ारसी के अनेक विद्वान थे। जैसे—मुल्ला निज़ामुद्दीन, आलमी, सैयद नूरउद्दीन, मौलाना बदउद्दीन आदि।

मुग़लकाल में जौनपुर शिक्षा का विख्यात केंद्र रहा, लेकिन दिल्ली वाली बात नहीं रही। ब्रिटिशकाल में अँग्रेज़ी शिक्षा की व्यवस्था के आगे अरबी, फ़ारसी संस्कृत की शिक्षा का टिमटिमाता चिराग़ शेष रहा। हिंदी की प्रगति इस ज़िले में बहुत अधिक हुई। उर्दू और संस्कृत की प्रगति हुई तो, किंतु उतना नहीं जितनी हिंदी की। अरबी-फ़ारसी की प्रगति शून्य-सी रही। क्योंकि उनका स्वामित्व समय की धारा में बह गया। आज जौनपुर में गाँव-गाँव में प्राइमरी स्कूल हैं, शिशु मंदिर हैं और कानवेंट स्कूल भी हैं। हाई-स्कूल और इंटर कालेजों की संख्या में वृद्धि हुई। यहाँ विश्वविद्यालय भी है और उससे संबंधित बहुत से डिग्री और पोस्ट ग्रेजुएट कालेज। आज पुनः जौनपुर शिक्षा का एक बृहत्तर केंद्र हो गया है।

प्राचीन जौनपुर में स्त्री-शिक्षा का स्तर :

'वैदिककाल तक महिला व पुरुषों की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं था। प्रत्येक माता-पिता अपनी लड़कियों को सुसंस्कृत बनाने का प्रयास करते थे, जिससे वह आदर्श नारी बन सके। उस समय स्त्रियों को पूरी सुविधा प्रदान की जाती थी। वे विदुषी होती थीं। वे वेदों की भी रचना करती थीं। उनके लिए काव्य उच्चकोटि के थे। लेकिन समय बीतने के साथ ही पुरुषों का प्रबल प्रभुत्व नारियों पर बढ़ता गया। विवाह की उम्र घटने के साथ ही उनकी शिक्षा के सामने बाधाएँ आती गईं। सातवीं शताब्दी के बाद उनके शिक्षा के अवसर में कमी आती गई।[3]

मुस्लिमकाल में नारी क़ैद होकर रह गयी। जौनपुर क्षेत्र में हिंदू महिलाओं का जीवन पारिवारिक शिक्षा तक ही सीमित रह गया। शर्कीकाल में नारी-शिक्षा की अवहेलना नहीं की गई, अतः यह काल जौनपुर के लिए एक स्वर्णिम काल था। जौनपुर इस समय विश्व में शिक्षा का प्रधान केंद्र था। जौनपुर को स्त्री-शिक्षा का केंद्र भी माना गया। महमूद शाह ने छात्रों व शिक्षकों के लिए छात्रवृत्ति व अनुदानों की व्यवस्था की। उच्च घरानों की हिंदू लड़कियों की

शिक्षा के दरवाज़े धीरे-धीरे बंद होने लगे।' [4]

'अँग्रेज़ों के समय में जौनपुर में स्त्री-शिक्षा में कोई सुधार नहीं हुआ। सन् 1885 तक स्त्रियों की शिक्षा के लिए कोई स्कूल नहीं था। सन् 1907 ई0 में 15 स्कूल खोले गए, जिनमें से 1 म्युनिस्पिल बोर्ड का था। सेकेंडरी स्कूलों में 1917 तक लड़कियों की संख्या शून्य थी। लेकिन प्राइमरी स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या 1119 थी। सन् 1931-32 ई॰ तक इनकी शिक्षा का प्रतिशत पुनः घट गया। यही स्थिति सन् 1947 तक बनी रही, लेकिन स्वतंत्रता के बाद लड़कियों की प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि हुई। सन् 1977 तक विज्ञान और कलावर्ग में छात्राओं की संख्या 305 हो गई।' [5]

जनपद में छात्र और शिक्षक :

जनपद में छात्र और शिक्षक में पारस्परिक संबंध पिता और पुत्र के समान था। छात्र अपने गुरुओं का आदर करते थे, किंतु स्पेन और मिस्र की तरह जौनपुर भी अपनी संपत्ति सुरक्षित नहीं रख सका।

पुस्तकालय :

ज्ञान-प्राप्ति के लिए किताबें प्रमुख साधन हैं। ये पुस्तकालय में सुरक्षित रखी जाती हैं। मुनइम ख़ान के वाचनालय में उच्चकोटि की किताबों की व्यवस्था थी। मासूक अली ने भी पुस्तकालय का निर्माण करवाया था। भारतवर्ष में जौनपुर को शिक्षा के क्षेत्र में 'इलडोराडो' के नाम से संबोधित किया जाता था। इसे भारतवर्ष का मध्ययुगीन पेरिस भी कहा जाता था, लेकिन सिकंदर लोदी ने सब-कुछ खाक में मिला दिया।

साक्षरता :

अन्य प्रांतों की अपेक्षा यहाँ के लोगों में देर से शिक्षा के प्रति चेतना जागी। सन् 1901 में पुरुष व साक्षरता 5.4 प्रतिशत तथा स्त्री-साक्षरता 0.1 प्रतिशत थी। सन् 1911 में पुरुष व स्त्री का साक्षरता क्रमशः 6.4 तथा 0.3 प्रतिशत थी। दो दशक आगे 1921 व 1931 में पुरुष एवं स्त्री-साक्षरता क्रमशः 7.6 व 9.6 एवं 0.3 व 0.6 प्रतिशत थी। सन् 1951 में यह प्रतिशत बढ़कर क्रमशः 18.3 व 2.0 हो गया। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार जौनपुर की कुल जनसंख्या 3911305 है। जनपद में कुल साक्षरता 59.84 प्रतिशत है।

जौनपुर में नर्सरी स्कूलों की शिक्षा-व्यवस्था :

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद जनपद में नर्सरी स्कूलों का जन्म हुआ। ये स्कूल बच्चों के सर्वांगीण विकास करने हेतु चलाए जाते हैं। इस कड़ी में जौनपुर में सर्वप्रथम फ्रेजर स्कूल खुला। तत्पश्चात् सेण्ट पैट्रिक हाईस्कूल, सेंट जांस एवं सेंट जोजेफ़ स्कूल खुला। इसी कड़ी में मड़ियाहूं में सेंट जेवियर्स स्कूल की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के अनुसार सरस्वती बाल मंदिर एवं अन्य जाने-माने स्कूल भी खुले, किंतु आज अधिकांश स्कूल शिक्षा कम धन अधिक कमाने हेतु खोले जा रहे हैं। ऐसे उददेश्य के स्थान पर यदि बाल-विकास का दृष्टिकोण अपनाया जाए तो हितकर होगा। उच्चशिक्षा के लिए जौनपुर में सर्वप्रथम 1948 में महाविद्यालय स्थापित हुआ। तिलकधारी महाविद्यालय व राजा कृष्णदत्त महाविद्यालय को प्रारंभ से आज तक उच्चशिक्षा हेतु देश-विदेश में जाना जाता है। यहाँ के छात्र

ज़िले व विद्यालय का नाम रोशन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त जौनपुर में राजा हरपालसिंह महाविद्यालय, जी॰बी॰ पंत महाविद्यालय एवं एस॰जी॰ डिग्री कालेज समोधपुर आदि हैं।

समय की माँग थी कि जौनपुर में भी एक विश्वविद्यालय खोला जाए। अत: 20 अक्टूबर 1987 को मुख्यमंत्री श्री वीरबहादुर सिंह ने पूर्वांचल विश्वविद्यालय की स्थापना की। आज इसे एशिया का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है, क्योंकि इसके अधीन 339 महाविद्यालय संचालित हैं। पूर्वांचल विश्वविद्यालय के अंतर्गत 35 अनुदानित महाविद्यालय, 03 राजकीय व 301 स्ववित्त पोषित महाविद्यालय संचालित किए जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने विगत वर्षों में पूर्वांचल विश्वविद्यालय का नाम वीरबहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय कर दिया है। जनपद में इस समय साक्षरता का प्रतिशत 59.84 है।

जनपद जौनपुर में वर्तमान समय में 73 महाविद्यालय हैं, जिसमें से 14 अनुदानित, 1 राजकीय व 58 स्ववित्तपोषित महाविद्यालय हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ 1 पॉलिटेक्निक व 2 औद्योगिक प्रशिक्षण-सस्थान हैं।

संदर्भ

1. जौनपुर का गौरवशाली इतिहास, पृ॰ 107
2. जौनपुर का गौरवशाली इतिहास
3. मनुस्मृति, 9-18
4. जाफर, एजुकेशन इन मुस्लिम इंडिया, दिल्ली 1973, पृ॰ 8
5. जौनपुर का गौरवशाली इतिहास

❐ साँई हास्पिटल
मुरादगंज तिराहा, जौनपुर (उ॰प्र॰)

बाल-मन की सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति है– 'हम बगिया के फूल'

डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी

आजकल बच्चों के लिए बहुत सारा सर्जन किया जा रहा है, चाहे कविता हो या कहानी या फिर बाल-साहित्य की अन्य कोई विधा। फिर भी गुणवत्ता की दृष्टि से बाल-साहित्य का सर्जन करनेवालों की संख्या आज भी बहुत कम है। ऐसे में यदि 'हम बगिया के फूल' जैसी कोई रचना सामने आती है, तो बहुत सुखद अनुभूति होती है। कहना न होगा कि इस संग्रह की अधिकतर कविताएँ बाल-भावना के अनुरूप बाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर बिल्कुल खरी उतरती हैं।

वास्तव में, बच्चों के लिए लिखना बहुत कठिन कार्य है। जहाँ बड़ों के लिए लिखने में अनुभव के किसी एक विशेष स्तर से गुज़रना पड़ता है, वहीं बच्चों के लिए लिखने में अनुभव के दुहरे स्तर से रू-ब-रू होना पड़ता है। यही कारण है कि अनेक बड़े रचनाकार, जो बड़ों के लिए बहुत आसानी से लिखने की क्षमता रखते हैं, बच्चों के लिए लिखते समय बहुत कठिनाई का अनुभव करते हैं। ऐसा अनेक प्रतिष्ठित रचनाकारों ने स्वीकार भी किया है। बाल-मनोविज्ञान के धरातल पर परकाया प्रवेश की प्रक्रिया से गुज़रते हुए बाल-भावनाओं के अनुरूप बच्चों के लिए कविताएँ लिखना सचमुच एक कठिन रचना-प्रक्रिया से गुज़रना है। ऐसा वही कर सकता है जिसके पास काव्य-सर्जन की स्वाभाविक प्रतिभा के साथ-साथ बाल-मन की गहरी समझ भी हो। कहा जा सकता है– बच्चों के लिए लिखना बच्चों का खेल नहीं है। पता नहीं बच्चों के लिए कुछ लोग बच्चों जैसा क्यों लिखते हैं? यही कारण है कि हर तरह से परफ़ेक्ट, एकदम सधी हुई बाल-कविताएँ बहुत कम दिखाई देती हैं। फिर भी बाल-साहित्य सर्जन के क्षेत्र में कुछ ऐसे सजग और समर्पित रचनाकार भी हैं, जो बाल-साहित्य को बचकाना लेखन से परे, बहुत गंभीर साहित्य-कर्म मानते हुए इस दिशा में निरंतर सक्रिय और गतिशील हैं। डॉ॰ बलजीत सिंह एक ऐसे ही सजगचित्त, गंभीर बाल-साहित्यकार कहे जा सकते हैं, जिनकी बाल-साहित्य के क्षेत्र में गहरी रुचि है। उनकी इसी रुचि, गहन चिंतन, सुदीर्घ मनन और परिपक्व सोच का परिणाम है प्रस्तुत रचना–'हम बगिया के फूल'।

'हम बगिया के फूल' डॉ॰ बलजीत सिंह की बाल-कविताओं का एक ऐसा संग्रह कहा जा सकता है, जिसे उन्होंने बहुत तैयारी के साथ प्रस्तुत किया है। इस संग्रह में जितनी भी बाल-कविताएँ हैं, उनके लिए रचनाकार ने बहुत परिश्रम किया है। विविध विषयों पर प्रस्तुत इन कविताओं में भाषा, भाव, कथ्य, शिल्प, छंद आदि की दृष्टि से सचमुच बहुत सजगता और

जागरूकता दिखाई देती है। संग्रह की रचनाओं को देखने से लगता है कि रचनाकार के पास बाल-मनोविज्ञान की गहरी समझ के साथ- साथ काव्य-रचना की परिपूर्ण संवेदनात्मक दृष्टि विद्यमान है। यदि गहरी संवेदनात्मक अनुभूति का सहज रूप से प्रकट हो जाना ही कविता है, तो कहना पड़ेगा कि डॉ॰ बलजीत सिंह के पास सहज काव्यानुभूति की स्वाभाविक पूँजी विद्यमान है। यही कारण है कि इस संग्रह की अधिकतर रचनाएँ अनायास या सहज फूटी हैं, वे सायास या प्रयत्नज नहीं हैं–

थोड़ी सी हल्दी को उसने कुछ पानी में घोला,
सोती दीदी के हाथों को पोता, तनिक न बोला।
मम्मी से फिर कहा– हाथ थे अब भी उसके गीले,
लो, देखो, दीदी के दोनों हाथ हो गए पीले।

बच्चों के लिए लिखते समय सबसे बड़ा ख़तरा है बाल-मनोविज्ञान की आधारभूमि पर बाल-मनोभावों के अनुरूप रचनाकर्म से जुड़ना, क्योंकि बच्चे हर तरह की यूँ ही लिखी गई रचनाओं में कोई रुचि नहीं रखते। बात-बात में उपदेश देना उन्हें वैसे भी पसंद नहीं। कहने की ज़रूरत नहीं कि आज अधिकतर बाल-रचनाकार इसी उपदेशात्मकता को प्रश्रय देते हुए नसीहतनामे को ही बाल-साहित्य की रचना का आवश्यक गुण मानते हैं। 'उठो सवेरे शाला जाओ, शाला जाकर वापस आओ', अथवा 'सूरज से पहले जग जाओ, अपने कामों में लग जाओ, बड़े ध्यान से करो पढ़ाई, लोग करेंगे ख़ूब बड़ाई' सरीखी पंक्तियाँ बाल-साहित्य-सर्जन के नाम पर कितनी ही दिखाई दे जाएँगी, जो न केवल पत्र-पत्रिकाओं में छप रही हैं, बल्कि उनके लिखनेवाले बाल-साहित्यकार का दर्जा भी प्राप्त कर रहे हैं।

वास्तव में, बाल-साहित्य के नाम पर कोरा उपदेश देनेवालों के सामने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की वह पंक्ति बहुत संबल का काम करती है, जहाँ वे कवि-कर्म की चर्चा करते हुए 'मनोरंजन के साथ-साथ' 'उचित उपदेश' को भी काव्य-प्रयोजन के रूप में स्वीकार करते हैं। यह सही है कि बाल-साहित्य के लिए मनोरंजन एक आवश्यक पक्ष है, जिसको अनदेखा नहीं किया जा सकता, पर यह भी सही है कि मनोरंजन की अपनी एक सीमा होती है। अपने उसी दायरे में स्वस्थ मनोरंजन के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया मनोरंजनपरक बाल-साहित्य महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कहा जा सकता है। जहाँ तक उपदेश का सवाल है, चाहे वह बड़ों के साहित्य में हो या बच्चों के साहित्य में, उससे काव्यत्व एवं साहित्यिकता का चारुत्व कम हो जाता है। बच्चों के साहित्य में तो उसे एक अवगुण माना जाता है।

बाल-साहित्य औपचारिक विद्यालयी शिक्षा के रेडीमेड फ़ार्मूले से तैयार की गई बाल-पुस्तकों से अलग रचनाकार की अंत:प्रेरणा से स्वत: एवं सहज स्फूर्त पूर्णत: मौलिक रचना है, जिसमें बाल-मन की भावनाओं के अनुरूप सर्जनात्मकता विद्यमान हो। बाल-साहित्य के रचनाकार को बाल-साहित्य की सर्जना करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि वह रचना बाल-साहित्य के लिए एक मौलिक देन हो। दूसरे, वह रचना रचनाकार के ज्ञान-भंडार का बखान करनेवाली न हो। तीसरे, वह रचनाकार के पूर्वाग्रहों को बालकों पर थोपकर उनके कल्याण की भावना से नहीं लिखी गई हो। इस संबंध में पॉल हेज़ार्ड की पंक्तियाँ बहुत विचारणीय हैं–

'बच्चे उन पुस्तकों को पसंद नहीं करते, जिनमें उन्हें बराबर का दर्जा नहीं दिया जाता और उन्हें 'प्यारे नन्हे साथियो' आदि शब्दों से संबोधित किया जाता है, अथवा जो उनकी अपनी प्रकृति के अनुरूप नहीं होतीं, जिनके चित्र उनकी आँखों को और जिनकी सजीवता उनके हृदय को आकृष्ट नहीं कर पातीं अथवा उन्हें केवल वही चीज़ें सिखाती हैं, जिन्हें वे स्कूल में सीखते हैं और जो उन्हें नींद की गोद में सुला सकती हैं, किंतु उन्हें सपनों की दुनिया में नहीं ले जा सकतीं।'

सबसे पहले हमें अपने मन से यह धारणा निकाल देनी चाहिए कि बाल-साहित्य सामान्य साहित्य से अलग कोई चीज़ है। साहित्य के अनिवार्य और सामान्य गुण-धर्म यदि किसी रचना में नहीं हैं, तो वह बाल-साहित्य में सम्मान पाने के योग्य नहीं है। बाल-साहित्य को कतिपय शब्द-समूह की कसौटी पर कसने तथा कुछ रेडीमेड पंक्तियों के सहारे प्रस्तुत करनेवाले रचनाकार बाल-साहित्य की मूल-भावना को नहीं समझते। बाल-साहित्य की रचना तो बहुत सहज रूप से प्रसूत स्वाभाविक शैली में प्रस्तुत की जानी चाहिए, जिसके माध्यम से बच्चों पर श्रेष्ठता का भाव कदापि आरोपित नहीं किया जाना चाहिए। यहाँ राबर्ट लॉसन तथा अनातोले फ्रांस के कथन बहुत ही प्रासंगिक हैं–

'जब किसी लेखक की रचना से ऐसा लगे कि वह प्रकट रूप से बच्चों के लिए लिखी गई है, तो समझ लेना चाहिए कि वह लेखक बच्चों पर अपनी श्रेष्ठता लाद रहा है।' –राबर्ट लॉसन

'जब तुम बच्चों के लिए लिख रहे हो तो उस विशेष अवसर के लिए विशेष शैली मत अपनाओ। अपनी पूरी क्षमता से सोचो, पूरी क्षमता से लिखो और सारी वस्तु को सजीव होकर आने दो।' –अनातोले फ्रांस

बाल-साहित्य-लेखन में प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा अथवा उपदेश बाल-साहित्य लेखन की कसौटी पर न केवल दोष है, वरन इसमें बालकों का अपमान भी निहित है। इस क्रम में पाल हेज़ार्ड की पंक्तियाँ बहुत ही प्रासंगिक कही जा सकती हैं–

'मैं ऐसी पुस्तकों को पसंद करता हूँ, जो साहित्य की आत्मा के प्रति वफ़ादार होती हैं, जो बच्चों के लिए सहज ज्ञान का द्वार खोल देती हैं, जो ऐसा सरल सौंदर्य प्रस्तुत करती हैं, जिसे बच्चा तुरंत ग्रहण कर सकता है, जो बच्चों के हृदय में ऐसी चेतना, ऐसा स्पंदन भर देती हैं, जो बच्चों के जीवन की स्थाई संपत्ति हो जाती हैं, जिनमें बढ़िया चित्र होते हैं–ऐसे चित्र जिन्हें बच्चे पसंद करें, जिन्हें समस्त विश्व के कला-वैभव से चुना गया हो। मुझे ऐसी पुस्तकें अच्छी लगती हैं, जो बच्चों में रुग्ण भावुकता के बजाय स्वस्थ भावनाशीलता जगाती हैं, जो बच्चों को महान मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति कराती हैं और जो उनमें व्यापक जीवन के प्रति आदरभाव पैदा करती हैं। मैं उन पुस्तकों को अच्छा मानता हूँ, जिनमें साहस और खेल के महत्त्व का समुचित आदर होता है, ...मुझे ज्ञानवर्धक पुस्तकें पसंद हैं, किंतु ऐसी पुस्तकें नहीं, जो मनोरंजन तथा विश्राम में घुसपैठ करती हैं और हर विषय को बिना उकताहट पैदा किए सिखाने का दंभ भरती हैं, क्योंकि यह बात सरासर झूठ है। ...मैं उन पुस्तकों को अच्छा मानता हूँ, जिनमें प्रचुर मात्रा में नैतिक गुण होते हैं, किंतु उस प्रकार की नैतिकता नहीं, जिसमें भिखारी को दो पैसे देनेवाला अपने आप को 'हीरो' मान लेता है। ...मैं उन पुस्तकों को अच्छा मानता हूँ, जिनमें जीवन को

प्रेरणा देनेवाले शाश्वत सत्य को सक्रिय रूप में प्रस्तुत किया जाता है...।'

इतनी सारी बातें कहने के पीछे बस यही भावना है कि बाल-साहित्य को बचकाना साहित्य मानने की भूल नहीं की जानी चाहिए और उसे गंभीर रचना-कर्म मानते हुए इस दिशा में गंभीर प्रयास किए जाने चाहिए। आज बाल-साहित्य-सर्जन के नाम पर अधिकतर रचनाएँ बहुत निराश करती हैं। अधिकतर बाल-रचनाकार रेडीमेड, चालू, सतही, साधारण तुकबंदियों को ही बाल-साहित्य सर्जन के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। आज जब बाल-साहित्य का अधिकांश–'हाथी, घोड़ा, भालू, बंदर, चूहा, बिल्ली, साँप, छछूंदर' अथवा 'सरदी, गरमी, बारिश, धूप, ताल-तलैया, पोखर, कूप' की साधारण तुकबंदियों से आगे बढ़ने में संकोच कर रहा हो, तब ऐसे में यदि कुछ गंभीर बाल-साहित्यकार अपने गंभीर सर्जन के साथ सामने आएँ, तो वे हमारा ध्यान अनायास खींच लेते हैं। डॉ॰ बलजीत सिंह एक ऐसे ही बाल-रचनाकार कहे जा सकते हैं, जिनके व्यापक सोच, सुदीर्घ चिंतन, गहन मनन और गंभीर-मौलिक प्रयास का परिणाम है 'हम बगिया के फूल', जिसमें उनकी साठ से अधिक बाल-कविताएँ सम्मिलित हैं।

'हम बगिया के फूल' बाल-साहित्य के चर्चित एवं लोकप्रिय बाल-साहित्यकार डॉ॰ बलजीत सिंह की चुनिंदा बाल-कविताओं का वह प्रतिनिधि संकलन कहा जा सकता है, जिसकी रचनाएँ ताज़गी और मौलिकता की चासनी में पगी हुई हैं। बड़ों के लिए भी समान रूप से लिखनेवाले डॉ॰ सिंह के पास काव्य-रचना की मौलिक प्रतिभा के साथ अनुभूति और संवेदना की गहरी समझ है। काव्य-रचना का संबंध यदि गहरी अनुभूति और संवेदना से है, तो कहना पड़ेगा कि उनके पास यह पूँजी बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान है, जिसके सहारे वे बालकाव्य-रचना में प्रवृत्त हो सके हैं। इस संग्रह की रचनाओं से रू-ब-रू होते हुए बाल-मनोभावों के विविध स्तरों से गुज़रना पड़ता है। कवि के पास बाल-मनोविज्ञान की गहरी समझ तो है ही, बाल-परिवेश तथा बाल-मन से उसका गहरा लगाव तथा तादात्मीकरण भी स्पष्टतया परिलक्षित होता है। बालक के आसपास रहते हुए रचनाकार ने काव्य-सर्जन का जो प्रयास किया है, वह उसे श्रेष्ठ बाल-साहित्यकार के रूप में समादृत करने के लिए पर्याप्त है।

वस्तुतः, बच्चों के लिए कविताएँ लिखना एक बहुत ही जटिल रचना-प्रक्रिया से गुज़रना है। इसके लिए एक विशेष प्रकार की मनःस्थिति के साथ अलग तरह की रचनात्मक समझ की आवश्यकता होती है। बिना गंभीर चिंतन-मनन के श्रेष्ठ बालकविताएँ नहीं लिखी जा सकती हैं। स्वस्थ मनोरंजन की सहज एवं स्वाभाविक शर्त पर जिज्ञासा और कौतुहलवृत्ति का निर्वाह करते हुए भाषा, भाव, लय, तुक, छंद, गति आदि सभी दृष्टियों से एकदम परफ़ेक्ट बाल-कविताएँ लिखना बहुत ही श्रमसाध्य कार्य है। 'हम बगिया के फूल' इस दृष्टि से कथ्य और शिल्प दोनों रूपों में सधी हुई बाल-कविताओं से परिपूर्ण है।

खेल-खेल के माध्यम से बच्चों को कुछ सिखाना बाल नैतिक शिक्षा का सबसे आकर्षक पहलू कहा जा सकता है, जहाँ कर्त्तव्यबोध तथा सामाजिक दायित्व के साथ मनोरंजन का भी भाव सम्मिलित हो–

आओ मित्रो, खेलें खेल।
आओ, चोर सिपाही खेलें,
अपनी-अपनी ड्यूटी ले लें,

कष्ट मिलें जो उनको झेलें,
निर्दोषों को अभयदान दें, अपराधी को भेजें जेल।
आओ मित्रो, खेलें खेल।

'हम बगिया के फूल' में बालमनोभावों के अनुकूल विविध विषयों और भावों से संवलित कविताएँ विद्यमान हैं, जो कवि की काव्यात्मक प्रतिभा के प्रति बहुत आश्वस्तिपरक भाव जगाती हैं, क्योंकि ये कविताएँ बाल-काव्य सर्जन के नाम पर लिखी जानेवाली रुटीन टाइप की कविताओं से अलग कवि की गहरी मानवीय संवेदना की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। कवि की संवेदना तब और अधिक विस्तार लेती हुई दिखाई देती है, जब वह मानव, पशु-पक्षी से अलग जड़ पेड़-पौधों के प्रति भी उतना ही संवेदनात्मक भाव रखता हुआ दिखाई देता है–

उन्हें बताएँ वृक्ष हमारे जीवन के दाता हैं।
वही दूसरे पिता हमारे, वे दूजी माता हैं।
ये न रहे तो छाँव न होगी, बूँद नहीं बरसेगी।
सुख-सुविधाओं को यह दुनिया तड़प-तड़प तरसेगी।

हमारे आसपास की वे सारी वस्तुएँ, जो बच्चों में तनिक भी उत्सुकता और जिज्ञासा का भाव जगाती हैं, बाल-कविता का विषय बन जाती हैं। ऐसी वस्तुओं के बारे में जानने के लिए बच्चे सदैव तत्पर रहते हैं। ऐसे अनेक विषयों पर बहुत ही रोचक और मनोरंजक कविताएँ इस संग्रह में विद्यमान हैं। ऐसे विषयों पर प्रस्तुति का तरीक़ा बहुत ही सहज और प्रभावी है–

भारत की ये रेल निराली,
सुख-सुविधा की है रखवाली,
झूम-झूम चलती मतवाली,
टिकटोंवाले मंज़िल पाते,
बिना टिकट जाते हैं जेल।
छुक-छुक करती जाती रेल।

बालकाव्य-सर्जन की दृष्टि से मौसम, तीज-त्योहार, पशु-पक्षियों के किरदार, साहसिक कारनामे आदि बहुत रोचक और महत्त्वपूर्ण विषय कहे जाते हैं। ऐसे विषयों पर संग्रह में अनेक अच्छी कविताएँ मौजूद हैं, जो विषय-वैविध्य के प्रति कवि के जुड़ाव को स्पष्ट करती हैं। संग्रह में सम्मिलित ऐसी कविताओं में 'बगुला नदी किनारे', 'बादल-बादल बरसा पानी', 'कौआ और कोयल', 'मधुमक्खी', 'कौए की सीख', 'मेरा कुत्ता' आदि कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है। इन विषयों से संबंधित कविताएँ भी बहुत सधी हुई और बाल-मनोभावों के अनुरूप हैं। कहीं-कहीं तो बहुत परिपक्व पंक्तियाँ दिखाई देती हैं, जिनमें बहुत गहराई और भावपरकता विद्यमान है–

नभ में, जल में, थल में तू है,
हर पत्ती, हर फल में तू है,
नदियों की कलकल में तू है,

चल में और अचल में तू है,
तू हर रंग में, नीला, पीला, हरा, बैंगनी या हो धानी।
बादल बादल बरसा पानी।

बाल-कविता के माध्यम से भी इतने व्यापक और दार्शनिक भावों से संपन्न भावाभिव्यक्ति संभव है, ये पंक्तियाँ इसका स्पष्ट निदर्शन हैं।

बालकों में आदर्श एवं नैतिक गुणों के भाव जगाने के उद्देश्य से देशभक्तिपरक बाल-कविताओं का विशेष महत्त्व है। ऐसा शायद ही कोई बाल-साहित्यकार होगा, जिसकी लेखनी इस विषय पर न चली हो। इस दृष्टि से यह सबसे आकर्षक विषय है। फिर भी इस विषय पर उम्दा और स्तरीय रचनाएँ कम ही देखने को मिलती हैं। यह कहते हुए प्रसन्नता है कि 'हम बगिया के फूल' में इस विषय से संबंधित अनेक अच्छी रचनाएँ विद्यमान हैं, जो बच्चों में देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, गौरव और स्वाभिमान का भाव जगाने में समर्थ हैं। भारत का वीर कहलाने पर बच्चों में गौरव का भाव जाग्रत होना स्वाभाविक है–

आल्हा-ऊदल, शिवा, भगतसिंह, राणा के बच्चे हैं।
ऊँचे हैं आदर्श हमारे, सब मन के सच्चे हैं।
लिया यहीं पर जन्म राम ने, कृष्ण यहीं पर आए।
सूर, कबीरा, तुलसी, मीरा ने प्रभु के गुण गाए।
अपने ऊपर कष्ट झेल हम हरते जन की पीर हैं।
हम भारत के वीर हैं।

बच्चों के आसपास ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जिनके माध्यम से उन्हें अनेक तरह की सीख मिलती हैं। चींटी, मक्खी, तितली, सूरज, चाँद, पुस्तक, फूल आदि कुछ ऐसे ही उपयोगी नाम हैं, जिनके माध्यम से बच्चों में अनेक गुणों का विकास किया जा सकता है। इनसे प्राप्त प्रेरणा बच्चों के जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। इन उपयोगी विषयों पर इस संग्रह में कई रचनाएँ हैं और वे रचनाएँ बहुत अच्छी और हर तरह से परफ़ेक्ट और मुकम्मल हैं। एक कविता में फूल से प्रेरणा ग्रहण करने की बात बहुत सहज और रोचक है–

इन फूलों से हँसना सीखो,
सबके मन में बसना सीखो,
देश, धर्म हित मरना सीखो,
परहित जीना, परहित मरना, हो जीवन का यही उसूल।
बच्चो, तोड़ो कभी न फूल।

बच्चों के लिए घर-परिवार में वैसे तो सभी रिश्ते महत्त्वपूर्ण होते हैं, पर कुछ रिश्तों का उनके लिए विशेष महत्त्व होता है। इन रिश्तों की उनके जीवन पर गहरी और अमिट छाप होती है। ऐसे रिश्तों में दादा, दादी, नाना, नानी के साथ ही माँ का नाम सर्वोपरि है। ये रिश्ते बच्चों को न केवल भावनात्मक संरक्षण प्रदान करते हैं, बल्कि उनके लिए ज्ञान और सूचनाओं के अनंत स्रोत भी हैं। 'हम बगिया के फूल' में इन रिश्तों को समेटती हुई एक से बढ़कर एक अच्छी कविताएँ मौजूद हैं। घर की सबसे अनुभवी प्राणी नानी से बच्चे का यह अनुरोध कि वह

आज के युग-परिवेश के अनुरूप कोई नई कहानी सुनाएँ, बहुत रोचक और शिक्षाप्रद कविता है–

प्यारी नानी, अच्छी नानी,
आज सुनाओ नई कहानी।
कथा सुनाओ अंतरिक्ष में उड़ते गुब्बारों की।
दूर-दूर तक मार करें जो, ऐसे हथियारों की।
भारत के बढ़ते क़दमों का हमको ज्ञान कराओ।
देशभक्ति की प्रबल भावना जन-जन में पनपाओ।
भारत के वीरों की गाथा रहे नहीं अनजानी।
आज सुनाओ नई कहानी।

एक जागरूक बाल-साहित्यकार की तरह कवि ने बाल-समस्या से भी संबंधित कुछ कविताएँ प्रस्तुत की हैं, जो उसकी सजग बाल-चेतना का परिचय देती हैं। आज के दौर में बच्चों की सबसे बड़ी समस्या है उनके वज़न से भारी उनका बस्ता, जिसको लेकर आज सभी चिंतित हैं। उसी चिंता की स्वाभाविक परिणति है, प्रस्तुत संग्रह की कविता 'मुझसे भारी मेरा बस्ता', जिसके माध्यम से बाल-मन की सहज अभिव्यक्ति हुई है–

मम्मी तुम कहती हो मुझसे रहूँ सदा मैं हँसता,
लेकिन मैं लाचार कि मुझसे भारी मेरा बस्ता।
गणित पढ़ूँ, इतिहास पढ़ूँ मैं, और पढ़ूँ भाषाएँ,
लगा रहे हैं सारे मुझसे बड़ी-बड़ी आशाएँ।
मुझे पुस्तकें दुश्मन लगतीं, खेल बहुत भाते हैं,
मुझको मेरे अध्यापक भी अक्सर धमकाते हैं।
मुझे नींद आने लगती है, जब मैं पुस्तक पढ़ता,
मम्मी तुम कहती हो मुझसे रहूँ सदा मैं हँसता।

कुल मिलाकर विविध विषयों को समेटती हुई इस संग्रह की रचनाओं में काव्यत्व के अनुरक्षण तथा साहित्यिकता के संरक्षण का ईमानदाराना प्रयास दिखाई देता है। उससे बाल-साहित्य के प्रति उनकी प्रतिबद्धता तो स्पष्ट होती ही है, बाल-साहित्य के स्तर एवं मानदंडों के अनुरूप स्तरीय तथा सुरुचिपूर्ण रचनाओं का सर्जन भी हो, उन्होंने इसका भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है। कहा जा सकता है कि 'हम बगिया के फूल' की कविताएँ बाल-मन की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं।

और अंत में, 'हम बगिया के फूल' का प्रकाशन हिंदी के जानेमाने विद्वान, प्राध्यापक, कवि, ग़ज़लकार, संपादक एवं सुरुचिपूर्ण दृष्टिसंपन्न प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की व्यापक देखरेख में हो रहा है, जो हिंदी साहित्य प्रकाशन जगत में स्तरीय प्रकाशन के एक मानक बन चुके हैं। इसलिए उक्त संग्रह निस्संदेह स्तरीय और उच्चकोटि का होगा। बालभावनाओं का सम्यक् सत्कार करनेवाली रचना 'हम बगिया के फूल' बाल-मन की सहज, सरल, स्वाभाविक, निश्छल प्रस्तुति करने के कारण प्रकाशनोपरांत, हिंदी बाल-साहित्य जगत में अपना उचित स्थान

बनाने में समर्थ होगी, ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए। ऐसी कृति का सर्जन करने के लिए डॉ॰ बलजीत सिंह को बहुत-बहुत बधाई।

हम बगिया के फूल; डॉ॰ बलजीतसिंह; प्रथम संस्करण 2010; मूल्य 150.00 रुपए; प्रकाशक: हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)

राधिका सदन
6-**ए**-35, **चंद्रशेखर आज़ादनगर**
भीलवाड़ा-311001 (**राजस्थान**)

1. प्रकाशन का स्थान	:	बिजनौर
2. प्रकाशन की आवर्तिता	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	:	डा. गिरिराजशरण अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स निकट ज्योतिष भवन, बिजनौर 246701
4. प्रकाशक का नाम	:	डा. गिरिराजशरण अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	16 साहित्य विहार बिजनौर (उ.प्र.)
5. संपादक का नाम	:	डा. गिरिराजशरण अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	16 साहित्य विहार बिजनौर (उ.प्र.)
6. उन व्यक्तियों के नाम पते जो इस अखबार के मालिक या साझेदार हैं या इसकी सारी पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं।	:	हिंदी साहित्य निकेतन 16 साहित्य विहार बिजनौर (उ.प्र.)

मैं डा. गिरिराजशरण अग्रवाल यह घोषित करता हूँ कि उपयुक्त विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

ह० डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
प्रकाशक